आज़ादी के सत्रह कदम

जवाहरलाल नेहरू

आज़ादी के सत्रह कदम

[जवाहरलाल नेहरू के स्वातन्त्र्य दिवस भाषण]

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

15 अगस्त 1964
24 श्रावण 1886

मूल्य एक रुपया

निदेशक प्रकाशन विभाग पुराना सचिवालय दिल्ली 6, द्वारा प्रकाशित
तथा प्रबन्धक भारत सरकार मुद्रणालय फरीदाबाद द्वारा मुद्रित

शान से हमने हिन्दुस्तान को आजाद किया, शान से हमे आगे बढना है, शान से हमे यह जो हिन्दुस्तान की आजादी की मशाल है उसको लेकर चलना है और जब हमारे हाथ कमजोर हो जाए तो औरो को देना है, ताकि नौजवान हाथ उसको उठाए, और हम अपना काम पूरा करके चाहे खाक मे मिल जाए।

—जवाहरलाल नेहरू

विषय सूची

जब से भारत स्वतन्त्र हुआ तब से हर साल पन्द्रह अगस्त को लाल किले से श्री नेहरू का व्याख्यान सुनना एक वार्षिक राष्ट्रीय त्योहार के रूप में हो गया था। जो लोग सामने बैठ कर व्याख्यान नहीं सुन पाते थे वे रेडियो से सुनते थे। अफ़सोस है कि इस साल पन्द्रह अगस्त को वह प्यारी ओजस्वी वाणी भारत में नहीं गूंजी। पर नेहरू ने अपने युग में पन्द्रह अगस्त को जो भाषण दिए, वे आकाशवाणी के अनुलेखन विभाग द्वारा सुरक्षित रखे गए। इस पुस्तिका में महान नेता के वे भाषण उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत हैं। निश्चय ही ये भाषण प्रत्येक भारतीय के लिए अनुप्रेरक प्रमाणित होंगे। इनमें थोड़े में श्री नेहरू के सारे विचार और उनमें होता हुआ निरन्तर विकास दृष्टिगोचर हो सकता है। ये भाषण मौलिक रूप से हिन्दी में दिए जाने के कारण हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि हैं।

जनता का प्रथम सेवक

आज एक शुभ और मुबारक दिन है। जो स्वप्न हमने बरसों से देखा था, वह कुछ हमारी आखों के सामने आ गया। चीज़ें हमारे कब्ज़े में आईं। दिल हमारा खुश होता है कि एक मंज़िल पर हम पहुचे। यह हम जानते हैं कि हमारा सफर खतम नहीं हुआ, अभी बहुत मंजिलें बाकी हैं। लेकिन, फिर भी, एक बड़ी मंजिल हमने पार की और यह बात तय हो गई कि हिन्दुस्तान के ऊपर कोई गैर हुकूमत अब नहीं रहेगी।

आज हम एक आज़ाद लोग हैं, आज़ाद मुल्क हैं। मैं आपसे आज जो बोल रहा हू, एक हैसियत, एक सरकारी हैसियत मुझे मिली है, जिसका असली नाम यह होना चाहिए कि मैं हिन्दुस्तान की जनता का प्रथम सेवक हू। जिस हैसियत से मैं आपसे बोल रहा हू, वह हैसियत मुझे किसी बाहरी शख्स ने नहीं दी, आपने दी है और जब तक आपका भरोसा मेरे ऊपर है, मैं इस हैसियत पर रहूगा और उस खिदमत को करूगा।

हमारा मुल्क आज़ाद हुआ, सियासी तौर पर एक बोझा जो बाहरी हुकूमत का था वह हटा। लेकिन आज़ादी भी अजीब-अजीब जिम्मेदारिया लाती है और बोझे लाती है। अब, उन जिम्मेदारियों का सामना हमें करना है और एक आज़ाद हैसियत से हमें आगे बढ़ना है और अपने बड़े-बड़े सवालो को हल करना है। सवाल बहुत बड़े हैं। सवाल हमारी सारी जनता का उद्धार करने के हैं, हमें गरीबी को दूर करना है, बीमारी को दूर करना है, अनपढ़पने को दूर करना है और आप जानते हैं, कितनी और मुसीबतें हैं, जिनको हमें दूर करना है। आज़ादी महज़ एक सियासी चीज़ नहीं है। आज़ादी तभी एक ठीक पोशाक पहनती है जब उससे जनता को फायदा हो। आजकल हमारे सामने ये आर्थिक और इक्तसादी सवाल बहुत सारे हैं, बहुत काफी जमा हुए हैं, जो हमारी गुलामी के ज़माने के हैं। बहुत कुछ पिछली लड़ाई की वजह से, पिछली बड़ी लड़ाई जो दुनिया में हुई और उसके बाद जो हालात दुनिया में हुए हैं उसकी वजह से ये सवाल जमा हैं। खाने की कमी है, कपड़े की कमी है और ज़रूरी चीजों की कमी है और ऊपर से चीजों के दाम बढ़ते जाते हैं, जिससे जनता की मुसीबतें बढ़ रही हैं।

यह भाषण आकाशवाणी से प्रसारित किया गया

हम इन सब बातों का कोई जादू से तो दूर नहीं कर सकते लेकिन फिर भी हमारा फ़र्ज़ है कि इन सवालों को लेकर जनता को आराम पहुँचाएं और पूरे तौर से इन सवालों को हल करने की भी कोशिश करें। लेकिन इसके पहले एक और सवाल है और वह यह है कि सारे हमारे देश में अमन हो शान्ति हो आपस के लड़ाई-झगड़े बिलकुल बन्द हों क्योंकि जब तक लड़ाई-झगड़े होते हैं उस वक्त तक कोई काम माकूल तरीके से नहीं हो सकता। तो यह आपसे मेरी पहली दरख्वास्त है और आज जो हमारी नई गवर्नमेंट बनी है उसने भी आज यह पहली दरख्वास्त हिन्दुस्तान से की है—जो आप शायद कल सुबह के अखबारों में पढ़ें—वह यह है कि यह जो आपस की साम्प्रदायिक आपस के झगड़े हैं, वे फ़ौरन बन्द किए जाएं। क्योंकि आखिर अगर साम्प्रदायिकता है तो वह भी इन झगड़ों और मारपीट से किस तरह से हल होगी। आपने देख लिया कि एक जगह झगड़ा होता है दूसरी जगह उसका बदला होता है। उसका कोई अन्त नहीं और ये बातें आज़ाद लोगों को कुछ जेब नहीं देती हैं। ये गुलामी की बातें हैं।

हमने कहा कि हम इस देश में प्रजातन्त्रवाद चाहते हैं। प्रजातन्त्रवाद में डेमोक्रेसी में इस तरह की बातें नहीं होतीं। जो सवाल है हमें आपस में सलाह-मशवरा करके एक-दूसरे का ख्याल करके हल करने हैं। और अपने फ़ैसले पर अमल करना है।

इसलिए पहली बात तो यही है कि हमें फ़ौरन अपने इस किस्म के सारे झगड़े बन्द करने हैं। फिर फ़ौरन ही हमें ये बड़े आर्थिक सवाल उठाने हैं जिनका अभी मैंने आपसे जिक्र किया। हमारा जमीन का बहुत सारे प्रान्तों में जमीन का जो कानून है आप जानते हैं वह कितना पुराना है कितना उसका बोझा हमारे किसानों पर रहा है और इसलिए अरसे से हम उसको बदलने की कोशिश कर रहे हैं और जो जमींदारी प्रथा है उसको भी हटाने की कोशिश कर रहे हैं। इस काम को भी हमें जल्दी करना है और फिर हमें सारे देश में बहुत-कुछ आर्थिक तरक्की करनी है, कारखाने खोलने हैं, घरेलू धन्धे बढ़ाने हैं जिससे देश की धन-दौलत बढ़े, और इस तरह से नहीं बढ़े कि वह थोड़ी सी जेबों में जाए, बल्कि आम जनता को उससे फ़ायदा हो। आप शायद जानते हैं कि हमारी बड़ी-बड़ी स्कीमें हैं, हिन्दुस्तान में काम करने के बड़े-बड़े नक्शे हैं। बहुत सारी जो नदियां और दरिया हैं उनके पानी की ताकत से फ़ायदा उठा कर हम नई-नई ताकत पैदा करें, बड़ी-बड़ी नहरें बनाएं और बिजली पैदा करें, जिस ताकत से कि हम फिर और बहुत काम कर सकेंगे। इन सब बातों को हमें चलाना है तेज़ी से चलाना है, क्योंकि आखिर में देश की धन-दौलत इसी से बढ़ेगी और उसके बाद जनता का उद्धार होगा।

बहुत सारी बातें मुझे आपसे कहनी हैं और बहुत सारी बातें मैं आपसे कहूंगा। लेकिन, आज सिर्फ ये दो-चार बातें मैं आपके सामने रखना चाहता हूं। मैं आशा करता हूं कि मुझे आइन्दा मौके होंगे कि कैसे-कैसे हम काम कर रहे हैं, कैसे-कैसे हमारे दिमाग में विचार हैं, वह सब मैं आपके सामने पेश करूंगा। क्योंकि प्रजातन्त्र-वाद में हमेशा जनता को मालूम होना चाहिए कि क्या हम करते हैं, क्या हम सोचते हैं। और वह उसको पसन्द होना चाहिए। उसी की सलाह से सब काम होना चाहिए। इसलिए यह जरूरी है कि आपसे हमारा सम्बन्ध बहुत करीब का रहे।

आज मैं अधिक नहीं कहना चाहता। लेकिन, यह मैं जरूर चाहता था कि आज के शुभ दिन आपसे मैं कुछ कहूं, आपसे एक पुराना सम्बन्ध कुछ न कुछ ताजा करूं। इसलिए मैं आज आपके सामने हाजिर हुआ। फिर से मैं आपको इस शुभ दिन मुबारकबाद देता हूं। लेकिन उसी के साथ आपको याद दिलाता हूं कि हमारी जिम्मेदारियां जो हैं इसके माने हैं कि हमें आइन्दा आराम नहीं करना, बल्कि मेहनत करनी है, एक-दूसरे के सहयोग के साथ काम करना है, तभी हम अपने बड़े सवालों को हल कर सकेंगे।

1947 जय हिन्द!

हम इन सब बातों को कोई जादू से तो दूर नहीं कर सकते लेकिन फिर भी हमारा फ़र्ज़ है कि इन सवालों को लेकर जनता की आराम पहुँचाएं और पूरे तौर से इन सवालों को हल करने की भी कोशिश करें। लेकिन इसके पहले एक और सवाल है और वह यह है कि सारे हमारे देश में अमन हो शान्ति हो आपस के लड़ाई-झगड़े बिलकुल बन्द हों क्योंकि जब तक लड़ाई-झगड़े होते हैं उस वक्त तक कोई काम माकूल तरीके से नहीं हो सकता। तो यह आपसे मेरी पहली दरख्वास्त है और आज जो हमारी नई गवर्नमेंट बनी है उसने भी आज यह पहली दरख्वास्त हिन्दुस्तान से की है—जो आप शायद कल सुबह के अखबारों में पढ़ें—वह यह है कि यह जो आपस की साम्प्रदायिक आपस के झगड़े हैं वे फ़ौरन बन्द किए जाएं। क्योंकि आखिर अगर साम्प्रदायिकी है तो वह भी इन झगड़ों और मारपीट से किस तरह से हल होगी। आपने देख लिया कि एक जगह झगड़ा होता है, दूसरी जगह उसका बदला होता है। उसका कोई अन्त नहीं और ये बातें आजाद लोगों को कुछ शोभा नहीं देती हैं। ये गुलामी की बातें हैं।

हमने कहा कि हम इस देश में प्रजातन्त्रवाद चाहते हैं। प्रजातन्त्रवाद में डेमोक्रेसी में इस तरह की बातें नहीं होतीं। जो सवाल है, हमें आपस में सलाह-मशवरा करके एक-दूसरे का ख्याल करके हल करने हैं। और अपने फ़ैसले पर अमल करना है।

इसलिए पहली बात तो यही है कि हमें फ़ौरन अपने इस किस्म के सारे झगड़े बन्द करने हैं। फिर फ़ौरन ही हमें वे बड़े आर्थिक सवाल उठाने हैं जिनका अभी मैंने आपसे ज़िक्र किया। हमारा ज़मीन का बहुत सारे प्रान्तों में ज़मीन का जो कानून है आप जानते हैं, वह कितना पुराना है कितना उसका बोझा हमारे किसानों पर रहा है और इसलिए अरसे से हम उसको बदलने की कोशिश कर रहे हैं और जो ज़मींदारी प्रथा है उसको भी हटाने की कोशिश कर रहे हैं। इस काम को भी हमें जल्दी करना है और फिर हमें सारे देश में बहुत-कुछ आर्थिक तरक्की करनी है, कारखाने खोलने हैं, घरेलू धन्धे बढ़ाने हैं, जिससे देश की धन-दौलत बढ़े, और इस तरह से नहीं बढ़े कि वह थोड़ी सी जेबों में जाए, बल्कि आम जनता को उससे फ़ायदा हो। आप शायद जानते हैं कि हमारी बड़ी-बड़ी स्कीमें हैं हिन्दुस्तान में काम करने के बड़े-बड़े नक्शे हैं। बहुत सारी जो नदियां और दरिया हैं उनके पानी की ताकत से फ़ायदा उठा कर हम नई-नई ताकत पैदा करें, बड़ी-बड़ी नहरें बनाएं और बिजली पैदा करें, जिस ताकत से कि हम फिर और बहुत काम कर सकेंगे। इन सब बातों को हमें चलाना है, तेज़ी से चलाना है, क्योंकि आखिर में देश की धन-दौलत इसी से बढ़ेगी और उसके बाद जनता का उद्धार होगा।

उतना ही यकीन हुआ है कि हिन्दुस्तान की आज़ादी कायम रखने के लिए, हिन्दुस्तान की तरक्की के लिए, हिन्दुस्तान को दुनिया में बड़ा मुल्क बनाने के लिए—बड़ा खाली लम्बान और चौड़ान में नहीं, बल्कि ऐसा मुल्क बनाने के लिए, जो बड़े काम करता है और जिसकी इज्जत दुनिया में होती है—हमें खुद बड़ा होना पड़ेगा, हमें खुद उस रास्ते पर चलना पड़ेगा, जो महात्मा गांधी ने हमें दिखाया था। क्या चीज़ है हिन्दुस्तान ? हिन्दुस्तान एक बहुत ज़बरदस्त चीज़ है, जो कि हज़ारों बरस पुरानी है। लेकिन आखिर में हिन्दुस्तान आज क्या है, सिवाए इसके कि जो आप हैं और मैं हूं और जो लाखों और करोड़ों आदमी हैं जो इस मुल्क में बसते हैं। अगर हम भले हैं, अगर हम मज़बूत हैं, तो हिन्दुस्तान मज़बूत है और अगर हम कमज़ोर हैं तो हिन्दुस्तान कमज़ोर है। अगर हमारे दिल में ताकत है और हिम्मत है और कूवत है, तो वह हिन्दुस्तान की ताकत हो जाती है। अगर हम में फूट है, लड़ाई-कमज़ोरी है तो हिन्दुस्तान कमज़ोर है। हिन्दुस्तान हमसे कोई एक अलग चीज़ नहीं है, हम हिन्दुस्तान के एक छोटे टुकड़े हैं। हम उसकी औलाद हैं और इसी के साथ याद रखिए कि हम जो आज सोचते हैं और जो कारवाई करते हैं, उससे कल का हिन्दुस्तान बनता है। बड़ी ज़िम्मेदारी आप पर, हम पर और हिन्दुस्तान के रहने वालों पर है। 'जय हिन्द' हम पुकारते हैं, और 'भारतमाता की जय' बोलते हैं, लेकिन जय हिन्द तो तब हो जब हम सही रास्ते पर चलें, सही खिदमत करें और हिन्दुस्तान में ऐसी बातें न करें, जिनसे इसकी शान कम हो या वह कमज़ोर हो।

इस पिछले साल में बड़ी-बड़ी मुसीबतों पर हम हावी हुए, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि बड़ी-बड़ी गलतियां भी हमसे हुईं, बहुत कमज़ोरी हमने दिखाई, और अपने सही रास्ते से हम बहुत बहक गए। हम हिन्दुस्तान को भूल गए, अपने-अपने फिरके की, अपने-अपने सूबे की बातें सोचने लगे। हम खुदगर्ज़ी में पड़ गए, और अगर हम खुदगर्ज़ी में और नफरत में और लड़ाई-झगड़े में पड़ें तो मुल्क गिरता है। लेकिन फिर भी इन बातों को हमने बर्दाश्त किया और इस साल भर के बाद नई आज़ादी में हम खाली ज़िन्दा नहीं हैं, बल्कि मज़बूती से ज़िन्दा हैं, तगड़े हैं और हमारी हिम्मत काफी है। तो इस वक्त आजकल की दुनिया में और हिन्दुस्तान में, जब कि फिर लड़ाई का चर्चा है—कहीं लड़ाई हो रही है, कहीं आइन्दा की लड़ाई का ज़िक्र है—हम किधर देखें और क्या करें ? खास तौर से आज के दिन मैं आपसे लड़ाई-झगड़े की कोई बात नहीं कहना चाहता। हां इतना कहूंगा कि जो लोग आज़ादी चाहते हैं, उनको हमेशा अपनी आज़ादी की हिफाज़त करने के लिए, अपनी आज़ादी को बचाने और रखने के लिए अपने को न्योछावर करने को तैयार रहना चाहिए। जहां कोई कौम गफलत खाती है, वह कमज़ोर होती है और वह गिर जाती है। इसलिए हमें हमेशा तैयार रहना है। लेकिन इतना

गांधी के रास्ते को न भूलें

साल भर हुआ जब हम यहां आए थे इकट्ठा हुए थे। एक साल गुजरा और इस साल में क्या-क्या वाकयात हुए, क्या-क्या हम पर बीती। बड़े-बड़े तूफान आए और उस तूफानी समुन्दर में बहुतों ने गोता खाया लेकिन फिर भी हिन्दुस्तान ने उसका सामना करके अपने मजबूत बाजू से उसको भी बहुत कुछ पार किया। इस साल में बहुत कुछ बातें हुईं अच्छी और बुरी। लेकिन सबमें बड़ी बात जो इस साल में हुई है सबसे बड़ा सदमा जो हमको पहुंचा है वह है हमारे राष्ट्रपिता का गुजर जाना। पर साल जब इसी मौके पर मैं आपसे कुछ कह रहा था तो मेरा दिल हलका था और मैंने आपसे भी कहा था कि चाहे भी मुसीबतें या दिक्कतें हमारे सामने आएं, हमारा एक जबरदस्त सहारा मौजूद है जो हमेशा हमें सही रास्ता दिखाएगा और हमारी हिम्मत बढ़ाएगा। इसलिए हम बेफ़िक्र थे लेकिन वह सहारा गया और हम अपनी अक्ल पर और अपनी ताकत पर ही भरोसा करना है। मुनासिब था कि आज सवेरे हममें से बहुत लोग राजघाट पर जाएं, और अपनी श्रद्धांजलि उस पवित्र मुकाम पर पेश करें। काफी यह मुनासिब नहीं है कि हम ऐसे चुने हुए दिनों को वहां पर जाएं और उनकी कुछ याद करें। मुनासिब तो यह है कि उनका सबक उनका उपदेश हमारे दिल में बिंध जाए और उसी के ऊपर हम चलें और हिन्दुस्तान को बसाएं। करीब तीस बरस से उन्होंने हिन्दुस्तान को आजादी का रास्ता दिखाया और हलके-हलके कदम-ब-कदम उन्होंने हिन्दुस्तान की ताकत बढ़ाई। हिन्दुस्तान की जनता के दिल में से डर निकाला और आखिर में हिन्दुस्तान को आजाद किया। उन्होंने अपना काम पूरा किया। हमने और आपने अपना-अपना फर्ज कितना अदा किया और पूरा किया? हमारे ऊपर बड़े-बड़े खतरे और मुसीबतें आईं, लेकिन मेरा यह ख्याल है और यकीन है कि अगर हम उनके रास्ते पर पक्के तौर से रहते तो खतरे भी नहीं आते और आते भी तो जल्दी से खतम हो जाते। इसलिए पहली बात जो मैं आपसे चाहता हूं खास तौर से आज के दिन और यों रोज-रोज भी कि आप याद करें—जैसा वे सिद्धान्त हैं जिन पर चल कर हमने हिन्दुस्तान को आजाद किया आपने और हमने। और हम उन पर कायम हैं या हम किसी और रास्ते पर चलना चाहते हैं। जहां तक मेरा ताल्लुक है, मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जितना ज्यादा मैंने इस पर सोचा है

और दुनिया पर असर पैदा करेंगे। वे बातें अभी दूर हैं, क्योकि हम झगडो-फिसादो मे मुवतिला हो गए, फस गए, लेकिन उस काम को हमे पूरा करना है। जब तक हमारा वह काम पूरा नही होता तब तक हमारी आजादी भी पूरी नही होती, उस वक्त तक हम दिल खोल कर जय हिन्द भी नही कह सकते।

आप और हम इस वक्त अपनी मुसीबतो मे गिरफ्तार है, इस दिल्ली शहर में, और कहा-कहा हिन्दुस्तान के कितने हमारे शरणार्थी भाई और बहनें मुसीबत में है। कुछ का इन्तजाम हुआ, कुछ लोगो का अभी नही हुआ। और कितने ही और लोग आजकल की और मुसीबतो में फसे हैं जो हर चीज की कीमत बढ जाने की वजह से आम जनता पर आई है। ये सब बडे-बडे सवाल हैं। हमें जो एक हुकूमत की कुर्सी पर बैठाया है, हमारी जिम्मेदारी है। लेकिन, यह भी आप याद रखें, कि एक आजाद मुल्क में बडे-बडे सवाल तब तक हल नही हो सकते, जब तक कि उन्हे हल करने मे आम जनता का पूरा सहयोग न हो, मदद न हो। आपका हक है कि आप नुक्ताचीनी करें और आप एतराज करें। ठीक है, कोई खामोशी से मुल्क नही चलते है कि हरेक आखें बन्द करके हरेक बात मजूर कर ले। लेकिन अगर आप आजाद कौम है तो खाली एतराज करने से काम नही चलता। उस बोझे को उठाना है, सहयोग करना है, मदद करनी है और अगर हम सब इस तरह से करे, तो बडे से बडे मसले हल होगे। आप यहा लाखो की तादाद मे जमा हैं, आप अपने से पूछें, एक-एक मर्द-औरत, लडका और लडकी कि आपने हिन्दुस्तान की क्या खिदमत की, रोज-रोज क्या छोटी और बडी बातें आपने की? क्योकि पहला फर्ज, हमारा और आपका पहला काम यह है कि हिन्दुस्तान की खिदमत कुछ न कुछ करें। बहुत से आदमी मिल कर अगर थोडा-थोडा भी करें तो मिल कर वह एक बहुत बडी चीज हो जाती है। लेकिन अगर हम यह समझें कि यह सारी जिम्मेदारी कुछ अफसरो की है, हुकूमत की कुर्सी पर जो लोग बैठे हैं, उनकी है, तो यह गलत बात है। आजाद मुल्क इस तरह से नही चलते, गुलाम मुल्क इस तरह से सोचते हैं और इस तरह से चलाए जाते हैं। जब गैर मुल्क के लोग हुकूमत करें तो वो जो चाहें सो करे, लेकिन आजाद मुल्क में अगर आप आजादी के फायदे चाहते हैं, तो आजादी की जिम्मेदारिया भी ओढनी पडती हैं, आजादी के बोझे भी ढोने पडते हैं, आजादी का निजाम और डिसिप्लिन भी आपको उठाना चाहिए। पुरानी अपनी आदतें जो गुलामी के जमाने की थी उन्हें हम पूरे तौर से अभी तक भूले नही हैं और हम समझते हैं कि बगैर हमारे कुछ किए ऊपर से सब बातें हो जानी चाहिए। मैं चाहता हू आप इस बात को समझें कि आप अगर आजाद हुए, तो फिर एक आजाद कौम की तरह से हर एक को चलना है, और उस जिम्मेदारी को ओढना है, उस बोझे को उठाना है।

हमारी हुकूमत के जो नए-पुराने अफसर हैं, उनसे भी मैं कुछ कहना चाहता

कह कर, यह भी मैं आपसे कहना चाहता हूं कि हमारा मुल्क इसलिए अपनी फ़ौज और लड़ाई का सामान तैयार नहीं करता कि किसी को गुलाम बनाए, बल्कि इसलिए कि अपनी आज़ादी को बचा सके और अगर ज़रूरत हो तो दुनिया की आज़ादी में मदद कर सके। बहुत दिन तक हम गुलाम रहे उससे हम गुलामी से नफ़रत हुई। तो फिर भला हम औरों को गुलाम कैसे बना सकते हैं? इसलिए आज के दिन मैं खास तौर से आपसे अमन की बात कहना चाहता हूं क्योंकि बुनियादी सबक जो महात्मा जी ने हमें सिखाया वह अमन का शान्ति का और अहिंसा का सबक था। मुमकिन है कि हम अपनी कमज़ोरी से उस रास्ते पर पूरी तौर से नहीं चल सके लेकिन फिर भी बहुत-कुछ हम चले और दुनिया में हिन्दुस्तान की एक ज़बरदस्त इज़्ज़त है। इस वक्त इज़्ज़त क्यों है, कभी सोचा आपने? आपने और हमने कुछ काम किए, कभी भले कभी बुरे, लेकिन दुनिया अगर हिन्दुस्तान के सामने झुकती है, हिन्दुस्तान की इज़्ज़त करती है तो वह एक आदमी की वजह से वह बड़ा आदमी जिसने हमें आज़ादी तक पहुंचाया। दुनिया तो उसके सामने झुकी और हम उसके सबक को भूल जाएं, यह कहां तक मुनासिब है! और उनके सबक की बुनियाद यह थी कि हम मिल कर काम करें बा-अमन तरीकों से रहें आपस में इत्तिहाद हो मज़हबी झगड़े न हों न अपने मुल्क में और न दुनिया में।

मालूम है आपको इस हिन्दुस्तान की हज़ारों बरस की तारीख में और इतिहास में क्या चीज़ उभरती है? क्या बुनियादी चीज़ भारत की सभ्यता है? वह यह है कि बर्दाश्त करना मज़हबी लड़ाइयां न लड़ना। वह यह है कि जो कोई आए उससे प्रेम का बर्ताव करना उसको अपनाना। तो ऐसे मौके पर जब कि हम आज़ाद हुए हैं क्या हम अपने देश का हज़ारों बरस का सबक भूल जाएं? और अगर भूलें तो फिर हिन्दुस्तान बड़ा मुल्क नहीं रहेगा छोटा रहेगा। हमने और आपने ख्वाब देखे हिन्दुस्तान की आज़ादी का ख्वाब उन ख्वाबों में क्या था? वह ख्वाब खाली यह तो नहीं था कि अंग्रेज़ कौम यहां से चली जाए और हम फिर एक गिरी हुई हालत में रहें। जो स्वप्न था वह यह कि हिन्दुस्तान में करोड़ों आदमियों की हालत अच्छी हो उनकी गरीबी दूर हो उनकी बेकारी दूर हो उन्हें खाना मिले रहने को घर मिले पहनने को कपड़ा मिले सब बच्चों को पढ़ाई मिले और हरेक शख्स को मौका मिले कि हिन्दुस्तान में वह तरक्की कर सके मुल्क की खिदमत करे, अपनी देखभाल कर सके और इस तरह से सारा मुल्क उठे। थोड़े से आदमियों के हुकूमत की ऊंची कुर्सी पर बैठने से मुल्क नहीं उठते हैं मुल्क उठते हैं जब करोड़ों आदमी खुशहाल होते हैं और तरक्की कर सकते हैं। हमने ऐसा स्वप्न देखा और उसी के साथ सोचा कि जब हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमियों के लिए दरवाज़े खुलेंगे तो उनमें से लाखों ऐसे ऊंचे दर्जे के लोग निकलेंगे जो कि नाम हासिल करेंगे

नीति है, लेकिन आखिर में देश चलता है उस तरफ जिधर लाखो और करोडो आदमी काम करके उसे चलाते है। देश का सब काम होता है, उन करोडो आदमियों के छोटे-छोटे कामो को मिला कर। देश की दौलत क्या है ? जो आप लोग और देश के सब लोग अपनी मेहनत से कमाते हैं। दौलत कोई ऊपर से तो नही आती। यानी देश का काम मजमुआ है करोडो आदमियो के कामो का। अगर हम देश से गरीबी निकालना चाहते है, तो हम अपनी मेहनत से काम करके, दौलत पैदा करके ही वैसा कर सकते है। लोग समझते है कि कही बाहर से दौलत आए, उसका हम बटवारा करें। चारो तरफ से सिर्फ मागें आए, चाहे किसी प्रान्त से, चाहे किसी संस्था से। लेकिन पैसा कहा से आता है ? जनता की मेहनत से आता है, जो मेहनत से जनता कमाती है, जो खेत में जमीदार या किसान कमाता है, जो कारखाने मे कमाता है, जो दुकान में कमाता है—इस तरह से देश की दौलत बढती है और देश तरक्की करता है। तरक्की करने के लिए औरो को सलाह देने से काम नही चलता, बल्कि काम चलता है यह देखने से कि इस देश को आगे बढाने के लिए, हम क्या कर रहे हैं। हम अपने काम से और सेवा से इस देश को कितना बढाते हैं और उसकी दौलत कितनी जमा करते है। अगर इस ढग से हम देखें तो हम अपने देश को तेजी से आगे बढाएगे, मजबूत करेंगे और दुनिया मे एक आलीशान देश बनाएगे। और अगर हम खाली सोचेंगे, आपस में और औरो के साथ लडाई-झगडा करेंगे, तब हम कमज़ोर रहेंगे। और महात्मा जी की वजह से दुनिया जो हमारी कदर करती थी, वह भी कुछ कम कदर करने लगेगी।

इसलिए आज के दिन ठीक होगा कि हम सोचें कि पिछले साल किस तरह से हम अकसर मुसीबतो पर हावी हुए। यह भी ठीक है कि जो बडे-बडे काम इस साल हुए उनको हम सोचें-समझें और कुछ गरूर भी करें। कौमी गरूर कोई इन-सानी गरूर नही। लेकिन और भी ज्यादा ठीक होगा कि हम अपनी कमज़ोरी की तरफ देखें और जो-जो बातें रह गई है उनकी तरफ देखें और पिछले जमाने में जो गलत बातें हुईं उनको देखें और देख कर उनको दूर करने की कोशिश करें। खास तौर से जो सिद्धान्त और उसूल बुनियादी तौर से हमारे सामने रहे हैं, उनको फिर साफ करें, धुधला न होने दें और उस रास्ते पर चलें, जो कि हमारे राष्ट्रपिता ने हमारे सामने रखा। और वह बडा जहर—जिसने आकर हिन्दुस्तान को तबाह किया, हिन्दुस्तान के टुकडे किए और हिन्दुस्तान में फैला साम्प्रदायिकता का जहर, फिरकेवाराना जहर, कम्युनलिज्म का जहर—इस मुल्क में न बढने दें। मैं इस बात से आपको पूरी तौर से आगाह करना चाहता हू, क्योंकि हम एक दफे गफलत में पडे थे और उस जहर ने फैलकर हिन्दुस्तान को काफी नुकसान पहुचाया और आखिर में वह जबरदस्त सदमा हमको पहुचाया कि हमारे देश के राष्ट्रपिता को उसने खतम किया। इसका एक जबरदस्त असर देश

हूं। यह जो पुराने ढंग से उसमें जो बहुत-कुछ अच्छाई थी वह हमें रखनी है और उनमें जो बहुत-कुछ बुराई थी वह छोड़नी है और अब हम पुराने ढंग से काम नहीं कर सकते। उनसे इस मुल्क को बनाने में मदद करनी है उन्हें जनता के साथ सहयोग करने में मदद करनी है उनको जनता का सहयोग अपनी तरफ खींचना है। आप जानते हैं आजकल हमारे गवर्नमेंट के काम की हर तरफ काफी बदनामी भी है। तो जो हमारे बड़े अफसर और छोटे अफसर हैं मैं चाहता हूं वे सोचें और समझें कि एक इम्तहान का वक्त है उनका हमारा और हर एक का—और खास कर के ऐसे हर एक शख्स का जो कि एक जिम्मेदारी की जगह पर है—कि वह अपने काम को सच्चाई से ईमानदारी से और जिम्मेदारी से करे और बगैर किसी की तरफदारी के करे, क्योंकि जहां कोई अफसर या जिम्मेदार शख्स तरफदारी करता है वह अपनी जगह के काबिल नहीं रहता। हमें काबिल आदमी चाहिए, बड़े-बड़े काम करने के लिए, लेकिन काबलियत से भी ज्यादा जरूरी बात है कि सचाई ईमानदारी और एक सेवा का भाव हो। अगर हम मुल्क की ठीक खिदमत नहीं करते और अगर उसमें सच्चाई नहीं तो फिर हमारी काबलियत हमें किधर ले जाएगी। उस काबलियत से मुल्क में और नुकसान हो सकता है।

इसलिए अव्वल सबक जो हमें याद करना है वह यह कि हमें इस मुल्क को सच्चाई के रास्ते पर चलाना है। और यह बुनियादी सबक था जो महात्मा जी ने हमें सिखाया था और जिस पर कमोबेश और इतने बरसों से हम चले जिससे हिन्दुस्तान की इज्जत दुनिया में हुई। यही नहीं जिससे इस वक्त तक—हालांकि हम कमजोर लोग हैं और अक्सर ठोकर खाते हैं—कितने ही लोग हिन्दुस्तान की तरफ देखते हैं क्योंकि हमने अपनी सियासत में एक ढंग लिया। आम तौर से समझा जाता था कि सियासत एक फरेब की चीज है एक झूठ बोलने की चीज है लेकिन हिन्दुस्तान की सियासत राजनीति को गांधी जी ने हम सिखाई उसम झूठ और फ़रेब को उन्होंने नहीं रखा था। लोग अब भी समझते हैं कि चालबाजी से मुल्क बढ़ते हैं। चालबाजी से न इनसान बढ़ते हैं—शायद थोड़ा उससे कभी फायदा हो जाए—न मुल्क बढ़ता है। खासकर, जो मुल्क बड़े होने की कोशिश करते हैं दुनिया में धोखा दे कर, चाल दे कर बहुत आगे नहीं बढ़ सकते। वे अपनी हिम्मत से और सच्चाई और बहादुरी से और खिदमत से बढ़ते हैं। इस लिए इस वक्त यह सबक हमें खास तौर से याद रखना है। और हमारे दिलों में जो एक रंजिश है जो एक अदावत है उसको भी निकालना है। ठीक है कोई खतरा आए और अगर कोई हमारा दुश्मन है तो उसका सामना हम करेंगे। लेकिन अगर दिल में हम रंजिश रखें और अदावत रखें हसद रखें गुस्सा रखें तो हमारी ताकत आधा हो जाती है और हम बहुत काम नहीं कर सकते।

राजनीति क्या चीज है और देश का काम क्या चीज है? राजनीति एक

इस देश में पैदा हुए तो क्या हमारा कर्तव्य है, कौन इस पिछले जमाने में एक महा-पुरुष हमारे देश में आया था, जिसने दुनिया को जगाया, हिन्दुस्तान को आजाद किया और बढ़ाया। क्या उसने किया, क्या सबक सिखाया, और क्या हम उसके रास्ते पर चलते हैं या नहीं ? इन बातों को तो अपने दिल से पूछिए और इस बात का आप यकीन रखिए, बुरी बात नहीं होगी, कोई झूठी बात नहीं होगी।

कोई इनसान या कोई मुल्क कीचड में से होकर अपने को ऊंचा नहीं करता। घुटने के बल चल कर और सिर झुका कर हम आगे नहीं जाना चाहते। हम तन कर शान से जो सच बात है उसको कह कर और सचाई के रास्ते पर चल कर आगे बढे तो हमारी ताकत भी बढ़ेगी और दुनिया में हमारी इज्जत भी बढेगी, उस वक्त किसी दुश्मन की हिम्मत भी नहीं होगी कि हमारा सामना करे। तो इन बातों को आप याद रखें और इनको याद रख कर आज का दिन मनाएं और फिर हम हिन्दुस्तान को कहीं ज्यादा ऊंचा पाएंगे। हिन्दुस्तान के सब सवाल तो हल नहीं हो जाएंगे, लेकिन फिर हल होने के रास्ते पर होंगे और हमारी आम जनता की मुसीबतें कम होंगी।

आखिर में यह आप याद करें कि हम लोगों ने एक जमाने से, जहां तक हममें ताकत थी और कुव्वत थी, हिन्दुस्तान की आज़ादी की मशाल को उठाया। हमारे बुजुर्गों ने उसको हमें दिया था, हमने अपनी ताकत के मुताबिक उसको उठाया, लेकिन हमारा जमाना भी अब हलके-हलके खत्म होता है और उस मशाल को उठाने और जलाए रखने का बोझा आपके ऊपर होगा, आप जो हिन्दुस्तान की औलाद हैं, हिन्दुस्तान के रहने वाले हैं, चाहे आपका मजहब कुछ हो, चाहे आपका सूबा या प्रान्त कुछ हो। आखिर में उस मशाल को शान से जलाए रखने का आपका एक फर्ज है और वह मशाल है आजादी की, अमन की और सच्चाई की। याद रखिए लोग आते हैं जाते हैं और गुजरते हैं। लेकिन मुल्क और कौमें अमर होती हैं, वे कभी गुजरती नहीं है, जब तक कि उनमें जान है, जब तक कि हिम्मत है। इसलिए इस मशाल को आप कायम रखिए, जलाए रखिए और अगर एक हाथ कमजोरी से हटता है तो हजार हाथ उसको उठा कर जलाए रखने को हर वक्त हाजिर हों।

1948

जय हिन्द !

पर हुआ और होना ही था। लेकिन लोगों की यादें बहुत दूर तक नहीं चलती हैं और न जल्दी भूल जाते हैं। मैं देख रहा हूं फिर से कुछ लोग भटक रहे हैं। मैं देखता हूं फिर से कुछ गलत लोग सिर उठा रहे हैं। मैं देख रहा हूं फिर से उनकी आवाजें उठ रहा है जो कि एकता को खोखला कर सकती हैं। तो मैं चाहता हूं आप इस पर सोचें और समझें क्योंकि यह खतरनाक बात है। आज से नहीं जब से मैं हिन्दुस्तान की खिदमत करता हूं तब से मुझे एक भरोसा था यकीन था इतमीनान था कि हिन्दुस्तान एक जबरदस्त आजाद मुल्क होगा। कोई ताकत आखिर में इसको रोक नहीं सकती क्योंकि जिस ताकत को हम बना रहे थे वह एक अन्दर की हमारे दिल की ताकत थी। वह महज कोई ऊपरी खाली हथियार की नहीं थी। मुझे भरोसा रहा इस भरोसे और यकीन पर मैंने काम किया और इस भरोसे और यकीन पर मैं आज काम करता हूं। लेकिन जब मैं देखता हूं इस तरह के गलत रास्ते दिखाना लोगों को गलत ख्याल पैदा करना उपद्रवबाजी पैदा करना और इस तरह की साम्प्रदायिकता को फैलाना तब मुझे दुख होता है रंज होता है और शक होता है कि हमारे चन्द भाई और बहन कहां भूले भटक फिरते हैं। वे कहते हैं कि भारत को आगे बढ़ाएंगे लेकिन भारत की जड़ को खोदते हैं और भारत की शान पर धब्बा डालते हैं।

इसलिए आप इस बात से आगाह होइए क्योंकि अगर कोई चीज भारत को नुकसान पहुंचा सकती है तो हमारे दिल की कमजोरी और हमारे दिल का छोटापन। कोई बाहर का दुश्मन नहीं पहुंचा सकता है। काफी हमारी ताकत है और काफी हमारी ताकत बढ़ेगी। लेकिन अगर हम अपने को भूल जाएं अपने बड़े बुजुर्गों के सबक को भूल जाएं और अपने इतिहास को भूल जाएं तब फिर बाहर के दुश्मन की क्या जरूरत है फिर तो हम खुद ही खुदकशी करते हैं। इसलिए इस बात को आप याद रखें और जिस जहर ने हिन्दुस्तान को इतना कमजोर किया उसको अपने पास न आने दें। उस जहर ने एक तरफ तो बढ़ कर हिन्दुस्तान के टुकड़े किए उस जहर ने फिर इस हिन्दुस्तान में फैल कर हमें कमजोर किया और एक ऐसा धक्का लगाया और इतना जलील किया कि दुनिया के सामने हमें सिर झुकाना पड़ा। तो फिर अगर आज के दिन हम इन बातों को छोड़ें और इन बातों को सोच कर अपने दिलों को साफ और मजबूत करें और देश की खिदमत करने की अपनी पुरानी प्रतिज्ञा को महात्मा जी के रास्ते पर चल कर फिर से सच्चाई से लें तब आज का दिन भला है तब हमें हक है जश्न मनाने का। लेकिन अगर हम इस बात को नहीं समझते और अपने झगड़ों और तंगख्याली में पड़ते हैं तब आज का दिन आपको मुबारक नहीं होगा।

मैं आशा करता हूं कि आप और हम यहां से घर जाएंगे और अपने काम धन्धों में लगेंगे लेकिन उस काम-धन्धे के साथ हम सोचेंगे कि आखिर हम को

श्रौर कभी-कभी किसी कदर पागलों की तरह से हम उस स्वप्न के पीछे दौडे, हमने उसको पकडने की कोशिश की। देश की आजादी और देश की आजादी के साथ सारे देश के करोडों आदमियों की, जनता की, आजादी और उनका दुख और गरीबी से छुटकारा होना—यह इस देश के लिए बडा भारी सवाल था। खैर हमने देश को राजनीतिक रूप से आजाद किया, लेकिन एक बडा भारी सवाल और बाकी रह गया कि सारी जनता उस आजादी से पूरी तौर से फायदा उठाए। इसी बीच दूसरी मुसीबतें आईं।

आप जानते हैं, बडी मुसीबतें—जिसमें 50–60 लाख शरणार्थी हमारे देश में आए और हजारों आफतें उनके ऊपर आईं। ये बडे-बडे सवाल सामने आए। हमने कैसे उनका सामना किया, वह आप जानते हैं, अच्छा किया, बुरा किया, गलती हुई, कामयाबी हुई, इस तरह से ठोकर खाते-खाते हम बढे। लेकिन आखिर में बढे, क्योंकि हमारी ताकत आखिर में इतनी थी कि मुसीबतें भी हमें रोक नहीं सकती थीं। मेरा खयाल है कि अगर आप इन दो बरसों की तरफ देखें, तो बहुत कुछ खराबियां आपको दीखेंगी, लेकिन आखिर में आप देखें कि यह बडा देश मजबूती से आगे बढता जाता है और अपनी आजादी को पक्का करता जाता है, और बावजूद हजार कमजोरियों के, हजार गलतियों के फिर भी जो असली इसकी ताकत है, जो अपने पर भरोसा है, वह इसको आगे खींचता जाता है। क्या ताकत थी हमारी, जिसने हमें इस आजादी की तरफ खींचा और हमें आजादी दिलाई? किस पर हमने भरोसा किया था उस जमाने में जब हम एक बडे साम्राज्य के खिलाफ खडे हुए थे?

हमने किसी और देश की तरफ नहीं देखा था कि वह हमारी मदद करे, और हमने हथियारों की तरफ भी नहीं देखा था। हमने अपने ऊपर भरोसा किया। अपने दिल की ताकत पर, अपनी हिम्मत पर भरोसा करके, अपने एक बडे नेता पर भरोसा करके और आखिर में हिन्दुस्तान के ऊपर, भारत पर, भरोसा करके हम आगे बढे थे। हम आगे बढे और हमने एक बडी ताकत का सामना किया, उसको गिराया और चित किया तो फिर आजकल हम और आप किसी बात से क्यों डरें, क्यों घबराएं, क्यों परेशान हों?

माना कि हमारे सामने सवाल हैं, आर्थिक सवाल हैं, बडे-बडे सवाल हैं,। माना कि हमारे लाखों शरणार्थी भाई और बहन अभी तक जो ठीक-ठीक जमाए नहीं गए, बसाए नहीं गए हैं इनको हमें सभालना है और इनका सवाल हल करना है। लेकिन वह जो पुरानी ताकत थी वह हमें आगे ले जाती थी और कभी-कभी एक मुट्ठी भर आदमियों को आगे ले जाती थी और वे मुट्ठी भर आदमी सारे मुल्क पर असर करते थे और मुल्क की किस्मत को बदलते थे। तो फिर क्या आजाद हिन्दुस्तान में वह ताकत कम है जो पहले हममें थी और जिसने इस

हर एक को अपना काम करना है

ज़रा आप शान्त हो जाइए। दो बरस हुए मैंने यहाँ लाल किले पर इस झण्डे को फहराया था। दो बरस गुज़रे, हमारी और आपकी ज़िन्दगी में और दो बरस हिन्दुस्तान की भारत की हज़ारों बरस की कहानी में और जुड़ गए। इन हज़ारों बरसों में दो बरस का वक्त कुछ बहुत नहीं है उसकी कीमत नहीं है लेकिन इन दो बरसों में हमने और आपने और सारे देश ने बहुत कुछ ऊँच और नीच देखा बहुत खुशियाँ मनाईं और बहुत रंज और दुख भी हुआ।

हम और आप चन्द दिन के मेहमान हैं अपना काम करके चले जाएँगे लेकिन जिस काम को हम करते हैं अगर वह अच्छा है और मज़बूत है तो वह काम चलता जाएगा वह काम कायम रहेगा चाहे हम रहें या न रहें। और हमारा देश भी कायम रहेगा और चलता जाएगा चाहे कितने ही लोग आएँ और कितने ही जाएँ। हमारे सामने बड़े-बड़े प्रश्न हैं, बड़े-बड़े सवाल हैं और उनमें हम बंधे हुए हैं हमें वे दबाते हैं और ठीक है कि हम उनका सामना करें और समझें क्योंकि हमारा काम तब तक पूरा नहीं होगा जब तक कि हम उन सवालों को हल नहीं करते और हमारे देश के करोड़ों आदमियों के जीवन का ठीक-ठीक बसर नहीं होता। लेकिन फिर भी कभी-कभी यह मुनासिब है उचित है कि हम अपने वक्ती सवालों को छोड़ कर ज़रा दूर से देखें कि हमारे देश में और दुनिया में क्या हो रहा है, क्या बड़ी बातें हो रही हैं। ज़रा कुछ अपनी व्यक्तिगत तकलीफ़ों को भूल कर देश को याद करें।

आपको याद होगा एक ज़माना था कि जब एक बड़े व्यक्ति की रोशनी से हमारे दिलों में भी कुछ गर्मी आई थी। महात्माजी का सबक सुन कर उनकी आवाज़ हमारे कानों में और दिलों में गूँजी थी और हम लोग देश में लाखों और करोड़ों की तादाद में अपनी घर की मामूली बातों को झगड़ों को भूल कर, अपने परिवारों तक को भूल कर अपने पैसे और कारबारों को भूल कर मैदान में आए थे। उस समय कोई सवाल नहीं उठता था अपने कुनबे का अपने ओहदे का अपनी नौकरी का। अगर कोई मुकाबला था तो आपसी इस बात का था कि किस तरह से हम देश की सेवा में मुकाबला करें, किस तरह से हम देश को आज़ादी की तरफ़ ले जाएँ। एक ख्याल था एक स्वप्न था जो हमने देखा

आप अपने पर भरोसा कीजिए, अपने पर यकीन कीजिए, और अपने देश पर भरोसा कीजिए। और अगर मुझे अपने देश पर और अपने देश के भविष्य पर भरोसा न होता, तो क्या आप समझते हैं कि इन तीस-चालीस बरसों में हम लोग उस काम को कर सकते जो कुछ छोटा या बड़ा काम हमने किया। हमारे सामने एक रोशनी थी एक बड़े जबर्दस्त व्यक्ति की, महात्माजी की जो हमारे दिलों को भी रोशन करती थी और हमारे आगे एक सितारा था, हिन्दुस्तान के भविष्य का, आजाद भारत के भविष्य का, जो हमें खींचता था और उसको देख कर हमारी ताकत बढ़ती थी, हमारी हिम्मत बढ़ती थी और जो कुछ भी मुसीबत आए वह हलकी मालूम होती थी। तो फिर आजकल जो हमारी बढ़ी हुई ताकत है उसमें हम क्यों कमजोरी दिखाए और आपस में झगड़ा करें ?

असल बात यह है। बाहर की किसी ताकत से घबराने का सवाल नहीं। अगर हमारे दिल खुद गवाही ठीक न दें तो हम कमजोर पड़ते हैं। अगर आपस में फूट रहे तो हम कमजोर होते हैं। इस सबक को आप सीखें, क्योंकि हमारे, आपके और सारे देश के बड़े इम्तहान का समय है। हमेशा ही इम्तहान का समय रहता है, खासकर, आजकल की दुनिया में। एक बड़ा काम हमने पूरा किया, लेकिन वह आधा काम था, दूसरा बड़ा काम अभी बाकी है। दूसरा काम है इस देश की आर्थिक स्थिति को संभालना, हमारे मुल्क की आम जनता की जो मुसीबतें हैं, उनको हटाना।

ये छोटी बातें नहीं हैं। मुमकिन है कि हमारे सब करने से भी वह काम पूरा न हो। खैर हम अपना कर्तव्य करेंगे, और जो लोग हमारे बाद में आएंगे उस काम को चालू रखेंगे, क्योंकि देश के काम कभी खतम नहीं होते। देश के लोग आते हैं और जाते हैं, लेकिन देश अमर होता है और कौम अमर रहती है। तो वह बड़ा काम बाकी है, उसको पूरा करना है, उसके करने में दो-तीन बातें आप याद रखें। एक तो यह कि आपकी कोई नीति हो, आपकी कोई पालिसी हो, लेकिन उस नीति को आप तब तक नहीं चला सकते जब तक कि देश में शान्ति न हो, जब तक कि देश में काम करने का मौका न हो। इसलिए मैं आपसे कहता हूं कि हमारे इस देश में कुछ भूले-भटके नौजवान हुल्लड़बाजी करते हैं, दंगा-फसाद करते हैं, कभी-कभी बम फेंक देते हैं। मैं हैरान होता हूं कि कोई आदमी जिसको जरा भी अक्ल है, समझ है, वह इस तरह से देशद्रोही बातें कैसे कर सकता है। क्योंकि आपकी कोई भी नीति हो, कोई पालिसी हो, आप उसको पूरा नहीं कर सकते अगर देश में हुल्लड़बाजी हो, मार-पीट हो। उस हुल्लड़बाजी और मार-पीट का नतीजा सिर्फ देश का गिरना है। देश में जो गरीबी है आप कैसे उसे दूर करेंगे ?

हमारे यहां एक आजाद देश में कानून बदलने के, गवर्नमेंट तक को बदलने

मुल्क में इनकलाब किए और इतनी उलट-पलट की। मैं तो समझता हूं कि वह ताकत है और वह पहले से भी ज्यादा है। खाली कुछ हमारे दिमाग तबीयत और आंखें इधर-उधर भटक जाती हैं और हम बड़ी बातों को भूल के छोटी बातों में पड़ जाते हैं।

इस वक्त हमारा यह देश भारत दुनिया के मैदान में बड़े देशों में एक बड़ा खेल खेल रहा है। तो फिर अगर आप बड़े देश के बड़े नागरिक हैं तो आपको और हमको भी बड़े दिल का और बड़े दिमाग का होना है। छोटे आदमी बड़े काम नहीं करते छोटे आदमी बड़े सवालों को हल नहीं कर सकते न हम शोर-गुल मचा के हल कर सकते हैं न नारों से न शिकायतों से न एतराज से न दूसरे को बुरा-भला कहने से। अगर हम एक-एक आदमी और औरत अपना कर्तव्य पूरा करें, अपना फर्ज अदा करें तो फिर वह हमारे लिए भला है और देश के लिए भला है। अगर हरेक आदमी समझे कि कुछ करना दूसरे का काम है और हमारा काम खाली देखना है तब यह देश चल नहीं सकता। हरेक को अपना काम करना है। हमारी फौज है हिम्मत से बहादुरी से वह अपना काम करे और वह करती है। हमारे हवाई जहाज में नौजवान हैं हिम्मत से वे अपना काम करें, हमारे समुन्दरी जहाजों में जो हैं वे करें। जो और बहुत सारे लोग सरकारी नौकरी करते हैं, ऊंचे ओहदों के छोटे ओहदों के अलग-अलग उनके फर्ज हैं उन फर्जों को अगर वे पूरा करें और आम जनता अगर अपना फर्ज अदा करे तो सब अपने-अपने रास्ते पर चलें। हम एक-दूसरे से हिम्मत से सहयोग करें तब आप देखेंगे कि कितनी तेजी से भारत आगे बढ़ता है। लेकिन कभी-कभी हरेक दूसरे के काम की तरफ देखता है अपने काम की तरफ नहीं और इसमें न अपना काम होता है न दूसरे का काम होता है।

तो आज के दिन मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हूं और एक बात दिलाना चाहता हूं उस जमाने की जब बगैर फौज के बगैर हथियार के बगैर किसी बाहरी सहारे के बगैर पैसे के इस मुल्क की आजादी की लड़ाई लड़ी गई थी। किसने लड़ी थी? इस मुल्क में बड़े-बड़े नेता थे और हमारे बड़े भारी नेता थे महात्माजी लेकिन आखिर में इस मुल्क की लड़ाई हमने हमारे किसानों ने हमारे बेचारे अपना गरीब से गरीब आदमियों ने लड़ी थी। उनके ऊपर बोझा पड़ा था उस लड़ाई का। कैसे वे जीते थे? अपनी हिम्मत से अपने दम से और अपने देश और अपने नेता पर भरोसे से। आज आप मुकाबला करें हमारी ताकत उससे कितनी ज्यादा है इस आजाद हिन्दुस्तान की हर तरह की ताकत बाहर के दुश्मन का मुकाबला करने की और अन्दर के दुश्मन का मुकाबला करने की। तो फिर अजीब हालत है कि ऐसे मौके पर भी हमारे दिल बैठें हम शिकायतें करें और हम अपने ऊपर भरोसा कम हो।

सहयोग चाहते हैं, हम सब देशो के साथ प्रेम से, मोहब्बत से और सहयोग से रहना चाहते हैं। उनमें से जो हमारी किसी बात में मदद करे बड़ी खुशी से मदद स्वीकार है। लेकिन आखिर मे हमारा भरोसा अपने ऊपर है, दुनिया के किसी और देश पर नही। इस बात को हमें और आपको याद रखना है, क्योकि जो लोग औरो पर भरोसा करते हैं वे खुद कमज़ोर हो जाते हैं, दुर्बल हो जाते हैं और जब दूसरे लोग मदद नही करते तो फिर वे बेकस हो जाते हैं और कुछ नही कर सकते। और फिर असल आज़ादी भी वह नही हैं, असली स्वतन्त्रता वह नही है जो और देशो की तरफ और ताकतो की तरफ और फौजो की तरफ और पैसे की तरफ देख कर अपने को बचाने की कोशिश करे।

जैसा मैंने आपसे कहा हमें किसी देश से दुश्मनी नही, हम किसी देश की ज़िन्दगी मे, उसके कारबार मे कोई दखल देना नही चाहते। हरेक देश को अधिकार है कि जिस रास्ते पर वह चलना चाहे—जो भी उसकी आर्थिक या कोई और व्यवस्था हो जिसे वह पसन्द करे—उस रास्ते पर चले। हमारा काम जाकर दखल देना और उनके काम को बिगाड़ना नही है ऐसा समझ कर कि हम उसको सभाल रहे हैं। जैसे हम इस बात को चाहते हैं कि और देशो को पूरी स्वतन्त्रता हो और आज़ादी हो कि वे अपने-अपने रास्ते पर चलें वैसे ही हम अपने देश के बारे में चाहते हैं। अगर हम दूसरो के कामो मे दखल देना नही चाहते तो हमें यह भी बर्दाश्त नही है कि कोई हमारे काम में दखल दे और हमारी आज़ादी में खलल डाले। इसलिए हमने अपनी एक नीति बनाई कि दुनिया मे जो बड़े-बड़े गिरोह एक-दूसरे के विरोध में बने मालूम होते हैं हम उनमें से किसी गिरोह में शरीक नही होगे। हम अलग रह कर सबसे दोस्ती रखेंगे और हम जिस तरह से भी अपने देश की तरक्की कर सकते हैं, करेंगे। इस नीति पर हम कायम हैं और कायम रहेंगे, इसलिए कि हमारे देश के लिए यह एक ठीक नीति है और इसलिए भी कि यही एक नीति है, जिससे हम दुनिया मे शान्ति की सेवा कर सकते हैं। जाहिर है कि दुनिया मे अगर अशान्ति हुई, लड़ाई हुई, तो सारी दुनिया तबाह होगी और हमारा देश भी काफी तबाह होगा।

आजकल दुनिया की लड़ाई कोई छोटी चीज नही। वह सारी दुनिया को तबाह कर देगी। इसलिए हमारी नीति है कि जहा तक हो सके हम इस लड़ाई को रोकने की तरफ अपना बोझा डालें। तो हमने जो यह नीति बनाई कि हम दुनिया में किसी एक बड़े गिरोह के विरोध में किसी दूसरे बड़े गिरोह की तरफ शरीक नही होगे, इससे हम दुनिया की शान्ति की सेवा कर सकेंगे और दुनिया में आपस में जो एक-दूसरे देश के खिलाफ दुश्मनी है शायद उसको भी कुछ कम कर सकेंगे।

आपने शायद सुना हो कि थोड़े दिनों मे मैं एक विदेश की यात्रा करने वाला

के तरीके होते हैं। आपका अधिकार है देश का अधिकार है कि उन अमन-अमन शान्तिमय तरीकों से जो चाहें मांग करें। लेकिन अगर कुछ लोग अशान्ति के दूसरे रास्ते पर चलते हैं तो दो बातें उनसे साबित होती हैं। एक तो पहली बात यह साबित होती है कि वह जिसको प्रजातन्त्रवाद कहते हैं जिसको जम्हूरियत कहते हैं जिसको डमोक्रेसी कहते हैं उसमें उनका विश्वास नहीं है। दूसरे यह कि उनको यह स्वीकार है मंजूर है कि देश की और जनता की स्थिति और गिरती जाए, उनकी मुसीबतें बढ़ती जाएं शायद इस विश्वास से कि हां उथल-पुथल करके बाद उसमें कुछ उन्नति या तरक्की हो। क्योंकि यह निश्चय है कि इस समय उसका नतीजा जनता पर और मुसीबत बढ़ने का है।

मुझे आश्चर्य होता है मैं हैरान होता हूं कि हमारे कोई नवयुवक इस विचार में पड़ते हैं कि इस तरह के झगड़े और हुल्लड़बाजी से वे देश की सेवा कर सकते हैं। मुझे उससे भी ज्यादा आश्चर्य होता है कि कुछ और लोग कहते हैं कि हम उस बदअमनी के विरोध में हैं फिर भी जाकर राजनीतिक क्षेत्र में उन लोगों का साथ देते हैं या हुल्लड़बाजी और झगड़ा करते हैं। क्यों? इसलिए कि कोई छोटा सा फायदा मिल जाए इसलिए कि कोई चुनाव है कोई इलेक्शन है उसमें जीत हो जाए। इलेक्शन होते हैं चुनाव होते हैं और उसमें हार भी होती है जीत भी होती है। लेकिन हमारे-आपके सामने जो सवाल हैं वे इलेक्शन से भी बड़े हैं और हमारे एक-दूसरे की हार और जीत से बड़े हैं। सवाल भारत का हिन्दुस्तान का है और अगर हम अपने व्यक्तिगत फायदे के लिए लाभ के लिए या अपनी पार्टी के या दल के लाभ के लिए भारत को भूल जाते हैं तो फिर किसके सामने हम अपने गुनाह का जवाब देंगे कि हम छोटी बातों में पड़ कर बड़े सवालों को देश को भूल गए। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप समझें क्योंकि इस देश में पहली बात यह समझने की है कि यह देश तरक्की उसी समय कर सकता है जब कि देश में लोग झगड़ा न करें हुल्लड़बाजी न करें और शान्तिमय तरीकों से काम करें।

दूसरी बात यह है कि हम बड़े सवालों को अपने सामने रखें और छोटी बातों में फंसने न पावें क्योंकि अगर हम छोटी बातों में फंसते हैं तो बड़े सवाल छिप जाते हैं और अगर आप बड़ी बातों को सामने न रखें तो फिर एक बड़ा सैलाब आकर हमें बहा देता है जब कि उसके लिए हम तैयार नहीं होते। तीसरी बात यह है कि हमें अपने ऊपर भरोसा करना है, औरों पर नहीं। हम दुनिया की दोस्ती चाहते हैं। अपने मुल्क में हम जितने लोग रहते हैं करोड़ों आदमी चाहे किसी जाति के हों किसी धर्म के हों किसी पेशे के हों किसी तबके के हों उन सबकी दोस्ती चाहते हैं, प्रेम चाहते हैं, सहयोग चाहते हैं। हम सारी दुनिया से

ठीक होंगे और सब ठीक होगा। अगर हममें वह ताकत और शक्ति नहीं हैं, हम कमजोर हैं, छोटी-छोटी बातों में पड़ते हैं और आपस में सहयोग नहीं कर सकते तो हम निकम्मे लोग हैं। तब फिर क्या विधान हमको बचाएगा या कागज पर लिखा और कोई कानून ?

लेकिन मुझे हिन्दुस्तान में यकीन है। और मुझे इस भारत के भविष्य में भरोसा है कि आइन्दा इसकी शक्ति बढ़ेगी और शक्ति खाली इस तरह से नहीं बढ़ेगी कि वह शक्ति एक फौजी शक्ति हो। ठीक है, एक बड़े देश की फौजी शक्ति भी होनी चाहिए। लेकिन असल ताकत होती है उसकी काम करने की शक्ति, उसकी मेहनत करने की शक्ति। अगर हम इस देश की गरीबी को दूर करेंगे तो कानूनों से नहीं, शोर-गुल मचा के नहीं, शिकायत करके नहीं, बल्कि मेहनत करके। एक-एक आदमी बड़ा और छोटा, मर्द औरत और बच्चा मेहनत करेगा। हमारे सामने आराम नहीं है। स्वराज्य आया, आजादी आई तो यह न समझिए कि हमारे-आपके आराम करने का समय आया। नहीं, मेहनत करने का समय आया है। लेकिन उस मेहनत में और दूसरी मेहनत में एक बड़ा फर्क है। एक मेहनत है एक गुलाम की मेहनत, एक मेहनत है निर्माण के लिए आजाद आदमी की मेहनत। हमें अपने घर को बनाना है, अपने देश को बनाना है और आइन्दा नसलों के लिए एक बड़ी मजबूत इमारत खड़ी करनी है। यह मेहनत एक शुभ मेहनत है, अच्छी मेहनत है, जो दिल को भाती है। और फिर इस मेहनत में एक-एक ईंट और एक-एक पत्थर जो हम रखते हैं, याद रखिए हम और आप गुजर जाएंगे लेकिन वे ईंटें और पत्थर कायम रहेंगे और आइन्दा सैकड़ों बरस बाद भी वे एक यादगार होंगे और दुनिया के सामने और हमारी आइन्दा नसलों के सामने इस शक्ल में होंगे कि एक जमाना आया था जब कि आजाद हिन्दुस्तान की बुनियाद इस तरह से पड़ी और जब इस तरह मेहनत से, पसीने से, खून बहा कर भारत की यह इमारत बनी।

तो हमारा और आपका काम है मेहनत करना, काम करना, इस आजाद भारत की इमारत को खड़ा करना। हमारा-आपका काम है इस वक्त जो बड़े सवाल हैं उनको हल करना, जैसे कि खाने का सवाल है, उसे हल करने के लिए खाना पैदा करना, खाने को जाया नहीं करना वगैरह। जो आदमी खाने को जाया करता है, जो आदमी इस वक्त एक दिखावे के फेर में दावत वगैरह में उसे जाया करता है वह अपने देश के खिलाफ गुनाह करता है। इससे ज्यादा निकम्मी बात क्या हो सकती है कि जब लोग भूखें हों उस वक्त आपमें या हममें से कोई आदमी दावत करे और खाने को जाया करे। तो इस तरह से हमें अपने को काबू में लाना है, एक आजाद कौम की जिम्मेदारियों को समझना है, आजाद इनसानों की तरह से आगे बढ़ना है, माथा ऊंचा करके

हूं और दुनिया के एक बहुत बड़े बहुत ताकतवर बहुत प्रसिद्ध देश में जाने वाला हूं। मैं वहां जाऊंगा। आपकी तरफ़ से अपने वतन की तरफ़ से प्रेम का दोस्ती का पैगाम लेकर, क्योंकि अपनी आजादी रखते हुए हम उनसे दोस्ती चाहते हैं। हम और देशों से भी हर तरह से दोस्ती चाहते हैं। मेरे वहां जाने का मतलब उनसे दोस्ती करना है किसी और देश से अदावत करना नहीं है। हम सब देशों से दोस्ती करना चाहते हैं।

हमारे एशिया में इधर काफ़ी इनकलाब हुए हैं। हमारे देश का इनकलाब हुआ जो हुआ दो-तीन बरस हुए एशिया भर में बड़े-बड़े इनकलाब हो रहे हैं। आज के अखबार में आप पढ़ेंगे कि एशिया के एक छोटे लेकिन प्रसिद्ध देश में एक उपद्रव हुआ। मैं उस पर कोई राय नहीं देता लेकिन मैं आपको दिखाना चाहता हूं कि वहां देश के काम में इस तरह से ढील हो जाए और शान्ति का रास्ता छूट जाए वहां कोई काम अमन के नहीं हो सकता। वह देश गिरता है और कमजोर होता है। और एशिया के एक बड़े भारी देश में बड़े प्रसिद्ध और बड़े पुराने देश में भी बड़े-बड़े इनकलाब हुए हैं और हो रहे हैं। उसमें हमारी राय क्या? हमारी राय यह कि जिस रास्ते पर उस देश के रहने वाले चाहते हों वे उस रास्ते पर चलें। दूसरे देशों के काम में उनकी आजादी में उनकी हुकूमत के तरीकों में उनके आर्थिक तरीकों में दखल देने का हमारा कोई काम नहीं है वह सब वे खुद निश्चय करें। हम हरेक से दोस्ती किया चाहते हैं। जिस देश की जनता अपने देश के लिए जो तय करती वह उसके लिए उचित है और मुनासिब है। आजादी कोई दूसरा जबर्दस्ती नहीं देता है वह अपने मन की होनी चाहिए।

तो फिर आज के दिन हम और आप इन बातों को इस दुनिया को देखें और सबक सीखें और अपने बड़े देश को देखें और उससे सबक सीखें।

आजकल हमारे यहां एक विधानपरिषद है हमारी कान्स्टीट्यूएन्ट असेम्बली है जो आजकल भारत का विधान और आईन बना रही है। चन्द महीने में हमारा देश एक नई पोशाक नए कपड़े पहनेगा एक रिपब्लिक का नया जामा पहनेगा और एक नया विधान आएगा। ठीक है उसको उचित बनाना है। लेकिन आखिर में देश कायदे और कानूनों से और जो कागज पर लिखा जाए उससे नहीं बनता। देश बनता है देश की जनता की दिलेरी और हिम्मत से और काम करने की शक्ति से। कानूनदां लोग कानून लिखते जाते हैं और विधान बनाने वाले विधान बनाते हैं। लेकिन असल में इतिहास लिखा जाता है बहादुर आदमियों के हाथों से दिलों से और दिमागों से। सवाल यह है कि आपमें और हममें कितनी हिम्मत है इस भारत के इतिहास को अपने खून से अपने आंसुओं से अपनी मेहनत से और अपने दिमागों से लिखने की। अगर हममें वह है तो विधान भी

दूसरों की मुसीबत से फ़ायदा उठाना मुल्क के साथ गद्दारी

जय हिन्द ! आज आज़ाद हिन्द की तीसरी सालगिरह है । यह वर्षगांठ आपको मुबारक हो । इन तीन बरसों में हमने कई मंजिलें पार कीं । बहुत दफे ठोकर खाई और गिरे, और फिर अपने को उठा कर आगे बढ़े । तो फिर जो-जो बातें इन सालों में हुई, अच्छी या बुरी, उन सब बातों के लिए मैं आपको मुबारकबाद देता हूं । क्यों मैंने ऐसा कहा ? बुरी बातें भी क्यों शामिल कीं ? शायद गलत था ऐसा कहना, लेकिन मेरे कहने के माने यह थे कि आपको इन बरसों में जो खुशी हुई वह मुबारक हो, और जो आंसू आपने बहाए और तकलीफ उठाई वह भी मुबारक हो । क्योंकि कौमें खुश होकर और आंसू बहा कर दोनों तरह से बढ़ती हैं । जब कोई कौम कमज़ोर हो जाती है, जब किसी कौम की हर वक्त आज़माइश नहीं होती तो वह ढीली हो जाती है । पर इन तीन बरसों में हमारी काफी आज़माइश हुई । इन तीन बरसों के पहले भी एक ज़माने से इस मुल्क की और इस देश के रहने वालों की बहुत काफी आज़माइशें हुई थीं, इम्तहान हुए थे और अगर हमने आज़ादी हासिल की तो वह कुछ उन इम्तहानों में कामयाब होने का नतीजा था । अब हमारे और आपके, और सारे मुल्क के सामने, ज्यादा सख्त इम्तहान और आज़माइशें आई हैं और जिस दर्जे तक हम उनका हिम्मत से सामना कर सकते हैं, उस दर्जे तक हम कुछ कामयाब होते हैं । इसलिए खुशी भी आपको मुबारक और तकलीफ भी आपको मुबारक, हँसना भी आपको मुबारक और रोना भी आपको मुबारक, लेकिन एक चीज़ आपको मुबारक नहीं, और वह है बुज़दिली और तंगख्याली । आपस में झगड़ा करना आपको मुबारक नहीं । क्योंकि वह आपको कमज़ोर करता है, मुल्क को गिराता है और जिस ताकत की एक आज़ाद मुल्क को ज़रूरत है उसे वह कम करता है ।

इन तीन बरसों में कई मंजिलें तय हुईं । अभी पिछली 26 जनवरी को एक बड़ी मंजिल हमने पूरी की और जिस चीज़ का ख्वाब हमने बरसों में देखा था, उसको पूरा होते देखा । अपने बहुत से स्वप्न हमने पूरे होते देखे, बहुत से अभी तक ख्वाब ही रह गए हैं । छब्बीस जनवरी आई और गई और चन्द महीने में

सीना खोल के बगैर शोर-गुल मचाए कदम-से-कदम मिला कर आगे बढ़ना है। इस तरह से हम बढ़ेंगे और इस तरह से काम करेंगे तो फिर हिन्दुस्तान के सब मसले जल्दी हल होंगे और हमारे और आपके मसले भी हल होंगे।

हमारे और आपके मसले तो हल हो ही जाएंगे और किसी तरह नहीं तो इस तरह से कि हमारा वक्त पूरा होगा लेकिन असली चीज जिसको हमें याद रखना वह है भारत। भारत एक चीज है जो अमर है जो कभी खतम नहीं होगी तो इस जमाने में जो हम और आप पैदा हुए इसमें हम क्या कारनामे दिखाएँगे—भारत की खिदमत के और भारत को बढ़ाने के। आपके यह सवाल अपने पूछिए और उसी के मुताबिक काम कीजिए।

1949 जय हिन्द

तो ऐसी बातों से हमारी सारी जिन्दगी गिर जाएगी। खास तौर से, आजादी के माने यह नहीं कि लोग उस आजादी के नाम से उसी आजादी की जड खोदें। अगर कोई ऐसा करे तो जाहिर है कि उसका मुकाबिला करना होता है, उसको रोकना होता है और ऐसे लोग मुल्क में हैं जो आजादी के नाम से काफी झगडा-फसाद करते हैं, उन्होंने काफी उपद्रव भी किया है, मुल्क को काफी कमजोर करने की कोशिश भी की है। उनका मुकाबला हुआ, और चूंकि बावजूद कमजोरियों के, मुल्क का दिल मजबूत है, इसलिए हम कामयाब हुए और मुल्क आगे बढता जाता है। बाज लोग हैं जिन्होंने ऐलान किया कि आज का दिन मनाने में कोई हिस्सा न लें, पन्द्रह अगस्त मनाने में कोई हिस्सा न लें। वे लोग एक कदम और बढे, कहा कि इसमें रुकावटें डालनी चाहिए। गौर करें आप कि किस दिमाग में यह खयाल निकलता है, किस दिल से यह जज्बा पैदा होता है, और किस किस्म का है? यह क्या कोई खयालात की आजादी का सवाल है, या कोई ऐसा सवाल है कि कोई पार्टी कोई राय रखे। यह बस जड और बुनियाद से हिन्दुस्तान की आजादी पर हमला है। और जो लोग ऐसा करते हैं, वे चाहे कोई हो और किसी दल के हो, हमारा फर्ज हो जाता है कि हम उनका मुकाबला करें और पूरे तौर से करें और उनको झाडू से हटा दें। इनके माने क्या हैं? एक मुल्क में इस तरह के लोग हैं जो हर वक्त आपस में फूट की और लडाई की आवाज उठाते हैं, और हर वक्त यह कहते हैं कि जो आजादी मिली, वह काफी नहीं है, इसलिए उसको भी तोडना चाहते हैं। अजीब हालत है। या तो उनके दिमाग में कमी है या उनके दिल में, या कोई और फितूर है उनमें, इस बात को हमें समझना है। इसके माने क्या है? माने यह कि ऐसे नाजुक वक्त में जब दुनिया हिल रही है, जब दुनिया में मालूम नहीं क्या मुसीबतें आए, तब आपका, मेरा और हरेक हिन्दुस्तानी का फर्ज है कि हममें एक-दूसरे में जो भी फर्क हो, उसे मिटा डालें। लोगों में फर्क है, उन्हें रखें, अगर जी चाहे मुझसे आप लडें, मैं आपसे लडूं, लेकिन जब हिन्दुस्तान का मामला उठता है तो आप हिन्दुस्तानी और मैं हिन्दुस्तानी और हिन्दुस्तान का हरेक शख्स हिन्दुस्तानी है, और अगर इस बात को कोई नहीं मानता तो वह हिन्दुस्तानी नहीं है, वह किसी और मुल्क में जाकर रहे।

तो फिर इस बात को सोचें, पिछले जमाने से इत्तिहाद की, एकता की, किस जड और बुनियाद पर हम खडे हुए हैं। इस देश में अलग-अलग जो कौमें हैं, अलग-अलग मजहब वाले हैं, अलग-अलग सूबे और प्रान्त के रहने वाले हैं, उनकी एकता पर मैं देखता हूं बाज दलों की आपस में लडाई पैदा करने की, झगडे पैदा करने की आवाजें फिर उठती हैं। मजहबी झगडे मजहबी तो होते नहीं, धार्मिक तो होते नहीं, वे तो धर्म का नाम लेकर सियासी होते हैं, राजनीतिक होते हैं। फूट पैदा करना, झगडा करना और एक-एक प्रान्त में प्रान्तीयता बढाना, इस सबसे आप सोचिए

मुल्क में लाखों-करोड़ों आदमी चुनाव में अपनी राय देंगे, एक नई हुकूमत के अफ़सर चुनेंगे और हमने जो यह काम अपना नया विधान, नया कान्स्टीट्यूशन बनाने का शुरू किया वह पूरा होगा। इस तरह से एक-एक कदम हम आगे बढ़ते जाते हैं आसानी से नहीं, मुश्किल से, मुसीबत में, तकलीफ़ में, परेशानी में, लेकिन एक एक कदम आगे जरूर बढ़ते जाते हैं। जरा दुनिया की तरफ़ देखिए, चारों तरफ़ क्या हाल है और मुल्कों की आजकल क्या दशा है, किस-किस मुसीबत में पड़े हैं? फिर से लड़ाई के, बड़ी लड़ाइयों के चर्चे हैं। अपने मुल्क की तरफ़ जरा फिर ध्यान तो कीजिए। काफ़ी हममें कमज़ोरियाँ और खराबियाँ हैं लेकिन फिर भी हम इसके बावजूद इसके आगे ही बढ़ते हैं, पीछे नहीं हटते। इस दुनिया के मामले में हमें अपने मुल्क को समझना है और खास तौर से इस बात को याद करना है कि ऐसे मौके पर जब सारी दुनिया में बवंडर आएं, भूकम्प आएं, खतरे आएं तो हमारा क्या कर्तव्य है और क्या फ़र्ज़ है। मुसीबत के वक्त आपके मुल्क को और हमको कौन दूर से दूसरे देशों से आकर मदद करेंगे? और जो कौमें मदद के लिए दूर देखती हैं वे कमज़ोर हैं। हमने अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ी किसी और के भरोसे नहीं, किसी हथियार के भरोसे पर भी नहीं—अपने दिल के, दिमाग के और हिम्मत के भरोसे लड़ी थी और हम कामयाब हुए। तो अब जो और खतरे हैं उनसे हम अपनी ताकत से बच सकते हैं, किसी और की ताकत से नहीं।

हम किसी से दुश्मनी नहीं करना चाहते, दोस्ती करना चाहते हैं और सब मुल्कों से दोस्ती चाहते हैं, लेकिन आखिर में हम अपनी ताकत पर रहना है। एक आज़ाद मुल्क में यह जरूरी है कि ख्यालात की, विचारों की आज़ादी हो। जो चाहें, अपने ख्यालात का इज़हार कर सकें, जो जिस राजनीतिक रास्ते पर चलना चाहें उस पर चलें, चाहे दल बनाएं, पार्टी बनाएं, सब कुछ करें, ठीक है। क्योंकि अगर यह आज़ादी न हो तो मुल्क आज़ाद नहीं रहता। मुल्क गुलाम हो जाता है, दबा हुआ हो जाता है। यह बात सही है। लेकिन जो लोग मुल्क की आज़ादी के खिलाफ़ काम करें, या जो लोग कोई ऐसा काम करें जिससे वह आज़ादी हिले और कमज़ोर हो, वे लोग कौन हैं और कैसे हैं और वे किस नाम से पुकारे जाएं? इसलिए मैं आपको याद दिलाता हूं कि दो बातों को अलग करना है। एक ख्यालात की आज़ादी, एक अमल की आज़ादी, लेकिन हमेशा इस बात को देख कर कि मुल्क की आज़ादी को, मुल्क की एकता को और मुल्क की मज़बूती को वह बात कमज़ोर तो नहीं करती। क्योंकि अगर वह कमज़ोर करती है तो वह मुल्क के साथ गद्दारी हो जाती है। इन दोनों बातों में लोग अक्सर फ़र्क नहीं समझते। आज़ादी के माने यह नहीं है कि हर एक आदमी आज़ादी के नाम से हर बुरा काम करे। आप अपने ख्यालात का आज़ादी से इज़हार कीजिए। लेकिन उसके माने यह नहीं कि सड़क चलते या अखबारों में हर एक को गालियां दीजिए। क्योंकि फिर

उसकी कई वजहें हैं—पिछली लड़ाई हुई, पाकिस्तान बना, मुल्क से अनाज पैदा करने वाले हिस्से चले गए, आबादी बढ़ी—बहुत सारी बातें हैं। अब कोई मुल्क और खासकर हमारा हिन्दुस्तान जैसा मुल्क, अगर अपना खाना काफी पैदा न करे, तब फिर वह एक तरह से औरों के मातहत हो जाता है, क्योंकि उसे और तरफ देखना पड़ता है, अलावा इसके कि हमें और जगह से खाना लाने में बहुत पैसा देना पड़ता है। लेकिन उससे भी ज्यादा यह बात होती है कि हम कमजोर हो जाते हैं और दूसरे लोग हमें दबा सकते हैं, हमारी आजादी में खलल पड़ जाता है और अगर बदकिस्मती से, कल एक बड़ी लड़ाई दुनिया में हो, तब तो कहीं और से हमारे मुल्क में खाना भी नहीं आ सकता था आएगा तो बहुत कम आएगा—तब हम कैसे काम चलाएंगे ? जाहिर है, हमें अपने घर में अपना पूरा इन्तजाम करना है। हमें अपना खाना पैदा करना है और अगर एक किस्म का खाना हमें नहीं मिलता तो हमें दूसरी तरह का खाना खाना है। यह वक्त ऐसा नहीं है कि आप मुझसे कहें या मैं आपसे कहूं कि मैं तो एक चीज खाने का आदी हूं, दूसरी नहीं खाता। दूसरे रास्ते बन्द हैं तो जो चीज मिलेगी हमें खानी पड़ेगी। इसलिए हमें अपने को आदी करना है, हमें अपने घर में काफी पैदा करना है। और हमें खाने का एक जर्रा भी जाया नहीं करना है। इसकी चर्चा काफी हो चुकी है, और भी होने वाली है और ज्यादा सख्ती से होने वाली है। आप इस बात को समझ लें कि हमने कहा था कि हम दो बरस के अन्दर बाहर से खाना लाना रोक देंगे, और अन्दर हम काफी पैदा करेंगे, तथा जो कुछ कमी हुई भी तो हम उसको भी बर्दाश्त करेंगे। याद रखिए कि जो बात हमने कही थी, हमारा जो प्रोग्राम था, नीति थी, वह कायम है, और उस पर हम बावजूद दिक्कतों के चलेंगे।

इस वक्त खाने के मामले में हिन्दुस्तान का एक अजीब हाल है। एक तरफ से आप देखें तो इसमें कोई शक नहीं है कि ज्यादा खाना पैदा करने का हमारा जो सिलसिला था, उसमें कामयाबी हो रही है। मुल्क में ज्यादा पैदा हो रहा है और एक-डेढ़ बरस में और पैदा होगा। तो वह सिलसिला अच्छी तरह से चल रहा है, लेकिन उसी के साथ यह भी है कि मद्रास में और बिहार में खास-खास मौकों पर बिलफेल एक मुसीबत आई है, कहीं सैलाब आया, कहीं बारिश नहीं हुई। सौराष्ट्र में भी यह हुआ। और हम अभी इतने पक्के तौर से जमे नहीं हैं कि जब मुसीबत हो, उसके लिए हमारे पास खजाने में बहुत जमा हो, हम फौरन फेंक दें। इसलिए दिक्कत हुई, लेकिन फिर भी चाहे बिहार हो, चाहे मद्रास हो, चाहे बंगाल हो, इस वक्त हर जगह काफी खाना पहुंचाया गया है। कुछ दिक्कतें दो-चार रोज की उसको गांव-गांव पहुंचाने में हों, लेकिन अगर हर सूबे में, हर प्रांत में, आज के लिए, महीने भर के लिए, दो महीने के लिए, तीन महीने के लिए, काफी है, तो परेशानी की कोई खास बात नहीं। हां, परेशानी की बात है,

कि मुल्क तगड़ा होता है मजबूत होता है कि कमजोर होता है।
इसलिए हममें और आपमें और हिन्दुस्तान के रहने वालों में कितने ही आपस में फ़र्क हों मुबारक हो हममें और आपमें राय का फ़र्क होना। अलग-अलग रायें हों अलग-अलग रायों का इजहार हो मैं चाहता हूं। मैं यह नहीं चाहता कि हिन्दुस्तान के लोग आंखें बन्द करके एक आवाज उठाएं, एक ही बात कहें—गोया कि उनके कोई दिमाग नहीं दिल नहीं। हमें हक है अपनी-अपनी आवाज उठाने का लेकिन किसी हिन्दुस्तानी को यह हक नहीं है कि वह हिन्दुस्तान की आजादी के खिलाफ़ आवाज उठाए। किसी हिन्दुस्तानी को यह हक नहीं है कि वह ऐसी बुनियादी बातों के खिलाफ़ आवाज उठाए जो हिन्दुस्तान की एकता को हिन्दुस्तान के इतिहास को कमजोर कर। क्योंकि अगर वह ऐसा करता है तो वह चाहे या न चाहे चाहे वह समझे या न समझे वह हिन्दुस्तान के और हिन्दुस्तान की आजादी के खिलाफ़ गद्दारी करता है। इसलिए इन बुनियादी बातों को हम समझना है क्योंकि जमाना नाजुक है और अगर हम अपने मुल्क में मजबूती से कायम नहीं रहे तो हम इस दुनिया में आगे तरक्की नहीं कर सकेंगे।

हमारे सामने काफी दिक्कतें हैं। आप जानते हैं कि दुनिया में अजीब हाल है। एशिया के एक कोने में लड़ाई हो रही है। हालांकि लड़ाई एक छोटे मुल्क में है फिर भी भयानक लड़ाई है। मालूम नहीं कब तक वह चले मालूम नहीं वह बढ़े या नहीं रहे। हमारी कोशिश है कि वह बढ़े नहीं दुनिया भर में आग न लगे। हमारी कोशिश है कि वह जल्द से जल्द रुक जाए, लेकिन आखिर हमारी कोशिश तो दुनिया पर हावी नहीं हो सकती। मालूम नहीं क्या हो लेकिन एक बात तो हम कर सकते हैं। अगर हमारी हिम्मत है कि हम अपने मुल्क को संभालें अपने मुल्क की ताकत बांधी रखें अच्छे रास्तों पर उसको ले जा सकें और अगर दुनिया में आग भी लगे तो अपने मुल्क को बचाएं तो हम दुनिया के बचाने में भी मदद करें। लेकिन जरूरी है कि हममें इत्तिहाद हो।

तो फिर मुल्क की तरफ आप देखें। काफी बड़े सवाल हैं। हर एक इन्सान के लिए अव्वल सवाल खाने का सवाल होता है और पिछले दो-तीन बरस से हम बारे में हमने काफी कोशिश की काफी बातें की लम्बी-लम्बी लम्बी-चौड़ी बातें भी कीं। क्या हाल है इस वक्त? आजकल आप सुनते हैं कि बाज हमारे प्रान्तों में जैसे मद्रास में बिहार में काफी परेशानी है। अजीब-अजीब खबर आती है जिनको पढ़ कर दिल दहलता है। तो नहीं बात तो यह है कि जिसका भी कोई बात है।

लेकिन जिस दर्जे वह बात बढ़ाई गई है वह भी गैर-जरूरी है और उससे नुकसान होती है। तो यह खाने का मामला हमारा अव्वल मामला है। क्यों है? मुख्तसर एक वजूहात से मुल्क में सब लोगों के लिए काफी खाना पैदा नहीं होता।

से रोकेंगे। वे आपके सामने आएंगे और उसमें हमने—यानी यहां की केन्द्रीय हुकूमत ने—कुछ कायदे बनाए है, कुछ ताकत ली है कि अगर किसी सूबे में कमजोरी भी हो, तो हम वहां कुछ काम कर सकें। और यह इसलिए कि सारे हिन्दुस्तान में एक तरह का काम हो, यह नही कि एक तरफ ढील हो, चाहे दूसरी तरफ जोरो से काम हो। लेकिन यह बात तो मैंने आपसे कही कि इसमें आपकी मदद की जरूरत है क्योंकि अगर आपकी, आम जनता की राय और आम जनता की मदद न हो तो यह बात चल नही सकती। आपको शिकायत होती है और शिकायत ठीक भी होगी कि जो लोग इस काम के करने वाले है, सरकारी मुलाजिम वगैरह, वे ठीक काम नहीं करते है, वे खुद कभी गिर जाते है। बात ठीक होगी। तो उनको संभालना है। अगर ठीक काम नही करते तो उनको अलग करना है, और दूसरे लोगों को रखना है। तो यह तो मैंने आपसे खाने के सिलसिले में कहा, क्योंकि यह अव्वल सवाल है। हमेशा हर मुल्क के लिए, खाने का सवाल अव्वल होता है। उसी से बंधी हुई बातों का मैंने आपसे जिकर किया कि जरूरी चीजों के दाम बढते है, यह भी बेजा बात है। कोरिया में लड़ाई हो, लड़ाई का चर्चा हो, और यहां फौरन मौका देख कर चीजों के दाम बढा दे, इसके माने क्या? इसको भी रोकना है।

और सवाल तो हमारे काफी है, सारे हिन्दुस्तान के, दिल्ली शहर के। हमारे शरणार्थियों का सवाल है। हलके-हलके कुछ इस सवाल को हल करने की कोशिश हुई। हलके-हलके हल हुआ, हलके-हलके हल होगा। लेकिन अफसोस यह है कि फिलहाल काफी लोग इस बरसात के जमाने मे परेशानी में पड़े है, उसके पहले गरमी में भी परेशानी मे थे। वक्त गुजरता जाता है और उनकी सारी मुश्किलें हल नही होती। इस पर भी मैं आपसे कहूंगा कि आप सोचें। यह सवाल पूरे तौर से गवर्नमेण्ट के काम से हल नही हो सकता। आपकी, हमारी और सारे मुल्क की मदद से और खासकर शरणार्थी भाइयों और बहनों की मदद से हल हो सकता है। गवर्नमेण्ट की तरफ देखना कि वह सब बातें कर दे, यह एक नामुमकिन-सी बात है कि वह कर सके। शरणार्थियों का सवाल हमने इधर-उधर उठाया। यहां कुछ हल किया। उधर बंगाल की तरफ यह सवाल उठा और काफी भयानक रूप से उठा। आपने देखा कि चार महीने हुए एक समझौता हुआ था, पाकिस्तान में और उनमें और बहुत बहस हुई है उस समझौते पर। और बाज लोग अब तक कहते है कि गलती हुई, कामयाबी नही हुई। लेकिन यह एक फिजूल-सी बहस है, हम इस बात का इरादा करें कि हम उस सवाल को भी हल करेंगे, तो यकीनन होगा। और मैं इस वक्त तफसील में तो नही जा सकता, लेकिन ईमानदारी से अपने दिल और दिमाग की बात आपको बताना चाहता हूं, और वह यह कि बंगाल का सवाल भी हालांकि निहायत पेचीदा है, निहायत तकलीफदेह है, फिर भी मेरी राय में यह हल होता जाता है। हां, आइन्दा का मैं कैसे इकरार करूं कि क्या होगा, क्या नही? वह तो हमारे,

गर तो यह कि कहीं भी कोई ऐसी तकलीफ हो तो वह हमारी बदइन्तज़ामी की निशानी है। मैं तसलीम करता हूं कि हमारी हुकूमत की बदइन्तज़ामी है। हमें तसलीम करना है और उसमें बचना या उसे छिपाना नहीं है। उससे सबक सीखने हैं। परेशानी की दूसरी बात यह है कि हमारे मुल्क में काफी लोग एसे हैं जो अब तक दूसरे की मुसीबत से पैसा बनाने की कोशिश करते हैं। चाहे वे व्यापारी हों चाहे दुकानदार हों या और हों मुख्तलिफ़ में खाने का सामान जमा करते हैं ताकि ज्यादा दाम मिलें या कभी साल-दो साल उन्हें जरूरत हो तो उनको काम में ला सकें। आप सोचें कि किस किस्म की चीजें हैं जो औरों की मुसीबत से फायदा उठाएं और पैसा बनाएं। किस तरह की चीज है? किस तरह से आप और हम इस बात को बर्दाश्त कर सकते हैं? आप जवाब देंगे कि जवाहरलाल ने दो-तीन बरस हुए कहा था—जो यह करता है उसको सख्त सजाएं होनी चाहिए। बातें तो बहुत होती हैं उन पर अमल कब होगा? अगर आप यह सवाल करें तो दुरुस्त है आपका करना। मैं खुद शर्मिन्दा हूं कि हम एसे बेकस कैसे हो गए कि ऐसे लोग हों जो इस तरह से खाने का सामान जमा करें दाम बढ़ाएं खाली खाने के सामान में नहीं और चीजों के भी और हम मजबूर हो जाएं कुछ न कर सकें। क्या बात है किसी शहर में चोर बाजार ऐसी बात होती है? क्या वजह है इसकी क्यों हम बर्दाश्त करें और क्यों आप बर्दाश्त करें या कोई इस बात को क्यों बर्दाश्त करे कि इस तरह से हर वक्त हर कोई खतरे के मौके से फायदा उठा कर पैसा बनाए और लोग लखपति हों चाहे और लोग मरें या जिएं। तो हम इसका कैसे सामना करें? जाहिर है गवर्नमेण्ट का पहला फर्ज इसका सामना करने का है लेकिन गवर्नमेण्ट कितने ही लम्बे-चौड़े कायदे और कानून क्यों न बनाए, उस पर तब तक अमल नहीं हो सकता जब तक आम जनता की उसमें पूरी मदद न हो और वह सहमत न हो। अगर आप और हम यह तय कर लें कि इस बात को हमें खतम करना है चाहे वह काला बाजार कहलाए, होर्डिंग कहलाए, खाने का जमा करना या जो भी उसका नाम आप लें या चीजों का बेमाने दाम बढ़ाना तो उसको हम रोकेंगे। अगर हमने और आपने मिल कर इरादा किया तो यकीनन वह रुकेगा और जो नहीं रोकेगा वह काफी सजा पाएगा।

आपने शायद देखा हो या अखबारों में पढ़ा हो कि अभी पिछले दो-चार दिनों में हमारी पार्लियामेण्ट में यह सवाल पेश हुआ था। एक तो वहां एक प्रस्ताव पास हुआ तीन दिन हुए और कल शाम को करीब सात बजे एक कानून बना है इन्हीं बातों की रोकथाम करने के लिए। आप अखबारों में पढ़ें और समझें और जल्द एक रोज में कानून पर अमल होगा और कायदे बनेंगे तफसील के साथ कि क्या-क्या कार्यवाही हम करेंगे किस-किस तरह से हम इन चीजों के दाम बढ़ने

समुन्दरी जहाज है और हमारे बहादुर नौजवान हैं, जो उसमें काम करते हैं। वे उस हमले से हिन्दुस्तान को बचाएंगे। हमारी शानदार फौज है, बहादुर फौज है। हवाई जहाज के और समुन्दरी जहाज के शानदार और बहादुर नौजवान है और अफसर है। ठीक है, लेकिन आखिर में, किसी मुल्क को फौज नहीं बचाती है, न हवाई जहाज बचाते हैं। बचाती है मुल्क की हिम्मत। मुल्क का तगडापन बचाता है। आखिर में मुल्क का एक-एक आदमी, मर्द और औरत जब तक अपने को हिन्दुस्तान का एक सिपाही न समझे तब तक मुल्क पूरे तौर से महफूज नहीं है, पिछले तीस-उनतीस बरस में जब हम आजादी के लिए लडते थे तो हमने कोई खास, सिपाही की वर्दी तो नहीं पहनी थी। लेकिन हम अपने को हिन्दुस्तान की आजादी के सिपाही समझते थे, और निडर होकर एक बडी ताकत का मुकाबला करते थे। एक साम्राज्य का, एक एम्पायर का मुकाबला हम करते थे और लोग हैरान होते थे। कभी वे हम पर हँसते थे और कभी-कभी उन्हें ताज्जुब होता था कि बात क्या है? ये कुछ लोग, कमजोर आदमी, न इनके पास हथियार है, न कुछ और है, लेकिन चले है मुकाबला करने एक बडी हुकूमत का, बडे साम्राज्य का। उस वक्त भी अजीब बात यह थी कि हमारे दिलो में कोई डर नहीं था, क्योंकि हमने कुछ थोडा-बहुत उस अपने बडे बुजुर्ग और लीडर का सबक सीखा था कि डरने से काम नहीं चलता। और हमने मुकाबला किया अपनी हिम्मत से और अपने को भी हिन्दुस्तान की आजादी का एक सिपाही समझ कर। तो जरा उस हवा को फिर लाइए, उस रग को फिर लाइए। और अगर हम ले आए, तो हमें न अन्दर किसी बात से डर है, न बाहर की किसी बात से।

तो आज के दिन, इस हिन्दुस्तान की आजादी की वर्षगाठ के दिन, इन बातो को, देश की बुनियादी बातो को हमें याद करना है और छोटी बातो में नहीं जाना है। बुनियादी बात मुल्क का इत्तिहाद है। बुनियादी बात यह है कि हिन्दुस्तान अगर मजबूत देश होगा, तगडा देश/होगा, अगर इसमें तरक्की होगी तो एक ही तरह से कि यहा जितनी कौमे हैं, जितने मजहब के लोग है, सबको पूरा अधिकार हो, पूरा अख्तियार हो, सबके लिए तरक्की के सब दरवाजे खुले हो। इस आजादी में सब पूरे हिस्सेदार हो और अगर एक-दूसरे से लडेंगे, तो आप यकीन मानिए एक-दूसरे को कमजोर करेंगे, और चुनाचे आजादी को कमजोर करेंगे। इस तरह से हम चलें, और जो सवाल हैं—चाहे खाने का या कोई और—उनका सब मिल के मुकाबला करें और उनको हल करें, और किसी सूरत से अपने दिल में घबराहट और डर नहीं आने दें। डरा हुआ आदमी और घबराया हुआ आदमी निकम्मा और बेकार आदमी होता है। अगर मुसीबत ज्यादा होती है, तो उसका मुकाबला करने के लिए हिम्मत ज्यादा होनी चाहिए, न कि यह कि उस वक्त कमजोर होकर और हाय-हाय करके हम घबरा जाए।

आपके और दूसरे लोगों के तगड़ेपन पर, ताकत पर और कमजोरी पर है। लेकिन मैं इस बात को तसलीम करने को एक मिनट के लिए तैयार नहीं कि कोई बात यहां हो नहीं सकती इसलिए हम नाउम्मीद हो जाएं और बजाय इसके कि उसको संभालने की कोशिश करें ऐसे रास्तों पर चलें जिसमें यकीनन बंगाल के लिए मुसीबत और हिन्दुस्तान के लिए तबाही हो।

तो ये बड़े-बड़े सवाल हमारे सामने हैं। शरणार्थियों का सवाल बंगाल के शरणार्थियों का सवाल खाने का बड़े-बड़े और सवाल इन सबके पीछे असल सवाल यानी मुल्क की आर्थिक उन्नति का सवाल। कैसे हम इन्हें हल करेंगे? हम और आप मिल कर ही कर सकते हैं। न अलग से आप कर सकते हैं न अलग से गवर्नमेंट कर सकती है। और मैं आपसे कहता हूं आपको हक है कि गवर्नमेंट के जो ऐब हों कमजोरियां हों उनकी तरफ आप तवज्जोह दिलाइए, उनकी आप निन्दा कीजिए और वक्त आने पर आप गवर्नमेंट को निकाल दीजिए और बदलिए। आपको पूरा हक है मुबारक हो आपको यह करना। लेकिन यह बात आप याद रखिए कि आपको दो बातों को मिलाना नहीं चाहिए, धोखा नहीं खाना चाहिए कि आप गवर्नमेंट की नीति की निन्दा करने में या एतराज करने में कोई ऐसा काम करें, जिससे हिन्दुस्तान की जड़ कमजोर होती हो बुनियाद कमजोर होती हो। इसका खयाल आपको रखना है। क्योंकि आम तौर से लोग इस बात का खयाल नहीं रखते हैं। गवर्नमेंट आती है और जाती है। हम लोग आते हैं और जाते हैं। हम लोगों के भी काम करने के जमाने हलके-हलके खतम होते जाते हैं।

मैंने आपको याद दिलाया थोड़े दिन बाद आप चुनाव करेंगे। लेकिन चुनाव करें या न करें, हम तो हमेशा हुकूमत की कुर्सी पर नहीं बैठे रहेंगे और जब कोई और साहब तशरीफ लाएंगे बैठने को बहुत खुशी से और इतमीनान से उससे हटना होगा। लेकिन जब तक यह जिम्मेदारी हाथ में है यह लगाम हाथ में है तो हम कमजोरी नहीं दिखा सकते हैं। जहां तक हमारी अक्ल है जहां तक दिमाग है जहां तक हमारे बाजू में ताकत है हम उसको उस रास्ते पर चलाने में इस्तेमाल करेंगे। चाहे खतरा बाहर का हो या अन्दर का हो लेकिन मैं आपसे फिर कहता हूं हिन्दुस्तान आजाद है। आजाद हिन्दुस्तान की हम सालगिरह मनाते हैं। लेकिन आजादी के साथ जिम्मेदारी होती है। जिम्मेदारी खाली हुकूमत की नहीं जिम्मेदारी हर एक आजाद शख्स की। और अगर आप उस जिम्मेदारी को महसूस नहीं करते अगर आप और हिन्दुस्तान की जनता उसे नहीं समझते तब आप पूरे तौर से आजादी के माने नहीं समझे और खतरा आने पर आप आजादी को पूरे तौर से बचा भी नहीं सकते। अगर कोई बाहर का हमला हो और फ़ौजी हमला हो तो हमारी फौज है हमारे हवाई जहाज हैं हमारे

इनसान की असली दौलत उसकी मेहनत

जय हिन्द, ज़रा मुझे आपकी आवाज भी तो सुनाई दे, मेरे साथ कहिए, जय हिन्द !

इस प्यारे झण्डे को फहराने के लिए आज पाचवी बार मैं यहा इस लाल किले की दीवार पर आया हू। चार बरस हुए जब पहली दफा मैं आया था और आप आए थे। मैं और आप लाखो की तादाद मे यहा जमा हुए थे, और हमने इस अपने पुराने और नए झण्डे को यहा उठाया था। यह दिल्ली शहर, जो सैकडो और हजारो बरस से अजीब-अजीब नजारे देख चुका है, जिसके सामने हिन्दुस्तान की तारीख और इतिहास एक किताब की तरह से लिखा गया है, इस दिल्ली शहर ने यह एक नई तसवीर देखी, एक नई बात इसके सामने आई, एक नई कौम की करवट इसने देखी। चार बरस हुए, मुनासिब था कि आप और हम उस मौके को मनाने के लिए यहा जमा हुए, यहा इस लाल किले की दीवार पर या इसके करीब, क्योकि इस किले की एक-एक ईंट और पत्थर जैसे कि इस दिल्ली की एक-एक ईंट और पत्थर हिन्दुस्तान की तारीख से भरा है। इस शहर ने हिन्दुस्तान की शान देखी और हिन्दुस्तान का गिरना देखा , हिन्दुस्तान का आगे बढना देखा और उसका पतन देखा। सब बातें इस दिल्ली की याद में और दिल्ली के दिमाग में हैं। ये सब पुरानी तसवीरे हैं। इसलिए मुनासिब था कि इस वक्त जब कि कौम ने एक नई करवट ली तो दिल्ली शहर और दिल्ली का यह लाल किला इस बात को देखता, और उससे इसका भी कोई सम्बन्ध जोडा जाता।

आप और हम चार बरस हुए यहा जमा हुए थे, और इस शहर मे और हिन्दुस्तान के हर एक गाव और शहर में खुशी मनाई गई थी, क्योकि अपने एक बडे सफर की एक मजिल पर हम पहुचे थे। जो हमारी पुरानी आरजू थी, जिसके लिए जद्दोजहद की थी, जिसके लिए एक बडी शहनशाहियत, एक साम्राज्य के खिलाफ, हमने मुकाबला किया था और उसमें हमारी कामयाबी हुई, उसमें हम आखिर में मजिल पर पहुचे। तो मुनासिब था कि इस बात को हम खुशी से मनाते। हमने खुशी मनाई, लेकिन खुशी हम मना ही रहे थे कि ऐसे वाकयात हुए जिनमे हमें आसू आ गए। खाली हमें नही, लाखो को आसू आए, करोडो को आए, क्योकि हमारे लाखो भाई और बहनें मुसीबत मे पडे और उसकी निशानी आज तक है। हमारे कितने ही शरणार्थी भाई अपने-अपने घर-बार से निकाले हुए यहा

तो फिर मैं आपको इस तीसरी सालगिरह की मुबारक देता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि यह जो अब साल आता है इसमें हम हिम्मत से निडर होकर जो जो मुसीबतें आयेंगी उनका सामना करेंगे और मुसीबत से घबरायेंगे नहीं बल्कि उसका स्वागत करेंगे सामना करेंगे और उनको कुचलेंगे।

1950

जय हिन्द!

हैं, एक-दूसरे की मदद करते हैं और अगर कोई दुश्मन हो तो उसका मुकाबला करते हैं। इस तरह से हमारी ताकत बढी। वह ताकत किसकी थी, किसी बड़े हथियार की नही, बल्कि हमारे करोड़ो आदमियो के दिलो की ताकत थी और दिलो का मेल था। अब अगर हमारी वह ताकत कम हो और आपकी ऊपर की कोई ताकत हो, तो वह हमे दूर तक नही ले जाएगी। इसलिए खास तौर से आज के दिन यह जरूरी है कि जरा हम पीछे देखें कि हमे क्या चीजें कमजोर करती हैं जिन्होंने हिन्दुस्तान को गिराया और गुलाम बनाया और क्या चीजें ऐसी थी जिन्होंने फिर हिन्दुस्तान को उठाया, हमारी ताकत को बढाया और आखिर में हमें आज़ाद किया।

यह याद रखने की बात है, क्योकि बाज़ लोग समझते हैं कि हम आज़ाद हो गए तो यह काम पूरा हुआ और फिर अब हम आपस मे जो चाहें करे, जो चाहें आपस में लडाई लड़ें या और तरह से अपनी ताकत को जाया करे। यह गलत बात है। याद रखिए कि आज़ादी एक ऐसी चीज़ है कि जिस वक्त आप गफ़लत मे पड़ेंगे, वह फिसल जाएगी। वह जा सकती है, वह खतरे में पड जाती है और खासकर आजकल की दुनिया क्या है? आजकल की दुनिया एक खतरनाक दुनिया है, एक कड़ी, सख्त और बेरहम दुनिया। कमज़ोर की तरफ वह रहम नही करती, जो कोई कौम और मुल्क कमज़ोर है वह उसके सामने गिरता है। लेकिन आखिर में ताकत क्या चीज़ है?

एक मुल्क की ताकत होती है—उसकी फौज, उसका सामान, उसके हवाई जहाज़, उसके समुन्दरी जहाज़। और हमें इस बात की खुशी और इस बात का गरूर है कि हमारी फौज, हमारे नौजवान जो फौज में है या हवाई जहाजो को ऊचे आसमान में उडाते है या समुन्दर की लहरो पर घूमते हैं, वे बहादुर नौजवान हैं, तगड़े हैं और हिन्दुस्तान की माकूल हिफाज़त कर सकते हैं। लेकिन आखिर में बडी से बडी और बहादुर से बहादुर फौज मुल्क की हिफाज़त नही करती, आखिर में हिफाज़त करते हैं उस मुल्क के लोगो के दिल। देखना यह होता है कि वे तगड़े हैं कि नही, वे छोटी बातो में पडते हैं या बडी बातो की तरफ देखते हैं, वे आपस में मिलते हैं या आपस में लडाई करते हैं। आखिर में वह ताकत होती है, फौज के पीछे भी और यो भी जो मुल्क को मजबूत करती है। आप देखें कि मुल्क के लोग काम करने वाले हैं या आराम करने वाले। अजीब हालत है। मैंने देखा एक बहुत पुराने ज़माने में अकसर बडे ज़ोरो से काम होते थे। आज़ादी की लडाई में मुकाबला होता था और फिर मैं देखने लगा कुछ लोग जो पहले अकसर काम भी करते थे, अब उस काम की याद में आराम करते हैं। तो जहा काम की बजाय आराम ज्यादा हुआ वहा कौम कमज़ोर हुई, जहा हमारी हिम्मत की बजाय एक सुस्ती आ गई तो कौम कमज़ोर हुई। इसलिए ज़रा हमें उन बुनियादी बातो की तरफ देखना है। आज

ज़िन्दगी में या हिन्दुस्तान के और हिस्सों में है। हमें उनकी मुसीबत पर आँसू आए, लेकिन उससे ज्यादा हमें आँसू आए और हम रंजीदा हुए इस बात से कि हमारे मुल्क में भाई भाई की लड़ाई हुई, हम अपने ऊँचे उसूलों को भूल गए, हमने अपने पड़ोसी पर हाथ उठाया और पिछले ज़माने में हम सबने जो कुछ बुनियादी बातें सीखी थीं वे हमारे दिमाग से हट गईं। इस बात का रंज हुआ कि आखिर हिन्दुस्तान की एक शान थी जिसको हमारे बड़े नेता महात्मा गांधी ने दुनिया के सामने रखा था वही शान एकदम से गिर गई। हमारे पड़ोसी लोग क्या करें? हमारे पास के मुल्क वाले क्या करें अफसोस था। और वह उनकी जिम्मेदारी थी। लेकिन रंज हमारे दिल में यही था कि हम अपने उसूलों से गिरे। और यह चार बरस पहले की जब तसवीर सामने आती है तो ये सब बातें याद आती हैं। चार बरस गुज़रे चार बरस का कोई बड़ा अरसा नहीं है, बड़ा ज़माना नहीं है खासकर एक मुल्क की ज़िन्दगी में लेकिन मुझे मालूम होता है कि ये चार बरस खाली चार बरस नहीं गुज़रे बल्कि करीब-करीब एक जन्म बीत गई। क्योंकि इन चार बरसों में जो तजुर्बे हुए, आपको मुल्क वालों को हमको जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ा उन्होंने इन चार बरसों को बहुत लम्बा कर दिया है।

लेकिन फिर मैं सोचता हूँ कि अगर हमारे सामने कोई बड़ी आजमाइश न होती हम मुसीबत की किसी तराजू पर तोले न गए होते तब क्या बात होती? आजकल भी जब मैं देखता हूँ तो हममें से काफी लोग गफलत में पड़ जाते हैं। आजकल की दुनिया का जो हाल है और हिन्दुस्तान का जो हाल है उसको भूल जाते हैं। अपनी आरामतलबी में या अपनी खुदगर्जी में पड़ जाते हैं चाहे कौम का फायदा हो या नुकसान। अगर आजकल की हालत यह है और नहीं हमारे सामने आजमाइश की यह बात न होती तो सारी कौम गफलत में पड़ जाती और इससे ज्यादा खतरनाक बात कोई नहीं है कि कौम भर आरामतलबी और खुदगर्जी में पड़ जाए, और भूल जाए कि उसके क्या फर्ज हैं भूल जाए कि क्या उसके उसूल और सिद्धान्त हैं भूल जाए कि क्या-क्या खतरे उसके चारों तरफ हैं। क्योंकि यही असल कमजोरी होती है बाकी सब कमजोरियाँ उसके सामने कुछ नहीं हैं।

हमने आज़ादी किस तरह से हासिल की कौन सी ताकत थी जो हमने पैदा की? वह एक दिल की एक रूहानी ताकत थी जो कभी दुश्मन के सामने झुकती नहीं थी जो कोई भी मुसीबत आए फिर भी उससे घबराती नहीं थी। वह ताकत महात्माजी ने हमारे दिलों में डाली। हम तो कमजोर दिल के आराम में पड़ने वाले मामूली आदमी थे। लेकिन उन्होंने हम यह सबक सिखाया कि अपनी सियासत में पाक तरीकों से अपनी बात में हमें ऊँचे रास्ते पर चलना है हमें आपस में मिल कर रहना है क्योंकि मिलने में ताकत होती है। हमें इस देश को एक जबरदस्त मज़बूत देश बनाना है जिससे चालीस करोड़ आदमी मिल कर एक तरफ देखें

पड़िए। बल्कि हमारी कोशिश हो कि शान्ति से और इतमीनान से उसको वही दवा दें।

तो अपनी चौथी सालगिरह के दिन हमें किस ढग से इस नए साल का सामना करना है। हमारे मुल्क के अन्दर काफी बडे-बडे सवाल हैं। हमारी उम्मीदे थी, हमने तरह-तरह के नक्शे बनाए थे कि हमने एक काम पूरा किया, हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ। उसके बाद दूसरी लड़ाई हमें लड़नी है और वह असली लड़ाई हिन्दुस्तान की गरीबी मे हिन्दुस्तान की बेकारी से है और उसमें हम एक दफे आगे बढे और जीते तो सारी कौम हिन्दुस्तान के तीस-चालीस करोड आदमी हलके-हलके उठेंगे। और उनकी मुसीबतें कम होगी। यह असली लड़ाई हम लड़ना चाहते थे, लेकिन बदकिस्मती से हम किस-किस मुसीबत में, किस-किस परेशानी में पड़े और उधर आगे न बढ सके। और सबसे बड़े रज की बात यह हुई कि आज़ादी आई, सियासी आज़ादी आई, लेकिन जो आज़ादी का फायदा कौम को मिलना चाहिए था—कुछ मिला ज़रूर, इसमें शक नही—पूरे तौर से नहीं मिला और आप लोगों की और हिन्दुस्तान के रहने वालो की काफी परेशानियां रहीं। म आपको क्या बताऊ? आप जानते हैं काफी परेशानियां रही। जिस तरह से चीज़ो के दाम बढे, उसका असर सारी कौम पर हुआ, चाहे आप तनख्वाह लेते हैं या कुछ और तरह से रहते हैं। दाम बढते जाते हैं। खाने का सवाल है। खाने की कमी, राशनिंग और क्या-क्या बातें सामने आई। आप परेशान हुए और आप लोगो ने और मुल्क ने अकसर शिकायत की और जायज शिकायत की, क्योंकि परेशानी की शिकायत करनी होती है। लेकिन हम उसमे जकड गए। और कुछ तो दुनिया के वाकयात के कारण, अगर वहा कोरिया मे लड़ाई हो तो उसका असर यहा चीज़ो के भाव पर पड जाता है जो हमारे काबू के बाहर की बात है। अगर अमेरिका मे कोई बात हो, त उसका असर यहा की चीज़ो के दामों पर पड जाता है।

लेकिन उसी के साथ यह भी बात है, और यह हमारे काबू की बात है कि हमारे मुल्क ही मे बाज़ लोग ऐसे है जिन्होंने अपनी खुदगर्ज़ी के लिए, लालच में ऐसी बातें की कि खुद फायदा हो, चाहे कौम को नुकसान हो। जाहिर है, यह गलत है और हर हुकूमत को इसको रोकना चाहिए और दबाना चाहिए और काबू मे लाना चाहिए। मुमकिन है कि जिस ताकत से, पूरी कामयाबी से उसको करना चाहिए था नही हुआ, लेकिन यह भी याद रखिए कि हुकूमत कुछ करे, आखिर मे ऐसे मामलो में किसी बडे मामले में, जब तक आम जनता का साथ न हो और आम जनता का सहयोग और पूरी मदद न हो वह बात पूरी चलती नही है। और फिर यह काला बाज़ार और इस तरह से जो चीज़ें बढती हैं, गवर्नमेंट उनको ज़रूर कानून से रोक सकती है, लेकिन आखिर में जनता की मदद से ही यह बात

सवेरे हमारे राष्ट्रपति प्रैसीडेंट साहब राजघाट गए मैं भी गया कुछ और लोग भी गए—महज एक फर्ज अदा करने नहीं बल्कि अपने दिमागों में अपने दिल में उन पुरानी याद से कुछ ताकत लेने। वह याद तो हमेशा हरी रहती है लेकिन फिर भी मुनासिब है कि हम उसको बराबर सामने लाएं और उन उसूलों को उस सबक को भी। तो मैं वहां गया। और वह तसवीर मेरे सामने आई, और वे अल्फ़ाज़ मेरे कानों में गूंजे जो बरसों हुए हम सुना करते थे और अब उनके सुनने से महरूम हो गए। तो मैं वहां गया वहां से यहां आपके सामने हाजिर हुआ और मेरा ख्याल आजकल के इस हिन्दुस्तान की हालत की तरफ़ दौड़ा कि किस तरह से इस मुल्क के रहने वाले हम सब आप और हम एक किश्ती पर हैं और अगर वह किश्ती हिलती है तो हम सब हिलते हैं अगर वह किश्ती डूबती है तो हम सब डूबते हैं। कोई यह न समझे कि अगर मुल्क गिरे तो कुछ लोग बच जाते हैं। अगर मुल्क आगे बढ़े तो फिर सब लोग आगे बढ़ते हैं।

तो हमें यह समझना है कि हमारा नाता क्या है और रिश्ता क्या है? आपस में आप बहुत कुछ करें। अलग-अलग दल अलग-अलग पार्टी और अलग लोग चुनाव में जाएं, ये सब बातें अलग हैं। लेकिन हमारा एक नाता और रिश्ता बरकरार हर वक्त का है। खासकर इस वक्त जब कि दुनिया में खतरे हैं, हमारे मुल्क में तरह-तरह के बाहरी खतरे और अन्दरूनी खतरे हैं, तब और भी जरूरी हो जाता है कि हम अपनी छोटी बातों को बचाएं और मिटाएं, अपने को तगड़ा करें मजबूत करें और आपस में एकता पैदा करें। याद रखिए चालीस करोड़ लोग हैं जाहिर-सी बात है कि कोई चालीस करोड़ हिन्दुस्तान में फ़रिश्ते नहीं कमजोर दिल के डरपोक दिल के भी लोग हैं और कई लोग ऐसे हैं जो मुल्क के साथ गद्दारी भी करें। मुल्क में सब तरह के लोग होते हैं। हमें इस बात से घबराना नहीं है। झगड़ा फ़साद पैदा करने बाहर के मुल्कों से लोग आ सकते हैं। क्योंकि हर एक जानता है कि आखिर में मुल्क की ताकत अमन और एकता कायम करने से होती है। कुछ बेवकूफ़ी से झगड़ा पैदा करते हैं अपनी जहालत से लेकिन कुछ लोग समझ-बूझ कर झगड़ा पैदा करते हैं ताकि मुल्क कमजोर हो चाहे वे बाहर से आएं, या अन्दर के हों।

मैंने सुना है कि आज सुबह ही किसी वक्त या रात को दिल्ली शहर में एक ऐसा झगड़ा करने की किसी आदमी ने कोशिश की ऐसी बात की। तो आपको इस बात से आगाह होना है कि आप किसी ऐसे बहकावे की बातों में न आ जाएं। और कोई वाकया ऐसा हो भी जिससे आपको गुस्सा चढ़े—और चढ़ सकता है बहुत सारी बातें होती हैं जो नागवार गुजरती हैं और गुस्सा चढ़ता है—तो फ़ौरन समझिए कि यह किसी गलत आदमी ने किसी बुरे आदमी ने किसी ऐसे आदमी ने जो झगड़ा कराना चाहता है, उसे कराया है और आप उसमें न

इस वक्त हम बडी-बडी योजनाए बनाते हैं और योजनाओ में बेशुमार रुपया खर्च होता है, कहा से रुपया आए ? आखिर रुपया आप टैक्स में देते हैं। रुपया कही आसमान से नही टपकता और अगर हम और मुल्को मे रुपया कर्ज ले तो उस कर्ज का बोझा होता है, कर्ज़ा अदा करना होता है। तो फिर जो बडी-बडी चीजें हमे करनी है, उन्हें हम कैसे करें ? खैर, बहुत तरीके हैं। लेकिन अगर कुछ बडी बातो को छोड कर एक-एक गाव मे और एक-एक शहर मे एक-एक इनसान थोडी बात भी करे तो बहुत-कुछ होता है। मैं आपको मिसाल देता हू और तजुर्बे से मिसाल देता हू। कई हमारे प्रदेशो मे, प्रान्तो मे, खासकर देहातो मे हमने प्रोग्राम बनाया कि लोग अपनी मेहनत से सडके बनाए। आप जानते हैं देहातो में सडकें बहुत कम हैं। तो हमने मकान बनाए, पचायत घर बनाए, कही-कही छोटी-छोटी नहरें खोदी, कही-कही छोटे स्कूल, विद्यालय बनाए— अपनी मेहनत से, सरकारी तौर से नही। सरकारी तौर से कुछ मदद मिल जाए, उनको कुछ सामान मिल जाए, वह बात और है। चुनाचे हजारो मील सडके मुफ्त में उन लोगो ने अपने फायदे के लिए बनाईं। तो अब हम बडे-बडे नक्शे बनाते हैं और प्लान बनाते हैं कि चलो भाई यहा सडकें बनाने में पचास लाख या एक करोड रुपये खर्च होगें इसलिए एक करोड रुपया लाओ। और हमारे दफ्तरो मे नक्शे बनते हैं और बडे-बडे ऊचे फाइल बनते हैं और उस पर बडे-बडे नोट लिखे जाते हैं, लेकिन वे सडकें और वे विद्यालय नही बनते या अरसे बाद बनते हैं। यह तरीका है। गवर्नमेण्ट ज़रा हलके चलती है। गवर्नमेण्ट की कार्रवाई की यह मुश्किल है। लेकिन लोग अगर खुद कोई काम करे और उसमें गवर्नमेण्ट की तरफ से कुछ न कुछ मदद हो तो आप देखे कि थोडे दिन मे हम इस सारे हिन्दुस्तान के नक्शे को बदल दे सकते हैं। मैं आपको मिसाल दे सकता हू यूरोप के मुल्को की। मैं आपको मिसाल देता हू चीन की, जहा लोगो ने अपनी मेहनत से ऐसा किया। गाव वालो ने कहा कि हम अपने गाव की सडके बना देंगे। हम यहा एक स्कूल बनाएगे, पचायत घर बनाएगे और उन्होंने बना कर खडा भी कर दिया और जब इसमें गाव का मुकाबला हुआ कि हम ज्यादा आगे बढे कि तुम बढे तो सब लोग दोस्ती के मुकाबले में आगे बढने लगे।

तो हमारी जो यह पाच बरस की योजना बनी है, यह न समझिए कि यह ऊपर से करने की कोई सरकारी चीज है। वह तो है ही। लेकिन यह एक-एक आदमी की चीज है और उसमें सब लोग मिलें तो फिर हमें न बाहर के पैसे की जरूरत है, न मदद की। याद रखिए, आखिर यह जो पैसे का बडा चर्चा होता है, इससे हमारे दिमाग कुछ फिर गए हैं, बहुत ज्यादा दुकानदारी के दिमाग हो गए हैं, और हम कुछ गलत समझने लगे हैं कि पैसा क्या चीज है। अफसोस यह है कि पैसा आजकल की ज़िन्दगी में एक जरूरी चीज है। लेकिन आखिर मे इनसान के पास

पूरी हो सकती है। तो हम और आपको तरीके निकालने हैं कि जो चीज इस वक्त कौम को दबाती है और मुसीबत में डालती है उसे किस तरह से रोकें।

आप शायद जानते हों कि अभी कुछ दिन हुए एक योजना एक पाँच बरस की योजना या प्लान नेशनल प्लान राष्ट्रीय योजना निकाली गई, जिसका मतलब है कि किस तरह से हम इस बड़ी लड़ाई को जीतें। बड़ी लड़ाई यानी हिन्दुस्तान की गरीबी के खिलाफ और बेकारी के खिलाफ लड़ाई। किस तरह से हिन्दुस्तान में ज्यादा काम हो और ज्यादा पैदावार हो और ज्यादा धन-दौलत निकले जो कि आम लोगों में जाए। बड़ा काम है, थोड़े से आदमियों का नहीं। चालीस करोड़ आदमियों के लिए, एक बड़ी योजना बहुत सोच-विचार के बाद बनी है। अभी तक वह आखिरी नहीं है वह छपी नहीं है और आप भी उसको देख सकते हैं पढ़ सकते हैं और अपनी सलाह दे सकते हैं। सब सलाहों पर गौर करके महीने-दो महीने बाद उसको पक्का करेंगे। अब उसमें बहुत सारी बातें ऐसी हैं जो कि सरकारी तौर से करनी हैं गवर्नमेण्ट को करनी हैं। चाहे वह गवर्नमेण्ट यहाँ दिल्ली की हो या हमारे एक-एक प्रान्त और प्रदेश की हो। लेकिन हमारी उस बड़ी योजना में यह लिख कर दिया है कि उसकी जड़ और बुनियाद जनता का सहयोग है। अगर जनता न करे, करोड़ों आदमी न लगें तो महज गवर्नमेण्ट के काम करने से बातें पूरी नहीं होंगी। बाज लोग कहते हैं कि बाहर से मदद लेकर इस काम को करो। हम बाहर से मदद लेने को तैयार हैं बशर्ते कि उसमें किसी किस्म का कोई बन्धन न हो। और बाहर की कुछ मदद हमें मिली भी है।

लेकिन आप याद रखें कि मदद के लिए बाहर की तरफ बहुत ज्यादा देखना भरोसा करना चाहे पैसे के लिए हो या किसी और बात के लिए कौम को कमजोर करता है। जो कौम दूसरों की तरफ बहुत देखती है अपाहिज हो जाती है। आपका सरकारी अफसरों की तरफ देखना और हर बात में सोचना कि गवर्नमेण्ट कर दे यह भी गलत है। उन बातों को करना गवर्नमेण्ट का तो फर्ज और कर्तव्य है ही। लेकिन यह पुरानी रिवायत है अंग्रेजी राज्य के जमाने की। अंग्रेजी राज्य में आप जानते हैं मशहूर था कि जो अंग्रेज अफसर थे उनके खुशामदी लोग उनसे कहते थे आप माँ-बाप हैं। खैर, मैं आपसे कहे देता हूँ इस तरह का अब कोई 'माँ-बाप' यहाँ नहीं रहा। और हम नहीं चाहते कि आपका या हमारे लोगों का ध्यान हर वक्त रहे कि कोई और आदमी दे कोई हुकूमत या म्युनिसिपैलिटी कुछ करे। अगर हुकूमत या म्युनिसिपैलिटी जो कुछ भी हो अपना फर्ज ठीक अदा नहीं करती तो आप आवाज उठाइए, ठीक है आपका हक है। आवाज उठाइए और अपनी राय दीजिए जो जाब्ते से हो। लेकिन जो बात आपको समझनी है वह यह कि हम खुद क्या कर सकते हैं। पड़ोसी की नुक्ताचीनी तो सब कर सकते हैं लेकिन खुद क्या कर सकते हैं।

यहा होने वाला है, दुनिया के इतिहास में एक जबरदस्त चीज, है क्योंकि आजकल की दुनिया मे किसी देश में प्रजातन्त्रवादी चुनाव में इतने 17-18 करोड लोग नही पडते। तो इतनी बडी बात है। एक बडा इम्तहान हमारे लिए है। उस इम्तहान में अगर हम कामयाब हुए तो हमारी शक्ति बहुत बढेगी। नही हुए तो हम कुछ कमजोर होगे और ऐसे मौके पर कमजोर होगे, जब कि काफी खतरे हैं।

आप जरा दुनिया को तरफ देखे। खतरनाक दुनिया है। एक छोटा सा देश कोरिया है। साल भर से ऊपर से वहा ऐसी लडाई हुई कि वह देश तो करीब-करीब नेस्तनाबूद हो गया, तबाह हो गया। लोग कहते हैं कि हम कोरिया को बचाने को और आजाद करने को गए हैं। लेकिन आखिर में शायद कोरिया में कोई इन्सान ही न रहे, जिसको आजादी की जरूरत हो। मुमकिन है उस लडाई मे ज्यादातर लोग खतम ही हो जाए। तो ये तो आजकल की दुनिया के हाल हैं। हम एक विदेश नीति पर चल पडे हैं कि हम लडाई-झगडो में न पडें, हम दुनिया के देशो में अमन रखें। हमारा देश लम्बा है। हम कोई गरूर नहीं करते कि हम अपनी राय पर और लोगो को मजबूर करें। वैसा हम नही चाहते। लोग अपने-अपने रास्ते चलें और हम अपने रास्ते चले। लेकिन आजकल की दुनिया एक गठी हुई दुनिया है। इसको आप अलग नही कर सकते, इसके टुकडे नही कर सकते। और मजबूरन हमें भी दुनिया के सवालो मे पडना पडता है और अपनी राय देनी होती है। हमने हमेशा कोशिश की कि इस बात को सामने रखें कि दुनिया में अमन कैसे होता है, क्योकि आजकल लडाई मे ज्यादा खतरनाक और तबाह करने वाली चीज़ कोई नही है। और अगर दुनिया भर में लडाई हुई, एक नई किस्म की लडाई, तो यकीनन दुनिया में जो कुछ तरक्की हुई है, जो कुछ दुनिया की कौमें बढी है, वे सब खत्म हो जाएगी और एक वहशत की तरफ दुनिया फिर बढने लगेगी। तो यह तो बडी खतरनाक बात है। हम दुनिया को रोकना चाहते है, क्योकि जो कुछ दुनिया में हो, उसका असर हम पर पडे, चाहे हम उसमें ज्यादा हिस्सा लें, या कम, हिस्सा लें या हिस्सा न लें, उसका असर हर मुल्क पर पडे।

इसलिए हमने यह विदेश नीति रखी। हमने कोशिश की कि हम हर मुल्क से दोस्ती करें और अपने रास्ते पर चलते जाए। हमारी ख्वाहिश थी और हमारी कोशिश थी कि हमारा जो पडोसी मुल्क है, कल-परसों या चार बरस पहले तक इसी हिन्दुस्तान का एक जुज़ था, लेकिन जो अलग हो गया और पाकिस्तान बन गया, उससे भी हम दोस्ती करें। हमें अफसोस हुआ कि हिन्दुस्तान का टुकडा अलग हुआ, लेकिन आखिर में हमारी मजूरी से हुआ, हमारी रजामन्दी से हुआ, यह सोच कर कि ऐसा होने से शायद हम फिर आइन्दा ज्यादा दोस्ती से रह सकें, मिल सकें। जो अन्दरूनी झगडे रोज-रोज हो रहे थे उनको किसी तरह कम करना था, क्योकि वे हमारी आजादी के रास्ते मे आते थे। खैर, गलत या

जो दौलत है वह उसकी मेहनत है दिमाग की कायमियत है और हाथ-पैर की मेहनत करने की ताकत है। आप और हम अपनी मेहनत से दौलत पैदा करते हैं। सोना-चांदी कोई अच्छे पैदा नहीं करते हैं। हालांकि आजकल के हिसाब से लोग ऐसा समझते हैं और कुछ रवैया भी ऐसा है। इसलिए जो असली दौलत है वो इनसान की मेहनत है। और हमारे पास अगर मुल्क में सोना चांदी काफी नहीं है तो इनसान तो काफी तगड़ और काम करने वाले हैं। क्यों न हम उनके उस काम से और मेहनत से नई दौलत पैदा करें, जो उनके ही पास पहुंचे और मुल्क आगे बढ़े? इस तरह से आजकल चीन का मुल्क बढ़ रहा है। और कौन मुल्क उसके मदद करने वाले हैं? वे लोग जोश से मेहनत करते हैं। अमेरिका का एक देश है बड़ा दौलतमन्द देश है। लेकिन आप यह न भूलिए कि उनकी दौलत आती कहां से है? उनकी मेहनत से आती है कोई बाहर से नहीं टपक पड़ती। अपनी मेहनत से अपनी काबलियत से आती है क्योंकि आखिर में कोई देश अपनी मेहनत से अपने बाजू के बल से चल सकता है औरों के नहीं।

इसलिए कभी-कभी मैं देखता हूं तो मुझे ख्याल आता है कि हिन्दुस्तान में कुछ पुराने गुलामी के ढर्रे और ख्यालात हमसे दूर नहीं हुए और हम फिर हर वक्त ऊपर सरकार की तरफ देखते हैं कि सब कुछ वह कर दे और खुद इन्तजार करते हैं या नाराज होते हैं या अपने को बदकिस्मत समझ कर बैठ जाते हैं। यह नहीं कि बजाय दरवाजे-दरवाजे दफ्तरों के टकराने के हम एक फावड़ा ले कर कुछ कोई कुछ काम करें अपने शरीर को अच्छा बनाएं और उससे कुछ पैदा करें। मुश्किल तो यह है कि हमारे लोग—पहले शायद कम अब काफी लोग—समझते हैं कि इज्जत बाबू होने में और बाबुओं के काम करने में है। और बाबू लोग अच्छे होते हैं। यानी बाबू से मेरा मतलब है जो दफ्तरों में काम करें, या बड़े अफसर हों या छोटे अफसर हों। ये सब एक तरह से एक किस्म का काम करते हैं। वह जरूरी काम है, लेकिन मुल्क बढ़ता है हजार बातों से हजार कामों से। और हर एक आदमी शान में कलम रख कर दफ्तरों में कैसे बैठे? अगर जगह न हो तो उसको हम भर्ती तो नहीं कर सकते। लेकिन मुल्क में बहुत काफी काम है अगर लोग उसे मिल कर करें खुद कुछ पैदा करें, बजाय इसके कि हर एक आदमी नौकरी की तरफ देखे।

अभी कुछ दिनों में एक बड़ा चुनाव होने वाला है। और आपके पास तरह तरह की बातें रखी जाएंगी कही जाएंगी। मैं उसमें नहीं जाता और न मुनासिब है कि जाऊं सिवाय इसके कि इस मौके पर मैं उम्मीद करता हूं कि आप सारे मुल्क के लोग शान्ति से सहयोग से और अमन से काम लेंगे। कोई झगड़ा-फसाद नहीं कोई झूठ-फरेब नहीं क्योंकि चुनाव के वक्त पर झूठ-फरेब बहुत चलता है और धोखेबाजी भी। उसमें आप नहीं पड़ेंगे न औरों को पड़ने देंगे। जो चुनाव

भी जोश आपको या पाकिस्तान वालों को क्यों न आ जाए, आखिर में पाकिस्तान के रहने वाले कल तक हमारे भाई थे, हमारे एक ही मुल्क के रहने वाले थे। हज़ारों रिश्ते, हज़ार नाते, हज़ार ताल्लुक थे—तो वे चार-पांच बरस में कैसे टूट जाएं और क्यों टूटें? हमारी एक बोली, हमारा एक रहन-सहन, हमारा इतिहास, तारीख बहुत-कुछ एक, तो फिर क्यों वे लोग और हम लोग इस गफलत में पड़ें, झगड़े में जाएं, और एक-दूसरे को तबाह करने की कोशिश करें?

मैं तो हैरान होता हूं जब मैं सोचता हूं कि कैसे इस तरह से हमारी ताकत जाया हो रही है और किस गलत रास्ते पर पाकिस्तान अक्सर चलता है और उसकी ताकत जाया होती है। इसलिए मैं बहुत सफाई से आपसे इस वक्त कह रहा हूं और मैं उम्मीद करता हूं, मेरी आवाज़ पाकिस्तान के लोगों तक जाएगी और दुनिया भी सुनेगी कि हमारा पक्का उसूल यह है और हमारी पूरी कोशिश यह है कि हम अमन से रहें, हम पाकिस्तान से अमन से रहें और हम पाकिस्तान के लोगों से दोस्ती करें। हां, अगर और कभी किसी बात में आपको जोश चढ़ जाए और तैश हो तो उसको आप यह न समझें कि एक कौम के खिलाफ जोश है। अगर पाकिस्तान में किसी एक आदमी ने या दस ने या सौ ने या हज़ार ने गलती की, तो इसके क्या माने है कि आप करोड़ों आदमियों को अपना दुश्मन समझें। क्या आपके हिन्दुस्तान में लोग गलती नहीं करते हैं? तो आप यह तो नहीं समझते कि कोई खास हिन्दुस्तानी हमारा दुश्मन हो गया। वहां गलत रास्ते पर चलने वाले काफी खराब लोग हैं, काफी गलत रास्ते पर चलने वाले हिन्दुस्तान में भी है। इसलिए हम एक तरफ से पूरे तौर से तैयार रहें, क्योंकि तैयारी से हम अपने को महफूज करते हैं और लड़ाइयों को रोकते हैं। और कौमों के साथ मिलने के लिए हमारा हाथ हमेशा बढ़ा रहेगा। हम किसी को धमकी नहीं देना चाहते, किसी को मुक्का नहीं दिखाना चाहते। हम हाथ बढ़ाते हैं, हाथ मिलाने के लिए और वह हाथ बढ़ा है पाकिस्तान के लोगों से हाथ मिलाने के लिए। वह आज भी बढ़ा हुआ है और कल भी बढ़ा रहेगा, और चाहे जोश हो, चाहे कुछ हो, उस उसूल पर हम कायम रहेंगे। हां, अगर हमारे मुल्क पर कोई हमला हो, तो हमारा फर्ज है कि पूरे तौर से हिफाज़त करें और उसके लिए तैयार रहें।

आज के दिन खास तौर से हमें कुछ उन पुराने उसूलों को याद रखना है, जो महात्माजी ने हमारे सामने रखे, जिन पर चल कर हमने मुल्क को आज़ाद किया। अगर उस रास्ते को हम छोड़ दें, तो फिर क्या हमारा हश्र होगा? खैर, मुझे तो इतमीनान है कि क्या-क्या उसमें मुसीबतें आएंगी? और मुझे इतमीनान है कि हमारे लिए बुनियादी तौर से सही एक रास्ता है, जो गांधीजी ने दिखाया था, उस पर हमें चलना है।

सही हमने उस बात को मंजूर किया और उस बात पर हमें कायम रहना है। यह बात आप साफ़ समझ लें कि जो लोग इस बात पर कायम नहीं हैं और जो लोग कहते हैं कि कहीं उखाड़-पछाड़ करनी है वे लोग न हमारे मुल्क की खिदमत करते हैं, न किसी और बात की। क्योंकि इसके माने हैं आपस में हर जगह लड़ाई झगड़ा-फ़साद। मुझको इस बात को तो पक्का समझना है। तो हमने कोशिश की लेकिन बदकिस्मती से आप जानते हैं कि इस चार बरसों में पाकिस्तान की हुकूमत में और हमारी हुकूमत में काफ़ी कशमकश रहा काफ़ी बड़े-बड़े सवाल उठे। यह मौका नहीं है कि मैं उन सवालों में जाऊं। लेकिन इस वक्त काम में लड़ाई के ढोलों की ललकारों की कुछ आवाजें आती हैं और लोग कूद कूद कर, कुछ जोश में गरज कि उनका बजना कोई हो लड़ाई का चर्चा बहुत करते हैं। पाकिस्तान से आवाजें आती हैं और जब हमने बहुत-कुछ सुना तो—जाहिर है हम लड़ाई नहीं चाहते—हमारा फ़र्ज़ हो जाता है कि मुल्क को तैयार करें और हर तरह से मुल्क तैयार रखें, किसी खतरे में न पड़ें। और हमने यह सोचा कि अगर हमारा मुल्क पूरे तौर से तैयार हो तब यह ज्यादा मुमकिन है कि कोई लड़ाई न हो। क्योंकि जो लोग तैयार नहीं होते उनके ऊपर हमला होते हैं जो तैयार हों तो हमले रुक जाते हैं।

इसलिए यह समझ कर कि इस तरह से लड़ाई रुक जाएगी हमको अपनी तरफ़ से जो कुछ मुनासिब तैयारी करनी थी वह हमने की। उसी के साथ आप जानते हैं कि बार-बार मैंने आपसे और मुल्क से दरख्वास्त की कि शहर में या और कहीं कोई ऐसी कार्रवाई न हो जैसी कि पाकिस्तान के शहरों में हुई है, जिससे लोग समझें कि लड़ाई आने वाली है, खामखा एक दहशत जैसे परेशानी हो और हमारे काम-काज में हर्ज हो। हम ऐसी फ़िज़ा पैदा करना नहीं चाहते और मैं हिन्दुस्तान में आपका और दूसरे लोगों का मशकूर हूं कि आपने हमारी सलाह को माना कोई ऐसी फ़िज़ा पैदा नहीं की और इतमीनान से ठण्डे दिल से अपने काम करते रहे। और यहां खाली दिल्ली शहर में नहीं बल्कि पूर्वी पंजाब में सरहद तक अगर आप जाएं, तो आप बहुत कुछ देखेंगे कि हमारे भाई और बहन इतमीनान से बगैर जरा भी परेशान हुए अपना काम-काज शहर में या कारखाने में या जमीन पर करते जाते हैं ऐन हिन्दुस्तान की सरहद तक। तो यह खुशी की बात है, यह ताकत की निशानी है और यह हमारी अमनपसन्दी की निशानी है।

इस बात को आप कायम रखें लेकिन मैं खास तौर से आज के दिन और ऐसे मौके पर इस बात को दोहराना और साफ़ करना चाहता हूं कि हमारा मुल्क कहीं किसी किस्म की लड़ाई नहीं चाहता। विशेषकर हम नहीं चाहते कि पाकिस्तान से हमारी अनबन रहे, लड़ाई हो क्योंकि कुछ

करें और दुनिया का फायदा करें। उस रास्ते पर हमें चलना है, और आजकल की दुनिया के और हिन्दुस्तान के इस नाजुक मौके पर हमें हर बात के लिए तैयार रहना है और आपस में मिल के आगे बढ़ना है। क्योंकि हम सब हमसफर हैं। एक यात्रा पर हमें जाना है, और अगर हम रास्ते पर ही एक-दूसरे से लड़े तो आगे कैसे बढ़ सकते हैं ?

बस, अब मैं आपसे जय हिन्द करके खतम करता हूं और उसके बाद मैं चाहता हूं कि आप भी मेरे साथ तीन बार जय हिन्द करें।

जय हिन्द !
जय हिन्द !
जय हिन्द !

1951

इस झण्डे के नीचे मैं खड़ा हूँ और आप भी इस झण्डे को देख रहे हैं यह एक प्यारा झण्डा है एक सुन्दर झण्डा है और इसमें बहुत सारी बातें हैं। एक तो यह कि यह हमारी आजादी की लड़ाई की एक निशानी है। इसके नीचे खड़े होकर कितनी बार हमने प्रतिज्ञा की इकरार किए कि हम उन उसूलों पर कायम रहेंगे हिन्दुस्तान की हिफाजत करेंगे और उसे आजाद रखेंगे। हम हिन्दुस्तान में एकता करेंगे मिल कर रहेंगे और हम कभी नीची बात नहीं करेंगे—यह हमने प्रतिज्ञा की। वो एक पुरानी निशानी है जो याद दिलाती है हमारी आजादी की लड़ाई की और उसमें हुई कुरबानियों की। उसी के साथ उसमें आजकल की एक निशानी है। आप देखेंगे कि पुराना जो झण्डा था उसको हमने रखा और उसमें थोड़ा-सा फर्क भी कर दिया। वह फर्क क्या था? इस झण्डे के बीच में एक चक्र आ गया। और उस चक्र ने आकर सारे हिन्दुस्तान के पिछले कई हजार बरस की तारीख को इस झण्डे में लाकर रख दिया। क्योंकि यह चक्र हिन्दुस्तान की कई हजार बरस पुरानी निशानी है और हिन्दुस्तान के अम्न की निशानी यानी है हिन्दुस्तान के शान्तिप्रिय अमनपसन्द होने की निशानी है ताकि हिन्दुस्तान के लोग हमेशा याद रखें कि हम सचाई और धर्म के रास्ते पर चलें। यह निशानी पुरानी है सम्राट अशोक के पहले की लेकिन यह सम्राट अशोक के नाम से खास तौर से बंधी है। इसलिए इसके रखने से हमारे झण्डे में हजारों बरस की तारीख इस झण्डे से बंध गई है और हजारों बरस से जो हमारे सामने ध्येय था जिस तरफ हिन्दुस्तान के ऊँचे लोगों की निगाहें थीं वह बात इसमें आ गई। तो इसमें पुराना जमाना आया हजारों बरस का इसमें पिछला जमाना आया चालीस-पचास बरस का आजादी की लड़ाई का। इसमें आज आया और आखिर में इसमें आने वाला कल आया जो हमें दिखाता है कि किधर हम जाएंगे। पुराना जमाना हुआ उससे सबक सीखें उसकी अच्छी बातें याद रखें लेकिन आखिर में हमारी निगाहें आगे होनी हैं भविष्य की तरफ, जो आनेवाला जमाना है उसकी तरफ।

उसके लिए हमें तैयार होना है तगड़ा होना है मजबूत होना है और जो जो तकलीफें और मुसीबतें आएं उनका हिम्मत हार के नहीं बल्कि मजबूती से सामना करना है। क्योंकि मुझे इतमीनान है कि हिन्दुस्तान का भविष्य एक जबरदस्त भविष्य है इस के माने यह नहीं कि हम और मुल्कों पर हमला करें, और उन्हें डराएं। मुल्कों के लिए जमाने गए। और जो कोई बड़े-से-बड़ा मुल्क दूसरे मुल्क को दबाना चाहे और अपनी हुकूमत में लाना चाहे तो आजकल के जमाने में वह बदनाम होता है और आखिर में उसे हार माननी होती है।

इसलिए असल्यत यह नहीं है कि हम और कौमों को दबाएं। असल्यत यह है कि हम अपने मुल्क को ऊँचा करें दूसरी कौमों से दोस्ती करें, अपना फायदा

आंखों से आंसू बहते हैं उनमें से कितने आंसू हमने पोंछे, कितने आंसू हमने कम किए। यह अन्दाजा है इस मुल्क की तरक्की का, न कि इमारतें जो हम बनाए या कोई शानदार बात जो हम करें। क्योंकि आखिर में यह मुल्क क्या है? यह हिमालय पहाड़ नहीं है, न कन्याकुमारी है। यह मुल्क इसमें रहने वाले छत्तीस करोड़ आदमी हैं—मर्द, औरत और बच्चे और आखिर में इस मुल्क की भलाई-बुराई उन छत्तीस करोड़ आदमियों की भलाई और बुराई है। और आखिर में मुल्क है हमारे छोटी उम्र के लड़के-लड़कियां और बच्चे। क्योंकि हमारा, आपका और हमारी उम्र के लोगों का जमाना तो गुजरता है।

हमने अपना फर्ज किया, बुरा या भला। हमारा जमाना गुजरता है और औरों को सामने आना है। जहां तक हममें ताकत थी हमारे बाजू में और हाथों में हमने आजादी की मशाल को उठाया और कभी उसको गिरने नहीं दिया, कभी उसको मलीन होने नहीं दिया। अब सवाल यह है कि आपमें और हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमियों में, नौजवानों और बच्चों में कितनी ताकत है कि वे भी उसको शान से उठाए रखें, इस मुल्क की खिदमत करें, तरक्की करें और खासकर इस बात पर हमेशा ध्यान दें कि किस तरह से इस मुल्क के लाखों-करोड़ों मुसीबतजदा आदमियों के आंसू पोंछें, कैसे उनकी तकलीफ दूर करें, किस तरह वे तरक्की करें। आजकल किस तरह से हमारी नई फौज को यानी बच्चों को मौका मिले कि वे ठीक तौर से सीखें, पढ़ें-लिखें, उनका शरीर ठीक हो, मन ठीक हो और दिमाग ठीक हो और फिर बड़े होकर वे इस मुल्क का बोझा अच्छी तरह से उठाएं। ये बड़े काम हैं, जबरदस्त काम हैं। कोई खाली कायदे और कानून से, गवर्नमेंट के हुक्म से तो नहीं होते। हां, गवर्नमेंट की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है, लेकिन जब तक कि मुल्क में सब रहने वाले, उसमें शरीक न हों, उसमें मदद न करें, सहयोग न करें, उस जिम्मेदारी को वह अदा नहीं कर सकती। क्योंकि इतना बड़ा काम कोई खाली गवर्नमेंट की तरफ से नहीं हो सकता, जब तक कि सारी जनता उसमें हिस्सा न ले, भाग न ले। और उसमें आपकी चाहे कोई राय हो, किसी भी बात पर, किसी आर्थिक बात पर या किसी राजनीतिक बात पर, अलग-अलग रायें भी हों, तब भी बुनियादी काम हमारा और आपका है और हमें साथ मिलकर करना है। हां, बाज बातें ऐसी हैं जो जब तक हमारे उनके बीच में दीवारें हैं, नहीं मिला सकती हैं। वे कौन-सी बातें हैं? हम हर एक मिलकर काम कर सकते हैं, करना चाहिए, क्योंकि आखिर हम सब मुल्क के बच्चे हैं, चाहे हमारा कोई धर्म हो, कोई सूबा हो, कोई पेशा हो, कोई काम हो, सबका यह फर्ज है, सब इस आजादी के हिस्सेदार हैं। और इसलिए सब उस आजादी के जिम्मेदार हैं उसको कायम रखने के और बढ़ाने के। कौन नहीं है? यह तो मैं नहीं कह सकता कि कोई नहीं है, लेकिन बाज रास्ते ऐसे हैं, जो हमें गलत तरफ ले जाते हैं। वे रास्ते हैं आपस

आजादी की मशाल जलाए रखें

आज आजाद हिन्द की पांचवीं सालगिरह है। पांच बरस हुए, इस मुकाम पर इस पुराने दिल्ली शहर में हम जमा हुए थे और इसी लाल किले की दीवार पर हमने इस झंडे को उठाया था। यह हिन्दुस्तान के एक नए जमाने की एक निशानी थी। उसको पांच बरस हुए और इस पांच बरस में बहुत ऊंच-नीच हुआ। बहुत-कुछ हमने किया बहुत-कुछ हमने नहीं किया और करना रह गया। तो फिर आज जो हम यहां फिर से जमा हुए हैं हमारा फ़र्ज क्या है? हमें एक जबरदस्त विरासत मिली। पांच बरस हुए हम हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग एक शानदार विरासत के वारिस हुए जिसका कि नाम हिन्दुस्तान भारत इंडिया है। लम्बी चौड़ी चीज है हिमालय से लेकर नीचे कन्याकुमारी तक। लेकिन वह उससे भी बहुत ज्यादा है, क्योंकि उसकी जड़ें हजारों बरस पीछे पहुंच जाती हैं? तो यह हजारों बरस की कहानी हजारों बरस की शान और हजारों बरसों की मुसीबतें सभी हमें भोगने को मिली। और फिर इस लम्बी कहानी में सवाल यह था कि हम लोग जो इस जमाने के रहने वाले हैं हमारा क्या फ़र्ज है। इस कहानी का क्या हिस्सा हम करेंगे और क्या लिखेंगे ताकि इस शानदार विरासत को हम बढ़ायें ताकि बाद में जब हमारे बच्चे और बच्चों के बच्चे आएं तो इस जमाने को किस तरह से वे देखें।

किसी मुल्क के इतिहास में पांच बरस एक बड़ा जमाना नहीं है। लेकिन इन पांच बरसों में भी दुनिया में और हमारे देश में बड़ी-बड़ी बातें हुई हैं। बड़ी-बड़ी मुसीबतें भी हमने उठाई हैं। और, यह तो इतिहास लिखने वाले लिखेंगे कि क्या हमने किया और क्या नहीं किया। हमारा फ़र्ज पीछे देखने का नहीं है बल्कि आगे देखने का है। क्योंकि आखिर में बात यह कि जो आवाज हमारे कान में आती है अधूरे काम की पुकार है कि काम अधूरा रह गया है और उसे पूरा करना है।

काम तो देश का कभी पूरा नहीं होता। क्योंकि आपका और हमारा काम क्या है? इस देश में हजारों काम हैं। हजार काम हम करेंगे फिर भी हजारों बाकी रहेंगे। काम का हम इस तरह अन्दाजा करें कि हमने कोई नई इमारत बनाई, कोई नया स्कूल बनाया और कोई नया बड़ा काम किया तो ठीक है, लेकिन आखिर में काम का अन्दाजा यह है कि इस मुल्क में ऐसे कितने लोग हैं, जिनकी

हमारा फर्ज है कि हिन्दुस्तान में हर एक शख्स जिसकी आंखों में आंसू हैं उसके आंसू हमें किस तरह पोंछना, किस तरह सुखाना है। इस जमाने में हमारे मुल्क में मुसीबतें गुजरीं, प्रकृति ने भी मुसीबतें भेजीं। इन बरसों में बहुत बारिश नहीं हुई, जलजले आए, भूकम्प आए, क्या-क्या हुआ आप जानते हैं। खैर, कुछ पलटा हमने खाया। इन बातों पर हमने काबू किया और दूसरे सालों के मुकाबले में, हमारा हाल जरा अच्छा हुआ। बारिश भी अच्छी हुई। कुछ इस वक्त मुल्क में खाने का सवाल भी अच्छा है, कपडे का भी अच्छा है। अच्छा तो है लेकिन फिर भी आप याद रखें कि यह बडा मुल्क है और इस बडे मुल्क में कोई न कोई हिस्सा ऐसा रहता है जहां कोई न कोई मुसीबत आती रहती है। आजकल ज्यादातर मुल्क में पानी बरसा, ज्यादातर खेती अच्छी हो रही है, खाने के सामान की पैदावार अच्छी है। लेकिन बाज जिले हैं उत्तर प्रदेश के, गोरखपुर, आजमगढ़, देवरिया और बस्ती के, कुछ उधर जिले हैं बिहार के, कुछ बंगाल में हैं, सुन्दरबन का इलाका, मद्रास की तरफ रायलासीमा है, मैसूर के कुछ जिले हैं, कुछ राजस्थान में, कुछ सौराष्ट्र में हैं, जहां काफी मुश्किल है, काफी फाकेमस्ती है, काफी गरीबी है, काफी खाने की कमी है। और हमारा फर्ज होता है उनकी हर तरह से मदद करें और खाली आरजी मदद न करें, लेकिन इस तरह से इन्तजाम करें कि वे अपनी टांगों पर खडे हो सकें और हम सब मिलकर आगे बढें। क्योंकि आखिर में इस हिन्दुस्तान का जो 36 करोड का बडा खानदान है उसमें हम सब हमसफर हैं। हमकदम होकर हमें आगे बढ़ना है, हमें एक तरफ जाना है। अगर कुछ लोग समझें कि वे उनको छोडकर आगे बढ जाएंगे तो वे लोग धोखे में हैं, क्योंकि जो पीछे हैं उनका पीछे रहना औरों को भी आगे बढने से रोकेगा।

मैंने अभी आपसे कहा, तीन खतरनाक बातें हैं। एक तो व लोग होते हैं जो तशद्दुद पैदा करते हैं। दूसरे वे लोग जो कि खुदगर्जी से, चाहे तिजारत में हो चाहे और कहीं हो, कालेबाजार से, बेईमानी से, दूसरी तरह से, घूस देकर, रिश्वत देकर और लेकर पैसा बनाते हैं। तीसरे फिरकापरस्ती का सवाल है। अजीब हालत है कि इतना हमने सबक सीखा और फिर भी कुछ लोग धोखे में पडकर फिरकापरस्ती का काम करते हैं और उस तरह से सोचते हैं और समझते हैं। वे सोचते हैं और समझते हैं इस बात में शान है कि वे दूसरे मजहब को, दूसरे धर्म वालों को नीचा दिखाएं, उनको बुरा-भला कहें। मानों इस तरह से वे अपने धर्म और मजहब को उठाएंगे।

अभी-अभी चन्द रोज हुए एक वाकया हुआ, एक अखबार ने इलाहाबाद में कुछ छापा। एक बदतमीजी की बेहूदा बात थी, जिसको पढकर गुस्सा मालूम होता था। गुस्सा इसलिए कि हिन्दुस्तान में किसी आदमी में इतनी जहालत है कि ऐसी बातें करे। और फिर उस जहालत का बाज लोगों ने क्या जवाब दिया?

में झगड़े के तसद्दुद के वायलेन्स के क्योंकि आजकल कहीं-कहीं फिर से आवाजें उठती हैं कि आपस में झगड़ कर लड़ाई लड़के ऊधम मचाकर मुल्क की तरक्की करें, कौम की तरक्की करें। एक बचपने की आवाज है या जानबूझकर मुल्क तबाह करने की आवाज है।

हमें और आपको आपस के झगड़े से आगाह होना है—चाहे कितना ही ऊंचा उसका नाम क्यों न हो चाहे यह क्यों न कहा जाए कि यह मुल्क के फायदे के लिए है। झगड़े भी तरह-तरह के हैं। ऊंचे-ऊंचे नाम हैं कि हम किसानों के लाभ के लिए झगड़ा करते हैं, या हम यहां के जो मजदूर भाई हैं उनके लिए करते हैं। लेकिन झगड़े और फ़िसाद से और खून बहाने से न मजदूर आगे बढ़ेगा न किसान आगे बढ़ेगा बल्कि मुल्क तबाह होगा। दूसरे लोग वे हैं जो आप जानते हैं मजहब और धर्म के नाम से इस किस्म का झगड़ा-फ़िसाद करते हैं फ़िरक़ापरस्ती करते हैं। आपने काफ़ी इस सबक को सीखा और समझा। इस तरह से मुल्क तरक्की नहीं कर सकता इस तरह से कमजोरी और बढ़ेगी। हमारी सारी ताक़त बजाय आगे बढ़ने के और गिरेगी। इन बातों से हमें आगाह रहना है। और तीसरी कौम उन खुदगर्ज लोगों की है जो कि पैसे के लालच में कालाबाजार करें या किसी तरह से धोखेबाजी से झूठ से पैसा बनाएं और मुल्क का और औरों का नुकसान करें। ये तीन रास्ते हैं जो मुल्क को तबाह करते हैं इन तीनों को आपको समझना है।

हम एक बड़े मुल्क के रहने वाले हैं। जबरदस्त मुल्क है जबरदस्त उसका इतिहास है। बड़े मुल्क के रहने वाले बड़े दिल के होने चाहिए बड़े रास्ते पर हमें चलना है, छुद्र के नहीं गलत बातों पर नहीं जल्दबाजी से नहीं। शान से हमने हिन्दुस्तान को आजाद किया शान से हमें आगे बढ़ना है, शान से हमें यह जो हिन्दुस्तान की आजादी की मशाल है उसको लेकर चलना है और जब हमारे हाथ कमजोर हो जाएं तो औरों को देना है ताकि नौजवान हाथ उसको उठायें और हम अपना काम पूरा करके फिर चाहे खाक में मिल जाएं। लेकिन जब तक हाथ में जिस्म में शरीर में ताक़त और बल है उस वक्त तक उस ताक़त को इस मुल्क को आगे बढ़ाने में इस मुल्क के करोड़ों आदमियों की खिदमत करने में इस्तेमाल करें, काम में लाएं, और जब ताक़त खत्म हो जाए तो हमारा काम भी खत्म हुआ। तब फ़िकर नहीं हमारा क्या होगा है और लोग आएंगे।

इसलिए हम बड़े काम को देखना है एक सूबे के लिए नहीं एक फ़िरके के लिए नहीं एक जाति के लिए नहीं एक मजहब के लिए नहीं। लोग अपने पेशे में रहें अपने-अपने धर्म पर रहें। मजहब पर रहें लेकिन सब में बड़ा पेशा सब में बड़ा धर्म और सब में बड़ा फ़र्ज हर एक का है हिन्दुस्तान। इस बड़े खानदान के 36 करोड़ की खिदमत करना उसको बढ़ाना और उसको हमेशा इस तरह से देखना कि जो मुसीबतज़दा हैं जो गिरे हुए हैं दबे हैं उनको उठाना है। हमेशा यह सोचना

दूसरे रंगवाले को दबाए—यह बड़ा सवाल इस वक्त वहां उठा है। और हिन्दुस्तानी नहीं—वे तो थोड़े हैं—अफ्रीका के रहने वाले, महात्मा जी के उस सबक को सीखकर आगे बढ़े हैं और शांति से वहां के स्त्री-पुरुष इस काम को उठा रहे हैं। मुझे इस बात की खुशी है कि भारत से गए हुए जो लोग वहां हैं, उनका भी उसमें अफ्रीका के रहनेवालों के साथ पूरा सहयोग है। और मुझे यकीन है कि आप सब लोग और हिन्दुस्तान का एक-एक दिमाग और एक-एक दिल उधर देखेगा और उन लोगों से हमदर्दी रखेगा। तो ये हमारे काम करने के तरीके हैं। इस तरह से हमने आजादी हासिल की और मैं उम्मीद करता हूं कि इस तरह से हमें आइन्दा भी काम करना होगा अगर हमें कोई आपस की नाइत्तफाकी और झगड़े फिसाद के मामले हल करने पड़ें।

इसलिए आप इस बात को याद रखें और आज के दिन, हम फिर से इस बात का इकरार करें कि हम लोग इस मुल्क को आगे बढ़ाएंगे, और इसके माने अपने को बढ़ाएंगे। और इस तरह से हम हिन्दुस्तान की जो यह पुरानी संस्कृति है, उसको बढ़ाएंगे और दुनिया में अमन कायम करने में हम पूरी मदद करेंगे। खास तौर से जो हिन्दुस्तान का बड़ा मसला है यानी यहां की गरीबी और दरिद्रता का उसको दूर करने के लिए पूरी शक्ति से काम करेंगे। हम पूरा काम तो नहीं कर सकते, बहुत बड़ा काम है। लेकिन कम से कम जितना अपने जमाने में कर सकते हैं, उसको करेंगे। फिर इस काम को और बढ़ाने के लिए हमारे यहां और नौजवान आएंगे।

तो इस समय मैं आपसे यही कहना चाहता हूं कि हम आज के दिन जरा अपने दिल को साफ करके सोचें। याद करें क्या हममें कमजोरियां हैं और औरों की कमजोरियों की तरफ न देखें, औरों की नुक्ताचीनी न करें। अपनी तरफ देखें। अगर हर एक आदमी अपना-अपना कर्तव्य करता है, अपना-अपना फर्ज अदा करता है, तो दुनिया का काम बहुत आगे जाएगा। लेकिन औरों के काम की नुक्ताचीनी करना, निन्दा करना हमारा कुछ पेशा हो गया है। और चाहे हम अपना काम करें या न करें, हर एक को अपने पड़ोसी के काम की फिकर है, अपने काम की नहीं। और इससे न पड़ोसी काम कर सकता है, न हम कर सकते हैं। इसलिए हमें मिलकर काम करना है। जरा हम-आप सबक सीखें, हमारी अपनी फौज से। फौज एक खास काम के लिए मुल्क की खिदमत करने के लिए होती है। उसमें एक निजाम आता है, डिसिप्लिन आता है, सिखाया जाता है। हमारी फौज में हमारे देश के हर प्रान्त के, हर सूबे के रहने वाले हैं, हमारी नेवी में, एयरफोर्स में हर प्रान्त के लोग हैं, हर धर्म-मजहब के लोग हैं। सब मिलकर हिम्मत से, बहादुरी से काम करते हैं। आपस में झगड़ा नहीं करते। हमारी फौज हिन्दुस्तान की एकता का इतिहास का एक नमूना है। हमें इस तरह की एकता और फौजीपन

बजाय इसके कि एक आदमी ने गलती की उसको जो कुछ सजा हो दी जाए, इसका जवाब आज अनजान लोगों ने यह दिया कि अच्छा हम आज 15 अगस्त के इस जलसे में शरीक नहीं होंगे अपनी नाराजगी दिखाएंगे। यह किसी मौके पर भी किसी हिन्दुस्तानी के लिए कौन-सा जवाब है? सोचने की बात है। इस जलसे में शरीक होना न होना किसी का खास फर्ज नहीं लेकिन कोई बात करना जिससे कि हिन्दुस्तान की आजादी की धब्बा लगे जिससे इस मुल्क की शान कम हो जिससे आज के मुबारक दिन कोई रंज का इज़हार करे यह बात बेजा है किसी के लिए भी जा नहीं है चाहे उसके दिल में कितना ही किसी बात का दर्द हो। क्योंकि आखिर में हमें याद रखना है कि हम मिलकर आगे बढ़ते हैं। और करोड़ों में हजारों खराब आदमी गलत आदमी अनजान आदमी हैं लाखों ऐसे जिनकी एक-एक गलती से अगर हम अपना रास्ता छोड़ दें तो सारा मुल्क ही बह जाए।

याद रखिए कि आज से सवा दो हजार बरस हुए एक बड़े हिन्दुस्तानी ने क्या कहा और खाली कहा नहीं बल्कि बड़े पत्थर के मीनारों पर, खम्भों पर खोदकर लिख दिया। याद है आपको सम्राट अशोक ने क्या कहा? सम्राट अशोक ने अपने सारे साम्राज्य को इस भारत के लोगों को बताया था कि जो दूसरे के धर्म का दूसरे के मज़हब का आदर करते हैं वे अपने धर्म का आदर करते हैं। जो दूसरे के धर्म का अनादर करते हैं वे अपने धर्म को भी नीचा करते हैं। इसलिए अगर कोई आदमी अपने धर्म की इज्जत बढ़ाना चाहता है तो इस तरह कि अपने बर्ताव से वह कैसे अपने पड़ोसी के धर्म की इज्जत करता है। यह हिन्दुस्तान की हजारों बरस की संस्कृति रही है न कि नफरत की झगड़े की जैसा कि आजकल कुछ नादान लोग करते हैं। और आप जरा आजकल की लड़ाई की दुनिया को देखें लड़ाई का चर्चा लड़ाई की तैयारी। अजीब हालत है मालूम नहीं किस वक्त एक मुसीबत इस दुनिया पर आए और आधी दुनिया नेस्तोनाबूद हो जाए। हम एक कमजोर मुल्क हैं। हमने अपनी आवाज अमन की शान्ति की तरफ उठाई, कोशिश की और आखिर दम तक हम कोशिश करेंगे। लेकिन हम ताकत से तभी कुछ कर सकते हैं जब हम अपने मुल्क में मिलकर आगे बढ़ें।

लड़ाई का चर्चा सारी दुनिया में है लेकिन एक नए किस्म की लड़ाई की तरफ मैं आपका ध्यान दिलाऊंगा। वह इस वक्त दक्षिण अफ्रीका में हो रही है क्योंकि वह इस हिन्दुस्तान से कुछ सम्बन्ध रखती है क्योंकि जो तरीका वहां के रहने वालों ने उठाया है वह तरीका इस मुल्क के एक महापुरुष ने हमको सिखाया था सहयोग का सत्याग्रह का। इस वक्त वहां एक बड़े सिद्धान्त की बड़े उसूल की लड़ाई है कि इनसान-इनसान बराबर है कि नहीं या उसके बीच में दीवारें हैं और एक कौम दूसरी कौम पर, एक जाति दूसरी जाति को दबाए, एक रंगवाले

भेदभाव की दीवारें मिटा दें

आज आजाद हिन्द की छठी सालगिरह है, यानी आपकी, हमारी, हम सब की। हम सभी का जो पुनर्जन्म हुआ था, उसकी यह छठी वर्षगांठ है। यह दिन आपको मुबारक हो और मुल्क को मुबारक हो। आज के दिन पहले हमें उस हस्ती को याद करना है, जिसकी वजह से भारत आजाद हुआ, जिसने एक मुरझाई हुई कौम में जान डाली, जिसने बहुत दर्जे तक इस पुराने देश को फिर से नया बनाया। इसलिए आज हमारा पहला काम होना चाहिए गांधी जी को याद करना। पर गांधी जी की याद के क्या माने? वह एक महापुरुष थे, जो यहां पैदा हुए, इस देश में और दुनिया में चमके और चले गए, लेकिन महापुरुष की याद होती है वे बातें जो उन्होंने हमें बताई, जो सबक हमें सिखाए, जो आदेश दिए। उनका जैसा जीवन था, उससे हमने क्या सबक सीखे? आज के दिन हमें यह याद रखना है कि उनके क्या सिद्धान्त थे, क्या बुनियादी बातें थीं, जिन पर चल कर यह देश मजबूत हुआ और जिन पर चल कर हम आजाद हुए। क्योंकि अगर हम इन बुनियादी बातों को याद नहीं रखते, तो फिर हम दुर्बल हो जाएंगे, कमजोर हो जाएंगे और जो काम हम करना चाहते हैं वे हम नहीं कर सकेंगे। हमारे देश का इतिहास हजारों बरस का है। इन हजारों बरसों में बड़ी ऊंची जगह हमारे देश ने पाई, और बार-बार ठोकर खाकर यह गिरा भी। हमें यह याद रखना है कि किस बात ने हमारे देश को मजबूत किया, किसने कमजोर किया, तो सोचिए फिर वे कौन सी बुनियादी बातें हैं? इस वक्त हमारी मंजिल कौन सी है, हम किधर जा रहे हैं और कौन सा रास्ता है, जिसे हमें पकड़ना है? हमें और आपको, अपने सिद्धान्तों को हमेशा याद रखना है, क्योंकि गलत रास्ते पर चल कर कोई मंजिल पर नहीं पहुंचता। गलत बात को कर के, कोई अच्छा फल हासिल नहीं करता। यह एक बुनियादी बात है, जिसको अगर हम भूलें तो हमारा सारा काम बिगड़ जाएगा। हमने और आपने अच्छे कामों का फल देखा है।

आजादी आई और उस आजादी आने के समय जब हम खुशियां मना रहे थे, और अब से छः बरस पहले इसी जगह पर खड़े होकर मैंने इस झंडे को फहराया था, उसी के फ़ौरन बाद एक मुसीबत आई थी। पाकिस्तान में, हिन्दुस्तान के खास प्रान्तों में, एक मुसीबत आई। नतीजा यह हुआ कि कितने लाखों मुसीबतजदा आदमी उससे भाग के इधर से उधर और उधर से इधर आए। उन बुरी बातों का,

सारे करोड़ों आदमियों में पैदा करना है। हिन्दुस्तान के बड़े कामों को करने के इस इरादे से हम चलें तो कुछ अपना काम भी करेंगे। खाली औरों का या गवर्नमेंट का पूरा भरोसा करके न रह जाएं। तब जाकर इस मुल्क के बड़े काम होते हैं। फिर से आपको आज का दिन मुबारक हो। आज की पांचवीं आजाद हिन्द की सालगिरह आपको मुबारक हो हमें मुबारक हो। लेकिन मुबारक तो तभी हो जब हम इस बड़े काम को उठाएं और इस आने वाले साल में जोरों से काम करें।

आइए मेरे साथ जरा जोर से जयहिन्द तीन बार कहिए।

जय हिन्द!

जरा जोर से कहिए—जय हिन्द!

1952

फिर से—जय हिन्द!

से बड़ा काम हैजिसमें हम लगे है, कि हिन्दुस्तान की गरीबी को दूर करना है और बेरोजगारी को खतम करना है। हरेक के पास काम हो, हरेक पुरुष और स्त्री, अपने काम से देश के लिए और अपने लिए धन पैदा करे और इससे हमारी शक्ति बढ़े।

दुनिया मे हमारा काम यह है कि जहा तक बन पडे हम अपनी कोशिश अमन के लिए करें। शान्ति हो, अमन हो, और लडाइया न हो। इतने दिन से हमने यही कोशिश की। हमारा देश दुनिया में कोई बहुत जबरदस्त हिस्सा तो लेता नही, न हमें लेने की इच्छा है। हम अपना घर संभालना चाहते हैं, लेकिन फिर भी जो कुछ थोड़ा-बहुत हम कर सकते थे, हमने किया, और इसकी कदर हुई, और कदर होने पर उसकी जिम्मेदारिया हमारे ऊपर आई हैं। आप जानते हैं कि इस समय हमारे कुछ साथी, हमारी कुछ फौजें हिन्दुस्तान के बाहर जा रही हैं, हजारो मील कोरिया की तरफ। ये फौजे क्यो जा रही है? फौजे एक देश को छोड कर दूसरे मुल्को में लडाई लड़ने जाती है, जाया करती है, लेकिन हमारी फौजें लडाई के लिए नही, अमन के लिए जा रही है। हमारी फौजें जा रही है औरो की दावत पर। जो और मुल्क आपस में लडते थे, एक बात में वे सहमत हुए कि हिन्दुस्तान को बुलाए, हमारी फौजो को बुलाए कि वहा पर वे कुछ अपना कर्त्तव्य करें। हमारी इच्छा नही है कि हम जिम्मेदारिया और जगह दुनिया में लें, लेकिन जब ऐसा कोई फर्ज होता है, तो हमें उसको पूरा करना होता है। और इस समय हमारी फौजें वहा जा रही है। दुनिया में फिर से कुछ चर्चा है कि यह जो लडाई की फिजा चारो तरफ़ थी, वह अब कुछ बदल जाएगी कि वैसे ही रहेगी? कोशिश तो बदलने की है। पर मुझे अफसोस है कि अब तक बाज लोग धमकी की आवाज से बोलते हैं, डर की आवाज से बोलते है। अगर हमें दुनिया में सुलह चाहिए, मेल चाहिए तो एक-दूसरे को धमकी देकर, एक दूसरे को डरा कर नही, लेकिन जरा दिल मजबूत कर के, हाथ बढा के दोस्ती करनी होती है, न कि धमकी देकर। तो अब फिर से सुलह की बातें हो रही हैं। बेहतर तो यह है कि जो मुल्क उसमें शरीक है वे जरा अपने दिमाग को भी सुलह के अनुकूल करें। खाली बातो से तो काम नही चलता है। यह हमारे बाहर के फरायज़ है, उनको हम अदा करते हैं और यह अन्दर के है कि हम मुल्क की गरीबी को दूर करके आर्थिक हालत को अच्छा करें। यह सब से बड़ा काम है। हिन्दुस्तान में इन छ बरसो में कई बडे-बडे काम हुए और मैं समझता हू कि जब बाद में तारीख लिखी जाएगी तो उनकी काफी चर्चा होगी कि इन छ बरसों में क्या-क्या हुआ, क्या-क्या नही, लेकिन उसी के साथ यह भी सही है कि बहुत बातें, जो हम करना चाहते थे, नही हुई हैं। काम बहुत बडा है और करने वाले कभी-कभी कम से मालूम होते हैं। लेकिन अगर आप सभी करने वालो में हो तब वह काम भी हलका हो जाएगा।

बुरे कामों का नतीजा हम आज तक भुगत रहे हैं। कोई बुरी बात ऐसी नहीं होती जो बुरा नतीजा पैदा न करे, इसी तरह कोई अच्छी बात ऐसी नहीं है जो अच्छा नतीजा नहीं पैदा करती। इसलिए हमें ठंडे दिल से सोचना है। हमारे सामने बड़े काम हैं जबरदस्त काम हैं। इस मुल्क को 36 करोड़ के मुल्क को उठाना 36 करोड़ आदमियों के जीवन का अच्छा बनाना उनकी तकलीफों को दूर करना ये सब बड़े काम हैं। हजारों बरस के पुराने मुल्क को नया करना है। हमें सोचना है कि हम किधर जाते हैं हमारा इस वक्त क्या कर्तव्य है? पहली बात जाहिर है कि हम अपनी आजादी की रक्षा करें, हिफ़ाजत करें। दूसरी बात कि हम दुनिया के अन्य सब देशों से मिलता करें, दोस्ती करें, और उनसे मिल कर, सहयोग कर के चलें। हम किसी और देश के काम में दखल न दें। और हम अपने देश में किसी और का बेजा दखल मंजूर भी नहीं करें। इस तरह से हमें अपने रास्ते पे चलना है। तीसरी बात और बड़ी जबरदस्त बात यह है कि हम अपने मुल्क के देश के अन्दर क्या करें? हम किस तरह से इस बड़े भारी परिवार को संभालें? छत्तीस करोड़ आदमियों के खानदान को किस तरह से चलाएं? परिवार कैसे चलते हैं? क्या आपस में लड़ कर, झगड़ कर, आपस में दीवारें खड़ी कर के? तो इस देश में जो चीज एक को दूसरे से अलग करे वह एक दीवार है हमें उसको हटाना है। हमें जो यहां साम्प्रदायिकता यानी फ़िरकापरस्ती है उसको हटाना है क्योंकि देश को यह दुर्बल करती है देश के महान परिवार को तोड़ती है एक-दूसरे को दुश्मन बनाती है और हमें नीचा करती है। हमें प्रांतीयता को भूलना है, अगर हम प्रान्त को अलग बढ़ाएंगे और सूबे को अलग बढ़ाएंगे तो देश को हम नीचे करते हैं। हमें तो देश के हित को सबसे आगे रखना है। इस बात को याद रखें कि अगर हिन्दुस्तान बढ़ता है तो हम सब बढ़ते हैं और अगर हिन्दुस्तान नहीं बढ़ता तो कोई नहीं बढ़ता चाहे हमारा प्रान्त या जिला आगे हो या पीछे हो। तीसरी बात जो है वह है जातीयता की दीवार। यह पुरानी चीज है, पुराना रोग है। यह जातीयता है जो हमें अलग-अलग खानों में रखे कमजोर करे, दुर्बल करे, और एक बड़े देश की भावना को कम करे।

इसको भी हमें देश से हटाना है, तब हम मजबूती से आगे बढ़ेंगे। देश के करोड़ों आदमियों को गरीबी से छुटकारा दिलाना और बेरोजगारी को खत्म करना है। ये सब से बड़े काम हैं क्योंकि आखिर में एक देश की ताकत जैसे किसी व्यक्ति की ताकत खाली लम्बी-चौड़ी बातें करने से तो नहीं साबित होती उसकी आर्थिक शक्ति से होती है उसके चरित्र से होती है उसमें आपस में एकता कितनी है इससे होती है। तो हमने सियासी आजादी हासिल की हमें एक तरह का स्वराज्य मिला लेकिन वह अधूरा स्वराज्य है। स्वराज्य तब पूरा होगा जब उसकी पहुंच एक-एक के पास हो जाए और एक-एक की आर्थिक हालत अच्छी हो जाए। तो यह सब

हमने इकरार किया था कि कश्मीर का भविष्य, कश्मीर के लोग ही फैसला कर सकते हैं। और हमने उसको बाद में भी दोहराया है और आज भी यह बिल्कुल हमारे सामने तय शुदा बात है कि जो कश्मीर का फैसला आखिर में होगा वह वहां के लोग ही कर सकते हैं, कोई जबरन, कोई जबरदस्ती फैसला न वहां, न कहीं और होना चाहिए। वहां कश्मीर में एक नई गवर्नमेण्ट पिछले हफ्ते में कायम हुई, और वह जल्दी में कायम हुई, लेकिन जाहिर है, वह गवर्नमेण्ट वहां उसी वक्त तक कायम रह सकती है, जब तक कि वह कश्मीर के लोगों की नुमायन्दगी करे। यानी जो इस वक्त वहां एक चुनी हुई विधान सभा है, अगर वह उसको स्वीकार करती है तो ठीक है नहीं करती, तो कोई दूसरी गवर्नमेण्ट वहां की कांस्टीट्यूएण्ट असेम्बली बनाएगी। हमारे जो सिद्धान्त हिन्दुस्तान के लिए रहे, वे हिन्दुस्तान के हरेक हिस्से के लिए हैं, वही कश्मीर के लिए भी हैं। तो यह वाकया हुआ कश्मीर में, जो कुछ हुआ उसमें मैं समझ सकता हूं कि आपको या औरों को उससे यकायक कुछ ताज्जुब हो, कुछ आश्चर्य हो, क्योंकि आपको तो इसकी पुरानी कहानी बहुत हद तक मालूम नहीं। लेकिन किस हद तक बात बढ़ाई गई और गलत बातें बताई गईं और मुल्कों में, खासकर हमारे पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान में और इन बातों पर वहां एक अजीब परेशानी, एक अजीब नाराजगी और एक इजहारे-राय हुआ है, जिसका असलियत में कोई ताल्लुक नहीं। खैर मैं यहां खास किसी की भी नुक्ताचीनी करने खड़ा नहीं हुआ, लेकिन अपने रंज का इजहार करता हूं, अगर हम इस तरह जल्दी से उखड़ जाएं, इस तरह से घबरा जाएं या परेशान हो जाएं, तो कोई बड़े सवाल हल नहीं होते। समझ में नहीं आते। मैं आपको आगाह करना चाहता हूं, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, हमारे सामने हजारों बड़े-बड़े सवाल आएंगे, दुनिया के सामने आएंगे और उस वक्त आपका और हमारा और हमारे मुल्क का इम्तहान होगा कि हम एक शान्ति से, सुकून से, इतमीनान से, उन पर विचार करते हैं या घबराए हुए, परेशान हुए, डरे हुए इधर-उधर भागते हैं। इस तरह से हर कौम के इम्तहान होते हैं और जितना ज्यादा मुश्किल सवाल हो उतना ही ज्यादा दिमाग ठंडा होना चाहिए, उतना ही ज्यादा हमें शान्ति से, सुकून से काम करना चाहिए। कश्मीर पर जब हमने यह बुनियादी उसूल मुकर्रर कर दिए कि कश्मीर के बारे में कश्मीर के लोग तय करेंगे, तो उसके बाद फिर बहस किस बात की? हां, बातें हो सकती हैं, कि किस तरीके से हों, रास्ता क्या हो? पर एक उसूल की बहस तो नहीं है। शुरू से जब से यह कश्मीर का मामला हमारे सामने आया, हमने यही बात कही, और दूसरी बात यह कही कि हिन्दुस्तान में कश्मीर की एक खास जगह है। हिन्दुस्तान के खानदान में कश्मीर आया, खुशी की बात है, मुबारक हो

अगर देश के सब लोग उस बोझे को उठाएं, तो देश का बोझा भी हल्का हो जाएगा।

अभी माह से एक हफ्ता हुआ चन्द वाकयात कश्मीर में हुए जो जिनकी वजह से हमारे पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान में काफ़ी परेशानी हुई है। मैं आपसे उन वाकयात के बारे में ज्यादा नहीं कहना चाहता क्योंकि यह मौका नहीं लेकिन इतना मैं आपसे कहना चाहता हूं कि आप बाद आगाह हो जाएं, गलत खबरों को न मानें गलत अफवाहों को न सुनें। कितनी गलत बातें फैलती हैं। जब मैं इन पिछले चन्द दिनों के पाकिस्तान के अखबारों को पढ़ता हूं तो मैं हैरान रह जाता हूं कि कश्मीर के बारे में उनमें कैसी गलत खबरें छपी हैं कि हमारी फ़ौजों ने वहां क्या-क्या किया क्या नहीं किया। मैं आपसे कहता हूं दावे से कहता हूं जान कर कहता हूं कि हमारी फ़ौजों ने वहां कोई हिस्सा इस वाकया में नहीं लिया। फिर भला इसके माने क्या कि इस तरह से यह झूठ फैलाया जाए। खाली पाकिस्तान में ही नहीं लेकिन बाहर के अखबारनवीसों में और मुल्कों में भी इस बात को कहा। इस तरह से बामकसद के लिए गलत बातें फैलानी देना जाता है। बामकसद के लिए लोगों को एक इश्तयाल देना और भड़काना ताकि मुल्कों में रंजिश पैदा हो।

इस वक्त बाज बातें जो कश्मीर में हुईं मुझे उनका रंज है क्योंकि एक पुराने हमसफर और साथी से जब कुछ नाइत्तफ़ाकी हो रंज की बात है और मैं आपसे कहूंगा ऐसे मौके पर किसी को बुराभला कहना अच्छा नहीं है, दुरुस्त नहीं है। क्योंकि अपने एक पुराने साथी को बुरा कहना वह घूम कर अपने ऊपर आ जाता है। ऐसी बात से रंज होता है लेकिन कभी-कभी कितना ही रंज क्यों न हो अपने कर्तव्य को अपने फ़र्ज़ को पूरा करना होता है अदा करना होता है। लेकिन अगर ऐसा करें भी तो वह शान से सही रास्ते पर चल कर करें गलत रास्तों से नहीं और हमेशा उन उसूलों को याद रख कर। मैंने आपसे कहा अक्सर कई ऐसी बातें कश्मीर में हुईं जिनसे तकलीफ़ हुई। उसके पीछे भी एक कहानी है और उसके पीछे वे भी वाकयात हैं जिनने किसी कदर कश्मीर के लोगों को भड़काया। साम्प्रदायिकता के फ़िरकापरस्ती के वे वाकयात जो कुछ आपके दिल्ली शहर में हुए, वे वाकयात जो कुछ पंजाब में तथा कुछ और जगह भी हुए। एक अजीब तमाशा था। यहां जले व एक बात हासिल करने और उसका बिलकुल उलटा असर पैदा हुआ। तो इसमें आप देखेंगे कि गलत रास्ते पर चल कर, गलत नतीजा होता है चाहे आपकी नीयत कुछ हो चाहे आप कहीं जाना चाहें।

और, कश्मीर की बात मैं आपसे कह रहा था और उसे फिर से दोहराना चाहता हूं कि यह आज नहीं कई बरस हुए, लगभग छः बरस हुए, जब

मैं चाहता हू कि हम और आप मिल कर और सारा मुल्क इस वक्त आज के दिन इन बड़े उसलो को, सिद्धान्त को याद रखें। महात्मा जी की याद करें, अपनी कामयाबिया जो हुई है उनको सोचें, लेकिन खासकर जो हमारी नाकामयाबी हुई है, जहा हम इन पिछले पाच-छ बरस में फिसले हैं, उन्हें याद करें। क्योकि उनसे हमें सबक सीखना है और इस प्यारे झण्डे के नीचे हम फिर से इकरार करें कि हम हिन्दुस्तान की, भारत की खिदमत करेंगे, सेवा करेंगे, उसकी एकता बढा कर, उसमें मेल बढा कर, उसमें जो अलग-अलग धर्म-मजहब है, उनमें एकता कर के, मेल पैदा करके क्योकि हिन्दुस्तान में सब बराबर के हकदार है, देश में से प्रान्तीयता को निकाल कर, और जो जो दीवारें हैं जातीयता या प्रान्तीयता की, उनको हटा कर, देश को मजबूत करेंगे, और अपनी ताकत उसको बनाने में, न कि एक-दूसरे को बिगाडने में लगाएगे। दुनिया में भी अमन बनाए रखने की कोशिश करेंगे। किसी से हमें लड़ना नही है। औरो से हम दोस्ती करेंगे।

एक लड़ाई हमें लड़नी है और उसको हम सब मिल कर और दिल लगा कर लड़ेंगे, और वह लड़ाई है हिन्दुस्तान की गरीबी से। गरीबी को यहा से जड से निकालना है। यह लम्बी लडाई है। काफी मेहनत करनी है। उसमें काफी पसीना बहेगा, लेकिन वह एक माकूल चीज है, जिससे कि हम हिन्दुस्तान के करोडो आदमियो को ऊचा करें, उनको उठाए, उनको मुसीबतो को दूर करें। यह बडा काम है और हमारी अगली मजिल है। और जब तक हम वहा पहुचते नही, उस वक्त तक हमें बढते जाना है। इन उसूलो को आप याद रखें, और आप और हम और आगे बढे, मुल्क को मजिल एक के बाद दूसरी आती है, कभी खतम नही होती, क्योकि केवल देश अमर होता है, हम और आप तो आते है और जाते हैं। लेकिन भारत तो अमर है और खाली यह हमारी ख्वाहिश है कि हमारे और आपके जमाने में भारत आगे बढे। हम भी कुछ उसकी खिदमत करें, उसको बढाए और हमारे बच्चे और बच्चो के बच्चे आए, वे भी इस जमाने को कुछ याद रखें, जब भारत बहुत दिनो बाद आजाद हुआ, और उसने बडे परिश्रम से, कोशिश से नए भारत को बनाया, जिसमें वे रहेंगे। जय हिन्द।

मेरे साथ, आप भी तीन बार जय हिन्द कहें, सब मिल कर, जोर से—

जय हिन्द!
जय हिन्द!
जय हिन्द!

1953

लेकिन यहां उसकी जगह खास रखी गई औरों की नहीं क्योंकि जुगराफ़िया ने और वाकयात ने एक खास जगह उसे दी। जो लोग नासमझी में शोर-गुल मचाएं कि अन्य राज्यों की तरह कश्मीर का भी स्थान होना चाहिए, वे न वाकयात को समझते हैं और न हालात को। और उन्होंने देखा कि उसका नतीजा उलटा हुआ।

पाकिस्तान के बारे में मैंने अभी आपसे कहा। चन्द रोज हुए मैं पाकिस्तान उनकी दावत पर गया था और वहां की हुकूमत ने और वहां की जनता ने बहुत मुहब्बत से मेरा स्वागत किया। मेरे दिल पर उसका जबरदस्त असर हुआ खासकर जनता की मुहब्बत का। करीब वही हाल था जैसे हिन्दुस्तान के हिस्सों में आप हमारे भाई और बहन और बच्चे मुझसे प्यार और मुहब्बत करते हैं वही नक्शा मैंने कराची शहर में देखा। फिर मैंने महसूस किया कि आखिर मैं किस गैर मुल्क में आया? आखिर इसमें और हमारे मुल्क में कौन बड़ा फर्क है? बहुत सारे वही पुराने चेहरे, बहुत सारे पुराने दोस्त पुराने साथी यहां से भागे हुए बहुत सारे लोग जिनको वहां देखा था। तस्वीर वही थी कुछ जरा फर्क था। गरज कि मैंने महसूस नहीं किया कि मैं कोई गैर मुल्क में हूं। एक यह चीज भी यह तस्वीर भी और फिर थोड़े दिन बाद मुमकिन है गलतफ़हमी से लोगों को जोश आए और तस्वीर बदले। तो इससे आप देख सकते हैं कि कैसे लोगों का ख्याल इस बात पर मुनहसिर होता है कि उनके साथ कैसा सलूक किया जाए। मैं चाहता हूं कि हम और आप अपने उसूल से अपने सिद्धान्त से नहीं हिलें कि हम सही रास्ते पर चलेंगे हम और मुल्कों से दोस्ती करेंगे हम पाकिस्तान से भी दोस्ती के रास्ते पर चलेंगे। चाहे वहां कुछ गलतफ़हमी हो जोश भी चढ़े वह भी ठंडा हो जाएगा अगर हम सही रास्ते पर चलेंगे। क्योंकि आखिर में हमारे मुल्क को या पाकिस्तान को किसी को भी कुछ भी किसी तरह का भी फ़ायदा नहीं हो सकता है यदि हम आपस में हर वक्त एक कशमकश में रहें, और एक-दूसरे से नाराज हों नफ़रत करें? नफ़रत का नतीजा अच्छा नहीं है डर का नतीजा अच्छा नहीं। डर को अपना साथी न बनाइए, गलत साथी है यह। कुछ दिनों में कुछ दिनों में क्या कल ही हमारी दावत पर पाकिस्तान के वजीरेआज़म प्रधान मन्त्री दिल्ली शहर आ रहे हैं, जैसे कि मैं उनकी दावत पर कराची गया था। वह आते हैं तो मैं चाहता हूं कि दिल्ली के रहने वाले इस पुराने तारीखी शहर के रहने वाले शान से उनका इस्तकबाल करें, उनका स्वागत करें, दिखाएं कि हमारा दिल बड़ा है और उसमें बहुत बातें हैं और उसमें पाकिस्तान से भी दोस्ती है। मुमकिन है उनके यहां रहने के दौरान इसी खास सिले में दिल्ली के बाशिन्दगान की तरफ से उनका इस्तकबाल हो। और जगह भी होगा।

का इरादा है। भारत जो इरादा करता है, भारत के करोडो आदमी उस इरादे को पूरा करेंगे। लेकिन जब मैंने आपसे कहा कि हिन्दुस्तान की आज़ादी कही रुकती नही है, बढती है। आज़ादी खाली सियासी आज़ादी नही, खाली राजनीतिक आज़ादी नही। स्वराज्य और आज़ादी के माने और भी हैं, सामाजिक हैं, आर्थिक है। अगर देश मे कही गरीबी है, तो वहा तक आजादी नही पहुच, याने उनको आज़ादी नही मिली, जिससे वे गरीबी के फदे में फसे हैं। जो लोग फदे में होते हैं, उनके लिए मानो स्वराज्य नही होता। वैसे वे गरीबी के फदे में हैं। जो लोग गरीबी और दरिद्रता के शिकार हैं, वे पूरे तौर से आज़ाद नही हुए। उनको आज़ाद करना है। इसी तरह अगर हम आपस के झगडो में फसे हुए हैं, आपस में वैर है, बीच मे दीवारें है, हम एक-दूसरे से मिलाकर नही रहते, तब भी हम पूरे तौर से आजाद नही हुए।

अगर हिन्दुस्तान को पूरे तौर से आज़ाद होना है तो हमें बहुत कुछ बाते करनी हैं। हिन्दुस्तान को अपने उन करोडो आदमियो की बेरोज़गारी दूर करनी है, गरीबी दूर करनी है। और याद रखिए हमारे बीच जो दीवारें है, मज़हब के नाम से, जाति के नाम से या किसी प्रान्त-सूबे या प्रदेश के नाम से, उन्हें भी दूर करना है। और जो एक-दूसरे के खिलाफ हमे जोश चढता है, उससे ज़ाहिर होता है कि हमारे दिल और दिमाग पूरे तौर से आजाद नही हुए हैं, चाहे ऊपर से नक्शा कितना ही बदल जाए। इसी तरह की कई बातो से हमारी तगखयाली ज़ाहिर होती है। अगर हिन्दुस्तान के किसी गाव मे किसी हिन्दुस्तानी को, चाहे वह किसी भी जाति का या अगर उसको हम चमार कहे, हरिजन कहें, अगर उसको खाने-पीने में, रहने-चलने में, वहा कोई रुकावट है तो वह गाव अभी आज़ाद नही है, गिरा हुआ है।

हमें इस देश के एक-एक आदमी को आज़ाद करना है। देश की आज़ादी कुछ लोगो की खुशहाली से नही देखी जाती। देश की आज़ादी आम लोगो के रहन-सहन, आम लोगो को तरक्की का, बढने का, क्या मौका मिलता है, आम लोगो को क्या तकलीफ और क्या आराम है, इन बातो से देखी जाती हैं। तो हम अभी आज़ादी के रास्ते पर हैं, पर यह न समझिए कि मजिल पूरी हो गई। और वह मजिल एक ज़िन्दादिल देश के लिए जो आगे बढता जाता है, अभी पूरी नहीं हुई। हम तरक्की करें, हमें आगे बढना है, दुनिया को बढाना है। आजकल हमारे देश में परिवर्तन हुआ, हमारा और आपका पुनर्जीवन हुआ। लेकिन इसी तरह दुनिया में इनकलाब होता रहता है। ऊच-नीच, तरह-तरह की चीजें है बदल जाती है। इन वर्षो में हमारे इस महान कांटीनेंट मे यानी एशिया में क्या-क्या हुआ, क्या-क्या हो रहा है? उसके ऊपर कई सौ वर्ष दबाव रहा, कई सौ बरस उसके ऊपर औरो की हुकूमत थी, वह हटी और कुछ रह भी गई।

स्वराज्य आखिरी मंजिल नहीं

मुबारक हो। आपको आज भारत की सालगिरह को आज सात वर्ष हुए। इस मास भारत को पैदा हुए, हमारी आजादी को सात वर्ष हुए। हम हर साल यहां लाल किले की दीवारों के नीचे इस वर्षगांठ को मनाते हैं। क्योंकि यह साल गिरह हम सबों की है, करोड़ों आदमियों की है। क्योंकि भारत में एक नई जिन्दगी शुरू हुई। देश ने नई करवट ली और भारत की तारीख में भी एक नया अध्याय शुरू हुआ। नया भारत सात वर्ष का एक बच्चा है। इन सात वर्षों में उसने क्या-क्या किया, किस तरह से बढ़ा, किधर देखता है, कहां जाएगा? ये बड़े सवाल आपके सामने हैं। अगर आप अपने दिल को टटोलें तो आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान में इस वक्त एक नई जिन्दगी है, आपके ऊपर एक नया भरोसा है। और हिन्दुस्तान के हजारों और लाखों देहातों में बिजली की तरह एक नया असर पैदा हुआ है। पुराने थके हुए लोग जागे हैं, जो पुराने थे, जो काहिल थे, वे भी काम कर रहे हैं और उनका शरीर और दिलो-दिमाग एक नई तरफ मुड़े हैं। तो यह आजकल के भारत का वायुमंडल है।

मैं जानता हूं और आप जानते हैं कि हमारी काफी दिक्कतें हैं। हमारी काफी परेशानियां हैं। हमारे काफी बहन-भाई मुसीबत में हैं। लेकिन हम जानते हैं कि हम-आप सब मिल कर इस बड़े सफर पर आगे बढ़ रहे हैं। सात वर्ष हुए हमारे मुल्क में आजादी आई। लेकिन स्वराज्य के माने क्या? स्वराज्य की यात्रा सफर की आखिरी मंजिल नहीं है। स्वराज्य के आने पर हमें खामोश नहीं बैठना चाहिए। स्वराज्य आने से, मुल्क आजाद होने से कोई जिम्मेदारी खतम नहीं होती। यह तो एक मुल्क की तरक्की का पहला कदम होता है। एक नई यात्रा का कदम होता है। किसी मुल्क की आजादी स्वराज्य से कभी पूरी नहीं होती है। और जो एक जिन्दादिल कौम होती है वह रुकती नहीं है। वह आगे बढ़ती जाती है। इसलिए हमारा मुल्क जो आजाद हुआ पूरे तौर से सियासी तौर से सिवाय कुछ छोटे टुकड़ों के। ये छोटे टुकड़े कभी-कभी दर्द पैदा कर देते हैं। और कभी-कभी हमें याद दिलाते हैं उस पुराने जमाने की जब कि बड़ा टुकड़ा और गैरों के अधीन था। उन छोटे टुकड़ों से कुछ आपस की कशमकश और फिसाद की आवाजें आती हैं। लेकिन हम सियासी तौर से आजाद हुए और जो छोटे टुकड़े जो-तहां रह गए हैं वे भी बहरहाल आजाद होंगे। क्योंकि यह हिन्दुस्तान

अहिंसा पर चलने वाला आदमी हूं, या आप हैं। हम सब कमजोर हैं, फिसल जाते हैं, गिरते हैं, पूरे तौर से इस रास्ते पर नहीं चल सकते। लेकिन यह हमें याद रखना है, हम कमजोर हैं, पर वे सिद्धान्त जबरदस्त हैं। और हिम्मत से, बहादुरी से जिस दर्जे तक हम उस पर रहेंगे—उस पर रहना बुजदिलों का काम नहीं है—उसी तरह, उसी दर्जे तक हमारा मुल्क मजबूत होगा, उसी दर्जे तक हमारा मुल्क इस दुनिया की खिदमत करेगा। हमने उस उसूल को दुनिया में कुछ हद तक चलाने की कोशिश की। क्योंकि जब से हम आजाद हुए—हम-आप चाहें या न चाहें, पर हम हिन्दुस्तान के रहने वाले, दुनिया के इस बड़े थियेटर के खिलाड़ी होंगे—दुनिया की निगाहें हमारे ऊपर, हम लाखों करोड़ों आदमियों के ऊपर हैं कि यह पुरानी कौम हिन्दुस्तान, जिसने बहुत ऊंच और नीच देखी है, और जो पिछले तीन सौ वर्ष से गुलाम रही थी, फिर से आजाद हुई है। आखिर इसने दो सौ, ढाई सौ वर्ष की गुलामी में क्या सीखा ? अब यह क्या करेगी ? किधर झुकेगी? क्योंकि आखिर जिधर करीब चालीस करोड़ आदमी झुकते हैं, तो उसका असर दुनिया पर पड़ता है। आखिर हम दुनिया की आबादी के पांचवें हिस्से हैं। चुनांचे दुनिया ने हमारी तरफ देखा और हमने दुनिया की कुछ खिदमत करने की कोशिश की। दुनिया की पहली खिदमत तो यह कि हम अपने को सम्भालें, अपनी खिदमत करें, मुल्क को मजबूत करें, मुल्क को खुशहाल करें। दुनिया की दूसरी खिदमत यह कि जहां तक हम कर सकते हैं, लड़ाई वगैरह को रोकने के लिए हम दुनिया में अमन की तरफ अपना बोझा डालें। जाहिर है हमारी ताकत लम्बी-चौड़ी नहीं है। बड़े-बड़े मुल्क हैं, जिनकी बड़ी ताकतें हैं, बड़ी फौजें हैं, बेशुमार फौजें हैं, हवाई जहाज हैं। उनके देश में बेशुमार पैसा है, उनके खजाने में सोना-चांदी भरा है। उनसे हमारा क्या मुकाबला ? हम इस मैदान में नए आए हैं। हमें तो अपने घर को सम्भालने की फिक्र है कि उसके लिए हम क्या करें। लेकिन हमारे पीछे एक सिद्धान्त था, एक दिमाग था, एक कोशिश थी और उसके पीछे एक साया था, एक बड़े आदमी का, जिसका नाम गांधी है। तो उस पर चलते हुए हम कभी-कभी लड़खड़ाते हुए ठोकर खाकर गिर पड़ते थे। फिर भी हम आगे बढ़े, उस सिद्धान्त को आगे रख के, उस उसूल को आगे रख के और वगैर किसी मुल्क से लड़ाई लड़ें, हमने उसको पेश किया।

आप जानते हैं कि इन सालों में कुछ काम हुआ है। हिन्दुस्तान की याद कुछ और मुल्कों ने, जो आपस में लड़ रहे थे, की। और ये लड़ने वाले मुल्क आपस में किसी बात पर इत्तफाक नहीं करते थे, लेकिन एक बात पर इन्होंने इत्तफाक किया कि हिन्दुस्तान से कहें कि आप उनकी खिदमत करें।

जरा आप मुकाबला करें इस बात का हिन्दुस्तान से। हिन्दुस्तान को आजाद हुए सात वर्ष हुए। और हमारे पड़ोसी देश बर्मा में समझौते व दोस्ती से यह मसला हल हुआ। वे मुल्क आजाद हुए। जो कौम वहां हुकूमत करती थी वह कौम वहां से हटी उसकी हुकूमत हटी। हमारी दुश्मनी न कोई अंग्रेजों से थी न उनकी फौज से और न उनके मुल्क से। लेकिन हमारी अदावत उनकी हुकूमत से थी। जब वह इस मुल्क से यहां से हटी, तो हमारी उनसे कोई लड़ाई नहीं रही बल्कि उनसे दोस्ती हुई। हिन्दुस्तान या बर्मा की तरह एशिया के और हिस्सों में बाज मुल्कों में विदेशी हुकूमत थी। लेकिन उस वक्त फिर शान्तिमय की बात नहीं हुई कि वहां भी समझौते का यही कदम उठाया जाता। नतीजा क्या हुआ सात वर्ष की लड़ाई सात वर्ष तक लाखों करोड़ों आदमियों की तबाही। एशिया के यूरोप के मुल्क तबाह हुए और दुनिया एक बड़ी भारी लड़ाई के दरवाजे तक पहुंच गई।

देखिए, किस तरह से क्या-क्या खराबियां पैदा होती हैं। मगर जो ऐसी बात यानी लड़ाई होती है उसको रोकने की कोशिश की जाए। एक जगह हिन्दुस्तान की वजह से समझ से यह नतीजा मंजूर किया गया और हिन्दुस्तान बढ़ा और दुनिया बढ़ी। बर्मा आजाद हुआ। दुनिया के अमन में बर्मा ने मदद की। और मुल्क आजाद हुए। कुछ रुकावटें पड़ीं। बाद देखिए यहां इंडोनेशिया में झगड़े हुए, वे हटे और जगह नहीं हटे। उस वक्त उन्होंने कितनी मुसीबत उठाई। क्योंकि बात यह है कि वह जमाना गुजर गया कि इस दुनिया में कहीं भी एक मुल्क जबरदस्ती दूसरे मुल्क पर हुकूमत करे। उसको अच्छा कहें या बुरा पर वह गुजर गया। जो लोग उसमें कायम रहना चाहते हैं, वे लोग दुनिया को नहीं समझते। और न दिलो-दिमाग को समझते हैं। इसलिए इन बातों को हमें हल करना है। आजकल हमारे सामने ये जो सवाल उठ रहे हैं, पुराने हैं। आप जो यह कहें कि हिन्दुस्तान के ये टुकड़े छोटे हैं, जब पांव के बराबर हैं लेकिन शरीर के हिस्से में छोटी सी दुखती चाव भी तकलीफ देती है। तो यह मसला बहुत दिन पहले हल हो जाना चाहिए था। लेकिन हमने शान्ति से उस पर अमल किया। अपनी कोशिश की कि हम मिल कर उसे तय करें। एक जगह मुझे ऐसा लगा है कि फैसला जल्दी हो जाएगा पर दूसरी तरफ और दिक्कतें पेश होती हैं। और, जैसा कि आप जानते हैं ये मसले यकीनन हल होंगे। लेकिन हमारे कुछ उसूल हैं कुछ सिद्धान्त हैं उन पर जमे रह कर हम जल्दी से आजाद हुए। और आपको ध्यान में रखना है कि हमने अपनी आजादी को कायम रखा है। आप जानते हैं कि आपस में मिल कर अहिंसा से शान्तिमय तरीकों से काम करना है। मैं नहीं कहता कि मैं पूरे तौर पर

कि हिन्दुस्तान की जड है आपस मे इत्तिहाद और हिन्दुस्तान मे जो मुखतलिफ मजहब-धर्म हैं, जातिया हैं उनसे मिल के रहना, उनको एक-दूसरे की इज्जत करना है, एक दूसरे का लिहाज करना है।

हमारे मुल्क में जाति-भेद है। अलग-अलग जातिया है। कोई अपने को ऊचा समझता है कोई नीची समझी जाती है। इस चीज ने हमारे देश में काफी दीवारें पैदा की है, फूट पैदा की है, हमे बदनाम और कमजोर किया है, इस चीज का हमें मुकाबला करना है। जोरो से मुकाबला करना है, पूरे तौर से करना है, जब तक कि हम इसका हिन्दुस्तान से पूरा खातमा नही कर देते। हमें इसके साथ कोई रहम नही करना है। पुराने जमाने में उसकी जो जगह थी, वह थी, पर आजकल के जमाने में उसकी कोई जगह नही है। और जो लोग जातिवाद को जरा भी रहम के साथ देखते है, जरा भी उससे घबराते है, जरा भी उससे डरते हैं कि भाई, कही लोग हमसे नाराज न हो जाए, वे कमजोर है, बुजदिल है। और वे हिन्दुस्तान के पैगाम को नही समझते कि आजकल हिन्दुस्तान का पैगाम यह है कि हिन्दुस्तान मे हरेक आदमी को सियासी तौर से बराबर होना है, सामाजिक तौर से बराबर होना है, और जहा तक मुमकिन हो आर्थिक तौर से बराबर होना है। और यह ऊच-नीच की निकम्मी चीज चाहे वह पैसो की हो या सामाजिक रस्मो-रिवाजो की हो, उसे मिटाना है। हम इस ढग से इस मुल्क को मजबूत बनाए, इस ढग से इस मुल्क को आगे ले जाए और इस महान शक्ति को लेकर हम अपने मुल्क की खिदमत करें और दुनिया की भी खिदमत करें।

अपने मुल्क की खिदमत यही है कि इस नए भारत को बनाए। नया भारत बन रहा है। आपने इस साल में यह देखा कि पिछले सालो के काम का कैसे हलके-हलके असर हुआ। आपने देखा कि हमारी बडी दिक्कतें थी खाने के मामले में, वे रफा हुईं। खाने के सामान के दाम घटे और कही ज्यादा पैदावार हुई। आपने देखा कि कैसे हमारे कारखानो की पैदावार बढती जाती है। क्योंकि आखिर में जब हिन्दुस्तान की गरीबी दूर होगी तो इसी तरह से हिन्दुस्तान मे दौलत पैदा होगी। दौलत के माने सोना-चादी नहीं। यह सोना-चादी साहूकार, व्यापारियो का खेल है। दौलत वह है जो मुल्क में पैदा होती है—जमीन से, कारखाने से, और घरेलू उद्योग-धन्धो मे, कारीगरी से, गरज कि इनसान की मेहनत से पैदा होती है। इस तरह से दौलत हमें पैदा करनी है। दौलत अधिक-से-अधिक जमीन से पैदा होती है। उसने खाने के मसले को हल किया। कारखानो से दौलत बढती जाती है। उससे नए-नए कारखाने होगे।

आपने दरियाओ की बडी-बडी योजनाओ के बारे मे देखा-सुना होगा,

आपस में लड़ने वाले हम दोनों देशों ने हम पर एक भरोसा किया। हिन्दुस्तान पर भरोसा किया और हमारे मुल्क की फ़ौज इस मुल्क से बाहर गई। हमारे मुल्क की फ़ौज पुराने ज़माने में भी बहुत दफ़ा बाहर गई थी। लेकिन कैसे और किस काम को? एक दूसरे मुल्क की लड़ाइयाँ लड़ने को। लेकिन वह ज़माना गया। हम दूसरे मुल्कों से किसी सूरत में लड़ना नहीं चाहते जब तक कि मजबूर न हो जाएं। तो हमारी फ़ौज उस देश से लड़ने नहीं गई। लेकिन हमारे इस सुन्दर झंडे को लेकर शान्ति के नाम से अमन के नाम से गई। वह खिदमत करने न कि उनसे लड़ने कोरिया गई, और आप जानते हैं कि एक पैग़ाम फिर हमारे पास आया है। और मुल्कों की बड़े-बड़े मुल्कों की फिर से एक दरख्वास्त आई है कि हम वहां इण्डोचाइना में हिन्दचीन में जाकर उनकी एक नई खिदमत करें। फिर से हमने उसको कबूल किया है। हालांकि बड़ा काम है बड़ा बोझा है। शायद उसमें काफ़ी परेशानी हो लेकिन उससे हम हट नहीं सकते। क्योंकि हमने खिदमत और दुनिया के अमन के लिए उसको स्वीकार किया और इस वक्त वहां हमारे साथ कैनेडा के और पोलैण्ड के नुमाइन्दे भी हैं। वहां हमारे लोग गए हैं और हम तीनों ने मिल कर उस ज़िम्मेदारी को बोझा है। थोड़े दिनों में हमारे और लोगों को भी वहां जाना पड़ेगा। कुछ फ़ौज के कुछ और बहुत सारे अफ़सर इस काम में जायेंगे। अच्छा काम है।

तो आप देखें कि हिन्दुस्तान का नाम दुनिया में इस वक्त किस तरह के कामों से बढ़ा है। दोस्ती से अमन से जोड़ने के कामों से बिगाड़ने के कामों से नहीं लड़ाई लड़ने से नहीं। मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान का नाम और हिन्दुस्तान के रहने वालों का नाम हमेशा इन बातों से बढ़े— दोस्ती से अमन से एक-दूसरे से मुहब्बत करने से। दुनिया में तो हम यह नाम हासिल करेंगे। पर अपने घर में हम क्या करें इसे देखें। हमारी ताक़त या कमज़ोरी हमारे घर पर निर्भर करती है। अगर हम घर वाली देश में उन उसूलों पर चलते हैं तो दुनिया में हमारी शान है। अगर ऐसा नहीं करते हैं तो हमारी बात फ़िज़ूल है। इसलिए वही सिद्धान्त हमें घर में अपनाना है। आपस में इत्तिहाद से आपस में मेल से आपस में चाहे जाति धर्म-मज़हब हों उनसे मिल कर चलना है। अगर कोई मज़हब या धर्म वाला यह समझता है कि हिन्दुस्तान पर उसी का हक़ है, औरों का नहीं तो उसने हिन्दुस्तान को समझा नहीं। वह हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता कौमियत को समझा नहीं है हिन्दुस्तान की आज़ादी को नहीं समझा है बल्कि वह हिन्दुस्तान की आज़ादी का एक माने में दुश्मन हो जाता है, उस आज़ादी को धक्का लगाता है, उस आज़ादी के टुकड़े बिखेरता है क्यों-

नहीं ? लेकिन गोग्रा हमारा और पोर्तगीज का इम्तहान चाहे हो या न हो, पर गोग्रा इस वक्त दुनिया के हर मुल्क का इम्तहान है । मैं चाहता हूं कि आप इस बात को समझें। मैं यह इस माने में कहता हूं कि वह आजमाइश का एक नमूना हो गया है कि दुनिया की यह चीज कि एक मुल्क की दूसरे पर हुकूमत, जिसको कालोनियलिज्म कहते हैं, या जिस नाम से चाहे आप उसे पुकारें, उसे लेकर दुनिया के मुल्क वाले कुछ इस तरफ हैं, कुछ उस तरफ हैं। लोग इस बात को समझते हैं कि नहीं कि आखिर गोग्रा हिन्दुस्तान में आ-कर हिन्दुस्तान की किस्मत को नहीं पलट देगा। आखिर गोग्रा पुर्तगाल को मालामाल नहीं कर देगा। लेकिन वह एक पुरानी निशानी हो गई है, एक पुराने फोड़े की निशानी हो गई है, यानी कि एक मुल्क का दूसरे मुल्क पर हुकूमत करना । और गोग्रा हिन्दुस्तान में ऐसी सबसे पुरानी निशानी है। और अगर कोई यह कहे कि पुरानी निशानी है, पुराना दर्द है, फोड़ा है, इसलिए उसे हम बर्दाश्त करें, तो उन्होंने न हमारे दिमाग को समझा है और न एशिया के दिमाग को समझा है। हम नहीं चाहते कि इस मामले में कोई मुल्क आकर दखल दे या मदद करे। लेकिन हम उनके दिमाग को टटोलना चाहते हैं कि वे किधर सोचते हैं, उनकी आवाज क्या है, किधर उनका झुकाव है, किधर उनकी सलाह है, यह देखना चाहते हैं। क्योंकि यह एक अजीब कसौटी है उनको नापने की। ऐसे हुकूमत के मामलों में अब तक उनके दिमाग पुराने जमाने की तरह सोचते हैं। या यह समझिए कि नई दुनिया है और नई दुनिया की रोशनी क्या कुछ उनके दिमाग में गई है ? अगर पुराने जमाने के दिमाग उनके हैं तो यकीनन वे पुरानी ठोकरें खाकर फिर गिरेंगे, कला-बाजियां खाएंगे।

अभी आपको एक मिसाल दी थी कि एशिया में हिन्दुस्तान की आजादी मंजूर हुई । हिन्दुस्तान आगे बढ़ा, दुनिया ने उससे फायदा उठाया। बर्मा में और एशिया के बाज हिस्सों में वह बात नहीं हुई। वर्षों से लड़ाई हुई, जंग हुई, तबाही हुई । आप देखते नहीं हैं कि जो इस वक्त दुनिया की रफ्तार है, उसको रोकने में कहीं ये बड़े-बड़े सैलाब रुकते हैं ? ऐसे सैलाब रोकने की कोशिश में तबाही आती है। इसलिए मैंने कहा, गोग्रा भी एक इम्तहान हो सकता है कि मुल्क क्या सोचता है, क्या करता है, किधर झुकता है, क्या सलाह देता है ? अगर गलत सलाह देता है तो झगड़ा बढ़ता है, सही सलाह देता है तो अमन से वे सवाल हल होंगे। फिर मैं आपको याद दिलाऊंगा कि हिन्दुस्तान इस वक्त एक बड़े सफर पर है, यात्रा पर है, आगे बढ़ रहा है । हमारा यह बड़ा काम है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई या यहूदी और जैन और कितने और मजहब और कितनी जातियाँ हैं

चाहे वह मारवाड़-बंगाल हो चाहे कोई और हो। ये भी चालने पर आ रही हैं और उनसे जनता का लाभ होगा फायदा होगा। इस तरह 36 करोड़ लोग आगे बढ़ जाते हैं। आप देहातों में जाइए। कैसी तरह-तरह की योजनाएं वहां आजकल चल रही हैं। उन्हें दूसरे-दूसरे गांवों में फैलाना है और धीरे-धीरे ये हिन्दुस्तान के पालसियों में फैलती जाएंगी और हर साल कई करोड़ों लाखों में फैलाने का अभी तय किया है इरादा है कि इन आगामी सात वर्षों के अन्दर हिन्दुस्तान का एक-एक गांव इस योजना में आ जाए। हिन्दुस्तान के छः लाख गांव हैं। यह कोई छोटा इरादा नहीं है और आखिर हमारी कौम भी तो छोटी नहीं है। हमें तो इरादा करना है बड़े कामों को करना है। हमें फतह करनी है। लेकिन हमारी जीत जो होगी वह किसी और के खिलाफ नहीं किसी और को दबाने को नहीं बल्कि जीत में हम औरों को भी मिलाना चाहते हैं। यही हमारे हिन्दुस्तान की अन्दर की नीति है। यही हमारे हिन्दुस्तान की बाहर की नीति है। क्या बात है कि इस वक्त हिन्दुस्तान उन चन्द मुल्कों में है जिनके दरवाजे खुले हैं और हर मुल्क के लोगों को आने की दावत है। कोई हमारा दुश्मन नहीं है।

हमारे पाकिस्तान के भाई अक्सर हमसे नाराज होते हैं नाखुश होते हैं। तरह-तरह के सवाल उनके और हमारे बीच में हैं। लेकिन आप जानते हैं मैंने यहां से बराबर यही कहा कि हमारे दिल में कोई लड़ाई की ख्वाहिश नहीं। हम उनसे मुहब्बत करना चाहते हैं उनसे सहयोग करना चाहते हैं। क्योंकि हम समझते हैं कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान जो कि हमारा पड़ोसी मुल्क है उनको मिल कर चलना है। एक-दूसरे के नुकसान में किसी को फायदा नहीं हो सकता। तो इस ख्याल से हमें चलना है। इसके यह माने नहीं कि जिस बात को हम जरूरी समझें जिस बात को हम अपनी समझें जो एक इज्जत की बात है उसे हम छोड़ दें। उस पर हमें मजबूती से कायम रहना है। लेकिन मजबूती से कायम रहने पर हमें याद रखना है कि हमारा रास्ता शान्ति का है सिद्धान्त का है लड़ाई का नहीं।

मैंने आपसे अभी जिक्र किया उन मुकामों का जो कि अभी तक हिन्दुस्तान की सर जमीन में आजाद नहीं हुए, उनमें एक गोआ है। यह एक खास तौर से छोटा-सा मुकाम है। जहां तक गोआ का सवाल है वहां भी हमारी नीति शान्ति की है। लेकिन एक बात जो आपसे कहना चाहता हूं गोआ हमारा एक इम्तहान है। अगर आप चाहते हैं तो गोआ को पोर्तगीज का एक इम्तहान कहिए। हालांकि जरा मुश्किल है ऐसा समझना क्योंकि जो मुल्क तीन सौ बरस पुरानी आवाज से बोलता है वह इस बात को समझा कि

हमें शान्ति बनाए रखनी है

आज हम फिर नए भारत, आजाद भारत की सालगिरह पर यहां जमा हुए हैं। नए हिन्द की यह सालगिरह आपको और हमको मुबारक हो। याद है आपको वह दिन, जब कि हम बहुत ऊंचे-नीचे और लम्बे सफर के बाद इस मंजिल पर पहुंचे। कितने लोग उस सफर में ठोकर खाकर गिर गए, फिर उठे, फिर चले। याद है आपको कि हम ख्वाब देखा करते थे, दिल में आरजुएं थी और फिर वह दिन आया जब कि वे ख्वाब और वे आरजुएं पूरी हुईं और हमने आजाद हिन्दुस्तान का आफताब निकलते हुए देखा। आठ बरस हुए यह बात हुई थी और आपने और हमने और सारे हिन्दुस्तान ने खुशी मनाई थी। खुशी मनाई तो थी, लेकिन खुशी मनाते-मनाते आंखों में आंसू भी आ गए थे, क्योंकि कई मुसीबत की बातें हमारे मुल्क और मुल्क की सरहद पर हुईं। हमारे कितने मुसीबतजदा भाई यहां शरणार्थी होकर आए। यहां और पाकिस्तान में दोनों तरफ लोगों को एक मुसीबत का सामना करना पड़ा और उसे हमने बर्दाश्त किया। उन सवालों को भी बहुत कुछ कामयाबी से हल करने की कोशिश की गई और जो कुछ बाकी है, वे भी यकीनन हल होंगे। इस तरह से ये आठ बरस गुजरे, ऊंचे और नीचे। कुछ सोचिए कि आठ बरस हुए, दुनिया की निगाहों में हमारे मुल्क का और हमारा क्या हाल था? और अब आप इस तसवीर को देखें। क्या फर्क है? आजाद हिन्दुस्तान अब तक एक कम उम्र का बच्चा है, हालांकि हमारा मुल्क तो हजारों बरस पुराना है, लेकिन बचपन में ही इसने जो बातें दिखाईं, जो ताकत और आगे बढ़ने की शक्ति दिखाई, वह दुनिया को मालूम है।

तो आज जो हम यहां मिलते हैं तो आठ बरस के उस पिछले जमाने की तरफ देखते हैं और ज्यादातर आगे देखते हैं। क्या हमने किया और क्या हमें करना बाकी है? हमें बाकी तो बहुत कुछ करना है और खास तौर से जो हममें कमजोरियां हैं, उनकी तरफ ध्यान देना है। क्योंकि जितना ही हम अपनी कमजोरियों को देखेंगे यानी गौर करेंगे, उतनी ही हम अपनी ताकत बढ़ाएंगे। उससे मुल्क आगे बढ़ेगा और हमारे देश की जनता का भला होगा। आप दुनिया की तरफ देखें, हमारा हाथ किसी दूसरे देश की तरफ, किसी दूसरे देश के खिलाफ विरोध में नहीं उठा है और मैं उम्मीद करता हूं कि हमारे हाथ कभी किसी दूसरे देश के विरोध में और खिलाफ कभी न उठेंगे।

सब हिन्दुस्तानी हैं और हिन्दुस्तानी की हैसियत से वे आगे बढ़ जाते हैं। मुल्क आगे बढ़ता है। मुल्क खुशहाली की तरफ बढ़ता है। मुल्क से गरीबी निकलती है। कैसे? अपनी मेहनत से। हम तारों की तरफ नहीं देखते कि तारे हमारी मदद करें। हम उनकी मदद नहीं चाहते। हम औरों की मदद नहीं चाहते न तारों की न आसमान की। हमारे बाजू हैं और हमारा दिमाग है, हमारे पैर हैं। इस तरह हम बढ़ते जाते हैं आपस में इत्तिहाद रख कर, आपस में मिल कर। तो हम आपको दावत देते हैं, इस सालगिरह के दिन भी कि सालगिरह आपकी और मेरी सालगिरह है क्योंकि जब मुल्क आज़ाद होता है, तो उसमें रहने वाला हर एक आदमी आज़ाद होता है। उसकी सालगिरह होती है। तो इस आठ वर्ष में हम भारत में नए भारत की वर्षगांठ के दिन आपको निमन्त्रण है, दावत है कि आइए, इस बड़ी यात्रा में भारत के आगे बढ़ने में आप भी शरीक हों और इसमें हम अपनी पूरी शक्ति से काम करें, भारत के शहरों और गांवों को बनाएं।

जय हिन्द!

1954

हमें शान्ति बनाए रखनी है

आज हम फिर नए भारत, आज़ाद भारत की सालगिरह पर यहां जमा हुए हैं। नए हिन्द की यह सालगिरह आपको और हमको मुबारक हो। याद है आपको वह दिन, जब कि हम बहुत ऊंचे-नीचे और लम्बे सफर के बाद इस मंज़िल पर पहुंचे। कितने लोग इस सफर में ठोकर खाकर गिर गए, फिर उठे, फिर चले। याद है आपको कि हम ख्वाब देखा करते थे, दिल में आरज़ुएं थीं और फिर वह दिन आया जब कि वे ख्वाब और वे आरज़ुएं पूरी हुईं और हमने आज़ाद हिन्दुस्तान का आफ़ताब निकलते हुए देखा। आठ बरस हुए यह बात हुई थी और आपने और हमने और सारे हिन्दुस्तान ने खुशी मनाई थी। खुशी मनाई तो थी, लेकिन खुशी मनाते-मनाते आंखों में आंसू भी आ गए थे, क्योंकि कई मुसीबत की बातें हमारे मुल्क और मुल्क की सरहद पर हुईं। हमारे कितने मुसीबतज़दा भाई यहां शरणार्थी होकर आए। यहां और पाकिस्तान में दोनों तरफ लोगों को एक मुसीबत का सामना करना पड़ा और उसे हमने बर्दाश्त किया। उन सवालों को भी बहुत कुछ कामयाबी से हल करने की कोशिश की गई और जो कुछ बाकी है, वे भी यकीनन हल होंगे। इस तरह से ये आठ बरस गुज़रे, ऊंचे और नीचे। कुछ सोचिए कि आठ बरस हुए, दुनिया की निगाहों में हमारे मुल्क का और हमारा क्या हाल था? और अब आप इस तसवीर को देखें। क्या फर्क है? आज़ाद हिन्दुस्तान अब तक एक कम उम्र का बच्चा है, हालांकि हमारा मुल्क तो हज़ारों बरस पुराना है, लेकिन बचपन में ही इसने जो बातें दिखाईं, जो ताकत और आगे बढ़ने की शक्ति दिखाई, वह दुनिया को मालूम है।

तो आज जो हम यहां मिलते हैं तो आठ बरस के उस पिछले ज़माने की तरफ देखते हैं और ज्यादातर आगे देखते हैं। क्या हमने किया और क्या हमें करना बाकी है? हमें बाकी तो बहुत कुछ करना है और खास तौर से जो हममें कमज़ोरियां हैं, उनकी तरफ ध्यान देना है। क्योंकि जितना ही हम अपनी कमज़ोरियों को देखेंगे यानी गौर करेंगे, उतनी ही हम अपनी ताकत बढ़ाएंगे। उससे मुल्क आगे बढ़ेगा और हमारे देश की जनता का भला होगा। आप दुनिया की तरफ देखें, हमारा हाथ किसी दूसरे देश की तरफ, किसी दूसरे देश के खिलाफ विरोध में नहीं उठा है और मैं उम्मीद करता हूं कि हमारे हाथ कभी किसी दूसरे देश के विरोध में और खिलाफ कभी न उठेंगे।

हमने हरेक मुल्क की तरफ़ दोस्ती की निगाह से देखा और दोस्ती का हाथ बढ़ाया। हां कुछ पेचीदा सवाल इधर-उधर हुए, जो कि रास्ते में आए, लेकिन यह भी कोई वजह नहीं है कि हम किसी मुल्क से अपनी दोस्ती कम करें। क्योंकि जानकर जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं, आखिर में दुनिया का वही एक ठीक रास्ता है। हमारे पड़ोसी देश हैं उनके साथ भी हम दोस्ती और करीब का ताल्लुक चाहते हैं। पिछले जमाने में हमारे रिश्ते और मुल्कों से कुछ करीब हुए। आप यह अच्छी तरह जानते हैं। पंचशील का नाम आपने सुना जिसमें हमने बताया कि मुल्कों के बीच क्या सम्बन्ध होना चाहिए और सारी दुनिया में क्या रिश्ता होना चाहिए। धीरे-धीरे नए मुल्कों ने इसको तसलीम किया। हलके-हलके दुनिया की आबोहवा बदली। केवल हमारी आवाज से नहीं दुनिया में और भी वाकयात हुए। हमें कोई शेखी और फ़ख्र नहीं करना। अगर हम इन बातों में थोड़ी-बहुत मदद कर दें तो काफी है। लेकिन खुशी की बात है कि दुनिया की आबोहवा दुनिया की फ़िज़ा कुछ पहले से अच्छी है और जो कौमें और मुल्क दुश्मनी से एक दूसरे की तरफ़ देखते थे उनका कुछ डर और फ़िक्र कम हुई और कुछ हाथ बढ़ा कर मिलने को भी तैयार हुए।

हमारे मुल्क में हर मुल्क में अमन है। लेकिन आज के दिन 15 अगस्त के दिन आप जानते हैं कि आपका और हमारा और बहुतों का ध्यान गोआ की तरफ़ होगा। जब हम अपनी आजादी की लड़ाई लड़ते थे आपने या किसी ने तब यह नहीं सोचा था कि हिन्दुस्तान तो आज़ाद होगा पर हिन्दुस्तान का एक जरा-सा हिस्सा गोआ या पांडिचेरी या कोई और हिस्सा यूरोप के और मुल्कों के कब्जे में होगा। यह ख्याल नामुमकिन था यह ख्याल ख्वाब में भी नहीं आया था। अब हम पांडिचेरी और गोआ से सौ दो सौ तीन सौ बरस से अलग रहे। पिछले डेढ़-दो सौ बरस क्यों अलग रहे? इसलिए अलग रहे कि अंग्रेज़ी साम्राज्य के साये में वे पड़े रहे—इसलिए कि एक बड़ा साम्राज्य यहां था और वह उनको अपनी हिफ़ाज़त में रख सकता था। जैसे कि हिन्दुस्तान में उसके साये में अजीब-अजीब देशी राज्य थे। जिस वक्त अंग्रेज़ी साम्राज्य हटा फिर भला कहां रहे वे देशी राज्य जो यहां सौ-डेढ़ सौ साल से थे?

तो फिर एक अजीब बात है कि कोई साहब हमसे गोआ की निस्बत पूछे कि आप ऐसा क्यों चाहते हैं कि वह हिन्दुस्तान में मिल जाए? हिन्दुस्तान में मिलने का सवाल क्या? क्या किसी ने नक्शा नहीं देखा हिन्दुस्तान और दुनिया का? क्या किसी ने यह नहीं देखा कि वह कहां है? वह हिन्दुस्तान का एक टुकड़ा है। कौन उसे अलग कर सकता है?

आज हम आज़ादी की आठवीं वर्षगांठ मना रहे हैं और दुनिया देखे कि हमने इन आठ बरसों में कितने सब्र से काम लिया। किस प्रकार पोलरपन की।

क्योंकि हम चाहते थे और हम चाहते हैं कि यह गोआ का सवाल सब्र और वाअमन तरीके से हल हो। और मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आज के दिन भी हम इस गोआ के मामले में कोई फौजी कार्रवाई नहीं करने वाले। हम इसको शान्ति के तरीकों से हल करने वाले हैं। और कोई इस धोखे में न रहे कि हम वहां फौजी कार्रवाई करेंगे। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि इसे धोखे से कभी-कभी बाहर के लोग और कभी-कभी हिन्दुस्तान के लोग भी आ जाते हैं। बाहर के लोग गलत खबरें मशहूर करते हैं कि हम वहां तोप, बन्दूक और टैंक जमा कर रहे हैं। यह गलत है। फौज गोआ के आसपास नहीं है। अन्दर के लोग चाहते हैं कि कुछ शोरगुल मचा कर ऐसे हालात पैदा करें कि हम फौज भेजने के लिए मजबूर हो जाएं। लेकिन नहीं, हम उसको शान्ति से तय करेंगे। सब लोग इस बात को समझ लें। और जो लोग वहां जा रहे हैं, मुबारक हो उनको वहां जाना। लेकिन वे यह याद रखें कि यदि वे अपने को सत्याग्रही कहते हैं, तो सत्याग्रह के उसूल, सिद्धान्त और रास्ते भी याद रखें। सत्याग्रह के पीछे फौजें नहीं चलतीं, और न फौजों की पुकार होती है। वे खुद उस मसले का दूसरे तरीके से सामना करते हैं।

यह तो हुआ, लेकिन एक और सवाल है। हमने देखा कि पिछले सालों में कई बार ये सत्याग्रही, जो वहां गए थे, उन पर गोली चली है और उनमें से कुछ नौजवान मरे। लड़ाई में फौजों में एक-दूसरे पर गोली चलती है और उसे बर्दाश्त करना होता है। लेकिन एक उसूल हमें सामने रखना है और दुनिया को सामने रखना है कि किसी मुल्क के निहत्थे लोगों पर, जिनके हाथ में कोई हथियार नहीं है, उनके ऊपर गोली चलाना कहां तक मुनासिब है? अगर कोई कानून तोड़े, हुकूमत को अख्तियार है कि उनको गिरफ्तार करे, ऐरेस्ट करे, जेल भेजे। ये सब अधिकार हैं। लेकिन दुनिया के इण्टरनेशनल कानून में या किसी भी शराफत के कानून में यह कहां लिखा है कि जो लोग निहत्थे हैं, जिनके पास हथियार नहीं हैं, जो लोग हमला नहीं कर रहे हैं, उनके ऊपर गोली चलाई जाए? यह गलत बात है। मैं बहुत अदब से कहना चाहता हूँ कि दुनिया को समझना चाहिए और पुर्तगीज हुकूमत को समझना चाहिए कि उन्हें शराफत के खिलाफ ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए।

हमारी उनसे एक मुठभेड़-सी है। लेकिन उनकी राय कुछ भी हो, हम उसको शान्ति से हल किया चाहते हैं। और यकीनन शान्ति से हल करेंगे, चाहे कितना ही वक्त लगे। और आप याद रखें कि ऐसे मामलों में यह समझना कि जादू से या तेजी से मसले हल होते हैं, गलत है। अगर पक्के तौर से कोई बात हम और आप करना चाहते हैं, तो उसमें जल्दबाजी अच्छी नहीं होगी। हमें इन्तजार करना होता है। और जो बात इन्तजार और इतमीनान से होती है, वह ज्यादा मजबूत और ज्यादा पक्की होती है।

मैंने आपसे पंचशील का जिक्र किया दुनिया की तरफ ध्यान दिलाया, जहां कि बामुश्किल कुछ बरसा है। अपने देश की तरफ भी आप देखें क्योंकि आखिर में हम अपने देश में क्या करते हैं उस पर सब दारोमदार है। हमारी हैसियत दुनिया में कैसे बढ़ती है? हमारी जबानी बातों से हमारे नारों से, तो दुनिया में हमारी हैसियत बढ़ती नहीं। वह तो जो कुछ हम अपने मुल्क में करते हैं उससे उसका अन्दाजा होता है। मैं समझता हूं कि पिछले आठ सालों में हमारे मुल्क ने बहुत कुछ किया। बहुत कुछ हमने तरक्की की और अपने मुल्क की नींव को पक्का बनाया ताकि आइन्दा की इमारत बड़ी हो। और अब वक्त आया है कि उस इमारत को आगे बनाएं, जोरों से बनाएं। जो नींव बनाई है वह मजबूत है और उसे आगे भी मजबूत रखना है। एक सिलसिला पंचवर्षीय योजना का खत्म हो रहा है दूसरा चन्द महीनों में शुरू होगा। उसके लिए तैयार होना है कमर कसनी है और अगर कुछ तकलीफ होती है तो तकलीफ भी उठानी होगी। क्योंकि हम हिन्दुस्तान की इमारत को खाली कुछ समय रहने के लिए नहीं बल्कि कल और परसों के लिए, आइन्दा सालों के लिए और पुश्तों के लिए बना रहे हैं। उसे मजबूत बना रहे हैं और उसके लिए मेहनत कर रहे हैं।

पंचशील की मैंने चर्चा की—इस माने में कि मुल्कों के रिश्ते एक दूसरे से क्या हों। लेकिन ये शब्द पुराने जमाने में जो इसका इस्तेमाल हुआ था वह दूसरे माने में हुआ था कि हम आपस में कैसे रहें। बाहर हम क्या शान दिखाएं अगर दिल में हमारे शान नहीं? बाहर हम शान्ति और अमन की क्या बात करें अगर हमारे दिल में शान्ति और अमन नहीं है? अगर हम आपस में सहयोग नहीं कर सकते तो बाहर हम औरों को सबक क्या सिखाएं? इसलिए यह और भी जरूरी है कि हम अपनी कमजोरियों को दूर करें। हमारा हिन्दुस्तान एक बड़ा वस्त देश है। कितने-कितने इसके चेहरे हैं कितने रूप हैं तरह-तरह के मजहब हैं धर्म हैं, धर्म हैं रंग हैं, सूबे हैं, प्रान्त हैं प्रदेश हैं। इन सबको मिला कर हमने आजाद हिन्दुस्तान बनाया है। भाइयों और बहनों की एक बड़ी बिरादरी हो जिसके बीच कोई दीवार नहीं होनी चाहिए न सूबे की न प्रदेश की न मजहब की न जाति की। जो दीवार हमारे बीच में आती हो उसको हमें गिराना है। जाति-भेद दीवार के रूप में आता है। हमारे बीच में एक फिरके को दूसरे से अलग करने की कोशिश को हमें खतम करना है। इन चीजों ने काफी हद तक हिन्दुस्तान को कमजोर किया दुर्बल किया। तो हम इस हिन्दुस्तान में अलग-अलग शक्लें और रूप तो रखना चाहते हैं, लेकिन उसी के साथ इस बात को हमेशा याद रखिए कि हम एक बिरादरी हैं।

मुल्क को आगे बढ़ाना है और जो नई मंजिल हमारे सामने है उस और कौम को सभी को आगे बढ़ना है। दूसरी बात यह है कि जो काम हम करें वह शामिल

में बाअमन तरीके से करें। हम शान्ति की लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं और उसके बाद एक दूसरे के खिलाफ हाथ उठा देते हैं। यह कैसी बात है? अभी दो रोज की बात है पटना शहर में गदर हुआ। क्या बात है कि हम इतनी जल्दी हाथ उठा लेते हैं? क्या बात है कि हमारे विद्यार्थी इन बातों में इतनी जल्दी फंस जाते हैं? क्या उनको समझ नहीं? क्या वे जानते नहीं कि वे आजाद हिन्दुस्तान के रहने वाले हैं? क्या उन्हें आजादी की हवा नहीं लगी है कि वे कुछ पुराने तरीकों पर चलते हैं? सोचने की बात है—वह जमाना गुजर गया कि आपस में कशमकश हो, चाहे मजदूर भाई हों चाहे कोई और हों। विद्यार्थी अपने पढ़ाने वालों के मुकाबले खड़े होकर हाथ उठाते हैं तो अपने को बदनाम करते हैं और अपने देश को भी बदनाम करते हैं, बजाय इसके कि अपने को आइन्दा की जिम्मेदारियों के लिए, जो उन्हें उठानी हैं, तैयार करें। इसलिए आप सबसे मेरी दरख्वास्त है, खास कर नौजवानों से कि अपनी जिम्मेदारियां महसूस करें। आजकल के जमाने को देखिए, क्या जमाना है यह? सारी दुनिया ने एक नई करवट ली है। यह ऐटम का जमाना है। आज ऐटामिक एनर्जी का जमाना है। हमें अपने सारे दिमाग को पलटना है और उन छोटी बातों से, छोटे झगड़ों से और उन छोटी बहसों से निकलना है। जो देश इस जमाने को समझता है, वह आगे बढ़ता है। मैं चाहता हूं कि आप और हम और हिन्दुस्तान के रहने वाले इन बातों को समझें और आपस में मिल कर उन ताकतों का, जो पैदा हुई हैं, फायदा उठाएं। तो फिर यह जरूरी बात है कि हम अपने मुल्क में हर सवाल को बाअमन तरीके से हल करें।

अभी थोड़े दिन बाद एक और पेचीदा सवाल हमारे देश के सामने आने वाला है। कुछ दिन हुए एक कमीशन मुकर्रर हुआ था। आपको याद होगा, उसका नाम था 'स्टेट्स रिआर्गनाइजेशन कमीशन'। उसका काम यह तय करना है कि हिन्दुस्तान के अलग-अलग हिस्से हैं, प्रदेश हैं, उनमें अदला-बदली की जाए या नहीं और अगर की जाए तो क्या की जाए। हमने तीन ऊंचे दर्जे के आदमियों को चुना, जिनमें इस मामले में कोई तरफदारी नहीं थी, और उनसे यह कहा गया कि वे जांच करें और तहकीकात करें और हमें सलाह दें। वे यह काम साल-डेढ़ साल से कर रहे हैं। और कुछ दिन बाद शायद दो महीने के अन्दर उनकी रिपोर्ट और उनकी सिफारिशें पेश हों। मैं नहीं जानता कि वे सिफारिशें क्या होंगी। मैं कोई राय नहीं दे सकता। लेकिन एक बात मैं आपसे कहना चाहता हूं कि इस मसले को लेकर पंजाब से लेकर दक्खिन तक और पूर्व से पश्चिम तक बहुत गरमागरमी हो सकती है। पर चाहे कितनी भी गरमागरमी हो, ये जो मसले निकलेंगे और उनकी जो सिफारिशें होंगी, हमें उन्हें इत्मीनान से, शान्ति से तय करना है और जो शख्स उसके खिलाफ झगड़ा-फिसाद करे वह अपने मुल्क का भला नहीं चाहता। कोई

फैसला ऐसा नहीं हो सकता जो कि सबको पसन्द हो। ऐसा नामुमकिन है। लेकिन कोशिश की जाएगी और मैं उम्मीद करता हूं कि जो कमीशन है वह भी पूरी कोशिश कर रहा है कि एक मुनासिब फैसला जो जहां तक इख्तियार फैसला हो सकता है उसकी सिफारिश करे। जो कुछ हो, उसे हम ठीक समझ कर, एक दूसरे से बात कर, शान्ति से मंजूर करना है। ऐसे मौके पर कोई झगड़े का सवाल नहीं उठाना चाहिए। हमें दुनिया को सिखाना है कि हम किस तरह से शान्ति से इत्मीनान से अपने मसलों को हल करते हैं। यह ताकत की निशानी है। ताकत की निशानी आजकल मारे लड़ाना और हल्ला मचाना नहीं समझा जाता। यह बच्चों की बात है। हमारे मुल्क नए हिन्द की उम्र चाहे जो कम भी हो यह एक बुजुर्ग मुल्क है। उसकी आवाज गम्भीर है जानी चाहिए। हम काम करने की जगह है। हमारा काम है इत्मीनान से शान्ति से शराफत से और देशों के साथ दोस्ती करना और मुल्क को बढ़ाना और जो भी मसले आएं, उनका शान्ति से और मिल कर फैसला करना।

तो फिर पंचशील के बारे में मैंने आपसे कहा। इस पंचशील के दो रुख हैं। एक है और मुल्कों के साथ रिश्ता और दोस्ती एक-दूसरे के मामलों में दखल न देना एक-दूसरे की बराबर इज्जत और मदद करना। दूसरा पंचशील का रुख यह है कि हम देश के अन्दर क्या करते हैं—अपने को ठीक बनाएं, तैयार करें गलत रास्ते पर न चलें मिल कर चलें एकता से चलें और सारे हिन्दुस्तान को एक बड़ी बिरादरी बनाएं। हमारी यह सीख हजारों वर्षों की पुरानी है। यह सीख है अपने अपने लिए दूसरों के लिए नहीं। क्योंकि याद रखिए, हमें कुछ हक है अपने को सिखाने का औरों को सिखाने का हमें हक नहीं है। न हम इस चक्कर में पड़ें कि हम औरों को बताएंगे। अगर हम सीखते हैं तो उस पर अमल करके औरों को दिखा सकें कि हम क्या हैं और क्या होना चाहते हैं। इसलिए आज इस आठवीं सालगिरह पर हम खुशी मनाएं, तो ठीक है और पिछले आठ बरस के काम पर कुछ इत्मीनान भी करें तो वह भी ठीक है। लेकिन हमें देखना है कि क्या हमने नहीं किया और क्या काम करना अभी बाकी है। एक मंजिल पूरी हुई तो दूसरी मंजिल पर जाना है। तो किस तरह से जाना है? हमें जाना है शान्ति से अमन से।

हम कुछ ध्यान करें उन लोगों का जिनकी मेहनत से जिनकी कुर्बानी से जिनके त्याग और बहादुरी से हम आजाद हुए। हम कुछ हिन्दुस्तान की पुरानी आवाज काम में लाएं और जो दुनिया की नई आवाज है उसको ध्यान में लाएं। बुजुर्गों की पुरानी आवाज हमारे कानों में है।

यहां एक साल भर बाद हम इस मुल्क में और दुनिया में एक चीज मनाने वाले हैं। इस हिन्दुस्तान में एक जबरदस्त बड़े-से-बड़ा आदमी पैदा हुआ—गौतम

बुद्ध। उनको मरे ढाई हजार वर्ष अगले वर्ष पूरे होंगे और उसको हम यहां और और मुल्कों में भी अगले साल मनाएंगे। और हम अगर उनको मनाए, तो जो उनके सिद्धान्त थे, जो एक हिन्दुस्तानी ने, एक भारतीय ने, दिए थे, उनको याद रखें। उसके साथ ही जो हमारी आखो के देखे हुए, हमारे साथ काम किए हुए राष्ट्रपिता गाधी थे, उनके बारे में हम याद करें। आखिर हिन्दुस्तान मे जो-कुछ हममें बड़ाई है, उनकी ही दी हुई, उनकी सिखाई हुई है। अगर हम उन उसलों पर चलते है, तो हमारे कदम मजबूत रहेंगे, दिल मजबूत रहेंगे और आखें सीधे देखेंगी। ये बातें हम और आप सोचें और सोच कर आगे बढ़ें।

जय हिन्द !

1955

राज्यों का नया बटवारा

जय हिन्द ! आपको और हम सबको आज आज़ाद हिन्द की नौवीं सालगिरह मुबारक हो। नौ बरस हुए दुनिया में एक नया सितारा निकला—आज़ाद हिन्द का। वह नया था और पुराना भी। वह बहुत बरसों में बना था और लोगों की कुर्बानी मेहनत पसीने और खून से बना था। उसका एक नया रंग था और नई पोशाक थी जिसे उसने इस ज़माने में गांधीजी से लिया। वह नई पोशाक थी और उसमें एक नई चमक थी एक नया ढंग था क्योंकि आपको याद होगा कि इस ज़माने की दो पुश्तों की आज़ादी की जंग को हम किस तरह से लड़े थे। हम लड़े हिम्मत से लड़े बहादुरी से लड़े और हमारे लाखों-करोड़ों आदमी लड़े। हम शान से लड़े शराफ़त से लड़े और हमने दूसरों पर हाथ नहीं उठाया। दुश्मन से लड़े और दुश्मन को दोस्त बनाया। इस तरह से हमने एक नया ढंग सामने रखा। हमें नया गांधीजी ने रखा हम तो उनके कमज़ोर सिपाही थे। इस तरह से यह हिन्दुस्तान का मुल्क और यहां के करोड़ों आदमी कुर्बानी देकर और तरह-तरह की आग से बने हैं।

और फिर उसका नतीजा यह हुआ कि हम आज़ाद हुए और हमारी आज़ादी की चमक और मुल्कों में भी पहुंची। क्यों? इसलिए नहीं कि हमारा मुल्क एक बड़ा भारी और लम्बा-चौड़ा है, इसलिए नहीं कि यहां पर 35-36 करोड़ आदमी रहते हैं बल्कि इसलिए कि दुनिया के लोगों ने यहां बड़े काम करने का और जंग तक लड़ने का एक नया तरीका नया ढंग देखा। उन्होंने देखा कि यहां सब काम शराफत से शान्तमय तरीकों से और दुश्मन को भी दोस्त बनाने के तरीके से हुए।

मैं आपको यह याद दिलाता हूं कि हिन्दुस्तान की असली बात यही थी और इसका असर दुनिया पर हुआ। मैं आपको इसकी याद दिलाता हूं कि आजकल के ज़माने के नौजवान उस सबक को भूल गए, जिस सबक ने हिन्दुस्तान को आज़ाद किया जिस सबक ने हिन्दुस्तान को दुनिया में प्रसिद्ध और मशहूर किया जिस सबक ने हमारा सिर ऊंचा किया इतना कि हमारी आंखों में उससे कुछ गरूर भी आ गया। हमने भी दुनिया के मैदान में कुछ थोड़ी-सी खिदमत करके दिखाई। दुनिया के बड़े-बड़े मसलों को हल करने में भी हाथ था। और एक वक्त था कि फिर से दुनिया में कुछ

ढोल बजते नज़र आते हैं, या उसकी बातें हैं, फिर से कुछ लोगों की आखें हमारे मुल्क की तरफ जाती है। क्यों? इसलिए नहीं कि यहां लम्बी-चौड़ी फ़ौजें हैं, इसलिए नहीं कि हम जाकर किसी धमकी से काम लें, बल्कि इसलिए कि हमने कुछ ख़िदमत करना सीखा। इसलिए कि कुछ दोस्ती करना और कराना सीखा, इसलिए कि जहां लड़ाई है, वहां हमने अमन कराने में मदद की, इसलिए कि जहां गाठें हैं, उनको खोलने में हमने कुछ काम किया।

तो आज फिर से दुनिया निहायत खतरे के सामने है। इसलिए फिर से हमें अपना पुराना सबक याद करना है, अपने को संभालना है, दुनिया की ख़िदमत करनी है और अपनी ख़िदमत करनी है।

हमने-आपने सुना है कि हिन्दुस्तान से दो लफ्ज़ निकले —आज नहीं हज़ारों बरस हुए। लेकिन इस ज़माने में उन्होंने एक नए मानी पकड़े, और वे दुनिया में फैले। 'पचशील' नाम है उनका। मुल्कों में किस तरह से आपस में वर्ताव हो और एक-दूसरे से नाता और रिश्ता क्या हो? इनके पीछे कितनी ही पुरानी और नई बातें हैं। ये विचार हलके-हलके फैले हैं और बहुत सारे मुल्कों ने उनको तसलीम किया है, क्योंकि आजकल की दुनिया में कोई और चारा ही नहीं। सिर्फ दो रास्ते हैं—एक लड़ाई और तबाही का और दूसरा अमन और पचशील का। कोई तीसरा रास्ता नहीं है। सारी दुनिया यह बात धीरे-धीरे समझने लगी है।

अब इस वक्त फिर से दुनिया के इतिहास में एक खतरनाक मौका आया है। इस अगस्त के महीने में भली बातें भी हुई हैं और बुरी बातें भी। अजीब महीना है यह। याद है आपको कि हम 15 अगस्त को यहां अपनी आज़ादी का दिन मनाने के लिए मिलते हैं। यहां हिन्दुस्तान में सैकड़ों बर्षों से एक बड़ा साम्राज्य था, एक शाहंशाहियत थी। उसके उस सिलसिले का 15 अगस्त को खातमा हुआ और हमारे यहां एक नया ज़माना शुरू हुआ। इस अगस्त में दो ज़बरदस्त जंगें शुरू हुई थीं—दुनिया की दो जंगें, सन् 14 की, और सन् 39 की। दोनों अगस्त महीने में शुरू हुईं। इसी अगस्त में, और इसी 15 अगस्त के दिन पिछली बड़ी लड़ाई खतम हुई थी, जब जापानी कौम ने हथियार रखे थे। अजीब महीना है यह अगस्त का। खतरे से भरा। और उसी के साथ इस महीने में अच्छी बातें भी हुईं। इसलिए हमें अगाह होना है। दुनिया आजकल खतरे से तो भरी है। क्योंकि यह दुनिया एटम बम और हाइड्रोजन बम की दुनिया है। इसमें गफ़लत में काम नहीं चलता। और अपनी ज़िम्मेदारियां भूल जाने से भी काम नहीं चलता। जिस सबक को गांधी जी ने सिखाया था, उसे भूल जाने में काम नहीं चलता। और अगर हम भूल गए, तो हमारे सामने तबाही है। मैं उम्मीद करता हूं कि इस वक्त दुनिया के सामने स्वेज़ कैनाल

के मामले में जो बड़े मसले पैदा हुए हैं, जिसके लिए कल लन्दन में एक कामनवेल्थ एक कान्फ्रेन्स होने वाली है उसमें इस बात को अमन से तय करने के कोई न कोई रास्ते निकलेंगे। हमारी दोस्ती हर मुल्क से है। हमारी दोस्ती खास तौर से मिस्र से है, हमारी दोस्ती खास तौर से इंग्लैंड से है। दोनों से हमारी दोस्ती है। और इसलिए हमें कभी-कभी खिदमत करने के मौके मिलते हैं, दोस्ती के जरिए धमकी के जरिए नहीं। धमकाएं हम किसको? मैं उम्मीद करता हूं कि इस मामले में जहां जो लोग मिल रहे हैं, और जो हमारे मिस्र के दोस्त हैं उनके सलाह-मशविरे से कोई न कोई रास्ता निकलेगा जिससे हर एक मुल्क की शान रहे और दोस्ती बनी रहे। क्योंकि वही फैसले अच्छे होते हैं जिनमें कोई एक-दूसरे को नीचा नहीं दिखाता। अगर आप नीचा दिखाएं, तो आप एक दूसरी लड़ाई की बुनियाद डाल देते हैं। लेकिन अगर दोस्ती से कोई मसला हल हो तो वह पक्के तौर से हल होता है।

आपको याद है किस तरह से हिन्दुस्तान की गुलामी और हिन्दुस्तान की आजादी का यह सैकड़ों बरस पुराना मसला हल हुआ? आखिर में बापू महात्मा के उसूल के और और सब बातों के यह हल हुआ दोस्ती से और सहयोग से। और इसका नतीजा यह हुआ कि हममें और अंग्रेजों के बीच कोई खास रंजिश बाकी नहीं रही। बल्कि जो पुरानी रंजिश थी उसको भी हमने भुलाने की कोशिश की और बहुत कुछ भूल भी गए। आजकल वह हमारे दोस्त हैं। इसलिए कि हम आजाद मुल्क हैं, वह आजाद मुल्क हैं और दोस्ती से समझौते से यह मसला हल हुआ। अगर वह हमें और बातों की कोशिश करते तो मुमकिन नतीजा बदलता। हम आजाद जरूर होते लेकिन उस आजादी में फिर काफी रंजिश रहती और काफी दिनों तक यह रंजिश हमारा पीछा करती। इसलिए मसलों को हल करने का तरीका यही है जिससे किसी दूसरे को हम नीचा न दिखाएं, दूसरे की इज्जत का ख्याल रखें दूसरे के भी हुकूक का ख्याल रखें और उसूल पर चलें। मैं उम्मीद करता हूं कि यह स्वेज कैनाल का मसला इसी तरह से हल होगा। अगर पहले कदम में हल न हो तो दूसरी कोशिश से हल होगा तीसरी कोशिश से हल होगा। लेकिन एक बात साफ होनी चाहिए कि हम किसी सूरत में उसको या किसी और मसले को फौजी ताकत से या धमकी से हल नहीं करेंगे। और अगर गलती से इस बात की कोशिश हुई कि फौजी ताकत और धमकी से मसला हल हो तो उसका नतीजा बुरा होगा। वह मसला हल नहीं होगा बल्कि फिर आग लग सकती है ऐसी आग जो दुनिया में फैले।

पंचशील का मैंने आपसे चर्चा किया। ये लफ्ज जो हिन्दुस्तान की हमारी जबान हमारी भाषा से निकल कर दुनिया में फैले। दुनिया में जो हमने अच्छे

जरूर करें, लेकिन जब मैं अपने मुल्क की तरफ देखता हूँ तो गलत तरह हम उन बातों को अपने घर में समझें, अपने दिल में समझें, अपने दिमाग में समझें? पिछले चन्द महीनों में, छः-चार महीनों में, इस मुल्क में हमने अजब बातें देखीं। अजीब नजारे थे। आपस में भाई-भाई के झगड़े-रगड़े थे। हमने दुश्मन का मुकाबला किया और उसको दोस्त बनाया और फिर यह हममें इतना सब्र नहीं और समझ नहीं कि भाई-भाई के मसले कैसे हल करें? क्या बात है? क्या वह जमाना गुजर गया जो गांधी जी का जमाना था और जिसमें उन्होंने हिन्दुस्तान की शान को बढ़ाया था? क्या सिर्फ हमारी उम्र के लोग उसमें रहे और आजकल के लोग ऐसे हैं कि उनमें कोई ताकत नहीं है— न दिमाग की, न जिस्म की, न समझ की! मामला क्या है? मैं चाहता हूं आप इस बात को सोचें। हमारे नौजवान सड़कों पर निकलते हैं, मारपीट होती है, हमले होते हैं। क्या इसी तरह से अपने भाई को मार कर हम हिम्मत दिखाते हैं? हमने अपने जमाने में बन्दूक और तोप का सामना किया, दुश्मन का सामना किया, बगैर हाथ उठाए, बगैर उफ किए पूरे साम्राज्य का सामना किया। आखिर सामना क्या है? आजकल के नौजवान किस रास्ते में चलते हैं? क्या उनका कोई दूसरा रास्ता है? जिस रास्ते ने हिन्दुस्तान को आजाद किया, जिस रास्ते ने हिन्दुस्तान का नाम दुनिया में फैलाया, क्या वह रास्ता खतम हो गया? अब कोई दूसरा रास्ता है? आप समझें उस बात को।

मेरी उम्र ज्यादा हुई। हम सब लोग इस मुल्क के और आपके पुराने आदमी हैं। हमारा जमाना हलके-हलके खतम होता है। लेकिन अपने जमाने में हमने भी कुछ खिदमत की। खास कर जिस तरीके से हमने काम किया, उस तरीके से गांधी जी के कदमों में बैठकर हमने भी कुछ सीख लिया था और हमें उस तरीके का गर्व था। उसका नाम दुनिया में हुआ। और अब? बड़े कामों को छोड़िए, अपने घर के अन्दर के कामों में भी वह तरीका नहीं रहा। खासकर लोग सड़कों पर निकले, जलाए, मारपीट करें और तहलका मचाए! हिन्दुस्तान किधर जा रहा है? आपको और हमें यह सोचना है।

एक सवाल उठा। आप जानते हैं कि हमारे मुल्क के सूबों के, प्रदेशों के हुदूद क्या हों? इस सवाल की कोई खास अहमियत नहीं। यह कोई बड़ा पॉलिटिकल, राजनीतिक सवाल नहीं है। न यह कोई इक्तिसादी यानी आर्थिक सवाल है, चाहे हद इधर हो, या उधर। हां, मैंने माना, यह जज़बाती सवाल है। मैंने माना कि इसमें लोगों को दिलचस्पी है, जोश है। ठीक है और जज़बे की कदर करनी चाहिए। लेकिन इस तरह से हम अपने मुल्क के इस सवाल को हल करने के लिए क्या एक-दूसरे पर हाथ चलाए, झगड़ा

करें और हम सरकारी इमारतों को जलाएं। क्या सरकारी इमारतें मेरी आपकी हैं कि मुझे आप कोई नुकसान पहुंचाते हैं? या किसी अफसर को नुकसान पहुंचाते हैं? ये तो मुल्क की जायदाद है। उन्हें जलाना मुल्क को तबाह करने की कोशिश है।

और आखिर में यहां तक नए ढंग निकले हैं कि जो पार्लियामेंट फैसला करे उसके खिलाफ जलसे हों। हमारी लोकसभा क्या चीज है? सारे मुल्क के सारे हिन्दुस्तान के चुने हुए लोग उसमें आते हैं। हमारी पार्लियामेंट में हिन्दुस्तान के नुमाइन्दे हैं। यह हिन्दुस्तान की शान है हिन्दुस्तान की निशानी है। अब वहां जो कोई फैसला हो वह हिन्दुस्तान का कानून है और हिन्दुस्तान के लोगों को ही नहीं दुनिया को उसे तस्लीम करना पड़ता है। वह चीज हमारी पार्लियामेंट है। अब वहां लोकसभा में एक चीज स्वीकार हो और उसके खिलाफ जलसे हों और पुलिस वालों से मुकाबले हों या सरकारी इमारतें जलाई जाएं—यह कोई हिम्मत की निशानी है? समझ का निशानी है? मैं तो चाहता हूं आप गौर करें और मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान में जितने दल हैं वे सब उस मसले पर गौर करें क्योंकि हिन्दुस्तान में हर बड़े मुल्क में बहुत सारी रायें होती हैं। ठीक है होनी चाहिए। आगे बढ़ने का एक रास्ता नहीं होता दस रास्ते होते हैं। सोचने का एक रास्ता नहीं होगा पचासों रास्ते होते हैं। और हम चाहते हैं सोचने के सब तरीके खुले हों बयान करने की सब राहें खुली हों ताकि उस बहस में हम असली रास्ते को चुनें और उस पर चलें। लेकिन बहस एक चीज है और हाथापाई व लड़ाई-झगड़ा दूसरी चीज है। अगर कोई हम हिन्दुस्तान में लड़ाई-झगड़े की तरफ लोगों की तवज्जह दिलाता है तब वह हिन्दुस्तान का वफादार नहीं है। तब वह उस बुनियाद को जड़ को खोदता है जिस पर हिन्दुस्तान की आजादी कायम है। इसलिए हर शख्स को हर दल को इस बात पर गौर करना है इस बात को समझना है कि हम अपने मुल्क को किधर ले जाते हैं।

कुछ दिनों में चुनाव आ रहा है। छः महीने से आठ महीने में चुनाव आएगा। हर एक को हक है कि अपनी राय दे। हर एक दल को हक है कि वह अपनी तरफ लोगों को अपनी बहस से झुकाए। आप सबको हक है। मुबारक हो आपको वह हक। अगर आपको आजकल की हुकूमत पसन्द नहीं है तो दूसरी हुकूमत पसन्द कीजिए। मैं खुश होऊंगा और जो कुछ खिदमत कर सकूंगा करूंगा। हम एक साथ होंगे। लेकिन ये तरीके कि हम मसलों पर राय दें जम्हूरी तरीके से बातों का फैसला न करें, बल्कि चौराहों पर जाकर एक-दूसरे का मार-पीट करके फैसला करने की कोशिश करें—जम्हूरियत के उसी-

कैसी से, और प्रजातन्त्र से इनका क्या सम्बन्ध ! गौर करने की बात है कि हिन्दुस्तान किधर जा रहा है ? क्योंकि जिस साचे मे हम ढले थे, क्या वह साचा कमजोर पड गया ? आजकल के नौजवानो मे क्या बात है ? हर एक इनसान किसी न किसी सभ्यता के, किसी न किसी तहजीब और संस्कृति के साचे से ढलता है। उसी में कौमें ढलती है। हम किस साचे के है ? अगर कहा जाए कि हम पुराने साचे के है, तो ठीक है कि आखिर हमारे रगो-रेशों और खून में हिन्दुस्तान की सैकडो पुश्तें है और उनका असर है। वह सब न कोई हमसे ले सकता है, न उसे हम भूल सकते है। हम आजकल आजाद हिन्दुस्तान के साचे के बने हुए है। लेकिन ये लोग कहा है जो न पुराने साचे के है न नए साचे के ? सिवाय हुल्लडबाज़ी के वे किसी साचे के नही है ।

आप सोचें, हिन्दुस्तान के सामने बड़े-बडे मैदान खुले हुए है । पचवर्षीय योजना, फाइव यिअर प्लान, एक ज़बरदस्त चीज है। उसका बडा बोझ है। दुनिया में आजकल सख्त मुकाबला है । अगले पाच-दस बरस हमें अपनी सारी ताकत उसी मे लगानी होगी, और इस बात को भूल कर हम अपनी ताकत और बहस इस बात में सर्फ करें कि एक-दो सूबो में इन्तजामी सरहद इधर हो या उधर हो, कोई हिन्दुस्तान के बाहर तो नहीं जाता ! तो यह खयाल करने की बात है । और मै यह चाहता हू कि सारे हिन्दुस्तान के लोग और खास कर हमारे नौजवान इस बात पर गौर करे, सोचें, समझे कि वे बहक कर किधर जा रहे है। आप सोचें और समझें कि पचशील, जिसका नाम हमने दुनिया को दिया और दुनिया में फैलाया, उस पर भी अपने मुल्क में हम अमल करते है कि नही ? पचशील के माने है कि एक मुल्क दूसरे मुल्क के साथ चले, दोस्ती करे और झगडा-फिसाद न करे। मुल्को की दोस्ती का सवाल वहा है, जहा पडोसी एक-दूसरे से दोस्ती न करते हो। यह खयाल करने की बात है । और जहा तक ये झगडे-फिसाद है आप समझ सकते है कि इनसे कोई फ़ायदा करना नामुमकिन है ।

जहा तक हमारी गवर्नमेंट का ताल्लुक है, वह आपकी खादिम है । जब हिन्दुस्तान के लोग उसे अलग करना चाहे, वह अलग होगी । लेकिन इस तरह की बातो से, इस किस्म की धमकियो से तो वह राय नही कायम करेगी, न करती है और न करेगी । जो लोकसभा और पार्लियामेंट का हुक्म है, उस पर अमल होगा, क्योकि वह तमाम मुल्क का कानून होगा और इस तरह से वह बदलेगा नही। हर एक को समझ लेना चाहिए कि लोकसभा का स्टेट्स रिआर्गनाइज़ेशन बिल के बारे में जो फैसला हुआ है वह पत्थर की लकीर है और वह उससे हट नही सकती, चाहे जो कुछ भी हो जाए । सीधी बात यह है । मै जहा तक कहता था,

यह बात शायद कम हो। आप मेरी इज्जत करें, मुझे प्रधान मंत्री बनाएं। आपने मुझे इज्जत बख्शी, लम्बी चौड़ी बातें भी मैं कह देता हूं। लेकिन आखिर मैं एक इन्सान हूं। मैं एक बात कहूं या मेरी गवर्नमेंट एक बात कहे यह और चीज है। लेकिन जब पार्लियामेंट कोई बात कहती है तो वह न मेरी है, न उनकी है न आपकी—वह हिन्दुस्तान की बात है और हिन्दुस्तान की बात के सामने हर एक को झुकना है। जो फैसले हुए हैं वे लोकसभा की तरफ से हुए हैं और अब राज्यसभा में जाएंगे। इसलिए ये फैसले पक्के हैं। हर एक को यह बात समझनी है। किसी फैसले को आगे से बदलने के हमेशा तरीके हैं, वह दूसरी बात है। लेकिन इस वक्त समझा जाए कि झगड़े करके ये बदल जाएंगे तो यह अपने को धोखा देना है। यह मुल्क की खिदमत नहीं बल्कि मुल्क के खिलाफ काम करना है।

इसलिए आज के दिन नौ बरस बाद इस 15 अगस्त को हम पीछे की ओर देखते हैं और आगे की ओर देखते हैं। इन नौ बरसों में काफी लम्बी चौड़ी बातें हुई हैं। इन नौ बरसों में काफी हद तक नया हिन्दुस्तान बना है। हमारी काफी इज्जत दुनिया में बढ़ी है।

अभी करीब एक महीना हुआ, महीने भर का बाहर दौरा करके मैं यहां वापस आया। मैं जहां भी गया, मैंने देखा दुनिया की आंख हिन्दुस्तान की तरफ है। उन्हें दिलचस्पी है। वे देखते हैं कि किस तरह से हम रोज बढ़ रहे हैं, हमारी ताकत बढ़ रही है और हमारी इज्जत बढ़ती जाती है। दुनिया की निगाहें इधर थीं। मैं यहां वापस आया और मैंने देखा कि कितने काम हमें करने हैं! पुरानी जो बातें हुईं वे तो हुईं। लेकिन आखिर में हमारी आंखें और हमारी निगाहें आगे की ओर हैं, भविष्य की तरफ हैं। हमें आगे बढ़ना है। हमें इस दूसरी पांच बरस की योजना की तरफ पक्की तौर से बढ़ना है। इसमें हमें एक-दूसरे की मदद करनी है और पूरी ताकत लगानी है। हम अपनी कुछ भी ताकत जाया नहीं कर सकते। आखिर में हम नए हिन्दुस्तान को बनाएं ताकि हम हिन्दुस्तान से गरीबी को निकालें, मुफलिसी को निकालें, बेरोजगारी को निकालें, जो ऊंच-नीच है उसको कम करें और अपने सहयोग से एक खुशहाल मुल्क बनाएं, जो सबसे मिल कर रहे और दुनिया की और अमन की खिदमत करे। यह हमें करना है। ये मुश्किल बातें हैं। लेकिन हमने हिन्दुस्तान में मुश्किल बातें भी की हैं और भविष्य में भी हम मुश्किल काम करेंगे। इसलिए आज के दिन पीछे की तरफ हम जरूर देखें। लेकिन आइन्दा भी हम अमन से, सहयोग से, इत्तफाक से काम करें और अपनी पुरानी और नई संस्कृति को भुलाएं नहीं। चाहे कितना ही हमको कोई बात बुरी लगे या अच्छी लगे, हम रास्ते से बहकें नहीं। यह सबक हम आज याद रखें, इसको दोहराएं।

और याद है आपको कि इस साल हमने एक बड़ी बात की याद की है।

इस साल ढाई हज़ार बरस पूरे हुए, जब गौतम बुद्ध इस मुल्क मे पैदा हुए थे और इस मुल्क को उन्होने पवित्र किया था। इस बात को ढाई हज़ार बरस हो गए और आज ढाई हज़ार बरस बाद भी खाली इस मुल्क में ही नही, बल्कि तमाम दुनिया में उनका नाम चमकता है, क्योंकि जो बाते उन्होने कही, वे मजबूत थी, पक्की थी, जो वक्त मे गुजरती नही और हमेशा कायम रहती है।

यह सोच कर गरूर आता है कि इस हिन्दुस्तान की मिट्टी ने, जिसने आपको-मुझको पैदा किया, उसने महात्मा बुद्ध, गाधी जी जैसे ऊचे लोगो को पैदा किया। आखिर इस मिट्टी मे कोई बात है । कुछ है, जिसने इतने रोज़ तक हमारी कौम को जिन्दा रखा, उसे बार-बार मजबूत किया। वे बाते ऊपर के झगडे करने की नही है, वे दिमाग की बाते है, वे रूहानी बातें है, वे हिम्मत की बाते है। वे हमारी पुरानी तहजीब और सस्कृति की बाते है। तो फिर इन बातो को हम याद रखे और गौतम बुद्ध और गाधी जी जैसे हमारे जो बड़े-बड़े पेशवा, बड़े आदमी हुए है, उनकी याद करें, जिन्होने इस मुल्क को बनाया। हम सब उनके रास्ते पर चले और कमर कस कर जितने ज़रूरी काम हमें करने है, मिलकर करें।

जय हिन्द !

मेरे साथ ज़रा तीन बार ज़ोर से 'जय हिन्द' कहिए !

जय हिन्द !

ज़ोर से कहिए—जय हिन्द !

1956

ज़ोर से कहिए—जय हिन्द !

नई दुनिया के नए सवाल

इस दिन को मनाने के लिए हम और आप यहां हजारों-लाखों की तादाद में जमा हुए हैं। यह दिन जो हमारे आजाद हिन्द की दसवीं सालगिरह है और आजादी की जो बड़ी जंग इस मुकाम पर सौ बरस पहले हुई थी उसकी शताब्दी है।

आज काफी तादाद में यहां जमा हैं लेकिन शायद आपमें और हममें ज्यादा यहां और लाखों भी जमा हैं—लोगों की यादें हैं काफिले और कारवां जो यहां आए, वे लोग जिन्होंने इन सौ बरसों में अपनी हिम्मत दिखाई हिन्दुस्तान की खिदमत की कौम की खिदमत की और अपना कर्तव्य पूरा कर चल गुजरे। शायद इस वक्त वे सब भी यहां जमा हों या हमारे दिमागों में जमा हों और देखते हों कि सौ बरस बाद आज के दिन हिन्दुस्तान का क्या हाल है। आखिर जिसके लिए उन्होंने कोशिश की खून बहाया आंसू बहाए, पसीना बहाया काम की उसका नतीजा हासिल हुआ और उस नतीजे की शक्ल क्या है ?

आज के दिन यह सौ बरसों की कहानी हमारे सामने आती है। यहां इस दिल्ली शहर में और खासकर इस लाल किले में जो ऊंच-नीच हुआ यहां का एक-एक पत्थर हमें उस कहानी को सुनाता है। मेरे सामने यह चांदनी चौक है जो सैकड़ों बरसों से दिल्ली का एक मशहूर बाजार है। इस चांदनी चौक ने क्या-क्या देखा है ? बड़े-बड़े बादशाहों और सम्राटों के जुलूस यहां से निकले हैं मुल्क का करवट लेना साम्राज्यों का गिरना नए-नए राज्यों का आना—यह सब इसने देखा है। यहां प्राचीन भारत से जुलूस निकले मुगल साम्राज्यों के अंग्रेजी हाकिमों के अपने बड़े-बड़े हाथियों पर जुलूस यहां निकले। यह सब जमाना आया और चला गया। अब आजाद हिन्दुस्तान का जमाना आया है, जिसमें हमारे और आपके सामने यह बड़ा फर्ज है कि इस मुल्क को कैसे बनाएं और कैसे चलाएं।

सौ वर्ष की मेहनत का फल हमने उठाया लेकिन अब हमारे मेहनत करने का और उस फल को पक्का करने का वक्त आया है। इन दस बरसों में हमने इस काम को किया। इन दस बरसों में हिन्दुस्तान की कुछ शक्ल बदली। कुछ दुनिया में भी यह खबर पहुंची और लोगों के कानों में भी यह

झलक पड़ी कि एक नया बड़ा मुल्क अपने पैरों पर खड़ा हुआ है, जिसकी आवाज़ और मुल्कों मे कुछ दूसरी है,जो धमकी नही देता, जो गुर्राता नही, जो चिल्लाता नही, क्योंकि उसने दूसरे सबक सीखे हैं, अपने नेताओ के नीचे, सबसे बढ़कर महात्मा जी के नीचे। ऐसा मुल्क जो कि खामोशी से काम करता है, लेकिन फिर भी उस काम के पीछे कुछ ताकत है, कुछ इरादा है।

दस बरस हुए यह मुल्क दुनिया के मैदान में आया। दुनिया के अखाड़े में हम भी कुछ पहलवान बनकर उतरे, किसी से लड़ने के लिए नही, बल्कि कुछ अपनी खिदमत, कुछ दुनिया की खिदमत करने को। हमने आजादी का बोझ ओढ़ा, क्योंकि आज़ादी के फायदे हैं हो। लेकिन उसी के साथ जिम्मेदारियां भी हैं और हमने भी यह ऊंच-नीच देखा। याद है आपको इस आज़ादी के आने के पहले हिन्दुस्तान का क्या रूप था? अगर आपको याद नही है, तो आप मुकाबला नही कर सकते कि गावों में, शहरों मे क्या-क्या परिवर्तन हुआ है। यह काम बहुत बड़ा और जबरदस्त था। वह काम जादू से पूरा नही हो सकता था। इनसान की मेहनत ने ही हिन्दोस्तान को आज़ाद किया। हिन्दोस्तान के लोगो ने जिस मेहनत से बड़े-बड़े साम्राज्यो का मुकाबला किया, उसी मेहनत से अब इस हिन्दोस्तान को बनाना है। उसी एकता से, उसी जुर्रत से हमें आगे बढ़ना है। हम आगे बढ़े भी हैं और हम लगातार बढ़ रहे हैं। यह एक अजीब बात होती है कि जब कोई मुल्क तेजी से बढ़ने की कोशिश करता है, तो उतना ही उसे मुकाबला भी करना पड़ता है, उतना ही कभी-कभी ठोकर खाने का डर भी होता है। सिर्फ वही लोग ठोकर नही खाते, जो हर वक्त बैठे रहते हैं या लेटे रहते हैं। लेकिन जब कौम को रफ्तार तेज होती है, तो वह कौम भी ठोकर खाती है और ठोकर खाकर उठकर फिर आगे बढ़ती है।

इस तरह से हम चल रहे हैं। इस तरह हमने मंजिलें तय की। हम गिर पड़े, गिरकर उठे, उठकर चले। तो यह सब कुछ हुआ। कभी-कभी कुछ लोगों के दिल कुछ ठंडे हो जाते हैं, हिम्मत पस्त हो जाती है कि उफ, यह तो जितना हम समझते थे, उससे ज्यादा ऊंचा पहाड़ निकला। कभी दिखाई देता है कि सामने ज्यादा मुश्किलें हैं, ज्यादा दिक्कतें हैं और हम थक गए हैं। पर इस तरह से बड़े काम नही होते। लेकिन अगर आप इधर-उधर देखें और अपने आस-पास से निगाह उठाकर दूर तक देखें, तो आप पाएंगे कि हमारा यह मुल्क, हजारो बरसो का मुल्क, कैसे हलके-हलके जाग उठा है और सरसब्ज होता जाता है। कैसे वह आगे बढ़ रहा है। अगर आपके कानों में दुनिया से कोई आवाज़ आए तो आप सुनें कि हिन्दुस्तान की निस्बत दुनिया में क्या चर्चा है। खैर, हमें दुनिया के चर्चे की इतनी फिक्र नही, सिवा

इसके कि अपने बारे में भली बातें अच्छी लगती हैं। हमें फ़िक्र है अपने कर्तव्य की। अपने प्रश्न को ध्यान में रखकर इस मुल्क में हमने बड़े-बड़े काम उठाए हैं उन बड़े कामों को हम पूरा कर रहे हैं और करेंगे। लेकिन हमारे रास्ते में दिक्कत पेश होंगी।

आजकल की दुनिया में सब मुल्कों के सामने दिक्कतें हैं। ज़माने ने कुछ करवट ली है। उसकी कुछ अजीब शक्ल है। एक तरफ़ हर वक्त खतरा है। एक तरफ़ नए हथियार, ये एटम और हाइड्रोजन बम मौजूद हैं। कौन जाने ये दुनिया के सिर पर कभी हों जाने कब फट पड़ें। दूसरी तरफ़ और-और सवाल हैं। पुरानी दुनिया ख़त्म हुई। आज हम नई दुनिया में रहते हैं। यह एटम बम का ज़माना है। चाहे तो उससे या अपनी ताक़त से और बहुत फ़ायदा उठाएं या भयंकर नुकसान और मुसीबत उठाएं। यह सब हमारी हिम्मत पर हमारी ताक़त पर, हमारी आपस की एकता पर मुनहसिर है।

तो फिर इन बरस बाद आज हमारे मुल्क की क्या तसवीर है और आइन्दा की तसवीर क्या है? दस बरस में हम कुछ बढ़े हैं अब अगले दस बरस में हमें आगे बढ़ना है। पिछले दस बरस में कुछ पुरानी बातों को हमने मार्ग से अलग किया कुछ रास्ता साफ़ किया हालांकि पूरा रास्ता आज भी साफ़ नहीं है। दाएं-बाएं और आगे काफ़ी कांटे वगैरह हैं। लेकिन फिर भी अपना रास्ता हमने बहुत कुछ साफ़ किया। चाहे हम अपने राजनैतिक मैदान को देखें चाहे आर्थिक समस्याओं को देखें चाहे सामाजिक मैदान को—हर तरफ़ रास्ते कुछ साफ़ हुए हैं कानून से और भी बातों से। और असल बात यह है कि एक कौम के आगे बढ़ने से उसका रास्ता अपने आप साफ़ होता जाता है। हां अभी हमारा रास्ता पूरी तरह साफ़ नहीं हुआ। लेकिन हमें बढ़ना है और जितना हम बढ़ते हैं उतने नए सवाल हमारे सामने पैदा होते हैं।

आजकल आपके और मुल्क के सामने तरह-तरह के सवाल हैं। चीज़ों के खासकर खाने की चीज़ों के भाव बढ़ गए हैं कीमतें बढ़ गई हैं, जिससे हर एक के ऊपर कुछ बोझ बढ़ गया है। खासतौर से उन लोगों पर जिनकी आमदनी ज़रा कम हो। यह बोझ यकीनन बढ़ता है और हम ज़रूर इसकी फ़िक्र करते हैं। लेकिन आप यह भी याद रखिए कि यह किस चीज़ का नतीजा है। एक तो दुनिया भर में यह दाम बढ़ने का एक सिलसिला चल रहा है और बाकी मुल्कों में ज़्यादा से कुछ ज़्यादा ही बढ़ा हुआ है। लेकिन हिन्दुस्तान में जो हुआ है वह तेज़ी से आगे बढ़ने की कोशिश का एक नतीजा है। इस वक्त हिन्दुस्तान में चारों तरफ़ जो बड़े-बड़े कारखाने बन रहे हैं, बड़ी-बड़ी योजनाएं हैं दरियाओं को बांधने की और हमारे लाखों गांवों में और भी जो योजनाएं चल रही हैं उन सब का यह नतीजा होता है। क्योंकि

यह आगे बढने की एक निशानी है। यानी उसका कुछ असर दामो के बढने के रूप में दिखाई देता है, क्योकि हमारी योजनाओ से पूरा फायदा अभी निकला नही है ?

अब लोहे के नएं कारखाने बन रहे है, पर उनसे अभी लोहा निकलना शुरु नही हुआ। बरस दो बरस बाद निकलना शुरू होगा। इसलिए बीच का एक वकफा हो जाता है, जब कि हम अपनी कोशिश से पूरा फायदा नही उठा सकते। लेकिन अगर कोशिश ही न हो, तो फायदा भी कभी न हो। तो इस वक्त सारा हिन्दुस्तान एक कारखाना हो गया है, एक बडा कारखाना जहा, चाहे किसान हो, चाहे कारीगर हो, चाहे किसी किस्म के कारखाने का काम करने वाला हो, या हमारा इजीनियर हो, जो कोई भी हो, सब लाखो-करोडो आदमी अपने-अपने कामो मे लगे है और मुल्क के बडे-बडे काम हलके-हलके पूरे हो रहे हैं। वह वक्त अब करीब आता जाता है, जब उन कामो का फ़ायदा सारी कौम उठा सकेगी। तो यह हमारी पूरी तसवीर है।

आखिर हिन्दुस्तान को कौन बढाएगा ? कोई बाहर से आकर तो लोग उस नही बढाएगे ? आप और हम सब मिलकर ही उसे बढा सकते है। कोई गवर्नमेन्ट के हुकुम से मुल्क नही बढते। खाली कानून से भी नही बढते। मुल्क आगे बढते हैं कौम की ताकत से, कौम की एकता से, जुर्रत से। हमारे सामने बहुत से बच्चे बैठे है। मुबारक हो उनको यह दिन। मुबारक हो उनको आजाद हिन्द, जिसमे वे बढ रहे है और बढकर वे इस मुल्क की खिदमत करेंगे और मुल्क को आगे बढाएगे। इस वक्त जो बारिश हुई है वह भी आपको मुबारक हो। इस वक्त कुछ बारिश हुई है, इससे मुझे खुशी हुई। शायद आपमें से बाज़ लोग ज़रा घबराए हो, उन्हें पानी से तर हो जाने की कुछ फिक्र हुई हो। लेकिन उस बारिश को देखकर मुझे खुशी हुई है। इस मुल्क के और हमारे-आपके दिलो के सरसब्ज होने की वह एक निशानी थी।

तो आपके सामने यह बडा मुल्क फैला हुआ है, हिमालय की चोटी से लेकर कन्याकुमारी तक। यहा दिल्ली शहर में, जिसके पीछे हज़ारो बरस की कहानी है, जो हमारे मुल्क की राजधानी है, हम और आप इस दिन को मना रहे हैं— खाली दिल्ली शहर की तरफ से ही नही, बल्कि सारे हिन्दुस्तान की तरफ से। और जगह भी यह दिन मनाया जाता है, मगर दिल्ली शहर सारे हिन्दुस्तान की तरफ से यह दिन मनाता है।

दस बरस हुए यहा आकर इसी दिन, इस दिन नही तो शायद 16 अगस्त के दिन इसी लालकिले की दीवारो के ऊपर से पहली बार मैं यहा बोला था। उसके बाद हर साल यहा आने का मुझे इत्तिफाक हुआ। आप आए हम

लोग आए, कुछ आप की कुछ पीछे देखा और ज्यादातर आगे देखा। क्योंकि हमें आगे चलना है और इसलिए आगे देखना है। यहां अपने इरादों को कुछ पक्का करके और अपने दिलों को ज्यादा मजबूत करके हम अपने-अपने घर वापस गए। आज पूरे एक साल के बाद हम फिर यहां जमा हुए हैं। एक तरह से सौ बरस की कहानी यहां मौजूद है। तरह-तरह के ऐसे नाम हमारे सामने आते हैं जिन्होंने हिन्दुस्तान की इज्जत बढ़ाई, हिन्दुस्तान की शान बढ़ाई और जिन्होंने अपने खून से आजादी की बुनियाद डाली आजादी जिसे हम आज मना रहे हैं। क्योंकि आजादी किसी जादू से एकदम तो नहीं आती। ईंट ईंट लगा कर आजादी की यह शानदार इमारत बनी है। सौ बरस से यह इमारत बननी शुरू हुई थी और इतने अरसे में पूरी इमारत बनी। आप जानते हैं 100 बरस हुए कैसे बड़े-बड़े जंग हुए। उनमें हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े नेता निकले। सौ बरस पुरानी आजादी की जो जंग थी उसकी निस्बत लोग बहस करते हैं। हमारे इतिहास के लिखने वालों ने बड़ी-बड़ी किताबें लिखी हैं। यह ठीक भी है क्योंकि कई रायें हो सकती हैं। किसने उस जंग का इन्तजाम किया किसने उसका संगठन किया गया हुआ या नहीं। लेकिन मोटी बात तो यह है कि हिन्दुस्तान के लोग अक्सर बार-बार उठे और यहां जो पराया राज था उसको हटाने की उन्होंने कोशिश की। उसमें किसी को कोई शक नहीं। इस काम में सब लोग मिलकर उठे। अलग-अलग मजहबों के लोग हिन्दू-मुसलमान सब मिलकर उठे। उन्होंने मिलकर कोशिश की और मिलकर मुसीबतें झेलीं इसमें तो कोई शक नहीं है। किसने इसका सबसे पहले इन्तजाम किया था या किसने नहीं किया यह सब जानने की कोशिश तो इतिहास लिखने वाले करते ही हैं।

लेकिन यह सही बात है कि सन् सत्तावन की जंग हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई थी। माना कि उस वक्त हिन्दुस्तान दूसरा था। वह राजाओं का था। माना कि उस वक्त का हिन्दुस्तान बहादुरशाह बादशाह का था। लेकिन उस वक्त के हिन्दुस्तान ने ही अपनी आजादी की कोशिश भी की और आम जनता ने भी अक्सर उसमें हिस्सा लिया और उसमें बड़े-बड़े नाम आए। उन नामों से आप वाकिफ हैं। उन सब में बड़े नाम थे—तांतिया टोपे जो एक बहादुर आदमी थे नाना साहब और बिहार के कुंवरसिंह। मेरे इलाहाबाद के भी एक साहब थे—लियाकत अली खां जिन्होंने इलाहाबाद की हिम्मत दिखाई थी। लेकिन इन सब नामों में मुझे तो एक नाम बहुत प्यारा है और शायद आपको भी वह प्यारा हो। वह नाम है रानी लक्ष्मीबाई का। ये सब नाम आज हमारे दिलों में हैं। आज हैं कल भी रहेंगे और सैकड़ों बरस बाद तक रहेंगे क्योंकि उन्होंने एक मशाल को जलाया।

उनके बाद उस मशाल को पुश्त-दर-पुश्त जलाए रखने का काम हमारा था। यह काम कौम का था और कौम ने उसे जलाए रखा। हमें इस बात का फख्र है कि अपने जमाने में, अपनी पुश्त में हमने भी हाथ उठा कर उस मशाल को संभाले रखा और जलाए रखा, उसे कभी नीचा नहीं होने दिया। जब कभी हमारी बाहें या हाथ कमजोर हुए, तब दूसरे लोग इसे संभालने को मौजूद थे। वे उस मशाल को हमसे लेकर आगे बढ़ने के लिए तैयार थे। ये पुराने जमाने की बातें हैं। आप और हम एक पुराने मुल्क के निवासी ही तो हैं, जिसके पीछे हजारों बरस की कहानी है। लेकिन हमारा यही मुल्क एक माने में एक नया मुल्क भी है और उसमें कुछ जवानी का जोश भी है। हम एक जवान मुल्क हैं। एक तरफ से हम पांच-छः हजार बरस पुराने हैं और दूसरी तरफ से हम दस बरस की उम्र के बच्चे हैं, लेकिन तगड़े बच्चे हैं, मजबूत बच्चे हैं। हमारे दिल में जवानी का जोश है और हम आगे बढ़ते हुए बच्चे हैं।

तो फिर यह दिन आपको मुबारक हो। इस दिन हम फिर से जरा समझें कि हम कहां जा रहे हैं। आजादी की जो लड़ाई सौ बरस हुए शुरू हुई थी, कुछ-कुछ तो उसे खून में दबाने की कोशिश की गई थी, हालांकि आजादी की लड़ाई कभी दबती नहीं है। अगर थोड़ी देर के लिए दब भी जाए, तो भी वह कभी खतम नहीं होती। हमारे यहां उसके बाद तरह-तरह के बड़े बुजुर्ग आए, बड़े नेता आए। उन्होंने उस मशाल को उठाकर रोशन किया और हमारे दिलों को भी रोशन किया। दादा भाई नौरोजी आए, लोकमान्य तिलक आए, महात्मा गांधी आए। इन सबने इस मुल्क में आजादी की लड़ाई का संगठन किया। उन्होंने मुल्क को मजबूत किया और नए-नए सबक सिखाए। उन्होंने मुल्क को एकता का सबक सिखाया। यह सिखाया कि मुल्क में जो अलग-अलग मजहब हैं, उनके मानने वाले सब लोग मिलकर रहें। उन्होंने मुल्क को अमन से काम करने का तरीका सिखाया। गांधी जी ने मुल्क को यह सबक भी सिखाया कि अपने दिल में हम किसी के लिए दुश्मनी न रखें। उन्होंने हिन्दुस्तान की पुरानी याद को ताजा किया।

आपको याद है कि पर साल इसी शहर में और हिन्दुस्तान भर में हम लोगों ने क्या मनाया था? पिछले साल हमारे देश के एक महापुरुष की पैदाइश को ढाई हजार वर्ष पूरे हुए थे। हमें अभिमान है कि गौतम बुद्ध हिन्दुस्तान में पैदा हुए और वह हमारे देश के थे। हमारे देश ने भी अजीबो-गरीब लोग पैदा किए। ऐसे लोग जो हजारों बरसों से दुनिया के दिलों को हिलाते रहे हैं, करोड़ों आदमी जिनके साए में आए हैं। हिन्दुस्तान का हजारों बरसों का वह अमन का, शान्ति का, सबक गांधी जी ने फिर से हमें सिखाया। उस पुराने सबक को उन्होंने हमारे दिलों में फिर से ताजा किया।

कुछ पुरानी याद आई, पुरानी ताकत आई, कुछ पुरानी संस्कृति और पुरानी सभ्यता की भावना मुल्क में फिर से जागी और उससे हमारे मुल्क की ताकत बढ़ी। इस बड़े देश के उत्तर, दक्षिण पूर्व पश्चिम सभी तरफ के लोग आपस में मिले। अलग-अलग मजहब वालों ने मिलकर शान्ति से काम किया और जब आखिरी वक्त आया और हमारी आजादी की यह जंग खत्म हुई, तो वह ऐसे खत्म हुई। वह बदतमीजी से खत्म नहीं हुई। वह शान से और समझौते से खत्म हुई। उसी शान और समझौते का दस बरस हुए, इस देहली शहर में हमने मनाया था।

याद है आपको 15 अगस्त सन् 47 का वह दिन! जब आप लोग भी एक मन में आकर कुछ थोड़ा-बहुत पागल से हो गए थे। वह आजादी के नशे का पागलपन अच्छा था। तो यह सबक गांधी जी का सिखाया हुआ था। उसी सबक ने हमें आजाद किया उसी सबक ने हममें इत्तिहाद पैदा किया, एकता पैदा की। उसी सबक ने हमारा नाम दुनिया में फैलाया। उसी सबक ने हमारी इज्जत सारी दुनिया में बढ़ाई। वह सबक आपके दिलों में है आपके कानों में है आपकी याद में है। क्योंकि अगर नहीं है तो फिर हमारी बुनियाद, हमारी जड़ कमजोर हो जाती है। इसलिए खासकर आज के दिन हम गांधी जी के उस सबक को याद करना चाहिए, जिस सबक पर चलकर हम सब बढ़े हैं और सारा मुल्क आगे बढ़ा है। उन सबको अगर हम याद रखें तब यकीनन मुल्क की ताकत बनी रहेगी और हम आगे बढ़ेंगे।

हमारी लड़ाई किसी मुल्क से नहीं है। हमारा पड़ोसी मुल्क है पाकिस्तान जो हमारे ही एक टुकड़े से बना है। वह हमारे दिल का और बाजू का टुकड़ा है। हम उससे लड़ने की बात भी कैसे सोचें? वह तो अपने को ही एक नुकसान पहुंचाना है। और अगर वह हिमाकत से समझे कि उन्हें हमसे अदावत करनी है तो वह अपने को ही नुकसान पहुंचायेंगे। हिन्दुस्तान का और पाकिस्तान का यह अजीब रिश्ता है। हमारी आपस में कभी रंजिश भी हो, एक-दूसरे के खिलाफ कभी गुस्सा भी चढ़े लेकिन आखिर में यह इतने करीब का रिश्ता हमारा अरसे से कायम है कि कानून से वह मिट नहीं सकता और अगर हिन्दुस्तान को कोई नुकसान हो तो यकीनन पाकिस्तान को भी उसमें नुकसान है। अगर पाकिस्तान को नुकसान हो तो हिन्दुस्तान को भी नुकसान है। इसलिए हम चाहते हैं कि हम आपस में अमन से रहें दोस्ती से रहें पाकिस्तान से हमारे लिए अच्छा हो। हम चाहते हैं कि वह अपनी आजादी न खोये। लेकिन हमारे माने यह नहीं है कि हम किसी को धमकी दें या किसी की कमजोरियों से अपने फायदा उठायें। यह न हमारे लिए मुनासिब है न उनके लिए न किसी और के लिए। न वह विचार ही अच्छा है।

चुनांचे हम अपने हक पर कायम रहकर मजबूती से और ठंडे दिल से आगे बढ़ेंगे। हम हर मुल्क से दोस्ती चाहते हैं। हम उस चीज को पसन्द नहीं करते जो ठंडी लड़ाई या 'कोल्ड वार' कहलाती है। हम समझते हैं कि ठंडी लड़ाई के माने ही यह हैं कि दुश्मनी हर वक्त ही दिल में रखी जाए, दिल में हर वक्त हसद रहे, और यह गलत चीज है। अपने दिल को तंग कर देने से कोई मुल्क आगे नहीं बढ़ता है। चुनांचे हमारा हाथ हर मुल्क से मिलने को फैला हुआ है, और हर एक से हम दोस्ती चाहते हैं। लेकिन आखिर में हमारा काम तो अपने मुल्क में ही है। हमारी उतनी ही इज्जत होगी, जितना हम काम करेंगे। अगर आज दुनिया में हमारी इज्जत और आदर है, तो वह इसीलिए कि पिछले दस बरस के हमारे काम को देखकर दुनिया समझती है कि एक जबरदस्त कौम फिर से मैदान में आई है। हिन्दुस्तान के बारे में दुनिया समझने लगी है कि यह काम करने वाली कौम है और तेजी से आगे बढ़ रही है। तो इस दस बरस के काम को देखकर आजकल दुनिया में हमारी कद्र है। लेकिन आखिर में यह सब काम हमारे मुल्क का है और आपको और हमें मिलकर उसको पूरा करना है। जो अड़चनें दिक्कतें हमारे रास्ते में आती हैं, आपको और हमको मिलकर ही उनका सामना करना है, उन पर हावी होना है। सब सूरतों में आगे बढ़ना है। जो कौम इस तरह से कदम-ब-कदम आगे बढ़ेगी, उस कौम की तकलीफें कम होंगी, उस कौम के काम बढ़ेंगे। हमारी मेहनत से ही मुल्क से हलके-हलके बेकारी खत्म होगी और जो हमारे मुसीबतजदा भाई-बहन हैं, जो चाहे गांव में रहते हैं या शहर में, जिनके ऊपर आज से नहीं बल्कि सैकड़ों बरसों से गरीबी का बोझ है, उनका वह बोझ हटेगा। यह तसवीर हमारे सामने है।

दस बरस हुए, आजादी हासिल करने की हमारी मंजिल खत्म हुई थी और हमने दूसरा सफर शुरू किया था। यह दूसरी मंजिल हमारे सामने है। वहां भी हम एक दिन पहुंचेंगे और फिर हम और आप मिलकर इस बात को मनाएंगे कि हमने इस मुल्क से गरीबी को भी निकाल दिया, जैसे कि एक दिन गुलामी को निकाला था।

1957

जय हिन्द !

हम और आप यहा इस दिन को मनाने तथा पुराने जमाने की तरफ कुछ देखने के लिए जमा हुए हैं। कुछ आज के सवालो का तकाजा हमारे सामने है। भविष्य की, जिधर हम जा रहे है, उसकी एक झलक हमें लेनी है, क्योकि हमने एक बडी यात्रा का इन्तजाम किया है। और अब स्वराज्य की यात्रा खतम हुई, तो उससे बडी, उसमे मुश्किल सफर का दौर शुरू हुआ, जिस सफर मे इस मुल्क के 36-37 करोड आदमियो को जाना है, मिल कर जाना है, हाथ में हाथ मिला कर जाना है, ताकि ये सभी खुशहाल हो, ताकि उनकी मुसीबतें कम हो, ताकि जो जिन्दगी की जरूरतें हैं, ये हरेक को मिलें, ताकि जो हमारे होनहार बच्चे हैं, जिनके ऊपर गुलामी का साया कभी नही पडा, जो आजाद हिन्दुस्तान में पैदा हुए हैं, वे हमेशा आजाद रहें, उनका सिर ऊचा रहे, वे खुशहाल रहें, और अपनी और अपने मुल्क की तरक्की कर सकें। यह हमने सोचा, और इस रास्ते पर हम चले। रास्ते में हजार खाई-खदक, हजार मुसीबतें आई। कभी सैलाब आकर हमें बहा देता, कभी एक रेगिस्तान की तरह से हालत हो जाती, कभी बारिश इतनी ज्यादा होती कि उसको सम्हालना मुश्किल होता और कभी अगर बारिश न हो तो उसमें भी बदतर होता। यह हालत हुई। बरसो से आप जानते हैं कि किन मुसीबतो का इस मुल्क ने सामना किया। तकलीफ हुई, परेशानिया हुई, लेकिन हिन्दुस्तान का सिर तो नही झुका, वह एक इम्तहान का जमाना था, पुराना जमाना, जब कि हमने एक साम्राज्य का मुकाबला किया था। लेकिन आखिर में हमारे इम्तहान का यह उससे कडा जमाना आ गया। कहा तक हम मुसीबत में मिलकर रह सकते हैं? कहा तक हम मिल कर काम कर सकते हैं, कहा तक हम इस मजिल को भी पार कर सकते है? यह आया और ऐसे मौके पर आया जब आपस में फूट है, आपस में लडाई है। एक इसान दूसरे के ऊपर हाथ उठाते हैं। तब उसके क्या माने हैं? क्या हम अपने पुराने सबक भूल गए? क्या हम गाधीजी को भूल गए? क्या हम हिन्दुस्तान की हजारो बरसो की तारीख को भूल गए? क्या हम जो हमारा भविष्य है, जिसके लिए हम काम कर रहे हैं, उसको भूल गए? क्या हम अपने बच्चो को भूल गए? हमें क्या याद रहा जब हम एक दूसरे पर हाथ उठाते हैं और झगडा-फिसाद करते है? महज किसी सियासी बात को हासिल करने को? या जो कुछ भी उसकी वजह हो। मै नही जानता कि बात क्या है?

तो आपके सामने मैं खडा होता हू और आप यहा खुशी मनाने आते हैं। दिल मे खुशी जरूर है लेकिन दिल में रज भी है कि 11 बरस बाद भी ऐसी बातें हिन्दुस्तान के बाज हिस्सो में हो रही हैं और आज के दिन हो रही है। लोग आपस में झगडा-फसाद करते हैं, एक दूसरे को मारते हैं और एक दूसरे की सम्पत्ति को जलाते हैं। तो हमें लोगो की इस गफलत से आगाह होना है। मै यहा किसी को

बुरा-भला कहने नहीं खड़ा हुआ हूं। हमारा काम यह नहीं है। यहां मैं आपके सामने किसी एक दल की तरफ से या किसी पार्टी की तरफ से नहीं खड़ा हुआ हूं बल्कि आपके सामने एक मुसाफिर की तरह से आपके एक हमसफर के रूप में खड़ा हुआ हूं इस मुल्क के करोड़ों आदमियों से और आपसे और मुल्क के रहने वालों से यह दरख्वास्त करने कि हम जरा अपने दिल में देखें और अपने को समझाएं और औरों को समझाएं कि इस वक्त हमारा क्या फर्ज है, हमारा क्या कर्तव्य है। कुछ भी कर्तव्य हो कुछ भी पालिसी हो कुछ भी नीति हो जाहिर है कि उसमें हम कामयाब एक ही तरह से हो सकते हैं कि हम मिल कर शान्ति से अमन-इत्तहाद से काम करें। यह जाहिर है एक मोटी बात है। नहीं तो हमारी सारी ताकत एक दूसरे के खिलाफ जाया हो जाती है। अगर हमारी राय में फरक है तो हम एक दूसरे को समझाएं, एक दूसरे को अपनाएं। और कोई जरिया नहीं है। इस मुल्क में नहीं है। तो हम यह चाहते हैं।

हम लम्बी आवाज में दुनिया से बातें कहा करते हैं, और नेक सलाहें देते हैं। हमने पंचशील का झण्डा उठाया और लोगों की तवज्जोह उधर हुई और मुल्कों पर उसका एक असर हुआ लेकिन फिर कभी-कभी हम अपने मुल्क की तरफ देखें कि यहां क्या हो रहा है। देख कर हमारा सिर झुक जाता है, शरम आ जाती है। किस तरह से औरों को नेक सलाह दें जब हम अपने को ही पूरी तौर से नहीं सम्हाल सकते? तो फिर मेरी आपसे यह दरख्वास्त है और मुल्क में सभी से दरख्वास्त है कि और सवालों पर जरूर हम गौर करें और रास्तों पर हम चलें लेकिन पहली बुनियादी बात यह है कि हम अपने को सम्हालें हम एक दूसरे से लड़ाई का सिलसिला छोड़ें। हम यह समझ लें कि अगर हम लड़ाई लड़का करके फैसले किया चाहते हैं तो हिन्दुस्तान में न आजादी है, न समाजवाद है न प्रजातन्त्र है।

कोई भी आपकी राय हो आप उसको लड़ाई की धमकी देकर कैसे तय करेंगे? मतलब जिससे आप लड़ेंगे वह आपसे लड़ेगा। न आप हासिल करेंगे न वह हासिल करेगा। जैसा आजकल की दुनिया का हाल हो गया है कि बड़े-बड़े मुल्क हाइड्रोजन, ऐटम बम और गोले लेकर बैठे हैं। वे दुनिया को तबाह कर सकते हैं। यह ताकत हरेक में है लेकिन लड़ाई के जरिए दुनिया को सम्हालने की ताकत किसी में नहीं है। वह अमन के जरिए से ही है। धुंधले-धुंधले यह बात उनके सामने आ रही है कि लड़ाई से सारी दुनिया तबाह होगी फिर भी वे डर के मारे हुए सख्त लड़ाई की तैयारी करने में लगे हैं। और अभी आप जानते हैं इधर पिछले जमाने में और आजकल भी काफी खतरनाक हालत पश्चिमी एशिया के मुल्कों में है। अभी तक वहां फौजें जमा हैं अभी तक हथियार लोग तैयार खड़े हैं इस डर से कि जाने किस वक्त क्या मौका हो इसलिए हमें लड़ाई के लिए तैयार होना चाहिए। लेकिन

है कि लड़ाई नहीं होगी, और वह पुराना डर जरा कम हुआ है। आशा है कि वहा के वे मसले हल होगे, और जो वहा के मुल्क के रहने वाले हमारे भाई हैं, वे भी पूरी तौर से आजादी से रह सकेंगे। जो अरब के मुल्क है, जिन्होने एक ज़माने से अपनी आजादी के लिए कोशिश की, लडाई लडी, और हलके-हलके कदम से बढे, उम्मीद है कि उनकी भी आजादी पूरी होगी और अपनी जिन्दगी, जैसी वे चाहते है, उसी दोस्ती के साथ बना कर रह सकेंगे।

यह तो और दुनिया का हाल है और याद रखिए कि दुनिया मे हिन्दुस्तान की कुछ वकत है। हिन्दुस्तान एक कुछ दानिशमन्द मुल्क समझा जाता है, एक समझदार मुल्क समझा जाता है, ऐसा इसलिए कि वह आसानी से बहक नही जाता, आसानी से गुस्सा होकर गलत बात नही करता, आसानी से किसी पर हाथ नही उठाता। हमारी निस्बत अकसर लोगो का यह खयाल है। कहा तक यह सही है, कहा तक गलत, यह आप समझें, क्योंकि यह सही भी है और गलत भी है। सही है इसलिए, कि इस जमाने मे, खासकर गाधीजी के जमाने में, हमने इसकी जबदस्त मिसालें दी—अपने सब्र की, अपनी अहिंसा की। गलत है, जब हम खुद अपनी हरकतो से गलत करते हैं। तो इसलिए आपसे यह मेरी दरखास्त है। उधर गुजरात के शहरो में, हमारे नौजवानो को, एक ऐसे सूबे के नौजवान, जहा गाधीजी पैदा हुए, जिन्हें गाधीजी ने अपना सबक सबसे ज्यादा सिखाया, जहा के लोग कामकाजी हैं, मेहनती हैं, त्यागी हैं, जहा के लोग हिन्दुस्तान के अगुवा लोगो में गिने जाते है, क्या हुआ? क्या बुरी हवा आई कि इस तरह का पागलपन लोगो में आया कि वे वहा अपने को बदनाम करें, हिन्दुस्तान को बदनाम करें। गुजरात एक भली जगह है। और जगह भी यह चीज उठती है। हमें होशियार होना है कि किधर यह बात जाती है? इसका किसी फैसले से ताल्लुक नही, किसी नीति से नही। अलग-अलग नीति हो, चलें। आजाद मुल्क है। हरेक को अपना अलग-अलग आजाद खयाल रखने का, औरो को समझाने का अख्तियार है, लेकिन किसी को जबर्दस्ती, हाथ से, लाठी से, बन्दूक से, दूसरे की राय को बदलने की कोशिश करने या फैसला करने का अख्तियार नही है, क्योंकि इसका नतीजा क्या है? इसका नतीजा कोई फैसला नही है, इसका नतीजा तो तबाही है, हुल्लडबाजी है, लडाई है। और क्या हम इस हिन्दुस्तान की आजादी के लिए इतने जमाने से लड कर और इसे हासिल करके, फिर इस खाई में, खन्दक मे, कुए में और अपनी कमजोरियो में गिरेंगे?

गौर करने की बात है, हमारे जो नौजवान आजकल है, अच्छे है, एक जबरदस्त नजारा भविष्य का उनके सामने है। इस हिन्दुस्तान का चमकता हुआ भविष्य—जिसका बोझा वे उठाएगे, आगे चलाएगे, जिसके लिए उन्हें आजकल तैयार होना है, स्कूल में, कालेज में, या जहा कही वे हो। लेकिन बाज उनमे भी बहक जाते हैं, इन

बड़ी बातों को भूल जाते हैं और छोटी बातों में फंसते हैं छोटे झगड़ों में पड़ते हैं और इससे अपने को बेकार करते हैं और मुल्क की भी कोई खिदमत नहीं करते।
यह हमें सोचना है, ये सवाल बड़े हैं। सोचना है, और समझना है कि हम किधर जा रहे हैं? जाहिर है कि अगर इतनी हमारी मुसीबतों का सामना करके हम यहाँ पहुँचे जहाँ आजकल हैं तो किसी की धमकी से किसी की कमजोरी से यह काम छूटेगा तो नहीं इस काम को तो जारी रखना है, और हिम्मत से जारी रखना है चाहे कितनी ही रुकावटें आएं, कितनी ही मुसीबतें आएं। और हम चाहे कमजोर भी हो जाएं तो हमें अपनी इस कमजोरी को निकाल कर, पकड़ कर फेंक देना है और सिर ऊंचा करके फिर आगे बढ़ना है।

तो 11 वर्ष का जमाना हुआ। एक मुल्क की जिन्दगी में यह बहुत बड़ा जमाना नहीं है फिर भी एक मालूम वक्त है। आप इन 11 बरसों को देखिए। इन 11 बरसों में या उसके पहले हिन्दुस्तान की क्या हालत थी? आप दुनिया की महफिलों में क्या हालत है या अपने घर में क्या हालत है? आपको मुझे और मुल्क के रहने वालों को हजार शिकायतें हैं। उनमें बहुत कुछ सही कुछ गलत शिकायतें हैं। हमारे ऊपर मुसीबत पर मुसीबत आती है। मैंने आपसे कहा फसलें खराब होने की वजह से पानी न बरसने की अकाल की ये बहुत सारी मुसीबतें हैं। चीजों के दाम बढ़ते हैं आजकल बढ़े हुए हैं। लोगों के लिए काफी मुसीबत है और अगर वे शिकायत करें तो मुनासिब है और उनका शिकायत करना वाजिब है। मैं उससे इनकार नहीं करता। और अगर वे इस बात की शिकायत करें कि ऐसी हालत में भी कुछ ऐसे लोग हैं, जो लोगों की मुश्किलों से फायदा उठाते हैं अपने फायदे के लिए व्यापार करते हैं, जो कि बजाय इसके कि इस वक्त औरों की मदद करें और उन पर एक बोझा हो जाते हैं और गलत रास्ते पर चलते हैं और चोरबाजारी होती है यह सब बातें होती हैं। अगर आप शिकायत करें तो आपकी शिकायत सही है क्योंकि जो ऐसा काम ऐसे मौके पर करे और जो मुल्क की जनता को इस तरह से नुकसान पहुँचाए हानि पहुँचाए, वह मुल्क के साथ गद्दारी करता है।

क्या बात है यह? कहिए, उनकी यह कमजोरी हो सकती है। लेकिन असल में जो भी आदमी ऐसे मौके पर ऐसा करे उसको समझना चाहिए कि बजाय इसके कि वह मुल्क की खिदमत करे, मुल्क को आगे बढ़ाए, वह अगर मुल्क के साथ गद्दारी करता है तो फिर इसका नतीजा उसके ऊपर, और मुल्क के ऊपर क्या होगा? और हमारे सामने ये बड़े सवाल हैं दुनिया के सवाल। और हम भी दुनिया के हिस्से हैं इसलिए हमें भी उन सवालों में भाग लेना पड़ता है। लेकिन असल में हमारे सवाल हमारे मुल्क के हैं सवाल हमारे घर का है मौजूदा का और हमारे पड़ोसी का। चाहे हम दक्षिण में कन्याकुमारी और उत्तर में रहें चाहे

कश्मीर में, चाहे पूरब और पश्चिम में, हम एक हैं, एक मुल्क है, जिसको कोई तोड नही सकता, जिसको हम किसी को तोडने नही देंगे। हम और आप हिन्दुस्तान के वाशिन्दे है, हिन्दुस्तान के नागरिक है, सिटीज़न है। हम खाली इस मोहल्ले के नही हैं, और इस शहर के नही है और इस प्रदेश के नही हैं और उत्तर के नही, और दक्षिण के नही, और पूर्व और पश्चिम के नही। और यह बात सब समझ लें कि जो हमारे खिलाफ हाथ उठाएगा और हिन्दुस्तान की जनता को कमज़ोर करने की कोशिश करेगा, उसका हमें मुकाबला करना है। चाहे कोई बाहर की ताकत हो या अन्दर की। क्योंकि यह बात अव्वल बात है। हिन्दुस्तान की एकता और हिन्दुस्तान की आज़ादी—यह पहली बात है, क्योंकि अगर यह बात नही है तो हिन्दुस्तान की खुशहाली कैसे होगी ? जो हम कहते हैं कि हम अपने मुल्क को समाजवाद की तरफ ले जाएगे, तो यह खुशहाली का सवाल है। माना हमारे पैर फिसले, हमसे कमज़ोरी हुई, गलतिया हुई और होगी। गलती से कौन बच सकता है ? लेकिन जिस चीज़ की जरूरत है—वह यह कि हमारे दिल और दिमाग में एक आग जलती रहे, एक चीज हमे धकेलती रहे एक तरफ। अगर हम ठोकर खाकर कही गिरें तो फिर उछल कर, उठ कर आगे बढ़ने की हममें ताकत हो।

कुछ लोग समझते हैं कि वह जमाना खतम हो गया जब कि हिम्मत की, बहादुरी की, जरूरत थी जब कि हम भी एक ज़बर्दस्त साम्राज्य की ताकत के, शान के खिलाफ जोश दिखाते थे। इस धोखे मे कोई न पडे। अभी इस मुल्क में जान है, और पहले से ज्यादा जान है। हम गफलत में कभी पड जाते हैं और हमारे लोग उस गफलत में पड कर बडी बाते भूल जाते हैं। शायद अच्छा है कि और हमारे ऊपर सदमे हो, और हमारे ऊपर चोट हो, जो हमें फिर याद दिला दे कि हम क्या चीज़ है ? हमारा मुल्क क्या है ? हमारा क्या कर्तव्य है, और क्या फर्ज है ? और सही रास्ते पर हम आए।

इस दिन जो इस तारीख को हम यहा आते हैं, इस तारीखी किले के ऊपर, जो कि एक ज़माने से निशानी हो गया है यह किला निशानी था, हमारी गुलामी का, और अब निशानी है हमारी आज़ादी का। हम यहा खाली एक फर्ज अदा करने के लिए जमा नही होते हैं। हालाकि एक फर्ज है अपने को फिर से याद दिलाने का कि क्या हमने प्रतिज्ञा ली, क्या इकरार किया, क्या अहदनामे हमने लिए, आगे किस रास्ते पर हमें चलना है, ताकि हम अपने इकरार को पूरा करें, इसलिए हम उन लोगो की याद करने आते हैं, जिन्होने हमें यहा तक पहुचाया, और खासकर उस महापुरुष की, गाधीजी की, याद करने, जिसने हमें रास्ता दिखाया। बहुत सारे बच्चे यहा हैं, नौजवान भी हो, जिन्होने उनको देखा नही, जिनके लिए वह एक कहानी हैं, हमारी सारी आज़ादी की तहरीक एक कहानी हो गई है। कहानी तो होगी, ऐसी कहानी, जो सैकडो हज़ारो बरस रहे। लेकिन वह खाली कहानी

नहीं है, बल्कि एक सबकनामा है जिससे हमेशा हम सबक सीखें और जब हम गलत रास्ते पर जाने लगें उसको याद करें, और खासकर याद करें गांधी को, जिसने हमारे मुल्क को खड़ा किया और आज़ाद किया और उसके ऊपर अपनी जान न्यौछावर की।

मेरे साथ आप भी तीन बार मिल कर जय हिन्द कहें।

1958

जय हिन्द!
जय हिन्द!
जय हिन्द!

सच्ची आज़ादी–गांवों की आज़ादी

आज फिर आप और हम यहां एक सालगिरह, अपने आजाद हिन्द की सालगिरह, मनाने के लिए जमा हुए हैं। आज फिर हमें कुछ पीछे मुड़ कर देखना है कि हमने क्या किया? और कुछ आगे देखना है कि क्या हमें करना है? बारह बरस हुए। इस मुल्क के, इस कौम के हज़ारों बरस के इतिहास में बारह बरस बहुत कम ज़माना है। यहां, दिल्ली के इधर-उधर की मिट्टी ने और पत्थरों ने हज़ारों बरसों को आते और जाते देखा और अब इन बारह बरसों को भी देखा, जिसमें आपने, हमने और हिन्दुस्तान के रहने वालों ने पुराने ज़माने से, पुरानी मुसीबतों से, पुरानी गरीबी से अपने को निकालने की कोशिश की। मुश्किल काम था, गुलामी को दूर करने से ज्यादा मुश्किल था, क्योंकि इसमें अपनी कमज़ोरियों को निकालना था, और पचासों पुराने बोझे जो हमारी पीठ पर थे, उनको हटाना था। बारह बरस में क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, वह आपके सामने है। बहुत, अच्छी बातें हुईं, कुछ बुरी बातें हुईं। बहुत बातें हुईं, जो मैं समझता हूं, भारत के आइन्दा के इतिहास में लिखी जाएंगी, और ऐसी बातें भी हुईं, जिन्होंने हमें कमज़ोर किया, या जिनसे हमारी कमज़ोरियां ज़ाहिर हुईं।

तो फिर आज हम और आप इस लाल किले के पास यहां मिले, और हमने अपने झण्डे को फिर से फहराया। तो आपके दिलों में क्या बात है? आप आइन्दा के लिए क्या सोचते हैं? इन बारह बरसों में काफी कठिनाइयों का, मुसीबतों का सामना हमने बाहर से, अन्दर से किया। प्रकृति की भी भेजी हुई काफी मुसीबतें हमारे ऊपर आईं। कभी बाढ़, कभी अकाल, कभी फसलें खराब हुईं। हमारी अपनी कमज़ोरियों ने भी हमारा काफी पीछा किया। इसी में लोगों ने गलत रास्ते अपनाए। अपने लोभ में, खुदगर्ज़ी में, वे भूल गए कि कौम का और जाति का फायदा किसमें है? वे भूल गए कि हम बड़े कामों में लगे हैं। इस मुल्क को फिर एक शानदार और बड़ा मुल्क बनाना है और उन्होंने वक्ती खुदगर्ज़ी में फंस कर कौम को, जाति को हानि पहुंचाई। आप लोग आजकल भी कुछ दिक्कतों में हैं, परेशानियों में हैं। महंगाई की और इस तरह की बातें। कुछ तो लाचारी है, पूरी तौर से हमारे काबू की बात इस समय नहीं है। हालांकि काबू में वह आएगी। मुसीबतें हैं—कुछ इनसान की बनाई हुई, इनसान की खुदगर्ज़ी की बनाई हुई। जो भी कुछ हो, हमें उसका सामना करना है। लेकिन आज के दिन

विशेषकर हमें याद रखना है कि हम क्या हैं, क्या होना चाहते हैं किस रास्ते पर चलना चाहते हैं?

फिर से ज़रा बारह बरस पहले के ज़माने को याद करता हूँ जब कि हमारे बड़े नेता गांधीजी हमारे साथ थे और उनकी तरफ़ हम देखते थे। बरसों तक उनकी तरफ़ हमने देखा। बरसों तक हमने उनके रास्ते पर चलने की कोशिश की और उस पर चल कर हमें सफलता मिली। कहाँ तक हमें वे बातें याद हैं? कहाँ तक उनको हम अपने सामने रखते हैं? कहाँ तक हम हर वक्त इस बात को याद करते हैं कि पहला काम हमारे मुल्क में अपनी एकता को बनाना है? क्योंकि अगर हम अलग-अलग टुकड़े-टुकड़े में हो गए, अलग-अलग टुकड़े—चाहे वे सूबे के हों चाहे भाषा के हों चाहे जाति के धर्म के या कोई और हों तब सारी हमारी ताकत खतम हो गई। तब हम गिरते हैं आगे नहीं बढ़ते। तब बजाय इसके कि आइन्दा का हमारा इतिहास चमकता हुआ हो छोटी-छोटी कौमों की लड़ाई का हो जाता है। इसलिए पहली बात जो हमें याद रखनी है, वह है हमारी एकता और यह कि जो हमारी आपस में पुरानी या नई दीवारें हैं उनको हमें तोड़ना है। और हमें हमेशा अपने मुल्क की भारत की सोचना है। उसके किसी एक हिस्से की नहीं चाहे वह हिस्सा कितना ही भला और अच्छा क्यों न हो। क्योंकि उस हिस्से में अगर कुछ ऊंचाई है तो इसलिए कि वह भारत का हिस्सा है। भारत का हिस्सा न होने पर उसकी कोई ऊंचाई और अहमियत नहीं रहती। तो यह बात हमें याद करनी है, क्योंकि इस ज़माने में रह कर, टुकड़ों-टुकड़ों में रह कर अपने जाति-भेद के हम इस कदर आदी हो गए कि मिल कर रहने की आदत हमें पूरी नहीं आई। इसको हमें हटाना है और इस पर भी फतह पानी है।

दूसरी बात यह कि आइन्दा हमारा ध्येय क्या था मकसद क्या था? वह आर्थिक है सामाजिक है। हिन्दुस्तान से गरीबी निकालनी है। ये सब बातें कही जाती हैं और सही हैं, लेकिन आखिर किस ढंग से आप इन बातों को मानेंगे? एक सबक गांधीजी ने हमें बताया था और हमने स्वीकार किया कि किस तरह से हिन्दुस्तान के आम लोग आगे बढ़ते हैं। खास लोग बढ़े हुए हैं। उनकी कोई बात फिकर नहीं करनी है। वह अपनी देखभाल भी कर लेते हैं। जब ज़रूरत हो ऊंची आवाज़ से शिकायत भी कर सकते हैं लेकिन जो आम लोग हैं जो अक्सर खामोश लोग हैं और खासकर जो हमारे लोग गांव में रहते हैं उनकी देखभाल कौन करे? कौन उनको उठाए? क्योंकि आप देखिए दिल्ली शहर हिन्दुस्तान का और दुनिया का एक खास शहर है और आप और हम जो दिल्ली में रहते हैं वह एक माने में खुशनसीब हैं, लेकिन दिल्ली शहर हिन्दुस्तान नहीं है हिन्दुस्तान की राजधानी है। हिन्दुस्तान तो लाखों गांवों का है और जब तक ये लाखों गांव हिन्दुस्तान के नहीं उठते नहीं जागते नहीं आगे बढ़ते तो दिल्ली और बम्बई और कलकत्ता

और मद्रास, हिन्दुस्तान को आगे नही ले जाएगे। इसलिए हमेशा हमें अपने सामने इन लाखो गावो को रखना है। किस तरह से वे बढ़ें, किस तरह से वे बढ़ेंगे?

आपकी और मेरी कोशिश से जरूर बढ़ेंगे। लेकिन आखिर मे वे बढ़ेंगे अपनी कोशिश से, अपनी हिम्मत से, अपने ऊपर भरोसा करके। और इस वक्त जो हमारे ऊपर एक मुसीबत आई है वह यह कि हमारे लोग अपने ऊपर भरोसा करना भूल कर समझते है कि और लोग उनकी मदद करेंगे। हमारे गाव वाले तगड़े लोग हैं, भले लोग हैं। उनमें हर वक्त दूसरे की तरफ देखने की एक आदत पड़ गई है कि सरकारी अफसर उनके लिए कुछ कर दें, सरकार उनके लिए कुछ कर दे, बजाय इसके कि वे खुद उठ खड़े हो और काम करें। इसीलिए योजनाए बनीं कि वे खुद करें। विकास योजना, कम्युनिटी डेवलपमेंट वगैरह। और अगर वे ठीक-ठीक चलें, तो भारत के लिए, दुनिया के लिए एक क्रान्तिकारी चीज है। सारे हिन्दुस्तान के साढे पाच लाख गाव जाग उठें। अगर वहा महज सरकारी अफसर काम करते हैं, तब क्रान्ति नही है। तब तो एक मामूली ढग, एक अफसरी ढग है, जो बेजान हो जाता है। किसी कौम में जान अन्दर से आती है, ऊपर से नही डाली जाती है। इसलिए हमारे लिए यह बड़ा सवाल हो गया है। इस मुल्क में, चाहे शहर के रहने वाले हो, चाहे गाव के, चाहे देहात के। हम लोग अपने पैरो पर, टागो पर खड़े हो, अपने सहयोग से काम करें।

हुकूमत को, अफसर को, शासन को जनता की हर तरह से मदद करनी है। लेकिन अफसरो की मदद से कौम नही बढती है। कौम अपने पैरो से बढती है। और यह बात विशेषकर गाव के लिए है। इसीलिए हमने कहा कि सहयोग के जरिए सहकारी समितियो में काम हो कि लोगो की शक्ति बढ़े, लोग मिल कर काम करना सीखें और अपने ऊपर भरोसा करना सीखें। इसके माने यह नही कि जो शासन हो, जो हुकूमत हो, वह हर जगह दखल दे। मैं तो चाहता हू कि हुकमत का दखल कम से कम हो, और लोग अपने हाथ में अपनी बागडोर लें। हा, जो बड़ी उसूली बातें है, वे निश्चय हो। तो यह एक दूसरी बात याद रखने की है। किस गज से हम हिन्दुस्तान की तरक्की नापें? वह एक ही गज है कि किस तरह से यहा के चालीस करोड़ लोग बढ़ते हैं। कौम कैसे बढती है? कैसे गरीब कौम खुशहाल होती है? खुशहाल होती है अपनी मेहनत से।

लोग कोई औरो की खैरात से तो उठते नही, उठते है अपनी मेहनत से। तो, अगर हमारे लोग बढ़ेंगे, तो अपने परिश्रम और मेहनत से, जिससे वह पैदा करें, दौलत पैदा करें, धन पैदा करें, जो मुल्क में फैले। और मुल्क दुनिया के खुशहाल मुल्क हैं। बाज बाज गरीब हैं। खुशहाल मुल्को को आप देखिए, वे कैसे खुशहाल हुए है? मेहनत से और परिश्रम से। चाहे वे यूरोप के हो, चाहे अमेरिका के, चाहे कोई एशिया के मुल्क हो। जो ऐसे खुशहाल है, उन सभी के

पीछे मेहनत है, परिश्रम है, रात और दिन की मेहनत है और एकता है। इन दो चीजों ने उनको बढ़ाया है। बगैर इसके कोई नहीं बढ़ता।

हमारे यहाँ हिन्दुस्तान में अभी काफी मेहनत करने की आदत आम तौर से नहीं हुई है। हमारा कसूर नहीं, आकस्मात से ऐसी आदतें पड़ जाती हैं। लेकिन बात यह है कि हम इतना काम नहीं करते, जितना कि यूरोप वाले या जापान वाले या चीन वाले या रूस वाले या अमेरिका वाले करते हैं। यह न समझिए कि वे कौमें जादू से मालामाल हो गईं—मेहनत से हुई हैं और अक्ल से हुई हैं। तो हम भी मेहनत और अक्ल से बढ़ सकते हैं। कोई और रास्ता नहीं है। कोई जादू से हम नहीं बढ़ सकते, क्योंकि दुनिया इनसान के काम से चलती है। इनसान की मेहनत से सारी दुनिया की दौलत पैदा होती है। चाहे जमीन पर किसान काम करता है, या कारखाने में या दुकान में कारीगर। काम इससे चलता है। कुछ बड़े अफसर दफ्तरों में बैठ कर इन्तजाम करते हैं, वह दौलत नहीं पैदा करते हैं। किसान या कारीगर अपनी मेहनत से दौलत पैदा करते हैं। तो हमें अपने काम अपनी मेहनत को बढ़ाना है।

अभी मुझे खुशी हुई देख कर कि पंजाब के सूबे में काम करने के घंटे बढ़ाए गए, इससे पंजाब की दौलत बढ़ेगी। पंजाब के लोगों को फायदा होगा और किसी का नहीं। हमारे यहाँ छुट्टियांबहुत हैं—इतनी छुट्टियां हैं कि इसमें दुनिया भर में कोई मुल्क हमारा मुकाबला नहीं कर सकता। छुट्टी अच्छी चीज है। यह आदमी को ताजा करती है, लेकिन जरूरत से ज्यादा छुट्टी जरा कमजोर भी कर देती है और काम की आदत भी निकल जाती है।

तो आप जानते हैं कि इस वक्त हम एक दरवाजे पर हैं, तीसरी पंचवर्षीय योजना के। पहली तो हो गई, और उससे हमें लाभ हुआ, फायदा हुआ और ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़े हमारे सामने हमारे सवाल भी बढ़े। सवालों ने हमें घेरा, हमारे हाथ-पैर पकड़े और अक्सर उनका बोझा बहुत जबर्दस्त हो गया। लेकिन हम बढ़े और यह हमारे बढ़ने की निशानी है कि सवाल भी हमारे सामने आए हैं। जो आगे नहीं बढ़ता उसके सामने न सवाल है न जवाब है। आज भी हम सवालों से घिरे हैं, परेशानियों से घिरे हैं, लेकिन ये परेशानियां और ये सवाल एक बढ़ते हुए मुल्क के हैं और यह एक बुनियाद से बढ़ रहा है, हालांकि उसकी तकलीफ भी उठानी पड़ती है।

आज जगह-जगह के बड़े-बड़े लोहे के कारखाने बन रहे हैं। बड़े! क्या माने हैं इसके? यह, कि कोई कारखाना खाली नहीं है, बल्कि यहाँ से एक नई चीज निकलेगी, जिससे हिन्दुस्तान के कोने-कोने में बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे बड़े-बड़े इण्डस्ट्रीज बनेंगे। यह एक बुनियाद होगी कि यहाँ लाखों आदमियों के लिए काम निकले और वे लाखों आदमी अपने काम से दौलत पैदा करें।

इस तरह से आप सारी पचवर्षीय योजनाए देखें। महज एक-एक चीज हमें नही बनानी है, बल्कि हमे आजाद और खुशहाल हिन्दुस्तान की एक जबरदस्त इमारत बनानी है। अभी उसके बनाने में उसकी बुनियाद पडी है और जब तक वह बुनियाद मजबूत न होगी, ऊपर से वह कैसे बनेगी ? बुनियाद दीखती नही है, हालाकि अब दीखने लगी है। तो यह दो पचवर्षीय योजनाओ मे हुआ और हो रहा है। तीसरी जो, डेढ बरस बाद, दो बरस बाद आएगी है, आपके दरवाजे पर है, उसकी अभी से तैयारी हो रही है और मैं चाहता हू कि आप उसको समझें, क्योंकि वह भी कोई आराम का वक्त नही लाएगी। हमें जोर करके उसको भी मेहनत से पूरा करना है। बगैर मेहनत के, बगैर तकलीफ उठाए, कोई कौम बढती नही है। जो लोग नही करते हैं, वह ढीले हो जाते हैं, उनका मुल्क ढीला हो जाता है, उनका कदम हलका हो जाता है।

तो हमारे सामने फिर से इम्तहान है, दुनिया की एक चुनौती है। और दुनिया की नजरें भी किसी कदर हमारी तरफ हैं। यह एक बडा जबरदस्त मुल्क है, जिसने इस जमाने में भी एक ऐसा आदमी, महात्मा गाधी जैसा आदमी, पैदा किया। यही जबरदस्त मुल्क, जिसने महात्मा गाधी जैसे आदमी को पैदा किया, वह अब क्या करता है ? खाली इस बारे में नही कि हम विकास योजनाए और कारखाने बनाए और अपनी खेती की तरक्की करें और अपने यहा गल्ला ज्यादा पैदा करें, बल्कि जो-जो जरूरी बातें है, वे सभी हम करें। लेकिन किस ढग से हम इन बातो को करते हैं ? शान से, सिर ऊचा करके या सिर झुका कर या बुरे रास्तो पर चल कर—यह बात याद रखने की है क्योंकि जो अव्वल, दूसरा और तीसरा, जो भी सबक गाधीजी ने हमें सिखाया, वह सिर ऊचा रखने का है, वह यह कि कभी गलत बात न करें, कभी झूठे रास्ते पर न चले, कभी खुदगर्जी में पड कर मुल्क का नुकसान न करें। यह उनका बुनियादी सबक था, बडो के लिए, बच्चो के लिए। और जिस वक्त हम उसको भूलते हैं, उस वक्त हम गिरते हैं। आज बारह बरस गुजरे और तेरहवें बरस में हम और आप कदम रखते हैं। आप सिर ऊचा करके कदम उठाइए, पैर मिला के आगे चलिए, हाथ मिला के आगे चलिए, और यह इरादा करके कि हमारी जहा मजिल है, वहा हम वक्त से पहुचेंगे।

जय हिन्द !

1959

हमारा ध्येय समाजवाद

कल आपने जन्माष्टमी मनाई थी। आज हम आज़ाद हिन्दुस्तान का जन्म-दिन मनाने जमा हुए हैं। आपको याद है, अब 13 बरस हुए, इसी मुकाम से यह हमारा प्यारा झण्डा पहली बार लाल किले पर फहराया गया था और उसने दुनिया को बताया था कि एक नया मुल्क पैदा हुआ है एक नया तारा निकला है। हमने खुशियां मनाई थीं लेकिन असल में वह इतनी खुशी का दिन नहीं था जितनी पुरानी यादों का दिन। हमने जो प्रतिज्ञाएं ली थीं इकरार किए थे वे कुछ पूरे हुए थे लेकिन पूरे होते-होते नई मुसीबतें नए सफ़र सामने नज़र आए थे। और इसलिए यह ज़रूरी हुआ कि हम फिर से अपने दिल को कड़ा करें, अपने जिस्म को सीधा करें, अपने सिर को ऊंचा करें और कदम आगे बढ़ाएं। एक मंज़िल पूरी हुई, लेकिन सफ़र खतम नहीं हुआ। दूसरी मंज़िल फौरन सामने आई और इस तरह से हम आगे बढ़े ऊंचे-नीचे रास्ते पर कभी-कभी हम ठोकर खाकर गिरे भी लेकिन जब जब हमने अपने पुराने सिद्धान्तों की पुरानी बातों की याद की अपने पुराने बड़े नेता गांधीजी की याद की हममें ताकत आई। आज हम यहां जमा हुए हैं कोई तमाशे के तौर पर नहीं तमाशा देखने या दिखाने के लिए नहीं बल्कि पुरानी बातों को याद करने और आगे देखने के लिए—इसलिए कि फिर से हम पुरानी प्रतिज्ञाएं अपने सामने रखें। हमें आज़ादी मिली परिश्रम से कुरबानी से मेहनत से सब बातों से लेकिन अगर आप समझें कि आज़ादी मिलने के बाद कौम का काम खतम हो जाता है तो यह एक गलत विचार है। आज़ादी की लड़ाई हमेशा जारी रहती है, कभी उसका अन्त नहीं होता हमेशा उसके लिए परिश्रम करना हमेशा उसके लिए कुरबानी करनी पड़ती है, तब वह कायम रहती है। जब कोई मुल्क या कौम ढीली पड़ जाती है, कमज़ोर हो जाती है, असली बातें भूल कर छोटे झगड़ों में पड़ जाती है, उसी वक्त उसकी आज़ादी खिसकने लगती है। इसलिए जैसा मैंने आपसे कहा—आज का दिन कोई तमाशे का दिन नहीं है। यह एक फिर से इकरार लेने का दिन है फिर से प्रतिज्ञा करने का फिर से ज़रा अपने दिल में देखने का कि हमने अपना कर्तव्य पूरा किया कि नहीं!

पहला कर्तव्य पहला फ़र्ज़ किसी मुल्क के लिए, किसी कौम के लिए, क्या होता है? पहला फ़र्ज़ है, अपनी आज़ादी को मज़बूत करना और उसे कायम रखना क्योंकि इसके अलावा अगर इसको आप दूसरा दर्जा दें तो और चीज़ें भी मिट

जाती हैं। इसलिए हर बात को इसी गज से नापना होता है कि यह चीज हमारे मुल्क की आजादी को, हमारे मुल्क की एकता को कायम रखती है कि नहीं और हमारे मुल्क की तरक्की करती है कि नहीं ? अगर हममे से कोई इस बात को भूल जाए और दूसरी बातों को सामने रखें, अगर हममे से कोई मुल्क को भूल कर, अपने सूबे को अपने प्रान्त और प्रदेश को, सामने रखें, अगर हम कभी इस सम्प्रदाय में या कभी दूसरे सम्प्रदाय मे जाए, अगर हम अपनी जाति को और कास्ट को मुल्क से आगे रखें, अगर हम अपनी भाषा को मुल्क से आगे रखें, तो हम तबाह हो जाएंगे और मुल्क तबाह हो जाएगा। ये सब बातें अच्छी हैं—अपनी जगह पर सब बातें अच्छी हैं। हमारा शहर, है हमारा सूबा है, हमारा मोहल्ला है, हमको मुबारक हो। हमारा खानदान है, परिवार है, हमें उससे प्रेम है लेकिन जहां हमने अपने परिवार को मुल्क के ऊपर रखा, जहां हमने शहर को, प्रदेश को, भाषा को, सम्प्रदाय को, किसी भी चीज को, अपने देश से ऊपर रखा, तो देश फिर से गिरने लगेगा और यकीनन गिरेगा। जब इस बात को याद दिलाने का मौका आया, वक्त आया, मैं आपको याद दिलाता हूं, क्योंकि हम इन बातों को भूल जाते हैं। भूल जाते हैं कि किस तरह से चालीस-पचास बरस की मेहनत, परिश्रम, बलिदान, कुरबानी से हमने अपने देश को ढाला। हमने, मैंने तो नहीं, हमारी कौम ने, गांधीजी के नीचे देश को ढाला और ढाल कर उसे मजबूत बनाया, उसको एक बड़ा हथियार बनाया, शान्तिमय हथियार—जिससे हम स्वराज लें।

स्वराज लेना क्या काम था, स्वराज तो मिल ही जाता, जिस वक्त हमारे मुल्क में एकता आई, एक मुल्क मे परिश्रम करने की ताकत आई, क्योंकि याद रखो कि कोई बाहर का दुश्मन नहीं है, जो हमारा नुकसान ज्यादा कर सकता है, बशर्ते कि हमारा दिल ठीक है, हमारा दिमाग ठीक है, हम मिल कर काम करते हैं और निडर रहते हैं। डर बाहर से कभी नहीं इस मुल्क को हुआ, डर अन्दर से हुआ, अन्दर की कमजोरी से, अन्दर की फूट से, अन्दर की छोटी बातों से हुआ, अलग-अलग हम टुकड़े हो जाए, यह चीज मुल्क को कमजोर करती है। इस चीज ने मुल्क को पिछले जमाने में, सैकड़ों बरसों से कमजोर किया और बाहर के लोगों ने आकर हमें फतह कर लिया, अपनी ताकत से नहीं, हमारी कमजोरी से, हमारी जहालत से वे यहां आए। तो फिर कहीं-कहीं फिर से यह जहालत और यह कमजोरी नजर आती है। कभी जबान के नाम से, कभी भाषा के नाम से लोग मैदान में लड़ने को आने की कोशिश करते हैं, कभी यह भूल कर कि असल चीज, जिसके सामने उन्हें सिर झुकाना है, वह अपना मुल्क है और अपने मुल्क की एकता है। और जो उसको भूल जाता है और जो मुल्क को भूल जाता है, वह मुल्क को नुकसान पहुंचाता है, चाहे कितनी लम्बी-लम्बी बातें वह कहे। अच्छी तरह से यह याद रखने की बात है और महज याद रखने की ही बात नहीं है बल्कि मैं आपसे

कहता हूँ वक्त आया है कि हरेक हिन्दुस्तानी को अपने दिल को टटोल कर देखना है कि वह कहां है ? वह अपने मुल्क की तरफ है या किसी गिरोह की तरफ है ? यह जवाब आपमें से एक-एक आदमी को—एक-एक औरत को और एक-एक बच्चे को देना है। वक्त आ गया है कि इस मामले में कोई ढील नहीं हो इसमें कोई जोड़ नहीं हो इसमें कोई फरेब न हो। इस तरह से हम अलग-अलग लड़ते हैं। हम देखते नहीं कि हमारी सरहद पर क्या होता है—देखते नहीं कि हमारी इस वक्त आजकल की दुनिया में क्या उलट-पलट हो रहा है! क्या नए-नए हथियार हैं! क्या बड़े-बड़े जंगी पहलवान दुनिया में लड़ाई की तैयारी करते हैं और मालूम नहीं कब दुनिया में आग लग जाए ? अगर हम अपने मुल्क की एकता को भूल कर इन सब बातों को भूल कर उन बातों में पड़ें तो फिर आइन्दा जो इतिहास के लिखने वाले होंगे इस जमाने के बारे में वे क्या लिखेंगे ? वे लिखेंगे कि—हां हिन्दुस्तान के लोगों के पास एक बड़ा लीडर, एक बड़ा नेता आया—गांधी और उन्होंने हिन्दुस्तान के लोगों को जो गिरे हुए थे गुलाम थे उनको मिल कर काम करना सिखाया उनको सिखाया कि जो उनके बीच में दीवारें हैं उनको तोड़ देना चाहिए। जो बेचारे नीचे थे गिरे हुए थे हरिजन भाई थे उनको ऊंचा किया क्योंकि उनके सामने यह मकसद था कि हिन्दुस्तान के सब लोग चाहे उनका जो भी धर्म हो, मजहब हो चाहे जो जाति हो वे सब से फायदा उठाएं, सब आजाद हों। आजादी आई, इण्डीपेंडेंस आई। किसके लिए आजादी आई, किसके लिए इण्डीपेंडेंस आया ? क्या यह चन्द लोगों के लिए आई जवाहरलाल के लिए आई कि उसको आपने चन्द रोज के लिए प्रधान मन्त्री बना दिया ? जवाहरलाल आएंगे और जाएंगे और लोग भी आते हैं जाते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान तो बना ही है जाता नहीं है और रहेगा। तो फिर सबके लिए, जो हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ आदमी हैं और औरतें हैं और बच्चे हैं—जो आजादी के हिस्सेदार हैं आखिर हैं—उनको इससे पूरा फायदा मिलना है तब आजादी पूरी होगी। इसी के लिए हमने कोशिश की हम कोशिश करते हैं। इसी के लिए पंचवर्षीय योजना और क्या-क्या बातें आती हैं कि सारे हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ आदमी और औरत हिन्दुस्तान की आजादी में हिस्सेदार हों बराबर के हिस्सेदार हों इसीलिए हम कहते हैं कि हमारा मकसद हमारा ध्येय समाजवाद है, जिसमें सब बराबर हों।

यह एक मुश्किल सवाल है एकदम से नहीं हो सकता क्योंकि उसमें हमारे चार-पांच है, दिक्कतें हैं परेशानियां हैं क्योंकि आप एक आदमी को एकदम से बदल नहीं सकते एकदम से आप चालीस करोड़ आदमियों को नहीं बदल सकते न मुल्क को बदल सकते हैं। लेकिन हर वक्त अगर आप दिमाग में यह तसवीर रखें कि हम किधर जा रहे हैं कि कैसे एक समाज समाजवादी उसूलों पर बनेगा जिसमें सभी को बराबर का अधिकार मिले चाहे वे गांव में रहें या

शहर में रहें, सभी को बराबर की तरक्की का मौका मिले, और उसके लिए हम काम करें और मुल्क की दौलत अपने परिश्रम से, अपनी मेहनत से बढाए और उसको देखें कि ठीक बटती है, या नही—खाली कुछ जेबो मे अटक तो नही जाती—तो यकीनन हम इस मंजिल पर भी पहुचेंगे। इस काम में जमाना लगता है। यह कोई जादू नही है—माला जप के हासिल नही कर लेना है। परिश्रम से, पसीने बहाकर कभी-कभी खून वहाकर भी ये बातें हासिल होती है। तो फिर वह जो इतिहास लिखे, लिखे कि हा, एकदम से, हिन्दुस्तान के लोग ऊपर से लेकर नीचे तक, हिमालय से कन्याकुमारी तक जागे, और उठे। उनका सिर ऊचा हुआ। उनकी पीठ पर जो बोझे थे, बहुत कुछ उन्होंने उतार फेंके। अपने बडे नेता गाधीजी से सबक सीख कर, आगे बढ कर, उन्होंने हिन्दुस्तान को आजाद किया। सैकड़ो बरस बाद हिन्दुस्तान फिर से चमका, फिर से उसकी आवाज उठी और दुनिया ने उस आवाज को सुना और उसमे असर हुआ, क्योकि वह हिन्दुस्तान की, भारत की असली आवाज थी। वे कोई इधर-उधर से लिए हुए नकली नारे नही थे। उसको दुनिया ने सुना और उसकी कदर हुई।

लेकिन बाद को उसी हिन्दुस्तान के उन्ही लोगो ने, जिन्होंने हिम्मत दिखाई थी, एक ख्वाब में पड गए। स्वप्न में, गफलत मे पड कर, आपस में लड़ाई लडने लगे। कही किसी नाम से—कही मजहब का, कही धर्म का, कही जाति का, कही जबान का, कही सूबे का नाम। इन सब बातो में पड कर वे आपस में लड रहे हैं और दुनिया ने यह सोचा कि यह क्या तमाशा है? क्या हमें इनका अन्दाजा करने में धोखा हो गया था? जरा आप आज के दिन खास तौर से सोचें, क्योकि आज का दिन, जैसा मैंने आपसे कहा, तमाशे का नही है, याद करने का है, ध्यान देने का है, दिल में देखने का है, और प्रतिज्ञा करने का है। इसलिए अगर आज के दिन कुछ लोग यह कहें कि हम आज के दिन को नही मानते—इसलिए कि हमें किसी बात का रज है, तो उनका रज सही रज हो सकता है। मैं उसमें नही कहता, लेकिन उससे जाहिर हुआ कि वे छोटी बातो में पडे है, और भूल गए है कि आज के दिन की अहमियत क्या है? और वे यह भूल गए कि हिन्दुस्तान क्या है और भारत-माता क्या है? और दुनिया की हर चीज उससे कम है। चाहे वह कोई चीज हो। चाहे सूबा हो, चाहे भाषा हो, चाहे रज हो, चाहे खुशी हो। इस तरह से हमें इन बातो को देखना है। आपने देखा कि एक तकलीफदेह हादसा हुआ— परेशान करने का हादसा। यह हमारे देश मे हुआ, और प्रदेशो में हुआ और असम और बगाल के हमारे बडे-बडे प्रदेश रज मे, दिक्कत में, मुसीबत में, फस गए। उसको हमें दूर करना है और हम उसे दूर करेंगे, कोई शक नही, लेकिन लोग उसमें पड कर एक दूसरे से रजिश में आकर, दूसरे के डर में आकर, बात को सम्हलने नही देते। यह बात जमती नही।

याद रखिए कि दुनिया में बहुत सारी खराबियां होती हैं लेकिन एक ऐब एक खराबी एक गुनाह, एक पाप, एक कमजोरी जो कुछ कहिए, सबसे बड़ी जो है, वह डर है। डर से ज्यादा बुरी चीज कोई नहीं है क्योंकि जितनी खराबियां दुनिया में हैं सब डर की औलाद हैं। एक दफे एक कौम में या इनसान में डर आ जाए तो फिर और सब खराबियां उसमें आ जाएंगी। वह झूठा होगा, मक्कारी करेगा, हर किस्म की बात करेगा। उसका सिर नीचा होगा, उठ नहीं सकता। और अगर हिन्दुस्तान में ताकत आई थी तो गांधी जी की वजह से। उस आदमी ने हमें ताकत दी थी। इसने दिलों से डर निकाला था। बड़े-बड़े साम्राज्यों का डर निकाला और हमें एकता सिखाई। तो यह क्या बात है कि दुनिया के रहने वाले आप एक दूसरे से डरें, आसाम में या बंगाल में? क्या बात है कि वे उस ख्याल में विचार में पड़ कर परेशान होकर भूल जाएं कि आसाम और बंगाल से बड़ी चीज भारत है, बड़ी है और वह भारत है हिन्दुस्तान है। और जो लोग भारत को भूलते हैं, वे न बंगाल की सेवा करते हैं, न आसाम की सेवा करते हैं। जो लोग आज के दिन भी भूल जाएं कि उनका पहला धर्म और कर्तव्य क्या है उन्होंने धोखे से, गलती से अपने मुल्क के साथ वफादारी नहीं की। हमें यह बात समझनी है और आज के दिन हमें और आप सबको समझना है और इस बात का पक्का इरादा करना है कि हम ऐसी कमजोरियों को अपने मुल्क से हटाएंगे। अब आप इधर देखें—दिल्ली के पास पंजाब है। कुछ दिनों से वहां अजीब तमाशा मचा हुआ है। भाषा के लिए और सूबे के नाम पर। ये बातें अच्छी हैं या बुरी, यह मौका मेरे कहने का नहीं है। लेकिन यह मैं जानता हूं कि जो बातें पंजाब में हुई हैं और जिस ढंग से कार्रवाई हो रही है, वह बुरी है और गलत है और हिन्दुस्तान की आजादी के खिलाफ है। पंजाबी जबान एक शानदार जबान है एक मुबारक जबान है एक ताकतवर जबान है और मैं समझता हूं कि हर पंजाबी को उसे सीखने का हक है और फर्ज है और वह सीखे। अगर वह नहीं सीखता तो वह अपनी एक दौलत को छोड़ देता है। यह चीज हिन्दुस्तान का एक अंग और दौलत है। मेरी समझ में नहीं आता कैसी बहसें छिड़ती हैं हिन्दी और पंजाबी या बंगाली और आसामी सब हमारी बैनी के शोभा हैं जेवरात हैं संस्कृति है। हिन्दुस्तान के बाजी छोटे दिमाग अनपढ़ दिमाग नासमझ दिमाग एक जबान को दूसरी जबान के मुकाबले में खड़ा करते हैं। जो लायक है वह दूसरे से सीखता है दूसरे का मुकाबला नहीं करता। किस ढंग में हम पड़ गए हैं! किन गलतियों में हम आ गए हैं! किस छोटेपन में हम आ गए हैं! हमारा एक बड़ा देश है बड़ी कौम है बड़ा इतिहास है हमारी कौम के हजारों बरस हमारी याद में हैं उसमें अच्छी बातें बुरी बातें दोनों हैं। फिर तो एक नया जमाना शुरू हुआ नया युग शुरू हुआ फिर से कुछ दिमाग हमारे तंग हुए, ऊंच-नीच उठे हुए और हम आगे बढ़े। फिर वही

पुराने झगड़े हमारे दिमाग में डालने, हमारे हाथ-पैर जकड़ने लोग आगे आएं, कोई जाति का नाम लेकर, कोई प्रान्त का नाम लेकर, कोई भाषा का नाम लेकर। भाषा एक चीज है ऊंचा करने की, लड़ाई लड़ने के लिए नहीं। और हिन्दुस्तान का कौन एक सूबा बड़ा हो और कौन छोटा हो, इस पर लोग लड़ाई लड़ें, और हिन्दुस्तान के एक शरीर को घायल करें, क्या इस इस तरह से कोई मुल्क की सेवा करता है? तो उन बातों को आप गौर करें।

हम आजाद हुए। हमारी कोई ख्वाहिश नहीं कि हम किसी दूसरे मुल्क पर, किसी दूसरी जमीन पर, हमला करें। लेकिन हां, उसी के साथ यह भी बात कि हमारी जमीन पर, हमारे घर में हम किसी दुश्मन को नहीं आने देंगे। दोनों बातें साथ चलती हैं, अपनी कदर और दूसरे की भी कदर। लेकिन दूसरा जो हमारी शान के खिलाफ बात करे, उसका मुकाबला हर तरह से होगा। लेकिन हम बाकायदा मन भी किसी दूसरे की जमीन नहीं चाहते, किसी और पर हम दखल नहीं दिया चाहते, क्योंकि हमारा उसूल है कि सारी दुनिया में लोग अपने-अपने मुल्क में, अपनी-अपनी जगह आजाद रहें। एक बड़ी आजादी की ही बात नहीं, हमारा तो उसूल है, आप जानते हैं कि एक-एक गांव में हमने पंचायती राज्य शुरू किया, कि गांव वाले भी आजादी के हिस्सेदार हों और वे खुद अपना प्रबन्ध और इन्तजाम करें।

एक कसर रह गई हमारे इस सिलसिले में—हिन्दुस्तान की आजादी में एक कमी रह गई है और लोग शायद समझते हों कि हमें वह याद नहीं रहती। लेकिन वह हमेशा याद रहती है, और यह कमी पूरी होगी। वह कमी है, हिन्दुस्तान का छोटा सा हिस्सा, जिसका नाम गोआ है। याद रखिए और दुनिया इसको याद रखे कि वह हर वक्त हमारे दिमाग में है और हमारे दिल में है और यह महज हमारी हिम्मत है कि हमने हाथ उठाना रोका है। यह हमारी कमजोरी नहीं है, यह हमारी शान है और हिम्मत है, क्योंकि हम अपने उसूलों पर चिपके हैं कि हम फौज के जरिए से इस बात को हल नहीं करेंगे, लेकिन यकीनन यह हिन्दुस्तान की याद में रहेगा और वह सवाल हल होगा। मैं चाहता हूं कि दुनिया इसको याद कर ले और जो मुल्क गोआ को दबाए हैं, वे भी इसको समझ लें, और याद कर लें, और किसी धोखे में न पड़ें।

जरा आप आजकल की दुनिया को देखें कि किस ढंग की दुनिया है। कैसे फिर से फायदा हो रहा था। हम समझते थे कि हवा अच्छी हो रही है, लेकिन फिर बिगड़ी और एक दूसरे के दिल में विष और जहर फैलने लगा। बड़े मुल्क फिर एक दूसरे को बन्दूक और तलवार, और बन्दूक और तलवार के अलावा जो और बड़े-बड़े हथियार हैं उन्हें भी दिखाने लगे। ऐसी दुनिया है, खतरनाक दुनिया है, भयानक है और जो लोग जरा भी गफलत में पड़ते हैं, वे गिर जाते हैं। जिनमें जरा भी एकता

टूट जाती है, वे कमजोर हो जाते हैं। आज के दिन ये बातें हमें याद करनी हैं। और आज के दिन खासकर हमें उस शख्स को याद करना है, जिसने सबसे ज्यादा हिन्दुस्तान की ताकत बढ़ाई—हिन्दुस्तान की एकता और हिन्दुस्तान को आजाद किया। गांधीजी का नाम हमें याद रखना है। नाम याद रखने से क्या होता है उनका काम उनके सिद्धान्त उनके उसूल याद करना है और उस तरह से हमें अपने मुल्क को बढ़ाना है, क्योंकि हमारा मुल्क कोई छोटा-मोटा मुल्क नहीं है जो जब चाहे इधर-उधर चला जाए। हमारे मुल्क की किस्मत में दो ही बातें लिखी हैं एक शान से दुनिया में सिर उठा कर आगे बढ़ना या फिर गिर जाना। अगर हम कमजोर हैं तो बीच की हैसियत हमारी नहीं रह सकती।

जाहिर है कि हम अपने मुल्क को गिरने नहीं देंगे। यह सवाल नया कब यह मुल्क गिर जाए और हमारी कौमें इसको बर्दाश्त करें। इसलिए दूसरा ही रास्ता हमारे लिए है और वह यह है कि सिर उठा कर मजबूती से कदम मिला कर हाथ मिला कर हम एकता से आगे बढ़ें। इसके अलावा और कोई चारा नहीं है और जो इसके रास्ते में आए, उसको हम रास्ते से हटाएं, क्योंकि हमें बर्दाश्त नहीं है कि हम छोटी-मोटी बातों में हिन्दुस्तान की किस्मत को बेच दें और बरबाद कर दें। लेकिन यह मेरे हाथ में तो नहीं है। आपने मुझे चन्द दिनों के लिए प्रधान मन्त्री बनाया है। मैं आया हूं चला जाऊंगा और मुझमें हजार कमजोरियां हैं। असल में हिन्दुस्तान की ताकत है तो हिन्दुस्तान की जनता में है आप लोगों में है और आप जैसे जो करोड़ों आदमी हिन्दुस्तान में हैं उनमें है। आपको इसको समझना है और आज के दिन समझाना है खास तौर से कि आपका और हम सबका क्या कर्तव्य है? किस तरह से यह जो एक बेशकीमत चीज हिन्दुस्तान की आजादी हमारे हाथ में है जिसके जरिए हम सारे हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ आदमियों को उठाएंगे रख सकते हैं। कहीं अपनी कमजोरी से यह हमारे हाथ से फिसल न जाए, कहीं निकल न जाए। ये कोई चन्द आदमियों की मन्त्रियों की प्रधान मन्त्रियों की बात नहीं है जो मैं आपसे कह रहा हूं। यह हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमियों की एक-एक गांव की बात है। इसलिए मैंने आपसे कहा है कि हम पंचायती राज चाहते हैं। एक-एक पंचायत में वहां के लोग पंच-सरपंच जमते हों। वे आजाद हों और अपने गांव की और मुल्क की हिफाजत करें। इस तरह से सारे मुल्क में मेल करें। यह बात मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं क्योंकि कर्तव्य आपका है मुल्क का है। हमने कुछ दिन खिदमत की कभी ज्यादा कभी थोड़ी हो एक साफ दिल से मैंने कोशिश की लेकिन जो काम इसने अपने आप बगैर मदद के उठाया वह लम्बे से लम्बा आदमी नहीं उठा सकता है।

पंचवर्षीय योजना को आप देखिए, एक तसवीर है एक किताब नहीं है एक कौम के बढ़ने की तसवीर है लेकिन यह मेहनत से परेशानी से परिश्रम से

आप लोगों की कोशिश से और समझने से बढ़ेगी और वह जरूर बढ़ेगी। ऐसे मौके पर जब फिर लोग उसको भड़काएं और और बातों में पड़ें और झगड़े उठाएं तो फिर कैसे उनको हम गलत और गुनाहगार न समझें ? इस बात पर आप गौर करें। और आखिर में मैं फिर दोहराऊंगा कि हरेक हिन्दुस्तानी का पहला कर्तव्य क्या है ? उसका पहला कर्तव्य है कि हिन्दुस्तान की आजादी की एकता को कायम रखना और उसे मजबूत करना। यह आज का खास तौर से सबक है। और आपको हिन्दुस्तान की आजादी मुबारक हो, आपको यह दिन मुबारक हो, जब कि 13 बरस हुए यहां यह झण्डा उड़ा था। और ऐसे दिन एक नहीं, सैकड़ों और हजारों आपको मुबारक हों।

1960

जय हिन्द !

जाते हैं, आते हैं, हमारी सरहदों पर, सीमाओं पर। तो हमें होशियार रहना है, अपने देश की हिफाजत करनी है।

अभी हाल ही हमारी पार्लमेंट में एक छोटी-सी बात हुई। भारत के कुछ गांव, जो एक जमाने में भारत से अलग हो गए थे, हालांकि वे जाहिरा में यहां थे, भारत में मिल गए—दादरा और नगरहवेली। यह इस महान देश का छोटा-सा टुकड़ा है, लेकिन इस महान देश का छोटे से छोटा टुकड़ा प्यारा है और हमारे दिल में रहता है। इसलिए इस छोटे से टुकड़े के वापस आने से हमें खुशी हुई। खुशी महज उसके आने ही की नहीं हुई, बल्कि उससे यह विचार पैदा हुआ कि और कुछ टुकड़े जो इधर-उधर बाकी हैं, उनको भी वापस लाना है और घर में बसाना है। हमारी यह इच्छा नहीं और न हमारी नीति ही ऐसी है कि हम और देशों पर हमला करें, और देश की जमीन पर कब्जा करें या और देश के टुकड़े काट-काट के अपने देश में मिलाएं। आजकल हम पुराने खयाल नहीं चाहते। हम न किसी और देश पर कोई हमला किया चाहते हैं, न कोई दखल दिया चाहते हैं, न अपने देश में किसी के हमले को गवारा कर सकते हैं। उधर-उधर हमला करना पुराने जमाने की बातें हैं। यह जमींदारों, नवाबों का और राजाओं का जमाना था, जो राज को अपनी जमींदारी समझते थे, उसे बढ़ाते-घटाते थे। वह जमाना अब नहीं रहा। नया जमाना आया। लोग अपने-अपने घर में रहें, अपने-अपने देश में रहें और औरों से सहयोग करें। देशों को घटाने-बढ़ाने का जमाना नहीं है। और अगर कोई यह करता है, तो आजकल के जमाने में वह किसी पुराने जमाने का शख्स है। आजकल का जमाना, आप देखिए, कैसा है? हमारी इस पृथ्वी से हवाई जहाज पृथ्वी छोड़ के तारों की तरफ देखते हैं, आते हैं और जा रहे हैं। ऐसे मौके पर आपकी-हमारी और छोटी-छोटी सीमाएं कहां हैं? हमारे आपस के छोटे-छोटे झगड़े कहां हैं? दूसरी दुनिया, दूसरे युग के लिए हमें तैयार होना है। एक तरफ यह बात है और हम तैयार हो रहे हैं। हमारे यहां काफी लोग हमारे नौजवानों में हैं, जो इस नई दुनिया के लिए तैयार हो रहे हैं। वे इस नई दुनिया के जमाने की कोशिश भी कर रहे हैं। लेकिन आज के दिन मैं यह शेखी मारना नहीं चाहता कि इन चौदह बरसों में हमने क्या-क्या किया। हालांकि बहुत बातें हैं, जिससे हमें अभिमान होता है। लेकिन यह ज्यादा अच्छा है कि आज के दिन हम अपनी कमजोरियों की तरफ ध्यान दें।

आज आपने शायद पढ़ा हो, हमारे उपराष्ट्रपतिजी का सन्देश जो समाचार-पत्रों में छपा। उन्होंने विशेषकर ध्यान दिलाया है कि हमारे लोगों में डिसिपलिन होनी चाहिए। और बहुत बातें भी चाहिए, लेकिन डिसिपलिन अव्वल है। डिसिपलिन किसकी? हमारी डिसिपलिन एक फौजी की डिसिपलिन है।

हमारी फौजें अच्छी हैं, बहादुर हैं और उन पर हमें भरोसा है। लेकिन डिसिप्लिन खाली फौजों की ही नहीं बल्कि करोड़ों आदमियों की होनी चाहिए। भारत में कितने अलग-अलग बड़े-बड़े प्रान्त हैं, सूबे हैं, भाषाएँ हैं, बड़े-बड़े मजहब हैं। इनमें अनेकता है, परन्तु फिर भी उसके पीछे जो एक एकता है उसे हमें मजबूत करना है। हमें याद रखना है कि जो पुरुष या स्त्री कोई ऐसी बात करती है जिससे हमारी एकता को चोट पहुँचती है, वह भारत को हानि पहुँचाती है। हमें अपने पड़ोसी को दूसरे धर्म के अपने पड़ोसी को या और हमारे अपने देश के रहने वालों को या भी कोई हो उसको अपनाना है। दुःख की बात यह है कि हम इस सबक को भूल जाते हैं। कभी प्रान्तीयता में पड़ते हैं, कभी साम्प्रदायिकता में कभी जाति-भेद में तो कभी भाषा के सवाल पर झगड़ते हैं। ये सब बातें हैं जिन पर हम सोचें विचार करें, बहस करें और निश्चय करें। लेकिन ऐसी कोई बात जिससे फूट आपस में होती है, जिससे रंजिश पैदा हो जिससे दीवारें खड़ी हों बुरी बात है। इससे हमारे जबरदस्त रास्ते में जिस पर हम तेजी से चल रहे हैं अटकाव पड़ जाते हैं, रुकावटें होती हैं और कौम आगे नहीं बढ़ सकती। याद रखिए कि हमने कौन-सा काम उठाया। यह एक जबरदस्त काम है जितना बड़ा काम दुनिया में कोई और कौम शायद ही उठा सके। 43 करोड़ आदमियों को आगे बढ़ाना है। खाली किसी खास बात में नहीं बढ़ना बहुत सारी बातें हैं। आखिर में एक युग से उसको निकाल के दूसरे युग में ले जाना है एक पुराने जमाने के विचारों से पुराने जमाने के रहन-सहन के तरीकों से पुराने जमाने की गरीबी से निकाल के उसको एक नए जमाने में खुशहाल जमाने में लाना है। हम आजकल के जमाने की बातें समझें काम में लाएँ और उससे अपने मुल्क को बढ़ाएँ। सारे मुल्क की [illegible] खाली खुशहाली ही नहीं बल्कि उसके पीछे जो बातें होती हैं जो दिमाग को ऊँचा करती हैं या इन्सानियत को ऊँचा करती हैं, क्योंकि खाली आरामतलबी से कौमें नहीं बढ़तीं। आपको इन पिछले चौदह बरसों में काफी दिक्कतें हुईं। हम बढ़े हमने आराम भी लिया। काफी दिक्कतें हुईं और यकीनन काफी दिक्कतें होंगी और एक तरह से मैं आपको मुबारकबाद दूँगा उन दिक्कतों को उन कठिनाइयों को सहने के लिए जो हमारे सामने हैं। क्योंकि अगर दिक्कत और कठिनाई न हो और आरामतलबी किसी कौम में आ जाए, तो कौम कमजोर हो जाती है—जैसे अमीर आदमियों के बच्चे निकम्मे और कमजोर हो जाते हैं। हमें इस किस्म का निकम्मापन नहीं चाहिए। हमें तगड़ी कौम चाहिए दिलेर कौम चाहिए और ऐसी कौमें जो एक-दूसरे से मिल के रहती हैं एक-दूसरे को समझती हैं। हिन्दुस्तान को आप देखिए—इस वक्त अजीब तस्वीर है। बड़े-बड़े काम हो रहे हैं, जिससे भारत का सिर

उठता है, पहले से कहीं ज्यादा। करोड़ो बच्चे स्कूल जाते हैं और नई दुनिया का हाल सीखते हैं। लाखों लोग कालेजों में हैं। वे आइन्दा भारत की और दुनिया की सेवा करने के लिए तैयार हो रहे हैं। इसी के साथ हम देखते हैं—आपस के झगड़े, छोटी-छोटी बातों पर वहम और दिल में द्वेष और रंजिश होना।

विशेषकर आपका और मेरा ध्यान इस समय पंजाब की तरफ है, जहां के लोग बहादुर लोग हैं, जहां के लोगों ने पुराने ज़माने में और हमारी आज़ादी की लड़ाई में भी हिन्दुस्तान की काफी खिदमत की है और यकीनन आइंदा भी करेंगे। उनके कितने लोग हमारी फौज में हैं और मशहूर हो गए हैं। लेकिन मुश्किल यह है कि आपस के मनमुटाव, आपस की रंजिश, से उनकी बहुत कुछ ताकत ज़ाया हो जाती है। हिन्दुस्तान के और हिस्सों में भी ऐसी बातें हुईं। हमारे लिए इस वक्त पहला सवाल है पंचवर्षीय योजना का, जिस पर हमें चलना है और काम करके चलना है। देश के करोड़ों आदमियों को हाथ में हाथ मिला के, पैर मिला के चलना है। यह तो हमारा पहला सवाल है ही। लेकिन इस समय इससे भी ज्यादा हमारा मजबूत और जरूरी सवाल यह हो गया है कि हम हिन्दुस्तान में दिलों की एक रूहानी एकता पैदा करें, जो असल में कौम में होनी चाहिए और जिसको हम इण्टिग्रेशन कहते हैं। इस पर विचार करने के लिए अभी यहां हिन्दुस्तान के अलग-अलग सूबों से लोग आए थे। उन्होंने विचार किया और कुछ बातें तय कीं। लेकिन यह तो एक कदम है। यह बात तो हमें पकड़नी है और अव्वल रखनी है। हमारी तरक्की हो और हम बड़े-बड़े कारखाने खड़े करें और तरह-तरह से हम पैसा भी कमाएं, मगर क्या फायदा उससे, अगर हम आपस में लड़ते हैं और निकम्मे हो जाते हैं या मिल कर प्रेम से न काम कर सकते हैं, न चल सकते हैं। यह बुनियादी बात है। मुझे रंज है कि हिन्दुस्तान में कहीं-कहीं ऐसी बातें होती हैं। इस वक्त पंजाब में भी इसकी चर्चा है और बहुत सारे लोग परेशान हैं कि पंजाब में क्या होने वाला है? मैं समझता हूं और मुझे आशा है कि कोई बुरी बात नहीं होगी। लोग समझेंगे। पंजाबी लोग जोशीले हैं। वे आखिर में समझते हैं। यकीनन वे समझेंगे और हमारे दिमागों के सामने यह जो एक धुआं-सा आ गया है, जिससे हम सीधा देख नहीं सकते, उसको हटाएंगे और ताज़ा हवा और रोशनी में उन सवालों को देखेंगे। मुल्क का ऐसा कोई सवाल न है और न होना चाहिए, जिसे हम लड़ाई-झगड़े से हल करें। कोई सवाल नहीं है कि हम भूख-हड़ताल वगैरह करें। ये एक जम्हूरियत के तरीके नहीं हैं। ये प्रजातन्त्र के सवालों को हल करने के तरीके नहीं हैं, क्योंकि उन तरीकों में हम पड़े तो फिर हरेक अलग-अलग कर सकता है। किसकी बात मानें,

किसकी नहीं। हमें समाज का संगठन करना है और हमारा समाज हिन्दू समाज नहीं है मुस्लिम समाज नहीं है सिख समाज या और कोई समाज नहीं हमारा समाज तो हिन्दुस्तानी समाज है जिसमें सब शामिल हैं। इसलिए हमारे सामने पहला सवाल एक-दूसरे को अपनाने का है। उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम सभी तरफ अलग-अलग धर्म हैं। हिन्दुस्तान के बहुत सारे धर्म हमारे देश में पैदा हुए हैं उनमें से कुछ बाहर से आए हुए हैं। लेकिन जो कोई हिन्दुस्तान में है वह भारत का है और हमें उसकी इज्जत करनी है। यह आज की बात नहीं है हजारों बरसों से यह प्रथा रही। यह हिन्दुस्तान की एक कहानी रही है कि हम एक-दूसरे का आदर करें, इज्जत करें—उनके धर्म का उनके रहन-सहन के तरीकों का। हम झगड़ा न करें। अशोक के जमाने का पत्थरों पर लिखा हुआ है। पिछले दो हजार बरसों में हम इसे भूल गए कि हम छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा न करें—कभी भाषा पर कभी धर्म के नाम से कभी जाति के नाम से। जाति-भेद और इस तरह के भेद किसी प्रजातन्त्र में जम्हूरियत में नहीं रह सकते। हमें जाति-भेद को खतम करना है जिसने हमारे समाज के टुकड़े किए। हमें और भेदभावों को भी खतम करना है। अपने-अपने धर्म पर लोग रहें यह ठीक है लेकिन अपने धर्म पर रहने के माने यह नहीं है कि हम दूसरों से अदावत करें, दूसरों से लड़ें और देश को दुर्बल करें। इसलिए अपने-अपने धर्म पर रह के हमें याद रखना है कि हमारा एक बड़ा धर्म है, सभी का और वह भारत का धर्म मिल के रहना मिल कर काम करना और मिल कर आगे बढ़ना और जो चीजें उनके रास्ते में आती हैं, वह अधम धर्म है, चाहे उसको कोई नाम दीजिए—हिन्दुओं का या इस्लाम या सिखों का या ईसाइयों का—सब हमारे देश के हैं। बराबर से हमें देखना और रहना है और बराबर आगे बढ़ना है। आजकल के जमाने में आप किस तरह से इन बातों को आपस में झगड़ के करेंगे। मैंने आपको बताया—आजकल का जमाना है तारों की तरफ देखने का और तारों की तरफ इन्सान के जाने का। मालूम नहीं लोग तारों पर कब पहुँचें। जमाना बदला है और हम जाएंगे। हमारे नौजवान भी जाएंगे और अपनी जान पर खेलेंगे। जो लोग जान पर खेलते हैं वही कौम को आगे बढ़ाते हैं। महज बैठे-बैठे दौलत में पैसा भरने से एक कौम नहीं बढ़ती। हर समय पर पैसे की भी जरूरत होती है, लेकिन इन्सान पैसा पैदा करता है पैसा इन्सान पैदा नहीं करता। हमें इस मुल्क में इन्सानों की और इन्सानियत की जरूरत है जिससे सब लोग अपने सामने इन्सानियत की शान रखें।

दूसरी बात आप दुनिया की तरफ आजकल के जमाने को देखें। कभी-कभी लड़ाई के ढोल सुनाई देने लगते हैं—लड़ाई की तैयारी लड़ाई के हथियार, आजकल

के ज़माने के हथियार जो दुनिया को तबाह कर दें। एक दफा अगर आप उन्हें खोल दें तो ऐसे हथियार रोज़-ब-रोज़ बढते जाते है। फिर भी दुनिया के बुजुर्गों में दानिशमदी इतनी नही आई कि वे समझौते करे और इन हथियारो को बिल्कुल बन्द और खत्म कर दें क्योकि यह एक साबित बात है कि आजकल के बडे हथियारो से दुनिया के सवाल हल नही होते, खाली दुनिया तबाह होती है। उससे किसी की कोई जीत नही होती। दुनिया का कब्रिस्तान हो गया, जीत तो नही हुई। यह हालत दुनिया की है। खैर, दुनिया को हम क्या सभाहालें, हमें तो अपने को सभाहालना है। ऐसी हालत में, जब दुनिया के सामने ये खतरे है, हम क्या करें? जाहिर है, हम अपने रास्ते पर रहें, हम कोशिश करें, जहा तक हो सकता है, कुछ अपनी आवाज से, अपनी खिदमत और सेवा से दुनिया को लडाई से रोकें। लेकिन दुनिया को तब रोके जब हमारा कुछ असर हो, जब हम अपने घर मे ऐसी हवा पैदा करें, ऐसी फिज़ा पैदा करें। अगर हम अपने घर मे अपने झगडो पर ही लडते-झगडते है, फिज़ा खराब करते हैं, हवा गन्दी करते है तो हम कभी अपनी क्या खिदमत करेंगे? दुनिया की क्या खिदमत करेंगे? इसलिए आपसे और इस समय आपके जरिए से हिन्दुस्तान के लोगो से मेरी यह प्रार्थना है कि वे आजकल के ज़माने को समझें, आजकल के हिन्दुस्तान को समझें, क्योकि हिन्दुस्तान एक नया हिन्दुस्तान है और वह दुनिया की तरफ कदम उठा रहा है। नई सीमाएं है जिनको हमें पार करना है। इस तरह से पुराने झगडे, पुरानी बातें तय नही हो सकती। असल बात यह है आजकल जो हिन्दुस्तान में हैं, वे लोगो के दिमागो को किस तरह देखते है। सवाल यह है कि हम एक पुराने गढे में पड़ें या उससे निकल कर मैदान में आए और मैदान में आकर फिर पहाडो पर, इनसानियत की चोटियो पर चढ़ें। हम आजकल के ज़माने में रहें या पुराने ज़माने में पडे रहें। असली सवाल हिन्दुस्तान के सामने यह है। पञ्चवर्षीय योजना वगैरह इसके हिस्से है। तो इसको आप भी समझें और देखें कि यह कैसे हल हो सकता है। इस रास्ते पर हमे कौन चला सकता है? क्या हम अपने झगडो में फसे रहें, चाहे कोई भी झगडा हो। चुनाव आने वाला है, क्या हम उसके झगडे में पड जाए? चुनाव आते है और जाते है, लेकिन कौम चलती जाती है और कौम के उसूल चलते जाते है। अगर कौम ने ठीक तौर से चलना, एक-दूसरे को अपनाना और मिल के चलना नही सीखा और हम झगडते रहे तो आप चुनाव से क्या कर देंगे? कोई जीते, कोई हारे, मुल्क तो रहेगा। हमारे सामने सवाल एक दल की जीत और हार का नही, बल्कि एक कौम की जीत का है, एक मुल्क की जीत का है। हिन्दुस्तान की जीत का सवाल है। मैने आपसे दरख्वास्त की, आप

देखें और हिन्दुस्तान भर के लोगों से मेरी यही दरख्वास्त है और विशेषकर पंजाब के लोगों से बुजुर्गों से—बुजुर्ग सिख हों हिन्दू हों और भी जो लोग हों—वे इस ढब से देखें तंगख्याली से नहीं महज एक जज़बात में बहक के नहीं गलत जज़बात में बहक के नहीं। क्योंकि आप देखिए, एक अच्छी बात भी बुरी हो जाती है अगर बुरे रास्ते पर चल के हमने कोशिश की।

गान्धी जी का एक बड़ा सबक यह था कि इस तरह हम कोई अच्छा काम नहीं कर सकते। अगर बुरे रास्ते पर जाना है तो काम बुरा हो जाता है। इसलिए मैं उम्मीद करता हूं कि इस जमाने में हिन्दुस्तान के बसने वालो तारीखी जमाना है आपको हमको ज़िन्दा रहना मुबारक हो। ऐसे तारीखी जमाने में जब हिन्दुस्तान की और दुनिया की तारीख लिखी जा रही है—कैसे लिखी जा रही है? कलम से लिखने वाले बाद में आएंगे—हम अपने काम और परिश्रम और अपनी एकता से इस तारीख को लिखें जैसे पिछले जमाने में लिखी। ऐसे वक्त में क्या हम छोटी बातों में पड़ के बह जाएं और इसको भूल जाएं। छोटी बातें भी इस तरह से हल नहीं होंगी। झगड़े के रास्ते पर चल कर कोई सवाल बड़ा सवाल हल नहीं होता। हम नई दुनिया का नया आफताब जो निकल रहा है, उसकी तरफ देखें और उसकी तरफ वर्गों और मुल्क भर को ले जाएं क्योंकि आज नहीं पचास बरस से ज्यादा एक जमाना हुआ जब मैंने और आपके बुजुर्गों ने एक नए हिन्दुस्तान के आज़ाद हिन्दुस्तान के नए ख्वाब देखे। हमारे ख्वाब पूरे हुए, बहुत कुछ पूरे हुए। बहुत कम ऐसा मिलता है कि हमारे स्वप्न पूरे हों लेकिन हुए। उसको देख के खुशी है लेकिन अभी मंज़िल पूरी नहीं हुई, बहुत बातें करनी हैं। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैली हुई हिन्दुस्तान की जो एक जबरदस्त कौम है वह एक हो उसमें एकता हो उसमें ऊंचाई हो, बड़े दिल की हो बड़े दिमाग की हो और आपस में सहयोग जाने और लोग खुशहाल बनें। हम उसकी कोशिश करते हैं। चालीस करोड़ आदमियों को उठाना और उनका अपनी ताकत से खुद उठना और पुरानी कमज़ोरियों को निकाल फेंकना ऊंच-नीच की कमज़ोरियों को निकाल फेंकना छोटा काम नहीं है। हम सबको बढ़ने का बराबर का मौका देना चाहते हैं। अगर मज़हब हमें लड़ाते हैं एक-दूसरे से हिकारत सिखाते हैं तो मज़हब बुरे हैं। ऐसा मज़हब मज़हब नहीं है झूठ है। हमें अपने धर्म को इस तरह से रखना है। जो चीज़ हमें अलग करती है उसको छोड़ना है। नाप-तौल करने का एक तरीका मैं आपको बताऊं। जो काम आप करना चाहें सोचें कि इससे चीज़ें जुड़ती हैं या टूटती हैं। अगर जुड़ती है तो अच्छी बात है। अगर लोग अलग होते हैं टूटते हैं टुकड़े होते हैं तो यह बुरी बात है। बच्चे भी समझ लें बड़े बुजुर्ग भी समझ

तें क्योंकि हिन्दुस्तान के लिए, मैं आपसे कहता हू, सबमे अव्वल बात इस वक्त आपस मे मिलना है—पैरो की डिसिप्लिन नहीं, दिलो की डिसिपन्लिन दिमाग की डिसिप्लिन, दिमागी एकता और मानसिक एकता। यह सबमे बड़ा सवाल है। जो उसके रास्ते में आते हैं, वे गलत हैं, चाहे मजहब का जामा पहन के या कोई और पोशाक पहन के आए। इसको आप याद रखें। यहा बहुत सारे बच्चे बैठे है। ये बच्चे क्या है? ये बच्चे कल के हिन्दुस्तान हैं, कल के भारत हैं जिसके लिए हम आज काम कर रहे है। ये वे लोग हैं जो बढ कर भारत होंगे, जैसे आजकल आप और हम हैं। उनके लिए दुनिया बनानी है और उनको समझाना है। कैसी शानदार दुनिया में और कैसे शानदार भारत मे वे पैदा हुए हैं। उनकी मेहनत से और अपनी मेहनत से हम इसको और अच्छा बनाए। हममें जो पुरानी खूबिया हैं, उन्हें याद रखें, फिर से लाए और नई खूबिया लाए। साइस की नई दुनिया पर हावी होकर चीजो को काबू में लाए और जो अन्दरूनी चीजे हमें अलग करती हैं, जो भी कुछ हो, उनको हम हटाए और मिल कर एक बडा परिवार होकर आगे बढें।

तो आज का दिन, आज की चौदहवीं सालगिरह आपको और हमको मुबारक हो। आपका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हू कि हमारे राष्ट्रपति जी की कुछ दिनो से तबीयत अच्छी नही है, वह बीमार हैं। पहले से कुछ अच्छे हैं, लेकिन फिर भी बीमार हैं। उनकी तरफ ध्यान जाता है और हम सब लोग, आप और हम और देश भर, आशा करते है कि वह जल्दी अच्छे हो जाएगे और जो महान सेवा उन्होंने उम्र भर अपने देश की की है, उसको बहुत दिन तक जारी रखेंगे।

1961

जय हिन्द!

भारत की रक्षा करेंगे

आप में जितने बच्चे यहां बैठे हैं, उनको तो उस ज़माने की कोई याद भी नहीं होगी जब हिन्दुस्तान में आज़ादी नहीं थी। जो आप में जवान हैं वे उस वक्त नाबालिग बच्चे होंगे। उन्हें बहुत याद न हो। पन्द्रह बरस हो गए जब कौम ने हमारे देश ने करवट ली और एक नया युग शुरू किया। पन्द्रह बरस हुए और आज उसका जन्म-दिन है और हम उसको मनाने को यहां जमा किये गए हैं। जो पहली निशानी थी आज़ादी आने की यहां झण्डा फहराने की। तो य पन्द्रह बरस आपको मुबारक हों हम सभी को। लेकिन इस पन्द्रह बरस में क्या हुआ क्या-क्या हमने किया और क्या-क्या हमने नहीं किया जो हमें करना चाहिए था। आप जानते हैं हजार दिक्कतें पेश आईं और हमारे मुल्क के सामने बहुत काफ़ी दिक्कतें थी भी हैं। बहुत कुछ हमने किया और बहुत कुछ यकीनन आप लोग और हम मिल कर करेंगे क्योंकि हम आज़ाद हुए तो यह कोई महज़ एक ऊपर की कार्रवाई नहीं थी। यह एक सपना था जो कौम में करोड़ों आदमियों में उठा था और जिसने यह नतीजा हासिल किया। यह चीज़ अपना काम पूरा करके रहेगी और उस काम को पूरा करने के माने हैं—मुल्क में जितने लोग हैं वे खुशहाल हों वे एक ऐसे समाज में रहें जिसमें बराबरी हो ऊंच-नीच बहुत कम हो। यह एक समाजवादी समाज हो जिसमें जात-पांत का भी फ़र्क न हो। ऐसा समाज हम चाहते हैं। इसको बनाने की कोशिश है, लेकिन उस कोशिश के शुरू में भी काफ़ी दिक्कतें हुई और हैं। उनका सामना करना है। सामना हमने बहुत बातों का किया। याद है आपको इसी दिल्ली शहर में आज़ादी के बाद जो मुसीबत आई जो हौलनाक बातें हुईं, उनका भी सामना हमने किया और उनको भी काबू में लाए। तो उसके बाद और क्या होगा जो हमें हिलाए या हममें घबराहट पैदा करे।

आजकल भी आप देखें मुल्क के पचासों सवाल हैं। बहुत कुछ हम तकलीफ़ें भी होती हैं और हमारी सरहदों पर भी हमें होशियार रहना है क्योंकि सरहदों पर ऐसे लोग मौजूद हैं जो हमारे मुल्क की तरफ़ बुरी आंखों से देखते हैं और हमलावर होते हैं। इसके लिए कोई भी कौम जिन्दादिल कौम चाहती रहती है और वह उसका सामना करने को उसे रोकने को तैयार रहती है। आप जानते हैं कि हमारा शुरू शुरू से अपने मुल्क में तथा बाहर के मुल्कों के साथ शान्ति का अमन का रहा है। हमने सब मुल्कों से दोस्ती की कोशिश की और उसमें बहुत दर्जे कामयाब

गी हुए। लेकिन फिर भी एक बदकिस्मती है कि हमारी सरहदों पर हमारे जो भाई रहते हैं वे लोग हमारी तरफ इस गलत निगाह से देखें और कभी-कभी लड़ाई की चर्चा करें। हमें फिर भी घबराना नहीं चाहिए, हमारे हाथ-पैर फूलने नहीं चाहिए लेकिन हमेशा होशियार रहना चाहिए, तैयार रहना चाहिए, तगड़े रहना चाहिए। इसी तरह हम हर मुसीबत का सामना कर सकते हैं। मुल्क के अन्दर हमारी ताकत कैसे बढ़ती है? ताकत के लिए मुल्क को बचाने को फ़ौज है और चीजें भी हैं। लेकिन आखिर में आजकल के मुल्कों को एक कौम बनाती है। कौम काम करके, मेहनत करके, वह कौम जिसमें एकता हो, वह कौम जो मेहनती हो, वही मुल्क की ताकत बढ़ाती है, चाहे वह खेत में काम करती है या कारखाने में या दुकान में। सब अपना-अपना फ़र्ज़ मेहनत से ईमानदारी से अदा करें ताकि मुल्क की ताकत बढ़े और एकता हो। तब दुनिया में कोई भी उस पर हमला नहीं कर सकता। हमारी कहानी आपस की फूट की रही है, जिसमें बाहर वालों ने फायदा उठाया। अब तो यह नहीं होनी चाहिए। बहस की छोटी-छोटी बातें होती हैं। खैर, बहस हो, ठीक है। बहस में तो कोई हर्ज नहीं लेकिन हमें हमेशा याद रखना है कि आपस में फूट करना मुल्क के साथ गद्दारी करना है, मुल्क को कमजोर करना है और हम आजादी को, जो इतनी मुश्किल से आई, खतरे में डालना है।

तो मैं चाहता हूं, आज के दिन आपको खास तौर से पन्द्रह बरस पहले के उस जमाने की और उसके भी पहले की याद दिलाऊं जब हमारे मुल्क में आजादी की जंग होती थी और हमारे बीच हमारे बड़े नेता महात्मा गान्धी जी थे। वह हमें कदम-ब-कदम ले जाते थे, हम ठोकर खाते थे, लड़खड़ाते थे, गिरते थे लेकिन फिर भी उनको देख कर हिम्मत होती थी और खड़े हो जाते थे। इस तरह से उन्होंने उस जमाने के लोगों को तैयार किया। इस तरह से उन्होंने एक मजबूत कौम को तैयार किया जिसमें एकता थी, जिसमें सब लोगों में किसी कदर सिपाहीपना था और उन्होंने बड़े साम्राज्य का सामना किया और आखिर में शान्ति से कामयाब हुए। जमाना याद करने की बात है, क्योंकि उससे अपने दिलों को बढ़ाना है कि हमने कैसी-कैसी मुसीबतों का सामना किया था। आजकल के जमाने में छोटी-सी तकलीफ भी हमें बड़ी तकलीफ मालूम होती है। जाहिर है, तकलीफ तो नहीं होनी चाहिए, लेकिन आप और हम बोझ उठाए बगैर हिन्दुस्तान को नया नहीं बना सकते। बोझे बढ़ेंगे और हम उन बोझों को उठा के आगे बढ़ें। खाली हम रंजीदा हो और शिकायत करें तो यह नहीं हो सकता। फर्ज कीजिए इत्तफाक से अगर कोई असली खतरा हिन्दुस्तान की आजादी और हमारी सरहदों पर हुआ तो आपको कितनी तकलीफ उठानी पड़ेगी। इसका ध्यान रखिए। मैं आशा करता हूं, ऐसा नहीं होगा। लेकिन उसके बचाव के लिए हमें आज से ही तैयार होना है, यह नहीं कि इस वक्त तो हम गफलत में पड़ें और उस वक्त सब लोग दिखाएं कि

हम भी बड़े बहादुर हैं। इसलिए हमें इन छोटी बातों को छोड़ना और बड़ी बातों को देखना है और ऐसी कौम को बनाना है जिसमें एकता पक्की तौर से हो। हमारा हिन्दुस्तान बहुत लोगों बहुत मजहबों बहुत तरह के लोगों का है। इसमें हिन्दू हैं मुसलमान हैं, ईसाई हैं सिख हैं, बौद्ध हैं पारसी हैं। याद रखिए हमारे मुल्क में सब बराबर हैं और जो आदमी इसके खिलाफ आवाज उठाता है वह हिन्दुस्तान को धोखा देता है और हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता को कमजोर करता है। हम एक राष्ट्र हैं और जो कोई इस देश में रहता है वह भारतमाता की प्यारी सन्तान है और सब हमारे भाई हैं बहन हैं और एक बड़ी बिरादरी है।

तो इस तरह हमें देखना है कि फिरकापरस्ती से देखने जाति-भेद की तरफ जाने से कमजोरी आती है। जरा आप सोचिए, आजकल का जमाना क्या है। शायद आपमें से बाज लोगों ने रात को देखा हो कि आजकल आसमान में दो नए सितारे घूम रहे हैं। जो आदमी जिन्हें मैंने सितारे कहा दुनिया से अलग होकर दुनिया का सैकड़ों मील का चक्कर लगा रहे हैं। ये रूस से निकले हैं। इसके पहले अमरिका से ऐसे निकलते थे। तो यह कैसी दुनिया है जहां ऐसी बातें होती हैं। सारी दुनिया बदल रही है। इनसान बदल रहा है। नई-नई ताकतें आती हैं और अगर हम इनको न समझें तथा अपनी भलाई, दुनिया की भलाई के लिए इनका इस्तेमाल न करें तो हम पिछड़ जाएंगे। हम खाली ऐंठते और लम्बी-लम्बी बातें करते रहें और दुनिया आगे बढ़ जाएगी। इसलिए हमें समझना है कि हम एक बदलती हुई दुनिया में बदलते हुए हिन्दुस्तान में रहते हैं और अगर हम उसके साथ तेजी से नहीं बदलते तो हम पीछे रह जाएंगे। हमें बदलना है। हमें विज्ञान को बढ़ाना है हमें मेहनत करके इस मुल्क में नए तरीके निकालने हैं कारखाने बनाने हैं खासकर खेती की तरक्की करनी है क्योंकि वह हिन्दुस्तान की जड़ है। यहां के किसान उसकी पीठ हैं या जड़—आप चाहे जो कहें। वे आजकल के औजारों का इस्तेमाल करते हैं और आजकल के हल चलाते हैं। यह नहीं होना चाहिए कि वे हजार बरस पुराने औजार चला रहे हों। दुनिया बदल गई और खेती एक हजार बरस पुरानी रही तो हम पिछड़ जाएंगे। हमें बदलना है। हम बदल रहे हैं।

हमारे यहां पंचायती राज है और तरह-तरह की बातें इतिहास में हो रही हैं जो हमारे करोड़ों आदमियों को जो गांव में रहते हैं हल्के-हल्के बदल रही हैं। सबसे बड़ी बात यह नहीं कि आपने एक बड़ी इमारत देखी या बड़ा कारखाना देखा बल्कि यह कि हिन्दुस्तान के किसान हल्के-हल्के पढ़ाई से किस तरह से बदल रहे हैं। गांव-गांव में उनके बच्चे पढ़ रहे हैं। बहुत जल्दी एक दिन आने वाला है जब कोई बच्चा हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं रहेगा जिसको पढ़ने-लिखने का मौका न मिले।

आजादी के पहले हमारी औसत उम्र बत्तीस बरस समझी जाती थी। इतनी आबादी के बढने के बावजूद अब यह करीब पचास के हो गई है। इसके क्या माने हैं? इसके माने यह नही है कि सब लोग पचास के होते हैं या पचास से ज्यादा का कोई नही होता। यह औसत है। इसके माने यह है कि मुल्क मे आबादी बढने के बावजूद लोगो की सेहत ज्यादा अच्छी है। क्यो? इसलिए कि पहले के मुकाबले में उन्हें खाना अच्छा मिलता है। पहले तो फाकेमस्ती थी, अब नही होती। आज की होती हो, मैं नही कह सकता, लेकिन आम तौर से नही होती। सेहत अच्छी है। सेहत की सबसे बडी बात खाना मिलने की है। एक कौम को खाना मिले, कपडे मिलें, घर रहने को मिले, उसके स्वास्थ्य का, उसकी पढाई का और उसके काम का प्रबन्ध हो। सब बातें हो, यह हमारा ध्येय है। हम छोटी-छोटी बातो में, रोजमर्रा की दिक्कतो मे फसे रहते हैं लेकिन हमे हमेशा याद रखना है कि आजादी के पहले गान्धी जी के नेतृत्व में जो लोग थे, उन्होंने क्या-क्या किया। हम उससे कुछ सबक सीखें। हममें कुछ जान आए और हम उसी रास्ते पर चलें। क्योकि मेरा खयाल है, जिस रास्ते पर महात्माजी ने हमें चलाया था अगरचे हम लोग कमजोर थे, दुर्बल थे फिर भी उन्होंने हममे कुछ हिम्मत भर दी थी, हमें भी कुछ सिपाही बनाया था। उसी रास्ते पर हमे चलना है। सिपाही खाली वर्दी पहन कर फौजी लोग ही नही होते, हरेक आदमी सिपाही होता है जो सिपाही की तरह एक काम को उठाए और उसे करे। हमें सारे हिन्दुस्तान को, बच्चो को और बडो को उधर दिखाना है और याद रखिए, हमारी फौज में हर धर्म के आदमी हैं, हर मजहब के आदमी हैं। फौज मे कोई फर्क नही है, सब बराबर है, सभी को बराबर के अधिकार हैं। हमें इस तरह अपने मुल्क को बनाना है। आज का दिन यो भी शुभ दिन है, आजादी का दिन है, लेकिन आज एक और तरह से शुभ दिन है। आज रक्षाबन्धन है और हम एक-दूसरे को राखी बाधते हैं। राखी किस चीज की निशानी है? राखी एक वफादारी की, एक-दूसरे की हिफाजत करने की, रक्षा करने की निशानी है। भाई बहन की करे, औरो की करे। आज आप राखी, अपने दिल में बाधिए, भारतमाता को। इसके साथ फिर से अपनी प्रतिज्ञा दोहराइए कि आप भारत की सेवा करेंगे, भारत की रक्षा करेंगे, चाहे जो कुछ भी हो। और इस रक्षा करने के माने यह नही है कि आप अलग-अलग बहादुरी दिखाए। यह भी हो सकता है वक्त पर, लेकिन इसके माने यह है कि हम आपस में मिलकर रहेंगे, हम एक-दूसरे का नाजायज फायदा नही उठाएंगे, हम एक-दूसरे की मदद करेंगे, सहयोग करेंगे, सहकार करेंगे और इस तरह से एक ऐसी कौम बनाएंगे जिसको कोई भी हिला न सके। तो आज आजादी के दिन और आजादी तथा रक्षाबन्धन के दिन हम और आप इस समय यहा मिल कर इस पवित्र भूमि में, जहा पन्द्रह बरस हुए पहली बार हमने यह

हम भी बड़े बहादुर हैं। इसलिए हमें इन छोटी बातों को छोड़ना और बड़ी बातों को देखना है और ऐसी कौम को बनाना है जिसमें एकता पक्की तौर से हो। हमारा हिन्दुस्तान बहुत लोगों बहुत मजहबों बहुत तरह के लोगों का है। इसमें हिन्दू हैं मुसलमान हैं ईसाई हैं सिख हैं बौद्ध हैं पारसी हैं। याद रखिए हमारे मुल्क में सब बराबर हैं और जो आदमी इसके खिलाफ आवाज उठाता है वह हिन्दुस्तान को धोखा देता है और हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता को कमजोर करता है। हम एक राष्ट्र हैं और जो कोई इस देश में रहता है वह भारतमाता की प्यारी सन्तान है और सब हमारे भाई हैं बहन हैं और एक बड़ी बिरादरी है।

तो इस तरह हमें देखना है कि फिरकापरस्ती से देखने जाति-पात की तरफ जाने से कमजोरी आती है। जरा आप देखिए, आजकल का जमाना क्या है। शायद आपमें से बाज लोगों ने रात को देखा हो कि आजकल आसमान में दो नए सितारे घूम रहे हैं। दो आदमी जिन्हें मैंने सितारे कहा दुनिया से अलग होकर दुनिया का सैकड़ों मील का चक्कर लगा रहे हैं। ये रूस से निकले हैं। इसके पहले अमेरिका से ऐसे निकलते थे। तो यह कैसी दुनिया है जहां ऐसी बातें होती हैं। सारी दुनिया बदल रही है। इन्सान बदल रहा है। नई-नई ताकतें आती हैं और अगर हम इनको न समझें तथा अपनी भलाई, दुनिया की भलाई के लिए इनका इस्तेमाल न करें तो हम पिछड़ जाएंगे। हम खाली बैठे और लम्बी-लम्बी बातें करते रहें और दुनिया आगे बढ़ जाएगी। इसलिए हमें समझना है कि हम एक बदलती हुई दुनिया में बदलते हुए हिन्दुस्तान में रहते हैं और अगर हम उसके साथ तेजी से नहीं बदलते तो हम पीछे रह जाएंगे। हमें बदलना है। हमें किसान को बढ़ाना है, हमें मेहनत करके इस मुल्क में नए तरीके निकालने हैं कारखाने बनाने हैं खासकर खेती की तरक्की करनी है क्योंकि वह हिन्दुस्तान की जड़ है। यहां के किसान उसकी पीठ हैं या जड़—आप चाहे जो कहें। वे आजकल के औजारों का इस्तेमाल करते हैं और आजकल के हल चलाते हैं। यह नहीं होना चाहिए कि वे हजार बरस पुराने औजार चला रहे हों। दुनिया बदल गई और खेती एक हजार बरस पुरानी रही तो हम पिछड़ जाएंगे। हमें बदलना है। हम बदल रहे हैं।

हमारे यहां पंचायती राज है और तरह-तरह की बातें इतिहास में हो रही हैं जो हमारे करोड़ों आदमियों को, जो गांव में रहते हैं हल्के-हल्के बदल रही हैं। सबमें बड़ी बात यह नहीं कि आपने एक बड़ी इमारत देखी या बड़ा कारखाना बना बल्कि यह कि हिन्दुस्तान के किसान हल्के-हल्के पढ़ाई से किस तरह से बदल रहे हैं। गांव-गांव में उनके बच्चे पढ़ रहे हैं। बहुत जल्दी एक दिन आने वाला है जब कोई बच्चा हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं रहेगा जिसको पढ़ने-लिखने का मौका न मिले।

आजादी के पहले हमारी औसत उम्र सत्ताईस बरस मानी जाती थी। अभी आबादी के बढ़ने के बावजूद अब यह करीब पचास की हो गई है। इसके क्या माने हैं? इसके माने यह नहीं है कि सब लोग पचास के होते हैं या पचास से ज्यादा का कोई नहीं होता। यह औसत है। इसके माने यह है कि मुल्क में आबादी बढ़ने के बावजूद लोगों की सेहत ज्यादा अच्छी है। क्यों? इसलिए कि पहले के मुकाबले में उन्हें खाना अच्छा मिलता है। पहले तो फाकेमस्ती थी, अब नहीं होती। आज भी होती हो, मैं नहीं कह सकता, लेकिन आम तौर में नहीं होती। सेहत अच्छी है। सेहत की सबसे बड़ी बात खाना मिलने की है। एक कौम को खाना मिले, कपड़े मिलें, घर रहने को मिले, उसके स्वास्थ्य का, उसकी पढ़ाई का और उसके काम का प्रबन्ध हो। सब बातें हों, यह हमारा ध्येय है। हम छोटी-छोटी बातों में, रोजमर्रा की दिक्कतों में फंसे रहते हैं लेकिन हमें हमेशा याद रखना है कि आजादी के पहले गान्धी जी के नेतृत्व में जो लोग थे, उन्होंने क्या-क्या किया। हम उससे कुछ सबक सीखें। हममें कुछ जान आए और हम उसी रास्ते पर चलें। क्योंकि मेरा खयाल है, जिस रास्ते पर महात्माजी ने हमें चलाया था अगरचे हम लोग कमजोर थे, दुर्बल थे फिर भी उन्होंने हममें कुछ हिम्मत भर दी थी, हमें भी कुछ सिपाही बनाया था। उसी रास्ते पर हमें चलना है। सिपाही खाली वर्दी पहन कर फौजी लोग ही नहीं होते, हरेक आदमी सिपाही होता है जो सिपाही की तरह एक काम को उठाए और उसे करे। हमें सारे हिन्दुस्तान को, बच्चों को और बड़ों को उधर दिखाना है और याद रखिए, हमारी फौज में हर धर्म के आदमी हैं, हर मजहब के आदमी हैं। फौज में कोई फर्क नहीं है, सब बराबर हैं, सभी को बराबर के अधिकार हैं। हमें इस तरह अपने मुल्क को बनाना है। आज का दिन यों भी शुभ दिन है, आजादी का दिन है, लेकिन आज एक और तरह से शुभ दिन है। आज रक्षाबन्धन है और हम एक-दूसरे को राखी बांधते हैं। राखी किस चीज की निशानी है? राखी एक वफादारी की, एक-दूसरे की हिफाजत करने की, रक्षा करने की निशानी है। भाई बहन की करे, औरों की करे। आज आप राखी, अपने दिल में बांधिए, भारतमाता को। इसके साथ फिर से अपनी प्रतिज्ञा दोहराइए कि आप भारत की सेवा करेंगे, भारत की रक्षा करेंगे, चाहे जो कुछ भी हो। और इस रक्षा करने के माने यह नहीं है कि आप अलग-अलग बहादुरी दिखाएं। यह भी हो सकता है वक्त पर, लेकिन इसके माने यह है कि हम आपस में मिलकर रहेंगे, हम एक-दूसरे का नाजायज फायदा नहीं उठाएंगे, हम एक-दूसरे की मदद करेंगे, सहयोग करेंगे, सहकार करेंगे और इस तरह से एक ऐसी कौम बनाएंगे जिसको कोई भी हिला न सके। तो आज आजादी के दिन और आजादी तथा रक्षाबन्धन के दिन हम और आप इस समय यहां मिल कर इस पवित्र भूमि में, जहां पन्द्रह बरस हुए पहली बार हमने यह

हम भी बड़े बहादुर हैं। इसलिए हमें इन छोटी बातों को छोड़ना और बड़ी बातों को देखना है और ऐसी कौम को बनाना है जिसमें एकता पक्की तौर से हो। हमारा हिन्दुस्तान बहुत लोगों बहुत मजहबों बहुत तरह के लोगों का है। इसमें हिन्दू हैं मुसलमान हैं, ईसाई हैं सिख हैं बौद्ध हैं पारसी हैं। आप रखिए हमारे मुल्क में सब बराबर हैं और जो आदमी इसके खिलाफ़ आवाज़ उठाता है वह हिन्दुस्तान को धोखा देता है और हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता को कमज़ोर करता है। हम एक राष्ट्र हैं और जो कोई इस देश में रहता है वह भारतमाता की प्यारी सन्तान है और सब हमारे भाई हैं बहन हैं और एक बड़ी बिरादरी है।

तो इस तरह हमें देखना है कि फिरकापरस्ती से देखने जाति-भेद की तरफ जाने से कमज़ोरी आती है। ज़रा आप देखिए, आजकल का ज़माना क्या है। शायद आपमें से बाज़ लोगों ने रात को देखा हो कि आजकल आसमान में दो नए सितारे घूम रहे हैं। दो आदमी जिन्हें मैंने सितारे कहा दुनिया से अलग होकर दुनिया का सैकड़ों मील का चक्कर लगा रहे हैं। ये रूस से निकले हैं। इसके पहले अमेरिका से ऐसे निकले थे। तो यह कैसी दुनिया है जहां ऐसी बातें होती हैं। सारी दुनिया बदल रही है। इनसान बदल रहा है। नई-नई ताकतें आती हैं और अगर हम इनको न समझें तथा अपनी भलाई, दुनिया की भलाई के लिए इनका इस्तेमाल न करें तो हम पिछड़ जाएंगे। हम आपसी ऐंठन और लम्बी-लम्बी बातें करते रहें और दुनिया आगे बढ़ जाएगी। इसलिए हमें समझना है कि हम एक बदलती हुई दुनिया में बदलते हुए हिन्दुस्तान में रहते हैं और अगर हम उसके साथ तेजी से नहीं बदलते तो हम पीछे रह जाएंगे। हमें बदलना है। हमें किसान को बढ़ाना है, हमें मेहनत करके इस मुल्क में नए तरीके निकालने हैं कारखाने बनाने हैं खासकर खेती की तरक्की करनी है क्योंकि वह हिन्दुस्तान की जड़ है। यहां के किसान उसकी पीठ हैं या जड़—आप चाहे जो कहें। वे आजकल के औजारों का इस्तेमाल करते हैं और आजकल के हल चलाते हैं। यह नहीं होना चाहिए कि वे हज़ार बरस पुराने औज़ार चला रहे हों। दुनिया बदल गई और खेती एक हज़ार बरस पुरानी रही तो हम पिछड़ जाएंगे। हमें बदलना है। हम बदल रहे हैं।

हमारे यहां पंचायती राज है और तरह-तरह की बातें इतिहास में हो रही हैं जो हमारे करोड़ों आदमियों को, जो गांव में रहते हैं हल्के-हल्के बदल रही हैं। सबमें बड़ी बात यह नहीं कि आपने एक बड़ी इमारत देखी या बड़ा कारखाना देखा बल्कि यह कि हिन्दुस्तान के किसान हल्के-हल्के पढ़ाई से किस तरह से बदल रहे हैं। गांव-गांव में उनके बच्चे पढ़ रहे हैं। बहुत जल्दी एक दिन आने वाला है जब कोई बच्चा हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं रहेगा जिसको पढ़ने-लिखने का मौका न मिले।

देश आत्मनिर्भर बने

आजाद हिन्द की सोलहवी सालगिरह पर आज फिर हम यहा जमा हुए है। मुबारक दिन है और आप सब लोगो को मुबारक हो । आपमे से बहुतो को याद होगा 16 बरस हुए, हम पहली बार यहा लाल किले के नीचे जमा हुए थे और पहली बार हमारा कौमी झण्डा यहा से उडा था। वह दिन हम सभी को याद रहेगा, क्योकि उस दिन हमे एक खुशी थी, खुशी का कुछ नशा-सा था। बहुत दिन बाद, बहुत कोशिशो के बाद, बहुत कुर्बानी के बाद भारत आजाद हुआ था। बहुत दिन बाद अधेरी रात खतम हुई और उजाला होने लगा। हमने यह समझ कर बहुत खुशी मनाई थी कि अब हमारे मुसीबत के दिन खतम हुए और अब हम अपने मुल्क को बनाएगे। उसके थोडे ही दिन बाद हमे एक जबरदस्त धक्का लगा। हिन्दुस्तान के दो टुकडे होने पर हगामे मचे, पाकिस्तान में और नई सरहद के इस पार हिन्दुस्तान मे हौलनाक बाते हुई। हमें सख्त धक्का लगा, सबको रज हुआ। लेकिन फिर भी हमने उसका सामना किया और हलके-हलके उस पर काबू पाया। उसी जमाने में थोडे दिन बाद एक हिन्दुस्तानी के हाथ मे हमारे बडे नेता महात्मा जी की हत्या हुई। हमे इससे बडी सजा और कोई नही मिल सकती थी। वह मिली। लेकिन फिर भी हमने सोचा कि इस वक्त वह हमें क्या सलाह देते—महज हाय-हाय करने की नही, बल्कि उन गलत चीजो का, गलत ताकतो, गलत विचारो का और खयालातो का मुकाबला करने की जो मुल्क को तबाह कर दें। हमने—मैं 'हम' कहता हू उसमें आप सब शामिल है—उसका मुकाबला किया और उन विचारो को दबाया भी। हिन्दुस्तान मे फिर से एक नई हवा हुई और हमने सोचा कि अब हम इस हिन्दुस्तान को बचाने में, नया भारत बनाने में, खुशहाल भारत बनाने में सारी शक्ति लगाए जिससे सब लोग उठें और भारत की शक्ति बढे। इधर हमने ध्यान दिया और बडी-बडी योजनाए बनाईं, उन पर काम किया और 10-12 बरस से कर रहे हैं।

मेरा खयाल है और मैं समझता हू, आप भी इससे सहमत होगे कि इन 10-12 बरसो में हिन्दुस्तान की शक्ल बदली है और बदलती जाती है। किस कदर नए-नए शहर [illegible] रो नए कारखाने बने, नई योजनाए हुईं और अगर [illegible] देखें तो पहले के [illegible] कुछ खुशहाली मगर [illegible] ज़िल से बहुत [illegible] यह बात हुई

झण्डा फहराना या फिर इस बात की प्रतिज्ञा करें, इकरार करें कि हम चाहे जो कुछ हो ऐसी कोई बात नहीं करेंगे जिससे भारत के माथे पर धब्बा लगे। हम भारत की सेवा करेंगे।

भारत की सेवा करने के माने क्या हैं? भारत कोई एक तसवीर नहीं है। हमारे दिल में तसवीर तो है, भारत की सेवा करना भारत के रहने वालों की सेवा करना है। जनता की सेवा है जनता को उभारना। बहुत दिन से दबी हुई जनता उभर रही है। उसको मदद करना है। हमें उसे इस तरह से बढ़ाना है। तो हम इसका इकरार करें और इकरार करके इसको याद रखें और इस काम को सच्चे दिल से करने की कोशिश करें हमारा पेशा या काम चाहे जो कुछ हो। सभी के लिए थोड़ा-सा एक अलग काम भी है। वह भारत की सेवा का है और भारत की सेवा के माने हैं अपने पड़ोसियों की सेवा अपने मुल्क वालों की सेवा। सभी को एक समझना है चाहे वह किसी भी मजहब का हो। अगर हिन्दुस्तानी हैं तो वे हमारे भाई हैं। यों तो हमारे बाहर के भाई भी हो सकते हैं, लेकिन खास बात यह है कि वे हमारी बिरादरी के हैं। तो मैं चाहता हूँ कि आप ऐसा करें और छोटे झगड़ों में छोटी बहसों में न पड़ें। राय अलग-अलग होती है। यह ठीक है, राय अलग-अलग होनी चाहिए। जिन्दा कौम है। हम सभी के दिमाग बाँध नहीं देते कि वे एक ही तरह से सोचें एक ही तरह से काम करें। लेकिन खास बातों में अलग राय की गुंजाइश नहीं है। हिन्दुस्तान की खिदमत में अलग राय की गुंजाइश नहीं है। हिन्दुस्तान की रक्षा में हिफ़ाज़त में अलग राय की गुंजाइश नहीं है। यह हरेक का फ़र्ज़ है, चाहे जो कुछ हो। तो इसका आज हम पक्का इरादा कर लें। रोज कुछ याद रखें तो हमारे थोड़े-से काम से थोड़ी थोड़ी सेवा से एक पहाड़ खड़ा हो जाएगा जो भारत को बढ़ाएगा और इसकी हिफ़ाज़त करेगा।

1962 जय हिन्द!

देश आत्मनिर्भर बने

आज़ाद हिन्द की सोलहवी सालगिरह पर आज फिर हम यहा जमा हुए है। मुबारक दिन है और आप सब लोगो को मुबारक हो। आपमे से बहुतो को याद होगा 16 बरस हुए, हम पहली बार यहा लाल किले के नीचे जमा हुए थे और पहली बार हमारा कौमी झण्डा यहा से उडा था। वह दिन हम सभी को याद रहेगा, क्योकि उस दिन हमे एक खुशी थी, खुशी का कुछ नशा-सा था। बहुत दिन बाद, बहुत कोशिशो के बाद, बहुत कुर्बानी के बाद भारत आज़ाद हुआ था। बहुत दिन बाद अधेरी रात खतम हुई और उजाला होने लगा। हमने यह समझ कर बहुत खुशी मनाई थी कि अब हमारे मुसीबत के दिन खतम हुए और अब हम अपने मुल्क को बनाएगे। उसके थोडे ही दिन बाद हमें एक ज़बरदस्त धक्का लगा। हिन्दुस्तान के दो टुकडे होने पर हगामे मचे, पाकिस्तान में और नई सरहद के इस पार हिन्दुस्तान में हौलनाक बाते हुई। हमें सख्त धक्का लगा, सबको रज हुआ। लेकिन फिर भी हमने उसका सामना किया और हलके-हलके उस पर काबू पाया। उसी ज़माने में थोडे दिन बाद एक हिन्दुस्तानी के हाथ से हमारे बडे नेता महात्मा जी की हत्या हुई। हमें इससे बडी सज़ा और कोई नहीं मिल सकती थी। वह मिली। लेकिन फिर भी हमने सोचा कि इस वक्त वह हमें क्या सलाह देते—महज़ हाय-हाय करने की नही, बल्कि उन गलत चीजो का, गलत ताकतो, गलत विचारो का और खयालातो का मुकाबला करने की जो मुल्क को तबाह कर दें। हमने—मैं 'हम' कहता हू उसमें आप सब शामिल हैं—उसका मुकाबला किया और उन विचारो को दबाया भी। हिन्दुस्तान में फिर से एक नई हवा हुई और हमने सोचा कि अब हम इस हिन्दुस्तान को बचाने में, नया भारत बनाने में, खुशहाल भारत बनाने में सारी शक्ति लगाए जिससे सब लोग उठें और भारत की शक्ति बढे। इधर हमने ध्यान दिया और बडी-बडी योजनाए बनाई, उन पर काम किया और 10-12 बरस से कर रहे हैं।

मेरा खयाल है और मैं समझता हू, आप भी इससे सहमत होगे कि इन 10-12 बरसो में हिन्दुस्तान की शकल बदली है और बदलती जाती है। किस कदर नए-नए शहर बने, हजारो नए कारखाने बने, नई योजनाए हुई और अगर आप इधर-उधर फिर कर देखें तो पहले के मुकाबले कुछ खुशहाली नजर आती है। हम अभी तक अपनी मज़िल से बहुत दूर हैं, लेकिन यह बात हुई

है। यह तो बात हुई लेकिन हमारा ध्यान कुछ बुनियादी बातों की तरफ़ से हट गया। हमने समझा कि हम आज़ाद हो गए हैं तो अब आज़ादी हमारी पक्की है और हम गफ़लत कर सकते हैं और कोई हमारे ऊपर इस आज़ादी पर, हमला करने वाला नहीं है। अभी तक हमने पूरे तौर से यह सबक़ नहीं सीखा था कि आज़ादी ऐसी चीज़ नहीं है जो अपने-आप से पक्की रहती है। हमें यह ख़याल नहीं हुआ कि आज़ादी की ख़िदमत हमेशा हर साल दिन और रात करनी होती है और गफ़लत होने से आँखें उधर से हट जाती हैं और उस वक़्त वह खिसकने लगती है और ख़तरे आने लगते हैं। हम गफ़लत में पड़ गए।

हमने अपने को अमन का शांति का एक अलमबरदार बनाया। दुनिया में मशहूर हुई कि हिन्दुस्तान शांति के लिए है। यह ठीक बात थी। हम शांति के लिए थे और अब भी हैं लेकिन शांति के साथ कमज़ोरी नहीं चलती। शांति के साथ गफ़लत नहीं चलती। शांति के साथ मेहनत और ताक़त चलती है। तभी हम उसकी हिफ़ाज़त कर सकते हैं और दुनिया में हमारी आवाज़ की कोई वक़त हो सकती है।

पर साल भर और हम सबको यकायक फिर एक धक्का लगा जब हमारी सरहद पर हमला हुआ। एक मुल्क जिसको हम दोस्त समझते थे उसने चोरी से हमला किया और सरहद पर हादसे हुए। हमें तकलीफ़ हुई, परेशानी हुई। लेकिन उसका भी एक अच्छा नतीजा हुआ। वह यह कि उसने हमें इस गफ़लत से निकाला और सारे मुल्क में एक नई हवा फैली नई हवा चली और लोग तैयार होने लगे। हर तरफ़ एक जोश था और एक कुर्बानी की जा रही थी त्याग किया जा रहा था। मुझे अब भी याद है और आप तो जानते ही हैं कि किस तरह हमारी आम जनता उस समय महीनों तक अपनी हर चीज़ जो उसके पास थी देने के लिए तैयार हो गई। उन्होंने पैसे दिए। हमारे कोष में सोना-चाँदी सब कुछ दिया। सबसे ज़्यादा उन्होंने दिया जिनके पास सबसे कम था। और यकायक हिन्दुस्तान भर में एक हवा फैली जिसमें लोग अपने आपसी झगड़े भूल गए। उनको पीछे कर दिया था छुपा दिया था दबा दिया था और सब लोग महसूस करते थे कि जब हमारा देश ख़तरे में है तो उनका अव्वल काम उसका सामना करने का था उसकी मदद करने का और ख़तरे का सामना करने का था। एकता की हवा फैली और हमने देखा कि ऊपर की नाइत्तफ़ाक़ियों के बावजूद सारे देश में कैसी ज़बरदस्त एकता है जो वक़्त आने पर निकल आती है। हमारी हिम्मत बढ़ी ताक़त बढ़ी और हमने कोशिश की कि मुल्क को जल्दी-से-जल्दी तैयार करें, उसकी ताक़त बढ़ाएँ। क्या माने हैं मुल्क को तैयार करने के? ख़ाली लोगों का जोश काफ़ी नहीं है। फ़ौजी तैयारी के पीछे हज़ार और तैयारियाँ होती हैं—सामान बनाने कारख़ाने बनाने की तैयारियाँ जो फ़ौजी सामान देते हैं।

हवाई जहाजों के लिए हजारों कारखाने और उसके पीछे हिन्दुस्तान की बेशुमार खेती है जहां अनाज पैदा होता है, खाने का सामान वगैरह। यानी उस तैयारी के माने हैं कि हर तरफ से काम हो। हरेक आदमी अपना फर्ज अदा करे और ज्यादा-से-ज्यादा पैदा करे जिससे हमारी आर्थिक हालत मजबूत हो। उधर ध्यान दिया गया और तरक्की हुई और होती जाती है। लेकिन हमारी पुरानी गफलत की हालत फिर कुछ होने लगी, क्योंकि लड़ाई जरा कुछ ठंडी-सी हो गई। लोग आपसी इत्तिहाद और एकता को भूलने लगे। वे अब फिर अपनी पुरानी बहसों, पुराने झगड़ों और मुल्क की कमजोरी की हवा पैदा करने लगे। बदकिस्मती से यह हमारी पुरानी आदत है। जब खतरा बिलकुल सामने नजर आया तो हम उसे भूल गए थे। हम फिर इधर-उधर जाने लगे। लेकिन आप सब जानते हैं कि हमारी सरहद पर खतरा हर वक्त है। आपका और हमारा पहला काम है कि हम उससे मुल्क को बचाएं। उसके बाद फिर और बातें होती हैं। जो देश अपनी आजादी को, अपनी जमीन को बचा नहीं सकता, उसकी कदर दुनिया में कौन करे और तरक्की करने की उसकी ताकत क्या है।

इस वक्त हमारा सबसे बड़ा काम हालांकि मुल्क की ताकत बढ़ाना, मुल्क की पैदावार बढ़ाना, मुल्क से गरीबी निकालना और मुल्क को खुशहाल करना है जिससे हरेक को तरक्की का बराबर का मौका मिले—करोड़ों आदमी जो हिन्दुस्तान में रहते हैं, उनको तथा हमारे बाल-बच्चों को पूरा मौका मिले कि वे अच्छी तरह से बढ़ें, उन्हें सब चीजें मिलें, वे देश की अच्छी सेवा कर सकें—लेकिन ये सब काम उसी वक्त हो सकते हैं जब मुल्क की इज्जत, मुल्क की आजादी कायम रहे। अगर उसमें ढील हो गई तो मुल्क का दिल टूट जाता है, कमर टूट जाती है और मुल्क निकम्मा हो जाता है। तो वह मुल्क, जो आजाद है और आजाद रहना चाहता है, इसको—मुल्क की हिफाजत को—अव्वल रखता है, और सब बातें पीछे हैं। मुल्क की हिफाजत के लिए बहसें नहीं होनी चाहिए, बहस की जरूरत है, दो आवाजों की जरूरत नहीं है। हरेक हिन्दुस्तानी की राय एक ही होनी चाहिए और अगर एक राय है तो उसे यह जानना चाहिए कि उसको, हमें मिलकर कहना है। हमारे मुल्क की एकता सबसे ज्यादा जरूरी है। मुल्क की एकता का यह नक्शा हमने पर साल और इस साल के शुरू में देखा था। लेकिन कुछ दिन तक सरहद पर लड़ाई ठंडी रही तो लोग फिर उसे भूलने से लगे। फिर से वे छोटे-मोटे झगड़े पैदा होने लगे, फिर से अलग-अलग आवाजें आने लगीं, अलग-अलग नुक्ताचीनी होने लगी। यह अफसोस की बात है। हरेक को हक है कि वह नुक्ताचीनी करे, हरेक को हक है कि वह बहस करे—हमारा आजाद मुल्क है, हम किसी को रोकते नहीं, लेकिन हरेक को हक होने के अलावा उसके फर्ज भी होते हैं। और जो कर्तव्य पर ध्यान न दे, वह अपने हक पर कैसे

ध्यान दे सकता है। हरेक का कर्तव्य है, फ़र्ज़ है मुल्क को बचाना मुल्क की एकता बनाए रखना और मुल्क की ताकत बढ़ाना मुल्क की सेवा करना। ये फ़र्ज़ हरेक हिन्दुस्तानी के हैं चाहे उसका कोई मज़हब हो और वह हिन्दुस्तान के किसी भी हिस्से में रहता हो। इसको हम भूलें कि हमारे हक कैसे पा सकते हैं। उनका मांगना कुछ जोरों से नहीं हो सकता। हक तो हरेक के हैं और होने चाहिए। लोगों के बहुत कुछ हक ऐसे हैं जो इस वक्त पूरी तौर से नहीं चल सकते। हिन्दुस्तान में हरेक इनसान को हक है कि वह खुशहाल जिन्दगी बसर करे, उसकी गरीबी निकल जाए, उस पर गरीबी का बोझा न हो और उसके बच्चों को हर तरह से तरक्की करने का मौका मिले। हम कोशिश कर रहे हैं और उम्मीद करते हैं कि वक्त आएगा और हलके-हलके ज़्यादा-से-ज़्यादा आएगा। लेकिन वाकया यह है कि इस वक्त तो हम उस मंज़िल से दूर हैं और उस पर हम तभी पहुंचेंगे जब हम अपने फ़र्ज़ अदा करें।

आपसे मैंने कहा कि मुल्क खतरे में है। मेरा मतलब यह नहीं कि इस वक्त कोई खास बात होने वाली है। लेकिन यह जो नई तसवीर हमारे सामने आई है उसने हमारी सरहदों पर ऐसे नए खतरे पैदा किए हैं जिन्हें हम भूल-से गए थे। यह ठीक है इन खतरों का सामना करने के लिए हम बड़ा फ़ौजें भेजें हवाई जहाज भेजें। लेकिन खाली फ़ौज और हवाई जहाज मुल्कों की रक्षा नहीं कर सकते। आजकल मुल्कों की रक्षा तभी होती है जब पूरे मुल्क के सब लोग सब जनता मर्द और औरत रक्षा के काम में कुछ-न-कुछ करें। सरहदी रक्षा के पीछे सारे देश की शक्ति होनी चाहिए और देश की शक्ति में सबमें पहला काम है—एकता मिलकर काम करना खेती में या कारखाने में या जहां कहीं आप काम करते हों। लोग इसके लिए तैयार हों और मुल्क की ताकत इस तरह बढ़ाएं। इसका नतीजा होगा कि आपकी फ़ौजी ताकत भी मज़बूत हो जाएगी और हर तरह से हमारी शक्ति बढ़ेगी। तो आप यह याद रखें कि हमारे सामने बड़े सवाल हैं। हमारी योजनाओं के सवाल भी बड़े सवाल थे। ये अब बहुत बढ़ गए हैं। दुनिया अजीब है। दुनिया बदलती जाती है। दुनिया में एक तरफ़ बड़ी लड़ाइयां होने के बड़े खतरे रहते हैं जिसमें एटम बम हाइड्रोजन बम चलें। दूसरी तरफ़ कुछ अच्छी हवाएं भी चलती हैं।

अभी-अभी एटम बम के सिलसिले में मास्को में एक सुलहनामे पर दस्तखत हुए जिसमें अमेरिका ने रूस वालों ने और अंग्रेज़ों ने दस्तखत किए। बाद में और लोगों ने भी दस्तखत किए। हमारे मुल्क ने भी दस्तखत किए। यह सुलहनामा लड़ाई का डर नहीं निकाल देता हमारे खतरों को कम नहीं करता लेकिन फिर भी एक रास्ता दिखाता है जिधर चल कर शायद हम ऐसी जगह पहुंच जाएं जब लड़ाई वगैरह काबू में आ जाए और दुनिया शान्ति से रहे। आज से सात-आठ बरस हुए,

हमने यूनाइटेड नेशन्स में इमी बात की तजवीज की थी जिम पर मास्को मे दस्तखत हुए । इस बात को करने के लिए पहली आवाज हिन्दुस्तान की उठी थी । तो हमें खास तौर से खुशी है कि अब उस पर अमल हुआ, वह बात की गई और हम उम्मीद करते हैं कि इस रास्ते पर कदम बढाया गया है तो बढता ही जाएगा और दुनिया आखिर मे इम खतरे से बच जाएगी । हम एक खतरनाक दुनिया में रहते है जिसमें खतरे हैं, जिसमें उम्मीदें हैं । आजकल के नौजवानों और बच्चों के सामने जो जिन्दगी है, उसमें भी दोनो बातें मिली हुई है—उम्मीदें और खतरे । अच्छा है कि हम ऐसे जमाने मे रहते हैं, क्योकि ऐसे ही जमाने मे रह कर एक कौम मजबूत होती है, कौम में हिम्मत आती है । किसी कौम के लिए बहुत आरामतलवी अच्छी नही होती, वह उसको कमजोर कर देती है । हमें हर वक्त चौकन्ना रहना है । तो मैं आपको और खासकर नौजवानो तथा बच्चो को मुबारकबाद देता हू कि वे ऐसे जमाने में हैं और हम सबके सामने उनके बहुत इम्तहान होंगे । ये इम्तहान बनिस्वत उनके ज्यादा बडे होते हैं जो स्कूल और कालेज मे जाकर दिए जाते हैं । जिन्दगी के इम्तहान ज्यादा सख्त हैं, ज्यादा बडे हैं । इस इम्तहान मे कोई एक किताब पढ कर आप पास नही हो जाते, बल्कि आपका चरित्र, दिल और दिमाग ऐसा मजबूत होना चाहिए कि आप किसी खतरे का सामना कर सके और उस पर हावी हो, घबराए नही । तो हमें इस तरह से चलना है और जो आइन्दा साल आते हैं और हमारे आजाद हिन्द की उम्र बढती जाती है तो उसके साथ हमें भी ज्यादा मजबूत होते जाना है और अपने को कभी गफलत मे नही पडने देना है । यह याद रखना है कि चाहे हमारी राय कितनी हो, दो, तीन, सौ, हजार क्यो न हो, एक बात में हमारी राय एक ही है—वह है हिन्दुस्तान की एकता और हिन्दुस्तान की हिफाजत करना और हिन्दुस्तान को खुशहाल बनाना । इसमें दो राय नही हो सकती । हा कुछ राय अलग-अलग हो सकती हैं कि किधर जाना है, किस तरह से करना है । लेकिन इन बातो की बुनियादी राय तो एक होनी चाहिए और हर कदम जो हम उठाए हर बात जो हम करें, उस वक्त हम यह सोचें कि इस बात के करने से हम हिन्दुस्तान की खिदमत करते हैं, हिन्दुस्तान की एकता बढाते हैं, हिन्दुस्तान की रक्षा करने की बातो में मदद करते हैं या उसको कमजोर करते है । यह एक छोटी कसौटी है जो हमें हर बात पर लगानी चाहिए, क्योकि हम अकसर अपने जोश में मस्त हो जाते हैं और पार्टीबाजी या दलबन्दी में पड कर मुल्क के रास्ते को कमजोर कर देते हैं । इन बातो को आप याद रखिए । आगे आने वाले दिन कोई आसान नही नही है, मुश्किल दिन है । आप किसी तरफ से भी देखिए, वे मुश्किल दिन हैं, कठिन दिन हैं ।

जब हमारे सामने सरहद पर यह बड़ा हादसा हुआ था, खतरा आया था,

उसके बाद हमें कई बातें करनी पड़ीं जो हमें अच्छी नहीं लगती थीं लेकिन हम करने को मजबूर हो गए। हमें फ़ौज पर बहुत ज्यादा रुपया खर्च करना पड़ा करीब दुगना शायद दुगने से भी ज्यादा। हमें उस रुपये को टैक्स वगैरह के जरिए से जमा करना था। टैक्सेज बढ़े। टैक्स बढ़ाना किसी को अच्छा नहीं लगता न देने वालों को न बढ़ाने वालों को। लेकिन जब मुल्क खतरे में हो तो फिर जो लोग दो-चार पैसा बचाने में मुल्क के खतरे को भूल जाते हैं वे मुल्क की खिदमत नहीं करते। मुल्क एक चीज़ है जो रहेगा—पैसा आता है जाता है। हम खर्च करेंगे पैदा करेंगे। उस वक्त इसका हर जगह हमारी पार्लियामेंट में और मुल्क में जो जवाब हुआ वह जोरों का हुआ शान का हुआ हालांकि तकलीफ़ भी और परेशानी थी। हिन्दुस्तान पर खतरा आया और उसे खतरे से बचाना है हर तरह से बचाना है चाहे जो भी कुछ देना पड़े चाहे जो भी कुछ तकलीफ़ उठानी पड़े चाहे हम मिट जाएं, लेकिन हिन्दुस्तान रहे। सोना-चांदी आया पैसा आया टैक्स लगे। तो इस बात को याद रखिए, हमें आगे यह नहीं देखना कि कोई चीज़ आजकल खुद अच्छी है या नहीं। बल्कि देखना यह है कि आजकल की हालत में आजकल के खतरे में चाहे वह सरहद पर हो चाहे अन्दरूनी हो किस तरह से उसका सामना करना है। अगर इसका सामना करने में हमें ज्यादा बोझ उठाना है तो जरूर उठाना है। आप जानते हैं कि जब बड़ी लड़ाइयां होती हैं तो कितने जबरदस्त बोझे जनता को उठाने पड़ते हैं मुल्क तबाह हो जाते हैं। हमारे सामने इस वक्त ऐसी लड़ाई नहीं है। कोई यह नहीं कह सकता कि आइन्दा क्या हो। लेकिन उसको दूर करने के लिए हर वक्त भी हमें तैयार रहना है होना है और बोझे उठाने हैं।

हमारा नाम दुनिया में हुआ था कि हम शान्ति पसन्द अमनपसन्द शान्तिप्रिय देश हैं। और यह बात सही है कि इस वक्त जो हम अपनी फ़ौजें बढ़ाते हैं और नौजवानों को कुछ फ़ौजी काम सिखाते हैं तो इसके माने यह नहीं है कि हमने अपने शान्ति के विचार और शान्ति की नीति छोड़ दी है। हम उस पर चलेंगे दुनिया में चलेंगे और हर जगह चलेंगे और किसी देश से हमारा जो झगड़ा है अगर वह शान्ति से खत्म हो जाता है तो जरूर कोशिश करेंगे क्योंकि हमें इस किस्म की लड़ाई पसन्द नहीं है जो मुल्क में तबाही लाए और आम जनता बहुत परेशान हो। लेकिन शान्ति खुद्दारी से ही हो सकती है एक गलत बात के सामने सिर झुका देने और डरने से नहीं। जो लोग डरते हैं वे मुल्क को कमजोर कर देते हैं बदनाम करते हैं। इसलिए हालांकि हम मुल्क की रक्षा की पूरी तौर से तैयारी करें हमारा पथ हमारा रास्ता शान्ति से चलने का होगा। दुनिया में और अपने मुताल्लिक हम जब कभी शान्ति से कोई फ़ैसला कर सकते हैं तब उसको पकड़ेंगे। लेकिन ऐसा न हो जिससे हिन्दुस्तान की शान को धक्का लगे। यह जरूरी बात है और इसलिए हम उसकी पूरी तौर से तैयारी करेंगे और उस तैयारी के माने खाली तोप और बन्दूक और फ़ौज

नहीं है, इस तैयारी के माने मुल्क भर में एक-एक शख्स, मर्द, औरत, लड़का इसके लिए कुछ-न-कुछ दे, तैयार हो, अपने दिल को मजबूत करे, अपने दिमाग को मजबूत करे और साथ मिल कर चले। हमारे मुल्क के बहुत लोग अलग-अलग चलते हैं। हमारे मुल्क में पैर मिला कर साथ चलना बहुत कम लोगों को आता है। पैर मिला कर चलने में कोई खास खूबी नहीं है, लेकिन वह एक साथ काम करने की तसवीर है। फौज की ताकत क्यों है, वे लोग मिल कर काम करते हैं, पैर मिला कर चलते हैं, सब काम मिल कर करते हैं, उनमें डिसिप्लिन है, नियम से करते हैं। तो हमें अपने देश को कुछ सिपाहीपना सिखाना है, सारे देश को डिसिप्लिन सिखानी है। अच्छा है, हम अपने भविष्य के लिए इस तरह से तैयार हों और इस खतरे से जब निकलेंगे तो ज्यादा ताकतवर निकलेंगे, ज्यादा हिम्मत होगी, हमें अपने ऊपर ज्यादा भरोसा होगा और खुशहाली के रास्ते पर हम आसानी से चल सकेंगे। आखिर में मुल्क वही मजबूत होते हैं जो अपने ऊपर भरोसा कर सकें, जो औरों पर भरोसा न करें। औरों से दोस्ती होती है, भरोसा अपने ऊपर होता है। औरों से सहयोग होता है, अपने दिमाग से सोचना होता है, अपने हाथों से काम करना होता है। जिस वक्त कोई मुल्क इसको भूल जाता है, घबरा जाता है, डर जाता है, अपने ऊपर भरोसा नहीं करता, वह गिर जाता है, तबाह हो जाता है, जलील हो जाता है। वह निकम्मा मुल्क है। यह बात आपको याद रखनी है और हिन्दुस्तान जैसे बड़े मुल्क में इससे ज्यादा जिल्लत क्या हो सकती है कि हम अपने दिलों में डर जाएं, घबरा जाएं और अपने ऊपर भरोसा न कर सकें। हमें करना है और दुनिया में हमारे दोस्त हैं। उनसे हमें दोस्ती करनी है, उनसे हाथ मिलाना है उनसे मदद भी लेनी है। हमें बड़े-बड़े देशों ने मदद दी है। उनके हम मशकूर हैं। मशकूर महज मदद के लिए नहीं, बल्कि उनकी हमदर्दी के लिए। इससे हमारा बोझा कम हो हो जाता है। जिस मंजिल पर हम चले हैं, जो यात्रा हम कर रहे हैं, उस पर हमें यात्रा करनी है और हम मंजिल पर पहुंच जाएंगे। आपको यह बात याद रखनी है। हम चाहते हैं कि हम उसी उसूल से मुल्क को बढ़ाएं, मुल्क की तरक्की करें, अपने ऊपर भरोसा करके, औरों की मदद लेके सारी आर्थिक समस्याओं को हल करें और अपने मुल्क को ऐसा बनाएं कि वह अपनी टांगों पर पूरी तौर से खड़ा हो सके। बड़ों की तो फिक्र है ही। लेकिन देश में जो करोड़ों बच्चे हैं, मैं चाहता हूं, उनको बढ़ने का, सीखने का, देश की सेवा करने का, अपनी सेवा करने का पूरा मौका मिले। हम ऐसा भारत बनाएं जिसमें उनको ऐसे मौके मिलें और देश में कोई ऊंच-नीच न हो। हम भविष्य का ऐसा चित्र देखते हैं।

हमारा योजना कमीशन है और लोग बड़े-बड़े दफ्तर बना कर काम करते हैं। लेकिन आप जानते हैं, गवर्नमेंट की तरफ से और योजना कमीशन की तरफ से तो खाली इशारे होते हैं, काम तो आपको और हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमियों

आर्थिक विचारधारा

उदयसे सर्वोदयतक

द्वितीय खण्ड

उन्नीसवीं शताब्दी

बैंथम
मैल्थस
रिकार्डो
१८१७
जेम्स मिल
१८२१
मैकुल्लक
१८२५
सीनियर
१८३६
जॉन स्टुअर्ट मिल
१८४८
से
१८०३
बास्तिया
१८५०
कौर्नो
१८३८
राउ
थ्यूनेन
हर्मन
१८३२
आर्थिक विचारधारा

शास्त्रीय विचारधाराका विकास

मैल्थस

इन्द्राग्नी द्यावा पृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ।

—अथर्ववेद १४।२।१।५५

हमारे यहाँ विवाहके समय अन्य वैदिक मन्त्रोंके साथ इस मन्त्रका भी पाठ किया जाता है। पति और पत्नी, दोनों ही प्रतिज्ञा करते हैं कि 'इन्द्र, अग्नि, भूमि, वायु, मित्र, वरुण, ऐश्वर्य, अश्विनी, बृहस्पति, मरुत् , ब्रह्म, चन्द्रमा आदि जिस प्रकार प्रजाकी वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार हम दोनों प्रजाकी वृद्धि करें ।'[1]

वैदिक ऋषियोंने जहाँ ऐसा स्वीकार किया था कि मानवके सर्वांगीण

---

१ श्रीकृष्णदत्त भट्ट : वर-वधूसे दो बातें, सं० २००५, पृष्ठ ३५ ।

विकासके लिए स्त्री पुरुषका विवाह-सूत्रमें बँधना आवश्यक है, वहाँ उन्होंने प्रजोत्पत्तिपर भी बल दिया था। उन्होंने कहा था कि पुत्रोत्पत्तिसे माता पिताको आध्यात्मिक सुख भी मिलेगा, भौतिक भी। 'ऐसे युगमें, जब कि व्यक्तिके अधिकार उसकी शक्तिपर निर्भर थे, पुत्रको इतना महत्त्व देना असंगत नहीं मालूम होता। मूसा और कन्फ्यूशियसके विधान अपने अनुयायियोंको एक पुत्र उत्पन्न करनेका आदेश देते हैं, क्योंकि केवल इसीसे मुक्ति मिलती है। इसी प्रकार हिन्दुओंमें भी उस व्यक्तिके लिए स्वर्गके द्वार बंद हैं, जिसकी अन्त्येष्टि क्रिया उसके अपने पुत्र द्वारा नहीं की जाती और जो अपने जीवन कालमें कन्या दान नहीं कर पाता। यूनान और रोमके निवासियोंमें जन संख्याकी वृद्धिके लिए कानूनी और राजनीतिक दबाव डाला जाता था जिससे दूर-दूरतक देशोंकी विजय करनेके लिए सबल सैनिक और शासक बराबर मिलते रहें। मुसलमानोंके विवाह-सम्बन्धी नियमोंमें ऐसे स्पष्ट चिह्न मिलते हैं, जो यह सूचित करते हैं कि सामाजिक और धार्मिक प्रथाएँ जनसंख्या विस्तारकी नीतिके अधीन थीं।'[1]

जनसंख्या और उसकी समस्या अत्यन्त प्राचीन कालसे चलती आ रही है। उसके विस्तार एवं नियमनके लिए समय-समयपर अनेक प्रकारके प्रयत्न होते आ रहे हैं, पर आधुनिक युगमें जिस व्यक्तिने सबसे पहले जोरदार शब्दोंमें इस समस्याको लेकर विश्वके समक्ष रखा किया उसका नाम है—मैल्थस। यों उसने लगान और अति उत्पादनके सम्बन्धमें भी अत्यन्त मौलिक विचार दिये हैं, पर उसकी सबसे अधिक ख्याति हुई है जनसंख्याके प्रश्नको लेकर।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मैल्थसका उदय उस युगमें हुआ जिस युगमें औद्योगिक क्रान्तिका अभिशाप स्पष्ट होने लगा था। उसके दोष प्रकट होने लगे थे। स्मिथके सामने तो इस क्रान्तिका जन्म ही हो रहा था पर मैल्थसके सामने औद्योगिक क्रान्तिके दोष—बेकारी, भुखमरी और दुर्भिक्षकी काली छाया समाजपर मँडराने लगी थी। धनके असमान वितरण एवं दिन-दिन बढ़नेवाले दारिद्र्यने स्थिति भयंकर बना दी थी।

इंग्लैण्डकी स्थिति दयनीय हो रही थी। आयर्लैण्डमें दुर्भिक्ष पड़ रहे थे गल्लेका दाम चढ़ रहा था फसलें नष्ट हो रही थीं। इस स्थितिका सामना करनेके लिए अनाथ-सम्बन्धी ऐसे कानून बनाये गये थे जिनसे वह सुधरनेके बजाय उल्टे

१ उपेन्द्रनाथ भार्गव : जनसंख्याके मूलाधार, १९५२, पृष्ठ ५८।

बिगड़ती ही जा रही थी। सन् १७८० में गेहूँका भाव जहाँ ३४॥ शिलिंग था, वहाँ सन् १८०० में ६३॥ और सन् १८२० में ८७॥ शिलिंग हो गया था।[1]

पूर्वपीठिका

अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें एक ओर औद्योगिक क्रान्तिका अभिशाप, बेकारी और धनके असमान वितरणका अभिशाप, दूसरी ओर दुर्भिक्षोंकी मार, अन्नकी उपजमें ह्रास ऐसी 'एक ओर कुआँ, दूसरी ओर खाई' वाली स्थितिमें पड़ी जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी।

उधर अबतक चलती आनेवाली वाणिज्यवादी और प्रकृतिवादी विचारोंकी परम्पराएँ इस बातपर जोर दे रही थीं कि राष्ट्रीय सम्पत्तिके सम्वर्द्धनके लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्याका विस्तार किया जाय। साथ ही समकालीन विचारक बैंथेम, ह्यूम, स्मिथ, प्राइस, रूसो, गाडविन, बफन, माटेस्क्यू, कोण्डर-सेट आदि इस समस्यापर गम्भीरतासे सोचकर भिन्न-भिन्न मत प्रकट करने लगे थे। कोई उसपर नियंत्रणकी बात कहता था, कोई यह कहता था कि जन-संख्याकी वृद्धिसे कोई हानि नहीं है।

प्रश्न था कि ऐसी भयंकर स्थितिमेंसे मार्ग कौन-सा निकाला जाय। यह काम किया—मैलथसने।

जीवन-परिचय

थामस रोबर्ट मैलथसका जन्म सन् १७६६ में इंग्लैण्डकी सरे काउण्टीके राकरी नामक स्थानमें हुआ। मैलथसको कैम्ब्रिजमें उच्च शिक्षा मिली। उसके बाद वह पादरी बन गया। सन् १७९९ से १८०२ तक उसने पहले नार्वे, स्वेडेन और रूसकी यात्रा की और बादमें फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड तथा यूरोपके अन्य देशों-की। सन् १८०५ में उसका विवाह हुआ और फिर वह लन्दनके निकट हेलेबरीमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कॉलेजमें इतिहास और अर्थशास्त्रका प्राध्यापक नियुक्त हुआ और जीवनके अन्ततक वहाँ अध्यापन करता रहा। सन् १८३४ में उसका देहान्त हुआ।

मैलथसने सबसे पहले जनसंख्या-सम्बन्धी अपना लेख 'एसे ऑन दि

१ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकानॉमिक थॉट, पृष्ठ २५८।

'प्रिंसिपल ऑफ पॉपुलेशन, एज इट अफेक्ट्स दि फ्यूचर इम्प्रूवमेण्ट ऑफ सोसाइटी' सन् १७९८ में गुमनामसे प्रकाशित कराया। फिर उसका द्वितीय संस्करण निकला जिसका शीर्षक था—'एसे ऑन दि प्रिंसिपल ऑफ पॉपुलेशन ऑर ए व्यू ऑफ इट्स पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट एफेक्ट्स ऑन ह्यूमन हैपीनेस, विथ एन इनक्वायरी इन टु अवर प्रॉस्पेक्ट्स रेस्पेक्टिंग दि फ्यूचर रिमूवल और मिटिगेशन ऑफ दि ईविल्स विच इट अकेजन्स'। माल्थसके जीवन-कालमें ही इस प्रसिद्ध लेखके ४ संस्करण हुए। सभी संस्करणोंमें उसके विचारके विकासके साथ-साथ उत्तरोत्तर संशोधन एवं परिवर्धन होता गया।

माल्थसने इसके अतिरिक्त 'प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी' (सन् १८२) 'स्पीच डीलिंग विथ कार्न लाज' (सन् १८१४-१५) 'ऑन रेण्ट' (सन् १८१५) 'दि पुअर ला' (सन् १८१७) और 'डेफिनीशन्स इन पोलिटिकल इकॉनॉमी' (सन् १८२७) नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे।

प्रमुख 'आर्थिक विचार'

माल्थसने तीन समस्याओंपर मुख्य रूपसे अपने विचार व्यक्त किये हैं :

(१) जनसंख्याका सिद्धान्त

(२) लगानका सिद्धान्त और

(३) अति उत्पादनका सिद्धान्त।

जनसंख्याका सिद्धान्त

माल्थसके पिता डैनियल माल्थस स्वयं विद्वान् थे। गाडविन और ह्यूम उनके मित्र थे। विलियम गाडविन प्रख्यात अराजकतावादी विचारक थे। सन् १७९३ में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'इनक्वायरी कन्सर्निंग पोलिटिकल जस्टिस एण्ड इट्स इन्फ्लुएन्स ऑन मॉरल्स एण्ड हैपीनेस' प्रकाशित हुई जिसने सर्वत्र बड़ी हलचल उत्पन्न कर दी।

गाडविनकी ऐसी मान्यता थी कि सरकार एक अनिवार्य बुराई है और वही मानवके दुःख और दुर्भाग्यका मूल कारण है। गाडविन व्यक्तिगत सम्पत्तिका तीव्र विरोधी था। विज्ञान तथा समाजकी प्रगतिमें उसका असीम विश्वास था। वह मानता था कि भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। उसने आदर्श समाजकी कल्पना की थी जिसमें कहा था कि जनसंख्याके विस्तारसे विषमतामें कोई वृद्धि नहीं होगी; और यदि होगी भी, तो या तो विज्ञान या मानवकी तर्कबुद्धि उसका उपाय कर लेगी।

गाडविनकी पुस्तकने कुछ समर्थक पैदा किये कुछ विरोधी। माल्थस परिवारमें पिता—डेनियल उसका समर्थक निकला और पुत्र—रोबर्ट उसका विरोधी। जनसंख्या और खाद्यकी समस्याको लेकर रोबर्ट माल्थसने अपना प्रसिद्ध

निबन्ध लिखा, जिसमें उसने यह घोषणा की कि जनसंख्या सामाजिक प्रगतिमें इतनी बड़ी बाधा है कि उसे सहज ही पार कर लेना सर्वथा असम्भव है। खाद्य पदार्थोंका उत्पादन जिस मात्रामें होता है, उससे कहीं अधिक मात्रामें जनसंख्याकी वृद्धि होती है। इस जनसंख्या वृद्धिका ही परिणाम है—भुखमरी, कष्ट और मृत्यु। मेल्थसने इस बातपर जोर दिया कि गाडविनके अनुसार राज्य-सत्ताका अन्त कर दिया जाय, तो भी तो जनसंख्याकी समस्या हल होनेवाली नहीं। कारण, हमारे दुःख और दुर्भाग्यका मूल तो हमारे अपने दुर्बल एवं अपूर्ण स्वभावमें ही विद्यमान है।[1]

मेल्थसके जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्तकी मुख्य तीन आधारशिलाएँ हैं :

(१) जनसंख्या वृद्धिका गुणात्मक क्रम,

(२) खाद्यान्नकी पूर्तिका समानान्तर क्रम और

(३) नियन्त्रणके दैवी एवं मानवीय उपाय।

मेल्थस मानता है कि जनसंख्याकी वृद्धि ज्यामितीय या गुणात्मक क्रममें होती है, जब कि खाद्यान्नकी पूर्ति समानान्तर क्रममें हुआ करती है।

गुणात्मक क्रम

मेल्थसके अनुसार जनसंख्या १ २ ४ ८ : १६ ३२ ६४ १२८, २५६ के क्रममें बढ़ती है। उसकी वृद्धिका क्रम ज्यामितिके अनुसार रहता है।
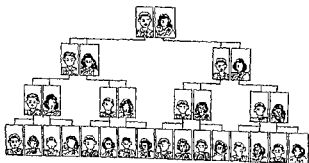
जनसंख्याकी वृद्धिकी गति

प्रत्येक देशकी जनसंख्या इतनी तीव्रतासे बढ़ती है कि २५ वर्षमें वह दुगुनी हो जाती है। उसका कहना है कि प्रत्येक विवाहित दम्पति ६ बच्चोंको जन्म देते हैं, जिनमेंसे २ बच्चे या तो काल-कवलित हो जाते हैं अथवा विवाह नहीं

१ वैसे वही, पृष्ठ २६१।

करते या सन्तानको जन्म देनेके अयोग्य रहते हैं। इस प्रकार दो प्राणियोंसे चार बच्चे उत्पन्न होते हैं और इसी प्रकार सृष्टिका यह क्रम दूने हिसाबसे बढ़ता चलता है।

समानान्तर क्रम

मैल्थसके अनुसार जनसंख्या जिस अनुपातमें बढ़ती है, खाद्य पदार्थोंकी पूर्ति उसकी अपेक्षा बहुत कम हो पाती है। अन्नकी वृद्धिका क्रम समानान्तर

उपजकी वृद्धिकी गति

रहता है। यह १ : २ १ : ४ : ६ ७ : ८ ९ के क्रमसे बढ़ती है। जनसंख्यामें जहाँ ज्यामितिक क्रम रहता है खाद्यान्न-पूर्तिमें वहाँ गणितका क्रम रहता है।

२२ वर्षोंमें जनसंख्यामें जहाँ २५६ गुनी वृद्धि होगी वहाँ खाद्यान्नकी पूर्ति केवल गुनी बढ़ेगी।

खाद्यान्न-पूर्तिके इस असन्तुलनका स्वाभाविक परिणाम होता है—देशमें भुखमरी, बेकारी और बीमारीकी वृद्धि।

निरोधात्मक साधन

मैल्थस मानता है कि समाजका आर्थिक उत्थान-पतन दृष्टिगोचर होती है उसका मूल कारण है जनसंख्या। खाद्यान्न-पूर्तिमें अनुपात कम रहनेसे अनेक लोगोंके लिए पर्याप्त अन्न नहीं मिल पाता है जिसके कारण अनेक प्रकारके दुःख और कष्ट पड़ने लगते हैं। पौष्टिक एवं सन्तुलित आहारके अभावमें दुर्बलता और बीमारियाँ बढ़ती हैं। अतः गरीबोंको तो विवाह ही नहीं करना चाहिए।

मैल्थस कहता है कि जिस व्यक्तिके माता पिता उसे पर्याप्त भोजन देनेसे इनकार करते हैं और समाज जिसे समुचित कार्य नहीं देता, उसके जीवित रहने-

युद्ध और महामारी द्वारा जन-संहार

का क्या अर्थ है ? प्रकृति उससे कहती है : 'हटो यहाँसे, रास्ता साफ करो !' प्रकृतिकी ओरसे उसके विनाशके साधन प्रस्तुत हो जाते हैं। और वे हैं—युद्ध, बाढ़, भूकम्प, रोग, महामारी आदि।

जनसंख्यापर नियन्त्रणके इन प्राकृतिक प्रतिबन्धोंसे यदि बचना हो, तो उसका साधन यही है कि मनुष्य अपने-आपपर बुद्धिसम्मत प्रतिबन्ध लगाये। ये प्रतिबन्ध नैतिक और अनैतिक, दो प्रकारके हो सकते हैं। नैतिक प्रतिबन्ध है विलम्बसे विवाह करना और कौमारावस्थामें ब्रह्मचर्यका पूर्णरूपेण पालन करना। अनैतिक प्रतिबन्ध है—गर्भपात तथा गर्भावरोधी विधियोंका प्रयोग, कृत्रिम एवं अप्राकृतिक साधन।

मैल्थस पादरी था, संयम और सदाचारपर उसकी श्रद्धा थी। उसने ब्रह्मचर्य एवं संयमपूर्ण पवित्र जीवनको ही जनसंख्याकी वृद्धि रोकनेका सर्वोत्तम साधन माना है। अनैतिक साधनोंको वह पाप मानता है और उनका तीव्र विरोध करता है।

मैल्थसकी मान्यता यह है कि मनुष्यमें प्रजननकी असीम शक्ति है। आजके प्राणिशास्त्रज्ञ कहते हैं कि स्त्रीके शरीरमें जन्मके समय ७० हजार अपक्व स्त्री-बीज रहते हैं। १५ से ४५ वर्षकी आयुमें उनमेंसे लगभग ४०० स्त्री-बीज परिपक्व होते हैं। पुरुषके एक बारके सम्भोगमें २०० करोड़से अधिक पुबीज गिरते हैं, जिनमेंसे

यदि केवल एकका परिपक्व स्त्री-बीजके साथ सम्पर्क हो जाय तो गर्भस्थिति होकर सन्तानका जन्म हो सकता है।[1] मैल्थस कहता है कि मनुष्यकी इस असीम प्रजनन शक्तिपर यदि कोई नियन्त्रण न रहे तो जनसंख्याकी वृद्धि अनिवार्य है। पृथ्वीकी उत्पादन-क्षमता समान अनुपातमें नहीं बढ़ती। अतः यह आवश्यक है कि जनसंख्या-वृद्धिपर अंकुश लगाया जाय अन्यथा प्रकृति स्वयं ही विनाशलीला प्रारम्भ कर देगी।

मैल्थसने अनेक देशोंके इतिहाससे आँकड़े देकर अपनी इस मान्यताका समर्थन किया है।

भाटक-सिद्धान्त

मैल्थसने सन् १८१५ में भाटकपर एक उत्तम पुस्तिका लिखी। उसका नाम है— एन इनक्वायरी इन्टू दि नेचर एण्ड प्रोग्रेस ऑफ रेण्ट। यह पुस्तिका रिकार्डोसे पहले तो लिखी ही गयी, इसमें भाटकके सिद्धान्तकी अनेक महत्त्वपूर्ण बातें मिलती हैं। जैसे :

(१) कृषि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। खानेके लिए अन्न और उद्योग-धन्धोंके लिए कच्चे मालकी प्राप्तिका एकमात्र साधन है कृषि।

(२) जनसंख्याकी वृद्धिके साथ-साथ नये नये भूमिखण्डोंपर कृषि की जाती है। ये नये भूमिखण्ड अपेक्षाकृत कम उर्वर होते हैं। तात्पर्य यह कि समस्त भूमिखण्डोंकी उर्वराशक्तिमें समानता नहीं रहती।

(३) जिन लोगोंको कृषिका सामान्य-सा भी अनुभव है वे इस तथ्यको मानते हैं कि कृषिमें उत्तरोत्तर अधिक मात्रामें लगायी जानेवाली पूँजीके अनुपातमें उत्पादन नहीं बढ़ता। पूँजीकी मात्रा जिस अनुपातमें बढ़ायी जाती है, उसी अनुपातमें उपज नहीं बढ़ती। यदि ऐसा सम्भव होता तो छोटेसे ही भूमिखण्डपर अत्यधिक मात्रामें पूँजी लगाकर अत्यधिक उत्पादन कर लिया जाता और नयी भूमि उपलब्ध करने तथा कृषियोग्य बनानेके झंझटोंमें फँसनेकी आवश्यकता ही न पड़ती।

मैल्थसकी यह धारणा 'उत्पादन-ह्रास-सिद्धान्त' ही है यद्यपि उसने इन शब्दोंका प्रयोग नहीं किया।

(४) भूमिखण्डोंकी उर्वराशक्तिमें भिन्नताके कारण कुछ भूमिखण्डोंमें उत्पादनकी लागतसे कुछ अधिक उत्पत्ति होती है। यह अधिक उत्पत्ति या बचत ही 'भाटक' कही जाती है।

---

१ मैल्थस : ऐसेज आन दि प्रिंसिपल्स ऑफ पापुलेशन, [illegible] संस्करण, [illegible]।

(५) स्वयं अपनी माँग बना लेना भूमिकी अपनी विशेषता है। कृषिमें होनेवाली बचत जनसंख्यामें वृद्धि करके खाद्यान्नकी माँगको भी बढ़ा देती है।

(६) कृषिसे होनेवाली बचतका कारण यह है कि प्रकृति दयालु है और मनुष्य प्रकृतिके सहयोगसे कृषि करता है। अतः इस बचतका खिसकी भाँति एकाधिकारका मूल्य मानना अनुचित है। उसे आंशिक एकाधिकारका मूल्य माना जा सकता है।

(७) भूमिकी उर्वराशक्तिपर निर्भर रहनेसे माटक तथा एकाधिकारकी कीमतमें अन्तर होता है।

(८) न तो समाज और भूस्वामियोंके हित परस्पर विरोधी है और न भूस्वामियों और उद्योगपतियोंके हित ही परस्पर-विरोधी हैं।[1]

अति-उत्पादनका सिद्धान्त

मैल्थसने अति-उत्पादन और व्यापारिक मन्दीके सम्बन्धमें अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। एक ओर अत्यधिक अमीरी, दूसरी ओर अत्यधिक गरीबी, एक ओर बाजारमें वस्तुओंका बाहुल्य, दूसरी ओर कोई उनका खरीदार नहीं, एक ओर अत्यधिक उत्पादन, दूसरी ओर अत्यधिक बेकारी देखकर मैल्थस इसके कारणोंकी खोजने लगा और उसीका परिणाम है उसके ये विचार।

जे० बी० सेने इस मतका प्रतिपादन किया था कि माँग अपनी पूर्तिकी स्वयं ही व्यवस्था करती है, अतः स्वतन्त्र विनिमयशील अर्थव्यवस्थामें अति-उत्पादनकी सम्भावना ही नहीं है। मैल्थसने इस सम्बन्धमें उससे भिन्न विचार प्रकट किये हैं। उसने रिकार्डोसे भी इस विषयमें पत्र-व्यवहार किया था और अपना मतभेद प्रकट किया था। उस समय मैल्थसके अति-उत्पादन सम्बन्धी विचारोंको समुचित महत्त्व नहीं मिला। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री केन्सने आगे चलकर फरवरी १९३३ में इस सिद्धान्तको विकसित किया और 'एसेज इन बायग्राफी' पुस्तकमें इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की।

मैल्थसके अति उत्पादन सम्बन्धी विचार संक्षेपमें इस प्रकार हैं :

(१) मनुष्य अपनी आयको दो ही प्रकारसे व्यय करता है :

१. उपभोग में—वस्तुओं एवं सेवाओंकी प्राप्तिमें।

२. बचतमें।

(२) आयकी वृद्धिके साथ साथ उपभोग एवं बचत, दोनोंमें ही वृद्धिकी सम्भावना है।

(३) उपभोग या विनियोगपर धनके समान या असमान वितरणका प्रभाव

---

[1] हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २७१-२७२।

पड़ता है। असमान वितरणकी स्थितिमें थोड़से अमीर लोग अत्यधिक बचत कर लेते हैं, जब कि समान वितरणकी स्थितिमें गरीब लोग अपनी अतिरिक्त आय उपभोगकी वस्तुओं एवं सेवाओंकी प्राप्तिमें खर्च कर डालते हैं।

(४) विनियोगका आधार है—बचत। दोनों मिलकर वास्तविक माँग निश्चित करते हैं।

मैल्थसकी मान्यता यह है कि समृद्धि-कालमें आयके असमान वितरणके कारण-में थोड़ेसे अमीर पर्याप्त बचत कर लेते हैं। फलतः विनियोग एवं उत्पादनमें वृद्धि होती है। पर चूँकि सभी लोगोंकी आय बढ़ती नहीं और साथ ही साथ उपभोग-सम्बन्धी आदतोंमें भी परिवर्तन नहीं होता, इसलिए उत्पादनकी मात्राके अनुपात-में वस्तुओंकी माँग बढ़ नहीं पाती। इसीका यह परिणाम होता है कि बाजार वस्तुओंसे पटा रहता है और कोई खरीदार नहीं रहता। अति-उत्पादन और बेकारी बढ़ने लगती है।

एरिक रौलके शब्दोंमें 'मैल्थसके सिद्धान्तमें मार्केकी बात यह है कि उसने यह प्रतिपादन किया कि आर्थिक व्यवस्थामें सामंजस्यकी भावना नहीं है। यह सर्व-प्रथम अवसर है कि जब आधुनिक पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्थाके दोष स्वीकार किये गये हैं और यह माना गया है कि इस व्यवस्थाके मूलमें ही संघर्षकी स्थिति अन्तर्निहित है।'[१]

मैल्थसने अति-उत्पादनकी समस्याके निराकरणके लिए दो उपाय सुझाये हैं

(१) मजदूरीमें कटौती की जाय और

(२) राज्य अनुत्पादक उपभोगपर पैसा खर्च करे।

मैल्थसकी दृष्टिमें घरेलू नौकर, अपना श्रम बेचकर उपभोगपर उसे खर्च करनेवाले व्यक्ति अनुत्पादक उपभोक्ता हैं। ये लोग उपभोग द्वारा वस्तुओंकी वास्तविक माँग तो बढ़ा देते हैं परन्तु उत्पादन नहीं करते जिससे उत्पादनकी मात्रा तो बढ़ती नहीं, उपभोगकी मात्रा बढ़ जाती है। इस प्रकार अति-उत्पादन-की समस्या स्वतः ही समाप्त हो जाती है।

व्यापारको सरकारी संरक्षण प्राप्त रहे ऐसा मैल्थस मानते थे। यह बात दूसरी है कि मैल्थसकी यह धारणा कुछ दोषपूर्ण है परन्तु इतना स्पष्ट है कि उसने उस युगमें पूँजीवादके दुष्परिणामोंकी ओर जनताका ध्यान आकृष्ट किया। पर, उस समय मैल्थसका जनसंख्या-सम्बन्धी सिद्धान्त ही विशेष ख्याति प्राप्त कर सका अन्य सिद्धान्त नहीं।

---

[१] एरिक रौल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ १ ।

विचारोंकी समीक्षा

मैल्थसके जनसंख्या सम्बन्धी विचारोंकी सबसे लेकर अबतक सबसे अधिक आलोचना हुई है। इतना ही नहीं, मैल्थसके जनसंख्याविषयक विचारोंको लेकर एक वाद ही खड़ा हो गया है—'नव-मैल्थसवाद' (Neo-Malthusianism)।

मैल्थसकी आलोचना मुख्यतः इन आधारोंपर की जाती है :

(१) जनसंख्या-वृद्धिका मैल्थसने जो गुणात्मक क्रम बताया था, वह पश्चिमी देशोंमें सत्य सिद्ध नहीं हुआ। कई देशोंमें जनसंख्या बढ़नेके स्थानपर उल्टे घटी ही है। शिक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान तथा उच्च जीवन स्तर आदिके द्वारा जनवृद्धिको नियन्त्रित किया जा सकता है, इस तथ्यको मैल्थस भलीभाँति हृदयंगम नहीं कर सके।

(२) खाद्यान्नकी पूर्तिका मैल्थसने जो समानान्तर क्रम बताया था, वह भी सही नहीं। विज्ञानकी प्रगतिके फलस्वरूप उपजमें तीव्रगतिसे वृद्धि होती जा रही है। पशु पक्षियोंका मांस भी खाद्यान्नके अन्तर्गत मानते हैं और उनकी संख्यामें मनुष्योंकी ही भाँति तीव्रगतिसे वृद्धि होती है। इस तथ्यकी ओर मैल्थसने पूरा ध्यान नहीं दिया। साथ ही उसने भिन्न जीवन स्तरोंकी बात भी नहीं सोची। अमीरों और गरीबोंके जीवन स्तरका भी तो उनकी खाद्यान्न पूर्तिपर प्रभाव पड़ता ही है।

(३) मैल्थस सम्भोगकी इच्छामें और सन्तानोत्पादनकी इच्छामें परस्पर भेद नहीं कर सके, यद्यपि दोनों दो भिन्न वस्तुएँ हैं।

(४) ऐच्छिक प्रतिबन्धोंके आलोचक कहते हैं कि मैल्थसने नैतिक प्रतिबन्ध-पर जोर देकर मनुष्यकी कामपिपासाकी स्वाभाविक प्रवृत्तिकी पूर्तिके लिए गुंजाइश नहीं रखी और उसे अपनी इस प्रवृत्तिको बलपूर्वक अवदमित करने तथा तड़पनेके लिए विवश कर दिया।

(५) मार्क्सवादी आलोचकोंने मैल्थसकी इस धारणाका तीव्र विरोध किया है कि गरीबोंको विवाह ही नहीं करना चाहिए, पर्याप्त आयके अभावमें विवाह करके और बच्चे पैदा करके वे स्वयं ही दरिद्रताका अभिशाप भोगते हैं। मैल्थस ऐसा मानता था कि अपनी गरीबी और अपनी दुर्दशाके लिए गरीब स्वयं ही उत्तरदायी हैं। न तो उनके अमीर मालिक ही इसके लिए उत्तरदायी हैं और न उनके कामके अधिक घण्टे और कम मजूरी ही। मजदूरोंको निवासके लिए जानवरोंकी-सी माँदें मिलती हैं, उनकी चिकित्साकी समुचित व्यवस्था नहीं रहती, उन्हें समुचित शिक्षा नहीं मिलती, सरकार भी उनका पक्ष न लेकर उनके मालिकों-

के हितोंका ही समर्थन करती है—इन सब बुराइयोंका एकमात्र कारण यही है कि मजदूर पर्याप्त वेतनकी व्यवस्थाके बिना ही विवाह करके घर बसा लेता है और बच्चे पैदा करने लगता है। गरीबोंके शोषणके लिए अमीरोंकी इस चालका भी विरोध मैल्थसके समयमें ही उसके सामने आ गया था। वह कहता है कि मुझपर ऐसा दोषारोपण किया जा रहा है कि मैं ऐसे कानूनकी सिफारिश कर रहा हूँ कि गरीबोंको शादी ही न करने दी जाय। पर मैं ऐसा मानता हूँ कि गरीबोंके विवाह कर लेनेसे मजदूरोंकी संख्यामें वृद्धि होगी, जिससे मजदूरी भी दर गिरेगी और बेकारोंमें वृद्धि होगी।

डॉक्टर कैनन जैसे आलोचक कहते हैं कि जनसंख्या वृद्धि और खाद्यान्न पूर्तिका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। इंग्लैण्ड जैसे देश उपनिवेशोंसे उपभोग-सामग्रीके बदलेमें खाद्यान्न मँगाकर अपनी आवश्यकता पूरी कर लेते हैं।

मैल्थसके विचारोंकी यह आलोचना कुछ अंशोंमें सही तो है, पर जनसंख्याका उसका सिद्धान्त आज भी अर्थशास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञोंके लिए प्रेरक बना हुआ है। भले ही उसका गुणात्मक क्रम और समानान्तर क्रम परिस्थिति-विशेषके कारण सही न साबित हुआ हो पर इस अंशमें तो उसकी यथार्थता अक्षुण्ण है ही कि उत्पादन जिस मात्रामें बढ़ता है उसकी अपेक्षा जनसंख्याकी वृद्धिकी मात्रा अधिक रहती है और मनुष्य यदि जनसंख्याकी वृद्धि रोकनेकी स्वयं ही चेष्टा नहीं करेगा तो किसी न किसी रूपमें संहार और विनाशकी लीला प्रकट होगी ही।

नव मैल्थसवादी गर्भ निरोधके जिन कृत्रिम साधनोंका समर्थन करते हैं, मैल्थसने उनका समर्थन कभी न किया होता। पाल ब्यूरोकी पुस्तक 'टुवार्ड्स मारल बैंकरप्सी' की आलोचना करते हुए गांधीजीने ठीक ही कहा है कि 'मैल्थसने इस समय मनुष्योंकी संख्या बहुत बढ़ रही है, इसलिए यदि यह अभीष्ट हो कि सारी मानव जाति समूल नष्ट न हो जाय, तो सन्तति-निरोधको आवश्यक मानना ही पड़ेगा'—इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करके अपने समयके लोगोंमें खलबली पैदा कर दिया था। पर मैल्थसने तो इसका उपाय इन्द्रिय-संयम ही सिखलाया था किन्तु आजका नवमैल्थस सिद्धान्त तो संयमकी शिक्षा न देकर पशु वृत्तिके भौतिक दुष्परिणामोंसे बचनेके लिए यंत्रों और औषधियोंका व्यवहार सिखलाता है।'[1]

मजदूरी-सिद्धान्त मैल्थसके मजदूरी-सम्बन्धी विचार रिकार्डोसे कुछ साम्य रखते हैं और कुछ पार्थक्य। जैसे :

---

[1] मो॰ क॰ गांधी : कुमैथुन जीवन और सम्पत्ति-विचार, पृष्ठ ८७।

मैल्थसकी यह धारणा थी कि समाजके हितोंमें और भूस्वामीके हितोंमें कोई विरोध नहीं है।

रिकार्डोकी धारणा इसके विपरीत थी। वह यह मानता था कि भूस्वामी वर्ग समाजपर भाररूप है। उसके हितोंमें और समाजके हितोंमें परस्पर विरोध है।

मैल्थस प्रकृतिकी कृपालुताका कायल था, जब कि रिकार्डोका कहना था कि ऐसा मानना एक भ्रान्ति ही है।

अदम स्मिथ स्वाभाविकतावादका समर्थक था, जब कि मैल्थस कहता है कि प्रकृति यदि सदैव मानव हितमें ही संवर्द्धन करती होती, तो जन संख्याकी विषम समस्या ही न उत्पन्न होती। स्मिथ जहाँ आशावादी है, वहीं मैल्थस निराशावादी।

स्मिथकी दृष्टिमें भाटक एकाधिकारकी कीमत था, मैल्थसकी दृष्टिमें नहीं।

मैल्थसके भाटक सिद्धान्तने रिकार्डोको बड़ी प्रेरणा प्रदान की। उसके विचारोंका ही रिकार्डोने विशद रूपमें विकास किया तथा अपने प्रसिद्ध भाटक-सिद्धान्तकी स्थापना की।

अति-उत्पादन-सिद्धान्त मैल्थसने पूर्ववर्ती तथा समकालीन विचारकोंके विपरीत इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था। वे लोग ऐसा मानते थे कि अति उत्पादनकी स्थिति असंभव है। वह या तो आयेगी ही नहीं, अथवा यदि वह आयेगी, तो किसी उद्योगमें अत्यन्त स्वल्पकालके लिए आयेगी।

मैल्थसने इस प्रचलित धारणाके विरुद्ध अपने मतका प्रतिपादन किया और व्यापार-चक्रकी गतिका वर्णन करते हुए यह बताया कि अति-उत्पादनसे बाजारमें वस्तुओंका बाहुल्य रहता है और वास्तविक माँगके अभावमें अमीरोंमें गरीबी आती है।

उस समय तो मैल्थसके इस सिद्धान्तको प्रतिष्ठा नहीं मिली, लोगोंने इसकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया, पर आगे चलकर केन्सने इसकी प्रशंसा की, इसे मान्यता प्रदान की और इसको अपनी धारणाकी आधारशिला बनाया।

मैल्थसका मूल्यांकन

अनेक दोषोंके बावजूद आर्थिक विचारधाराके विकासमें मैल्थसका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

मैल्थस पहला अर्थशास्त्री है, जिसने सामाजिक समस्याओंकी ओर अत्यन्त तीव्रताके साथ विचारकोंका ध्यान आकृष्ट किया। मैल्थसने आँकड़ोंको सबसे पहले शास्त्रीय विवेचनमें स्थान दिया। उसने 'जनसंख्या-विज्ञान' को जन्म दिया। डारविनके विकासवादके सिद्धान्तका वह प्रेरक बना। अर्थशास्त्रमें

अनुमान-पद्धतिका विकास मैल्थससे ही प्रारम्भ होता है। इसीके कारण अर्थशास्त्र और समाजशास्त्रका पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ होने लगा। उसने अपने विचारोंसे रिकार्डो और केन्स जैसे विचारकोंको प्रभावित किया।

मैल्थसके विचारोंकी आधारशिलापर ही उसके मानस-उत्तराधिकारी—नव मैल्थसवादी लोग खड़े हैं। ये जनसंख्याकी वृद्धि रोकनेके लिए कृत्रिम साधनोंका समर्थन करते हैं और गर्वके साथ कहते हैं कि मैल्थस जीवित होता, तो वह भी गर्भनिरोधक कृत्रिम साधनोंका समर्थक होता, पर बात ऐसी नहीं है। मैल्थस संयम और ब्रह्मचर्यका कट्टर समर्थक था। कृत्रिम उपायोंका उसने तीव्र विरोध किया है। अपने नामपर चलनेवाली इस 'काम-प्रवञ्चना' के लिए उसने अपने इन मानस पुत्र पुत्रियोंको कभी क्षमा न किया होता।[1]

विनोबाका कहना है कि 'मान लीजिये कि पति पत्नी ऐसा प्रबन्ध करें कि सन्तान उत्पन्न न हो और वे अपनी-अपनी विषय-वासना जारी रखें, तो उनके विकारोंको कोई संतुलन मिलता ही नहीं। इससे संतान ही कम नहीं होगी ज्ञानतंतु भी क्षीण होंगे, प्रभा कम होगी, प्रज्ञा कम होगी और तेजस्विता कम हो जायगी। नीति कितनी गिरेगी? अध्यात्म कितना खोयेंगे?'

पर मैल्थसके मानस-पुत्रोंको इस समस्याके मनोवैज्ञानिक, नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक पहलुओंपर ध्यान देनेका अवकाश ही कहाँ? • • •

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री आफ इकोनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ १४१।
२ संतति-निरोध पर विनोबा, 'सर्वोदय' नवम्बर १९५१, पृष्ठ १९११।

रिकार्डो

: २ :

अर्थशास्त्रकी शास्त्रीय विचारधारामें मैल्थसके उपरान्त सबसे प्रख्यात व्यक्ति है—रिकार्डो। मैल्थस जिस प्रकार जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्तके लिए प्रख्यात है, रिकार्डो उसी प्रकार भाटक सिद्धान्तके लिए। रिकार्डोकी रचनामें यद्यपि स्मिथकी भाँति भाषा-सौष्ठवका अभाव है, साथ ही किसी विशिष्ट योजनाके अनुसार वह अपने विचारोंका प्रतिपादन भी नहीं कर सका है, फिर भी उसके विचारोंके प्रति इतना अधिक आदर था, उसमें इतना अधिक गाम्भीर्य एवं विद्वत्ता थी कि आलोचकोंका साहस ही न होता था कि वे उसकी आलोचना करें। वे इस बातके लिए आशंकित रहते थे कि रिकार्डोकी आलोचना करके वे स्वयं ही कहीं हास्यास्पद न बन जायें।

अपनी सूक्ष्म विश्लेषण-पद्धति एवं गम्भीर विवेचनाके कारण रिकार्डो वैज्ञानिक विचार-प्रणालीका अग्रदूत माना जाता है। इस दिशामें रिकार्डोने अदम स्मिथकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, परन्तु उसके विचारोंमें रहनेवाली असंगतियोंने अत्यधिक विवाद खड़ा कर दिया। उसके सिद्धान्तोंको लेकर जितना विवाद हुआ है, उतना विवाद शायद अन्य किसी अर्थशास्त्रीके सिद्धान्तोंको लेकर नहीं हुआ है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अदम स्मिथके समयमें पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाका जन्म ही हो रहा था, परन्तु ५० वर्ष बाद ही रिकार्डोके समयमें इंग्लैण्डकी आर्थिक स्थितिमें अत्यधिक परिवर्तन हो चुका था। औद्योगिक विकासके साथ साथ उसके दुष्परिणाम भी प्रकट होने लगे थे। व्यापार निर्बाध गतिसे चलने लगा था, जनसंख्याकी वृद्धि हो रही थी, अन्नकी कमी होनेसे वस्तुओंके मूल्य चढ़ रहे थे, गरीबों और अमीरोंके बीच पार्थक्य बढ़ रहा था, भू-स्वामियों और उद्योगपतियोंके स्वार्थमें संघर्ष हो रहा था, पूँजी और भूमि तथा श्रम और पूँजीके बीच टक्करें हो रही थीं। औद्योगिक क्रान्तिके फलस्वरूप बड़े-बड़े कारखाने खुल चुके थे। मजदूर गाँव छोड़कर शहरोंमें आकर बसने लगे थे और मिल-मालिकोंके विरुद्ध मजदूरी बढ़वानेके लिए आन्दोलन करने लगे थे। गरीबी, बेकारी, प्रतिस्पर्द्धा, जनसंख्या-की वृद्धि और मूल्य-वृद्धिका चारों ओर जाल फैल गया था।

युद्ध तथा व्यय-भारसे पीड़ित सरकारने मुद्रास्फीति कर रखी थी, जिसके

कारण वस्तुओंका मूल्य और भी बढ़ रहा था। अनाजकी कमी होनेसे अन्न [illegible] भूमिपति जोतें बढ़ाने लगे थे। मिल-मालिक सस्ते दामोंपर कच्चा माल चाहते थे और भू-स्वामी इसके लिए व्यग्र थे कि उन्हें उनकी उपजका अच्छा पैसा मिले।

यह सब क्यों हो रहा है? ऐसी भयंकर स्थिति क्यों उत्पन्न हो गयी है?—यह था वह मूलभूत प्रश्न, जो रिकार्डोके सामने मुँह बाये खड़ा था।

जीवन-परिचय

डेविड रिकार्डोका जन्म सन् १७७२ में लन्दनमें हुआ। उसके माता-पिता हालैण्ड निवासी यहूदी थे, पर इंग्लैण्डमें आकर बस गये थे। २०-२१ वर्षकी आयुमें ही विवाह और धर्म-परिवर्तनके प्रश्नको लेकर रिकार्डोका माता-पितासे मतभेद हो गया और वह स्वतंत्र रूपसे सट्टा व्यापार करने लगा। पाँच वर्षके भीतर ही उसने २ लाख पौण्डकी सम्पत्ति अर्जित कर ली। उस युगमें इतनी सम्पत्ति बहुत भारी मानी जाती थी। उसके बाद वह व्यापार छोड़कर अर्थशास्त्रके अध्ययनमें प्रवृत्त हो गया।

रिकार्डोका सबसे पहला निबन्ध सन् १८१० में प्रकाशित हुआ। उसका शीर्षक था—'दि हाई प्राइस ऑफ बुलियन ए प्रूफ ऑफ दि डिप्रीसियेशन ऑफ बैंक नोट्स'। सन् १८१७ में उसकी प्रमुख पुस्तक 'ऑन दि प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकोनोमी एण्ड टैक्सेशन' प्रकाशित हुई। स्वयं व्यापारी एवं पूँजीपति होते हुए भी रिकार्डोको क्या पता था कि उसकी यह पुस्तक पूँजीवादी भवनकी नींव ही हिला डालेगी।[1]

सन् १८१९ में रिकार्डो इंग्लैण्डकी लोकसभा (संसद्) का सदस्य चुना गया। संसद्की कार्यवाहियोंमें वह सम्मिलित तो होता था, पर बोलता बहुत कम था; पर जब बोलता था तो सारा सदन बड़े आदर और ध्यानसे उसकी बातें सुनता था। सन् १८२१ में उसने 'अर्थशास्त्र-गोष्ठी' को जन्म दिया। सन् १८२२ में 'प्रोटेक्शन आफ एग्रीकल्चर' नामक उसकी रचना प्रकाशित हुई। सन् १८२३ में उसका देहान्त हो गया।

---

१ गीड ऐण्ड रिस्ट : हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ १५५।

प्रमुख आर्थिक विचार

यद्यपि रिकार्डोके आर्थिक विचारोंका क्षेत्र बहुत व्यापक रहा है, तथापि सुविधाकी दृष्टिसे उनके विचारोंका इस प्रकार विभाजन किया जा सकता है :

१ वितरणके सिद्धान्त
 (१) भाटक सिद्धान्त
 (२) मजूरी-सिद्धान्त
 (३) लाभ सिद्धान्त

२ मूल्य सिद्धान्त

३ विदेशी व्यापार

४ बैंक तथा कागदी मुद्रा

इसी क्रमसे रिकार्डोका अध्ययन करना अच्छा होगा।

१ वितरणके सिद्धान्त

रिकार्डो और माल्थस समकालीन रहे हैं। दोनोंमें परस्पर मैत्री भी थी और पत्र-व्यवहार भी होता रहता था। १० अक्तूबर १८२० को अपने एक पत्रमें रिकार्डोने मैल्थसको लिखा था

'तुम शायद ऐसा सोचते हो कि सम्पत्तिके कारणों और उसकी प्रकृतिकी शोध ही 'अर्थशास्त्र' है, पर मेरी दृष्टिमें 'अर्थशास्त्र' उन नियमोंकी शोध कही जानी चाहिए, जो यह निर्णय करते हैं कि उद्योगमें जो उत्पत्ति होती है, उसका विभिन्न उत्पादक वर्गोंमें किस प्रकार वितरण किया जाय।'

रिकार्डोके पहले अर्थशास्त्री उत्पादनकी समस्यापर सबसे अधिक बल दिया करते थे, पर रिकार्डोने वितरणको अध्ययनका प्रमुख विषय बनाया। तत्कालीन परिस्थितिका भी यही तकाजा था। रिकार्डोने वितरणके महत्त्वको स्वीकारकर अर्थशास्त्रके एक बड़े अंगकी पूर्ति की।

रिकार्डोके पहले प्रकृतिवादियों तथा अदम स्मिथने उत्पादनकी समस्यापर विचार करके उसे इस स्थितिमें पहुँचा दिया था कि उत्पादनके लिए तीन वस्तुओंकी आवश्यकता है—भूमि, श्रम और पूँजी। इन तीनों साधनोंको उत्पादित वस्तुका अंश मिलता है। भूमिको भाटक, श्रमको मजूरी और पूँजीको लाभके रूपमें यह अंश प्राप्त होता है।

उत्पादक वर्गोंको मिलनेवाला यह अंश किस सिद्धान्तके अनुसार प्राप्त होता है, इस प्रश्नका रिकार्डोसे पूर्व किसीने विधिवत् विवेचन नहीं किया था। इस कामको रिकार्डोने अपने हाथमें लिया और वितरणके तीनों साधनोंके लिए भाटक-सिद्धान्त, मजूरी-सिद्धान्त और लाभ सिद्धान्तका प्रतिपादन किया।

भाटक-सिद्धान्त

स्मिथ मानता था कि भूमिसे भाटक इसलिए मिलता है कि प्रकृति दयालु है और मनुष्य प्रकृतिके सहयोगसे काम करता है।

माल्थस मानता था कि जनसंख्या-वृद्धिके साथ भूमिमें उत्पत्ति-ह्रास नियम लागू होता है।

रिकार्डोने मध्यम मार्ग निकालकर इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया कि भाटक उत्पत्तिका वह अंश है, जो भूमिकी स्थायी एवं अनश्वर शक्तियोंके प्रतिफलस्वरूप भू-स्वामीको दिया जाता है।

रिकार्डोका कहना था कि भूमिमें मौलिक प्राकृतिक एवं अनश्वर शक्तियाँ हैं फिर भी प्रकृतिकी दयालुता नहीं, अपितु कंजूसी ही भाटकका कारण है। जब तक प्रथम कोटिके भूमिखण्डोंपर, जो अधिक उर्वर होते हैं, खेती की जाती है तब तक भू-स्वामियोंको भाटक प्राप्त नहीं होता। जनसंख्या-वृद्धिके कारण खाद्यान्नकी माँग पड़नेसे जब द्वितीय कोटिके अपेक्षाकृत कम उर्वर भूमिखण्डोंपर खेती की जाती है तब प्रथम कोटिके भूमिखण्डोंके स्वामियोंको भाटक मिलने लगता है।

रिकार्डोका मत है कि जहाँ जनसंख्या कम रहती है, वहाँ सबसे पहले वह भूमि जोती जाती है जो सबसे उर्वर होती है और उसकी जो उपज होती है, उसका सभी लोग उपभोग कर लेते हैं। ऐसी भूमिका बाहुल्य रहता है और इस कारण उससे निम्नकोटिकी भूमि जोती ही नहीं जाती। परन्तु जब जनसंख्यामें वृद्धि होती है तो उपजका मूल्य बढ़ने लगता है और भू-स्वामीको लागतपर अतिरिक्त मिलने लगता है। लागतपर आयका अतिरेक ही 'भाटक' है।

मूल्य-वृद्धिके कारण अपेक्षाकृत कम उर्वर भूमि जोतना भी लाभदायक सिद्ध होता है। कारण, उस स्थितिमें अपेक्षाकृत निम्न कोटिके भू-स्वामी भी अपनी उत्पत्तिको अधिक मूल्यपर बेचकर उत्पादनकी लागत प्राप्त कर सकते हैं। जनसंख्यामें ज्यों-ज्यों वृद्धि होती जाती है त्यों-त्यों निम्न और निम्नतर कोटिके भूमिखण्ड जोते जाने लगते हैं। उनमें अन्तिम कोटिवाले भूमिखण्डको—सीमान्त भूमिखण्डको छोड़कर शेष सभी भूमिखण्डोंपर अतिरेक या 'भाटक' मिलने लगता है।

रिकार्डो कहता है कि जनसंख्या-वृद्धिके कारण गल्लेकी माँगमें जो वृद्धि होती है उसकी पूर्ति दो प्रकारकी खेतीसे की जा सकती है (१) विस्तृत खेती और (२) गहरी खेती। विस्तृत खेतीमें कम उर्वर भूमिकी उत्पत्ति तथा अधिक उर्वर भूमिकी उत्पत्तिका अन्तर 'भाटक' है। गहरी खेतीमें पुराने ही भूमिखण्डों पर अधिक श्रम और अधिक पूँजी लगायी जाती है। उसमें आगे चलकर उत्पत्ति

ह्रास नियम लागू होता है। गहरी खेतीमें सीमान्त इकाईके उत्पादन और उससे पहलेकी इकाइयोंके उत्पादनके बीच जो अन्तर रहता है, वह 'भाटक' है।

सीमान्त भूमि और सीमान्त इकाई द्वारा ही भूमिके भाटकका निर्धारण होता है। हैनेने इसकी चर्चा करते हुए कहा है कि रिकार्डोकी अर्थ-व्यवस्थामें सीमान्त भूमि ही केन्द्रबिन्दु है।[1]

रिकार्डो ऐसा मानता है कि जनसंख्या वृद्धिका प्रभाव पड़ता ही है, कृषिके उपायोंमें किये जानेवाले सुधारोंका भी 'भाटक' पर प्रभाव पड़ता है। उसका कहना था कि यदि कृषि सुधारोंके फलस्वरूप उपजमें वृद्धि होगी, तो सीमान्त भूमिपर खेती बन्द हो जायगी। इसका परिणाम यह होगा कि भाटक कम हो जायगा। इसलिए भू-स्वामी कृषिके सुधार नहीं चाहते। इससे उनके स्वार्थमें बाधा पड़ती है।[2]

भू-स्वामी चाहते हैं कि गल्ला हमेशा तेज रहे और वे अधिकाधिक लाभ उठाते रहें। उनकी यह वृत्ति समाज विरोधी है।

वस्तुओंके मूल्य और भाटकके पारस्परिक सम्बन्धकी चर्चा करते हुए रिकार्डो कहता है कि वस्तुओंके मूल्यका प्रभाव भाटकपर पड़ता है, जब कि भाटकका प्रभाव वस्तुओंके मूल्यपर नहीं पड़ता। जैसे :

कल्पना कीजिये अ ब स तीन खेत हैं और तीनोंकी उर्वरा शक्ति भिन्न है। तीनोंपर ५-५ श्रमिक लगते हैं। अ खेतमें ५ मन, ब खेतमें १० मन और स खेतमें २० मन गेहूँ होता है। कुल उपज हुई ३५ मन, श्रमिक लगे १५।

अ सीमान्त खेत है। उसमें ५ मन गेहूँ पैदा होता है, श्रमिक लगे ५। हर श्रमिकको ३ रुपये देने पड़ते हैं, तो गेहूँका भाव होगा ३) मन। यदि उससे कम भाव रहेगा, तो सीमान्त भूमिमें घाटा लग जानेसे उसपर खेती ही नहीं होगी। पर जनसंख्याके कारण ३५ मन गेहूँ चाहिए ही। उस स्थितिमें 'अ' खेत जोतना ही पड़ेगा।

यहाँ 'अ' खेतका तो कुछ भाटक नहीं मिलेगा। 'ब' को ५ मन और 'स' को १० मन अधिक होनेके कारण ३) मनके हिसाबसे १५) और ३०) भाटक मिलेगा।

रिकार्डोकी यह मान्यता थी कि सीमान्त भूमिकी जो उत्पादन-लागत होगी, उसीके अनुकूल गल्लेके मूल्यका निर्धारण किया जायगा। वह कहता था कि सीमान्त भूमिकी लागतसे उपजकी कीमत निर्धारित होनेके कारण भाटकका

---

१ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २९२।

२ एरिक रोल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ १८६।

प्रभाव मूल्यपर नहीं पड़ता। पर वस्तुभाटके मूल्यका प्रभाव तो भाटकपर पड़ता ही है।

भाटक-सिद्धान्तके पीछे रिकार्डोकी यह मान्यता है कि भूमिकी मात्रा सीमित होनेके कारण न तो उसे बढ़ाया ही जा सकता है और न उसे कम ही किया जा सकता है। पृथक्-पृथक् भूमिखण्डोंकी उर्वरा शक्तिमें भिन्नता होती है। सीमान्त भूमिको भाटक नहीं मिलता। विस्तृत खेतीमें बढ़िया भूमिखण्डोंपर खेती होती चलती है। गहरी खेतीमें आगे चलकर उत्पत्ति-ह्रास नियम लागू होता है। सीमान्त भूमिकी उत्पादन-लागतसे ही मूल्यका निर्धारण किया जाता है।

रिकार्डो यह भी मानता है कि सभी भमियोंकी भूमिका उत्पादन समान मात्रामें बढ़ता है और कुछ उत्पादनकी वृद्धि समान रहती है।[1]

प्रकृतिवादियोंसे तुलना

प्रकृतिवादियोंसे रिकार्डोका भाटक-सिद्धान्त भिन्न है। उनके लिए यह उत्पादन-सम्बन्धी समस्याओंके अन्तर्गत आता था। रिकार्डोने उसे वितरणके अन्तर्गत माना।

प्रकृतिवादी मानते थे कि शुद्ध उत्पत्तिपर समाजका हित निर्भर करता है जब कि रिकार्डो मानता था कि भू-स्वामियोंके हितोंमें और समाजके हितोंमें परस्पर विरोध है और भाटक-वृद्धिसे समाजके हितमें वृद्धि नहीं होती है।

प्रकृतिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रकृति दयालु है, रिकार्डोकी दृष्टिमें वह कंजूस है।

प्रकृतिवादी मानते थे कि खेतीसे हर कृषकको बचत होती ही है, रिकार्डो मानता था कि सीमान्त भूमिमें खेती करनेसे कोई बचत नहीं होती और भाटक नहीं मिलता।

प्रकृतिवादी मानते थे कि कृषि सुधारसे शुद्ध उत्पत्ति बढ़ेगी। रिकार्डो मानता था कि उसके कारण भाटक घटेगा और भू-स्वामी-वर्ग और उपभोक्ताओं तथा पूँजीपतियोंके बीच वर्ग-संघर्ष बढ़ेगा।

प्रकृतिवादी मानते थे कि कृषिके अतिरिक्त अन्य सभी काम करनेवाले अनुत्पादक हैं। रिकार्डोने ऐसा कोई भेद नहीं किया।

प्रकृतिवादी लोगोंने जनसंख्याके साथ भाटक सिद्धान्तका कोई सम्बन्ध नहीं स्थापित किया था, जब कि रिकार्डोने जनसंख्या-वृद्धिके साथ भाटक सिद्धान्तका सम्बन्ध स्थापित किया है और कहा है कि जनवृद्धिके साथ नये-नये कम उर्वर भूमिखण्डोंपर खेती होती है और इस प्रकार भाटककी मात्रामें वृद्धि होती चलती है।

---

[1] जे० के० मेहता : अर्थशास्त्रके मूलाधार, पृष्ठ ११ ।

रिकार्डोने भाटकको अनर्जित आय बताया है। यों तो रिकार्डो स्वयं पूँजीपति था और व्यक्तिगत सम्पत्तिका समर्थक था, पर उसके इस तर्कने समाजवादियोंको पूँजीवादके विरुद्ध एक प्रबल तर्क प्रदान कर दिया।

मजूरी-सिद्धान्त

रिकार्डोने मजूरी-सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए यह बताया कि उत्पादनमें श्रमिकको जो अंश प्राप्त होता है, वह मजूरी है।

उसके कथनानुसार मजूरी दो प्रकारकी है स्वाभाविक मजूरी और बाजारू मजूरी।

स्वाभाविक मजूरी वह है, जिसमें श्रमिककी न्यूनतम आवश्यकताओंकी पूर्ति तो होती है, पर जनसंख्या न तो बढ़ती है, न घटती है, प्रत्युत वह स्थिर बनी रहती है।

बाजारू मजूरी माँग और पूर्तिके न्यायसे निश्चित होती है।

रिकार्डोकी मान्यता यह है कि मजूरीके क्षेत्रमें पूर्ण प्रतिस्पर्धा होनेके कारण एक समयमें सभी श्रमिकोंको एक-सी ही मजूरी मिलती है। यदि कहीं अधिक मजूरी मिलती है, तो माँग न बढ़कर पूर्ति बढ़नेसे मजूरी गिरकर एक ही स्तरपर आ जाती है।

बाजारू मजूरी और स्वाभाविक मजूरीमें रिकार्डोके मतानुसार कुछ भेद भी रह सकता है। एक अधिक हो सकती है, दूसरी कम।

रिकार्डो ऐसा मानता है कि किसी प्रगतिशील देशमें, जहाँ उर्वर भूमिखण्ड पर्याप्त हों और श्रम तथा पूँजी द्वारा उत्पादनमें पर्याप्त वृद्धि की जा सकती हो, स्वाभाविक मजूरीसे बाजारू मजूरी अधिक दिनोंतक अधिक बनी रह सकती है। कारण, श्रमिकोंकी माँग अधिक होगी, पूर्ति कम। उसकी इस धारणामें कल्पनाका पुट अधिक है, वास्तविकताका कम।

रिकार्डोने बाजारू मजूरीका न्यूनतम पैमाना यह माना है कि जिससे श्रमिककी न्यूनतम आवश्यकताओंकी पूर्ति होती रहे और वह जीवित बना रहे। मजूरी इतनी ऊँची नहीं हो सकती कि वह लाभको समाप्त कर दे। वह कहता है कि गल्ला महँगा होनेसे ऐसा सम्भव है कि मजूरोंको नकद मजूरी अधिक मिले, पर नकद मजूरी बढ़ जानेपर भी उनकी वास्तविक मजूरी गिर जायगी। कारण, गल्ला उन्हें अपेक्षाकृत कम मिलेगा।[1]

रिकार्डो ऐसा मानता है कि श्रमिकोंकी संख्या कम रहेगी, तो उनकी मजूरी स्वतः बढ़ जायगी और वे अधिक सुखी हो सकेंगे, पर कानून बनाकर उनकी स्थितिमें सुधार सम्भव नहीं। उनकी स्थिति सुधरनेका एकमात्र उपाय यही है कि

१ हेने : हिस्ट्री आफ इकानामिक थॉट, पृष्ठ ३००।

वे आत्मसंयम करें और अपनी जनसंख्या बढ़ने न दें। रिकार्डोकी धारणा है कि अन्य वस्तुओंकी भाँति मजदूरीको भी पूर्ण प्रतिस्पर्धाके लिए मुक्त छोड़ देना चाहिए। रिकार्डो ऐसा नहीं मानता कि श्रमिकों तथा भू-स्वामियोंके हितमें परस्पर कोई विरोध है। कारण श्रमिककी मजदूरी भाटक शून्य सीमान्त भूमिपर निर्भर करती है। भाटकके बढ़ने-घटनेका उसपर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। रिकार्डो यह भी मानता है कि श्रमका प्रभाव तो मूल्यपर पड़ता है पर मजदूरी मूल्यको प्रभावित नहीं करती।

कुछ असंगतियोंके बावजूद रिकार्डोका मजदूरी सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

लाभ-सिद्धान्त

रिकार्डोका लाभ-सिद्धान्त उसके मजदूरी-सिद्धान्तका पूरक ही माना जा सकता है। वह कहता है कि स्वाभाविक मजदूरी श्रमिकोंकी न्यूनतम आवश्यकताओंके बराबर होती है। सीमान्त भूमिमें होनेवाली उपजमेंसे इस मजदूरीका निकाल देनेके बाद जो कुछ शेष रहता है उसीका नाम है—लाभ। मजदूरी ज्यों ज्यों बढ़ती है लाभका अंश त्यों त्यों कम होता जाता है। जब मजदूरी इतनी बढ़ जाती है कि लाभ समाप्तप्राय हो जाता है तो नये-नये भूमिखण्डोंका जोता जाना बन्द हो जाता है, श्रमिकोंकी मजदूरी भी स्थिर हो जाती है और उनकी जनसंख्या भी।

रिकार्डो पूँजी और श्रममें कोई भेद नहीं करता। सम्भवतः इसका कारण यही है कि उसके जमानेमें पूँजीपति ही स्वयं साहसी भी होता था। श्रम निकाल देनेपर जो बच रहता था उसे वह लाभ मान लेता था। रिकार्डो मानता है कि ऐसी स्थिति आनेकी कोई सम्भावना नहीं है जब कि लाभका अंश पूर्णतः समाप्त हो जाय। 'यदि कष्ट एवं संकट उठानेके बदलेमें कुछ भी लाभ मिलनेकी आशा नहीं रहेगी तो पूँजी लगानेका कोई साहस ही क्यों करेगा ?'[1]

रिकार्डो ऐसा मानता है कि श्रमिक तथा पूँजीपतियोंके हित परस्पर विरोधी हैं। एकके लाभमें दूसरेकी हानि है।

जनसंख्याकी वृद्धि देखते हुए रिकार्डोको बड़ी निराशा होती है और वह ऐसा मानता है कि भविष्य अन्धकारमय है। कारण जनसंख्या बढ़ेगी, उधर भूमि-खण्ड घटते जायेंगे और लाभका अंश कम होते होते खत्म हो जायगा। तब नये भूमिखण्डोंका जोता जाना बन्द कर दिया जायगा और स्थिति भयंकर हो उठेगी।

२. मूल्य-सिद्धान्त

स्मिथकी भाँति रिकार्डोने मूल्यके दो भाग किये हैं—उपयोगितागत मूल्य और विनिमयगत मूल्य। उपयोगितागत मूल्य महत्त्वपूर्ण है, पर उसे ठीक-ठीक

---

[1] वही, पृष्ठ ३८।

मापना कठिन है। रिकार्डो उसे छोड़कर विनिमयगत मूल्यपर विशेष ध्यान देता है।

विनिमयगत मूल्य वह बाजारू मूल्य है, जो अल्पस्थायी रहता है और वस्तुकी माँग और पूर्तिके अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। रिकार्डोकी धारणा यह है कि जिन वस्तुओंकी मात्रा बहुत कम होती है, जैसे चित्रकारका चित्र, उनमें विनिमयगत मूल्य बहुत रहता है, पर साधारण वस्तुओंका मूल्य आवश्यकतानुसार घटता-बढ़ता रहता है। उसे घटाना-बढ़ाना सरल होता है। वह मानता है कि वस्तुओंका मूल्य उनपर लगे श्रमके बराबर होता है। कारण, उसके मतसे भाटक वस्तुके मूल्यमें सम्मिलित नहीं रहता है, लाभ भी विनिमयगत मूल्यको प्रभावित नहीं करता, केवल श्रमकी मात्रा ही वह वस्तु है, जिसका कि विनिमयगत मूल्यपर प्रभाव पड़ता है।

'सीमान्त' का सहारा लेकर ही रिकार्डोने मूल्य-सिद्धान्तका भी प्रतिपादन किया है। उसने मूल्य और सम्पत्तिमें भेद करते हुए कहा है कि आविष्कारों द्वारा हम उत्पादनमें सरलता लाकर देशकी सम्पत्तिका सवर्धन तो करते हैं, पर वस्तुका मूल्य कम करते हैं।

रिकार्डोकी धारणामें सभी श्रमिकोंकी कार्य-कुशलता समान मान ली गयी है, कार्यके शिक्षणमें व्यय होनेवाले श्रम एव समयका कोई विचार नहीं किया गया, लाभकी दरको समान माना गया है और भाटकको उत्पादनकी लागतमें सम्मिलित नहीं किया गया है। इन सभी कारणोंसे रिकार्डोका मूल्य-सिद्धान्त अपूर्ण बताया जाता है। मार्क्सने इसे पूँजीवादके उन्मूलनके लिए एक उत्तम अस्त्र बनाया है, पर रिकार्डो स्वय ही इसकी अपूर्णताका कायल है। वह मैक्कुलकको १८ दिसम्बर सन् १८१९ को लिखे पत्रमें कहता है कि 'मूल्य-सिद्धान्तकी अपनी व्याख्यासे स्वयं मैं ही सतुष्ट नहीं हूँ। शायद और किसी व्यक्तिकी समर्थ लेखनी इस कार्यको पूरा करनेमें समर्थ हो सके।'

३ विदेशी व्यापार

रिकार्डोने तीन कारणोंसे मुक्त-व्यापारका समर्थन किया है :

(१) इससे प्रादेशिक श्रम-विभाजनको प्रोत्साहन मिलता है, जिसके कारण उद्योगके पनपनेमें और प्रकृतिकी देनका सफलतापूर्वक उपयोग करनेमें सहायता मिलती है। श्रमका सुविधाजनक रीतिसे उपभोग होता है।

(२) इससे विदेशोंसे गल्ला मँगाकर गल्लेकी महँगीपर नियत्रण किया जा सकता है। वस्तुओंकी मूल्य वृद्धि तथा भाटक-वृद्धिको रोका जा सकता है और उत्पादकोंकी लाभ-दर बढ़ायी जा सकती है।

(३) इससे मुद्रा-स्फीति एवं मुद्रा-संकुचनके परिणामोंसे इसकी गति भी जा सकती है। प्रारम्भ मुद्रा-व्यापारमें अर्थात् निर्यात स्वर्ण ही समानरूपसे और अग्रसर होगा। निर्यातसे आयात बढ़ते ही मुद्रा विदेश भेजनी पड़ती है जिससे देशमें मुद्रा-संकोच होता है, मूल्य गिरता है। दूसरे देशमें मुद्रा-स्फीतिसे कीमतें चढ़ती हैं और आयात घटकर निर्यात बढ़ता है। यों आयात निर्यात बराबर हो जाता है।[1]

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारके शास्त्रीय सिद्धान्तका सर्वप्रथम प्रतिपादक डेविड रिकार्डो ही माना जाता है। रिकार्डोकी मान्यता है कि प्रत्येक देशके भीतर पूँजी तथा श्रम पूर्णरूपसे गतिशील होते हैं। फलतः जहाँ साधारण वस्तु मूल्य श्रम-व्ययके बराबर होता है, वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य श्रम-व्ययसे पृथक् हो जाता है। रिकार्डोके अनुसार यदि व्ययमें निरपेक्ष अन्तर स्वदेशी व्यापारका कारण है तो व्ययमें सापेक्षिक अन्तर विदेशी व्यापारका कारण है।[2]

रिकार्डो मानता है कि विदेशी व्यापार तुलनात्मक श्रम-व्ययके आधारपर चलता है। कोई भी देश जिस वस्तुका उत्पादन अन्य देशकी तुलनामें कम व्ययमें कर पाता है, उसीके निर्माणपर वह अधिक ध्यान देता है। वह उसी वस्तुके निर्माणपर जोर देता है, जिसमें उसे तुलनात्मक हानि न्यूनतम हो और तुलनात्मक लाभ अधिकतम हो। अन्य वस्तुओंका वह आयात कर लेता है। एक वस्तुमें उसे यदि २ प्रतिशत लाभ हो और दूसरीमें ११½ प्रतिशत, तो वह २१½ प्रतिशत लाभवाली वस्तुका ही निर्माण करता है, कम लाभवाली वस्तुका उत्पादन अन्य देशोंके लिए छोड़ देता है और वहाँसे उसका आयात कर लेता है।

रिकार्डो कहता है कि मान लें इंग्लैण्डमें पुर्तगालकी अपेक्षा कपड़ा और शराब बनानेकी उत्पादन-लागत कम पड़ती है, तो वह दोनों ही वस्तुओंका उत्पादन नहीं करेगा। वह केवल उसी वस्तुका उत्पादन करेगा, जिसमें उसे दूसरीसे अपेक्षाकृत अधिक लाभ होगा। दूसरी वस्तु वह पुर्तगालसे खरीद लेगा।

४. बैंक तथा कागजी मुद्रा

रिकार्डो आरम्भसे ही बैंकिंग और मुद्रासम्बन्धी विषयोंमें विशेष रुचि रखता था। फ्रांसीसी युद्धोंके कारण बैंकनोटोंका मूल्य गिरने लगा था, जिसके कारण केवल विद्वानोंको ही नहीं, सर्वसाधारणको भी इस विषयमें दिलचस्पी हो गयी थी। रिकार्डोने सन् १७९७ के मुद्रा-संकटको बड़े ध्यानसे देखा और उसपर गम्भीर विचार किया। पहले नोटोंका दाम १ प्रतिशत गिरा और बादमें तो

---

१. जीड और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ १८८-१८९।
२. [illegible] डिल : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, पृष्ठ ५।

३० प्रतिशततक गिर गया। रिकार्डोने इस समस्यापर सन् १८१० में एक पुस्तिका लिखी—'दि हाई प्राइस ऑफ बुलियन ए प्रूफ ऑफ दि डिप्रीसिएशन ऑफ बैंक नोट्स।'

इस पुस्तिकामें रिकार्डोने यह मत प्रकट किया कि नोटोंकी सख्या-वृद्धि ही नोटोंका मूल्य गिरनेका प्रधान कारण है। उसका सुझाव है कि सरकारको कागदी नोटोंकी सख्या घटानी चाहिए और मुद्रा-व्यवस्थापर अपना नियत्रण रखना चाहिए। प्रचलनमें जो नोट हैं, उनकी सख्या कम की जाय और उनके मूल्यकी सोनेकी गिलाएँ बैंकमें रखी जायँ, ताकि बैंक बिना धरोहरके अधाधुध नोट न फैला सके।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि रिकार्डो कागदी मुद्रा, हुडी, साख आदिका विरोधी था। बात ऐसी नहीं। नोटोंको वह प्रगतिका चिह्न मानता था, पर उनकी मात्रा अन्धाधुन्ध बढ़ाकर मुद्रा-स्फीति कर देनेका वह विरोधी था। उसने मुद्राके मात्रा-सिद्धान्तको जन्म दिया।

विचारोंकी समीक्षा

रिकार्डोकी सबसे महती देन वितरण-सम्बन्धी है। उसका भाटक-सिद्धान्त अत्यधिक आलोचनाका विषय बना है, यद्यपि उसकी महत्ता आज भी किसी प्रकार कम नहीं हुई है। आधुनिक भाटक-नियमोंपर रिकार्डोके सिद्धान्तकी स्पष्ट छाया दिखाई पड़ती है।

भाटक-सिद्धान्तके आलोचकोंने कई प्रकारके तर्क उपस्थित किये हैं, उनमें मुख्य तर्क इस प्रकार हैं। जैसे

(१) रिकार्डो मानता है कि सर्वोत्तम भूमिपर ही सबसे पहले खेती की जाती है।

कैरे और रोशर ऐसा मानते हैं कि यह कोई आवश्यक बात नहीं कि सबसे पहले सबसे उर्वरा भूमि ही जोती जाती है। कैरेका तो उल्टे यह कहना है कि सबसे पहले कम उपजाऊ भूमिपर ही खेती की गयी, उसके बाद उर्वरा भूमि जोती गयी।

रिकार्डोके अनुयायी कैरेकी बातको गलत मानते है।

(२) रिकार्डो भूमिकी उत्तम स्थितिको समुचित महत्त्व नहीं प्रदान करता।

इस तर्कमें इसलिए कोई दम नहीं है कि रिकार्डोने भूमिकी स्थिति एव उसकी उर्वरा शक्ति, दोनोंको ही महत्त्व प्रदान किया है।

(३) रिकार्डोने मुक्त-प्रतियोगिता और विभिन्न भूमिखण्डोंसे एक ही प्रकारकी उपज होनेकी बात कही है। व्यवहार्यत यह बात गलत है।

रिकार्डो जिस प्रकारके सिद्धान्तका प्रतिपादन करना चाहता था, उसके

विकासके लिए कुछ न कुछ कल्पना आवश्यक थी। इसके अतिरिक्त विभिन्न भूमिखण्डोंसे एक प्रकारका अन्न भले ही न उत्पन्न हो, बाजारमें तो वह अन्न एक ही प्रकारका माना जायगा।

(४) रिकार्डोका सिद्धान्त ऐतिहासिक दृष्टिसे गलत है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा यातायातके साधनोंकी वृद्धिके कारण महँगे गल्ले और भारी कर वृद्धिका अवरोध-सा हो गया है। भाटक अब भूस्वामी और कृषकमें एक संविभाग बन गया है।

यह आलोचना भी विशेष जोरदार नहीं है। इसमें भाटक-सिद्धान्तके रूप में भ्रमोत्पादक विचार उपस्थित किये गये हैं।

(५) मार्शल इस बातको नहीं स्वीकार करता कि भूमिकी 'मौलिक तथा अविनाशी' शक्तियोंके कारण भाटक प्राप्त होता है। उसके मतसे भाटक जंगल साफ करने, मेड़की मरम्मत बाँधने, खाद देने आदिके पुराने परिश्रमका परिणाम है।

रिकार्डोके समर्थक अब भूमिकी शक्तियोंका वर्णन करनेमें उसके लिए 'अविनाशी' शब्दका प्रयोग नहीं करते।

(६) रिकार्डोका यह कहना गलत है कि सीमान्त भूमिमें भाटक नहीं मिलता। आज तो कोई भी भूमि भाटक-शून्य नहीं है।

रिकार्डोके अनुयायी इस तर्कका उत्तर यह देते हैं कि भले ही विकसित देशोंमें ऐसी भाटक-शून्य भूमिका अभाव हो पर रूस, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका जैसे देशोंमें जहाँ अभी यातायात और संचार-वहनके साधन अपेक्षाकृत कम हैं भाटक-शून्य भूमिका मिलना सम्भव है।

(७) भूमिपर उत्पत्ति ह्रास नियम सदा ही लागू होता है, रिकार्डोका यह कहना गलत है।

कहीं-कहीं भूमिपर उत्पत्ति वृद्धि नियम भी लागू हो सकता है और कहीं उत्पादन-समता-नियम।

(८) भाटक-सिद्धान्त मूल्यको प्रभावित करता है। कुछ अर्थशास्त्री ऐसा नहीं मानते।

(९) रिकार्डोका भाटक-सिद्धान्त निराशावादको जन्म देता है।

यह ठीक है कि उसके विवेचनमें निराशाका स्वर दृष्टिगोचर होता है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह प्रगतिका विरोधी है। वह तो केवल इसी तथ्यकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है कि स्थिति कितनी विषम होती जा रही है। हम यदि समय रहते न चेतेंगे, तो दुर्भिक्ष भले न आये, अभाव और संकट तो हमें आकर घेरेंगे ही। मोटेमर और कार्वे

मान लीजिये, इंग्लैण्ड यदि आज ऐसा निश्चय कर ले कि [illegible] नहीं [illegible] करोड़ जनताके [illegible] प्रति अपनी [illegible] किया, तो [illegible] की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध नहीं होगी।[1]

रिकार्डोने प्रकृतिवादियोंकी भाँति '[illegible]' का नाम न लेकर उसकी महत्ता प्रतिपादित की है और [illegible] अनुपार्जित [illegible] है, जिसे कि मार्क्सवादी लोगोंने भलीभाँति विकसित किया है। [illegible] रिकार्डोने स्मिथसे भी जोरदार समर्थन किया। उसका प्रभाव तत्कालीन विचारधारा पर पड़ा ही।

इतनी अधिक समीक्षाके उपरान्त भी 'मजदूरी सिद्धान्त' के महत्त्वमें कोई विशेष कमी नहीं आती। रिकार्डोके मजूरी सिद्धान्तमें कुछ त्रुटियाँ हैं। जैसे :

(१) श्रमिकोंमें कार्य कुशलताकी दृष्टिसे भेद होता है, पर रिकार्डोने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

(२) श्रमिकोंको अपने वर्गके [illegible] समान [illegible] है, [illegible] भिन्नता होती है। इस ओर भी रिकार्डोका ध्यान नहीं है।

(३) रिकार्डो श्रमिकोंमें पूर्ण प्रतिस्पर्धा मानता है, जब कि वास्तवमें ऐसा नहीं होता।

(४) रिकार्डो मानता है कि श्रमिक अपने भाग्यके निर्माता स्वयं हैं और सरकार उनकी दशामें कोई सुधार नहीं कर सकती। वह श्रमिकोंसे यह अपेक्षा रखता है कि वे स्वयं ही आत्मसंयम द्वारा जन-वृद्धि रोक लें। ऐसा मान लेना ठीक नहीं।

पर कुछ कमियोंके बावजूद इतना तो है ही कि मजूरीके लौह नियमकी रचनामें रिकार्डोके मजूरी सिद्धान्तका बहुत बड़ा हाथ है। जर्मन समाजवादी लासालका कहना है कि उत्पादनकी पूँजीवादी पद्धति ही इस धारणाके लिए उत्तरदायी है कि मजूरीका स्तर वही रहना चाहिए, जिससे श्रमिक किसी प्रकार अपना जीवन-धारण कर सके। अतः उसने श्रमिकोंके स्तरको सुधारनेका एकमात्र उपाय यह बताया है कि मालिक-मजूरका सम्बन्ध समाप्त कर दिया जाय।[2]

रिकार्डोका लाभ-सिद्धान्त भी दोषपूर्ण है। उसकी मान्यता यह है कि समाजकी प्रगतिके साथ साथ लाभका अंश घटता जाता है। मार्क्सने पूँजीवादके इस पतनमें उसके नाशके चिह्न बताये हैं।

---

[1] जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकानामिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ १७०।

[2] भटनागर और गनीभवबहादुर : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक थाट, पृष्ठ १८०।

विकासके लिए कुछ न कुछ कल्पना आवश्यक थी। इसके अतिरिक्त विभिन्न भूमिखण्डोंसे एक प्रकारका अन्न भले ही न उत्पन्न हो, बाजारमें तो वह सारा अन्न एक ही प्रकारका माना जायगा।

(४) रिकार्डोका सिद्धान्त ऐतिहासिक दृष्टिसे गलत है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा यातायातके साधनोंकी वृद्धिके कारण महँगे गल्ले और भारी भाटककी वृत्तिका अवरोध-सा हो गया है। भाटक अब भू-स्वामी और कृषकके बीचका एक संविदामात्र रह गया है।

यह आलोचना भी विशेष जोरदार नहीं है। इसमें भाटक-सिद्धान्तके सम्बन्ध में प्रमात्मक विचार उपस्थित किये गये हैं।

(५) बास्त्या इस बातको नहीं स्वीकार करता कि भूमिकी 'मौलिक' तथा 'अविनाशी' शक्तियोंके कारण भाटक प्राप्त होता है। उसके मतसे भाटक तो जंगल साफ करने, खेतकी मेंड बाँधने, खाद देने आदिके पुराने परिश्रमका परिणाम है।

रिकार्डोके समर्थक अब भूमिकी शक्तियोंका वर्णन करतेमें उसके लिए 'अविनाशी' शब्दका प्रयोग नहीं करते।

(६) रिकार्डोकी यह कल्पना गलत है कि सीमान्त भूमिमें कोई भाटक नहीं मिलता। आज तो कोई भी भूमि भाटक-शून्य नहीं है।

रिकार्डोके अनुयायी इस तर्कके उत्तरमें कहते हैं कि भले ही विकसित देशों में ऐसी भाटक-शून्य भूमिका अभाव हो पर कनाडा आस्ट्रेलिया अमरीका जैसे देशोंमें जहाँ अभी यातायात और संवाद-वहनके साधन अपेक्षाकृत कम हैं भाटक-शून्य भूमिका मिलना सम्भव है।

(७) भूमिपर उत्पत्ति ह्रास नियम सदा ही लागू होता है रिकार्डोका यह कहना गलत है।

कहीं-कहीं भूमिपर उत्पत्ति वृद्धि नियम भी लागू हो सकता है और कहींपर उत्पादन-समता नियम।

(८) भाटक-सिद्धान्त मूल्यको प्रभावित करता है। कुछ अर्थशास्त्री ऐसा नहीं मानते।

(९) रिकार्डोका भाटक-सिद्धान्त निराशावादको जन्म देता है।

यह ठीक है कि उसके विवेचनमें निराशाका स्वर दृष्टिगोचर होता है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह प्रगतिका विरोधी है। वह तो केवल इसी तथ्यकी ओर समाजका ध्यान आकृष्ट करता है कि स्थिति कितनी विषम होती जा रही है। हम यदि समय रहते न चेतेंगे तो दुर्भिक्ष भले न आवे अभाव और संकट तो हमें भुगतने पड़ेंगे ही। प्रोफेसर गाइड कहते हैं

कि मान लीजिये, इंग्लैण्ड यदि आज ऐसा निश्चय करे कि वह अपनी ४।। करोड़ जनताके खाद्यान्नकी पूर्ति अपनी ही भूमिसे करेगा, तो क्या रिकार्डोकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध नहीं होगी ?[1]

रिकार्डोने प्रकृतिवादियोंकी भाँति 'प्रकृतिकी ओर' का नारा न लगाकर श्रमकी महत्ता प्रतिपादित की है और भाटकको अनुपार्जित धन बताया है, जिसे कि मार्क्सवादी लोगोंने भलीभाँति विकसित किया है। मुक्त व्यापारका रिकार्डोने स्मिथसे भी जोरदार समर्थन किया। इसका प्रभाव तत्कालीन नियामकोंपर पड़ा ही।

इतनी अधिक समीक्षाके उपरान्त भी 'भाटक सिद्धान्त' के महत्त्वमें कोई विशेष कमी नहीं आयी। रिकार्डोके मजूरी-सिद्धान्तमें कुछ अपूर्णताएँ हैं। जैसे

(१) श्रमिकोंमें कार्य-कुशलताकी दृष्टिसे भेद होता है, पर रिकार्डोने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

(२) श्रमिकोंको अपने कार्यके शिक्षणमें समय लगता है, उनके श्रममें भिन्नता होती है। इस ओर भी रिकार्डोका ध्यान नहीं है।

(३) रिकार्डो श्रमिकोंमें पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा मानता है, जब कि सर्वांशमें ऐसा नहीं होता।

(४) रिकार्डो मानता है कि श्रमिक अपने भाग्यके निर्माता स्वयं हैं और सरकार उनकी दशामें कोई सुधार नहीं कर सकती। वह श्रमिकोंसे यह अपेक्षा रखता है कि वे स्वयं ही आत्म संयम द्वारा जन वृद्धि रोक लेंगे। ऐसा मान लेना ठीक नहीं।

पर कुछ कमियोंके बावजूद इतना तो है ही कि मजूरीके लौह नियमकी रचनामें रिकार्डोके मजूरी-सिद्धान्तका बहुत बड़ा हाथ है। जर्मन समाजवादी लासाल्का कहना है कि उत्पादनकी पूँजीवादी पद्धति ही इस धारणाके लिए उत्तरदायी है कि मजूरीका स्तर वही रहना चाहिए, जिससे श्रमिक किसी प्रकार अपना जीवन-धारण कर सके। अतः उसने श्रमिकोंके स्तरको सुधारनेका एकमात्र उपाय यह बताया है कि मालिक मजूरका सम्बन्ध समाप्त कर दिया जाय।[2]

रिकार्डोका लाभ-सिद्धान्त भी दोषपूर्ण है। उसकी मान्यता यह है कि समाजकी प्रगतिके साथ-साथ लाभका अंश घटता जाता है। मार्क्सने पूँजीवादके इस पहलूमें उसके नाशके चिह्न बताये हैं।

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ १७० ।

२ भटनागर और सतीशबहादुर : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ १८० ।

रिकार्डो मानता है कि पूँजीकी उत्पादिका शक्ति ही लाभका कारण है, उपभोगमें कमी करनेसे लाभ प्राप्त होता है और मजदूरीकी दरमें वृद्धिके साथ साथ लाभ घटता जाता है। उसने कहा है कि भू-स्वामियों और पूँजीपतियोंके स्वार्थोंमें संघर्ष होता है पूँजीपतियों और मजदूरोंके स्वार्थोंमें संघर्ष होता है। इस संघर्षका अन्त तभी होगा जब लाभ खत्म हो जायगा। ऐसी स्थितिमें कोई पूँजी क्यों लगायेगा ? अतः समाजकी प्रगति रुक जायगी। उसके इस निराशावादकी बड़ी आलोचना हुई है।

रिकार्डोका मूल्य सिद्धान्त तो स्वयं उसीकी दृष्टिमें अपूर्ण है। मैकुलकको १५ अगस्त १८२ को लिखे गये एक पत्रमें उसने यह बात स्वीकार की है कि 'न तो मैं ही और न मैकुलक ही उत्तम मूल्य सिद्धान्तकी स्थापना कर सके। हम दोनों ही इस कार्यमें असफल सिद्ध हुए हैं।'

विदेशी व्यापारके सम्बन्धमें रिकार्डोके विचारोंकी तीव्र आलोचना की गयी है।

कहा गया है कि कुछ देशोंको बहुतसी ऐसी वस्तुएँ विदेशोंसे खरीदनी ही पड़ती हैं, जो वे स्वयं बना नहीं सकते। रिकार्डोकी यह मान्यता भी गलत है कि वस्तुका मूल्य केवल उसकी लागतपर निर्भर करता है। उसमें उपयोगिता और लागत दोनोंका हाथ रहता है। यह भी आवश्यक नहीं कि रिकार्डोके लागत समता-सिद्धान्तके अनुसार ही प्रत्येक वस्तुका उत्पादन हो। कहीं-कहीं उत्पादन ह्रास-नियम और उत्पादन-वृद्धि नियम भी लागू होता है।

ओहलिन एवम् सेलिगमैन, आदि अर्थशास्त्रियोंने रिकार्डोकी इस धारणाकी जोरदार टीका की है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्देशीय व्यापारमें अन्तर होता है। रिकार्डो कहता है कि श्रम और पूँजी देशमें गतिशील रहती है विदेशमें अगतिशील अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तुलनात्मक लागत-सिद्धान्तपर और वस्तु-विनिमयपर आधृत है परन्तु अन्तर्देशीय व्यापारमें ये आधार नहीं रहते। ओहलिन आदि ऐसा नहीं मानते। वे कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारमें और अन्तर्देशीय व्यापारमें कोई विशेष अन्तर नहीं है।

बैंकिंग और मुद्रासम्बन्धी रिकार्डोके विचारोंकी गुरुताका प्रमाण यही है कि उनके आधारपर सन् १८२२ और १८४४ के बैंक-कानून बने और उन्होंने बैंक आफ इंग्लैण्डका नियंत्रण किया। यों रिकार्डो अहस्तक्षेपवादी था पर बैंकके विषयमें उसका यह विचार था कि उसपर सरकारका कड़ा नियंत्रण वांछनीय है, अन्यथा सारी अर्थ-व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो सकती है।

मूल्यांकन

रिकार्डोने अर्थशास्त्रीय विचारधाराको अत्यधिक प्रभावित किया है। उसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

(१) उसने वितरणकी समस्याओंका विस्तारपूर्वक विवेचन किया।

(२) भाटक-सिद्धान्त उसकी अमूल्य देन है। उसमें उसने दो तथ्योंपर विशेष बल दिया :

१ भाटक अनुपार्जित आय है।

२ भू-स्वामियोंके हित समाजके व्यापक हितोंके विरोधी हैं।

(३) अपने मूल्य-सिद्धान्त द्वारा उसने इस धारणाका प्रतिपादन किया कि श्रम ही वास्तविक लागत है।

(४) उसने मुक्त-व्यापारका समर्थन करते हुए तुलनात्मक लागत सिद्धान्तका प्रतिपादन किया।

(५) कागदी मुद्राके नियत्रण-सम्बन्धी उसके विचार आधुनिक जगत्में अनेकाशमें स्वीकृत हो चुके हैं।

(६) मैल्थसके उत्पादन-ह्रास नियमको उसने विकसित किया।

(७) रिकार्डोने अर्थशास्त्रमे निगमन प्रणालीको जन्म दिया।

(८) समाजवादियोंने आगे चलकर मुख्यत रिकार्डोके विचारोंपर ही अपने विचारोंका भव्य प्रासाद खड़ा किया। व्यक्तिगत पूँजीका विरोध, वर्ग-संघर्ष, मार्क्सका प्रख्यात श्रम-सिद्धान्त—इन सबके विकासके लिए रिकार्डो अनेकाशमें उत्तरदायी है।

ग्रेका यह कथन सत्य ही है कि 'यदि मार्क्स और लेनिनकी ऊर्ध्वकाय मूर्तियाँ खड़ा करना अपेक्षित है, तो उनकी पृष्ठभूमिमे रिकार्डोकी प्रतिमूर्ति होनी ही चाहिए'।[१]

● ● ●

---

१ ग्रे डेवलेपमेण्ट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ १७० ।

प्रारम्भिक आलोचक ३

आदम स्मिथने अर्थशास्त्रकी शास्त्रीय विचारधारामें रंग भरा, माल्थस और रिकार्डोने अपने विचारों द्वारा उसे भलीभाँति परिपुष्ट किया। कहा जा सकता है कि स्मिथ, माल्थस और रिकार्डोने मिलकर अर्थशास्त्रका शास्त्रीय ढाँचाका महल खड़ा कर लिया।

सागरमें छोटी-सी कंकड़ी फेंक देनेसे जिस प्रकार अनेक लहरें उठने लगती हैं, शास्त्रीय विचारधाराके कारण आर्थिक जगतमें भी उसी प्रकारकी अनेक लहरें उत्पन्न होने लगीं। किसीने इन अर्थशास्त्रियोंके विचारोंका समर्थन किया, किसीने इनका विरोध किया। समर्थकोंमें भी अनेक ऐसे थे जो आंशिक रूपमें समर्थन करते थे और आंशिक रूपमें विरोध। 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः!' किसी भी विचार-परम्पराको विकसित होनेके लिए यह परम आवश्यक भी है।

स्मिथके प्रारम्भिक आलोचकोंमें तीन आलोचक विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं : लाडरडेल, रे और सिसमाण्डी।

लाडरडेल

अर्ल लाडरडेल (सन् १७५९–१८३९) स्काटलैण्डका प्रमुख अर्थशास्त्री था। सन् १७८० में उसने संसद्में प्रवेश किया। राजनीतिमें वह घुर उग्रसे घुर दक्षिणपक्षमें चला गया था। उसके देशवासी उसे 'सनकी' मानते थे।[1]

लाडरडेलकी प्रमुख अर्थशास्त्रीय रचनाका नाम है—'ऐन इन्क्वायरी इन्टु दि नेचर एण्ड ओरिजिन ऑफ पब्लिक वेल्थ, एण्ड इनटु दि मीन्स एण्ड काजेज ऑफ इट्स इनक्रीज'। यह सन् १८०४ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तकका व्यापक प्रचार हुआ था। जर्मन और फरासीसी भाषामें इसका अनुवाद किया गया था।

लाडरडेलने अपनी पुस्तकमें स्मिथके विचारोंकी आलोचना की है। उसके मतसे राष्ट्रीय सम्पत्ति और व्यक्तिगत सम्पत्तिको एक ही मानना गलत है। अपनी इस धारणाके प्रतिपादनके लिए लाडरडेलने मूल्य सिद्धान्तका विवेचन किया है।

लाडरडेल कहता है कि मूल्यके लिए दो बातें आवश्यक हैं—उपयोगिता और न्यूनता। वस्तु उपयोगी होनी चाहिए अथवा मनुष्यके लिए सुखकर होनी चाहिए, ताकि मनुष्य उसकी प्राप्तिकी इच्छा करे। साथ ही उसकी मात्रा न्यून

---

[1] हेने : हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक थाट, पृष्ठ १६२।

हो। यदि माँग ज्योंकी त्यों बनी रहे, तो वस्तुकी न्यूनताके साथ मूल्य बढ़ेगा और उसके प्राचुर्यके साथ घटेगा।

लाडरडेलकी धारणा है कि सामाजिक अथवा राष्ट्रीय सम्पत्तिका मूल्य निर्भर करता है उपयोगितापर, जब कि व्यक्तिगत सम्पत्तिका मूल्य निर्भर करता है न्यूनता-पर। वस्तुकी न्यूनताके साथ व्यक्तिगत सम्पत्तिका मूल्य बढ़ेगा, जब कि सामाजिक सम्पत्तिका मूल्य प्राचुर्यके साथ बढ़ेगा। इसका उदाहरण देते हुए लाडरडेल कहता है कि कोई उसकी न्यूनता उत्पन्न करके सम्पत्तिवान् बन सकता है, पर ऐसा कार्य राष्ट्र या समाजके हितोंका विरोधी है।[1]

मूल्यकी विवेचना करते हुए लाडरडेलने माँगकी लोचके सिद्धान्तकी पूर्व-कल्पना की है।[2] सम्पत्तिके कार्योंका भी लाडरडेलका विवेचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह मानता है कि भूमि, श्रम और पूँजी, ये तीनों ही सम्पत्तिके मूल स्रोत हैं।

धनके असमान वितरणकी लाडरडेल भर्त्सना करता है। वह कहता है कि 'सार्वजनिक सम्पत्तिकी वृद्धिमें सबसे बड़ा रोड़ा यही है कि सम्पत्तिका वितरण विषम है। उचित वितरणके द्वारा ही देशकी सम्पन्नतामें वृद्धि हो सकती है'।[3]

रे

जान रे (सन् १७८६–१८७३) ने एडिनबरामें चिकित्साकी शिक्षा प्राप्त की थी। आर्थिक और पारिवारिक दुर्भाग्य उसे कनाडा घसीट ले गया। वहाँ उसने अध्यापन और चिकित्सा आदिके द्वारा जीवन निर्वाह किया।

रेकी प्रमुख रचना है—न्यू प्रिंसिपल्स ऑन दि सब्जेक्ट ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी (सन् १८३४)। इस रचनामें उसने लाडरडेलसे मिलते जुलते विचार प्रकट किये हैं।

लाडरडेलकी भाँति रेकी भी ऐसी मान्यता है कि व्यक्तिगत और राष्ट्रीय हितोंमें समानता नहीं है। वह मानता है कि दोनोंकी सम्पत्तिमें वृद्धिके जो कारण होते हैं, वे भिन्न हैं।

रेकी धारणा है कि सम्पत्तिकी उत्पत्ति आविष्कारोंके द्वारा होती है और राष्ट्रीय सम्पत्तिके सम्वर्धनके लिए आविष्कार परम उपयोगी है।[4] रेने स्मिथके श्रम विभाजन-सम्बन्धी विचारोंकी भी आलोचना की है। स्मिथ जहाँ यह मानता है कि श्रम विभाजनका परिणाम आविष्कार है, वहाँ रे यह मानता है कि आवि-

१. लाडरडेल पब्लिक वेल्थ, पृष्ठ ४०।
२ ग्रे डेवलपमेण्ट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ १६५।
३ लाडरडेल पब्लिक वेल्थ, पृष्ठ ३४५, ३४६।
४ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३८५।

प्रकारका परिणाम श्रम-विभाजन है। स्मिथके मुक्त-व्यापारकी नीतिका भी रेने विरोध किया है। वह राज्यके हस्तक्षेपका समर्थन करता है। उसने यह भी कहा है कि स्मिथके आर्थिक विचारोंके प्रतिपादनकी प्रणाली पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं है।

रेके विचारोंमें कैरेकी पूर्वकल्पना दृष्टिगोचर होती है।[1]

दोनोंकी तुलना

लाडरडेल और रे, दोनों ही राष्ट्रीय सम्पत्ति और व्यक्तिगत सम्पत्तिमें भेद मानते हैं। दोनोंका ही यह मत है कि राष्ट्रीय या सामाजिक हित और व्यक्तिगत हित एक-से नहीं होते। दोनोंने ही सरकारी हस्तक्षेपका समर्थन किया है। स्मिथने सम्पत्ति बनानेपर जो बल दिया है, उसका विरोध लाडरडेलने भी किया है और रेने भी। लाडरडेल ऐसा मानता है कि श्रम ही सम्पत्ति-वृद्धिका साधन है परन्तु रे ऐसा मानता है कि कार्य-कुशलता एवं पुरुषार्थ ही सम्पत्ति-वृद्धिका कारण है। रेने इसके लिए आविष्कारोंपर बहुत बल दिया है।

हैनेका कहना है कि स्मिथने श्रम-विभाजन और बचतके सम्बन्धमें मानवीय स्वार्थकी जो बात कही है उसका इन दोनों विचारकोंने ठीक ही विरोध किया है पर वे यह नहीं सोच सके कि उपभोग और उत्पादनमें अथवा कीमत और उपयोगितामें सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। कोई समाजवादी कल्पना उनके मस्तिष्कमें आ नहीं सकी।[2]

सिसमाण्डी

जीन चार्ल्स ल्योनार्ड सिमाण्ड द सिसमाण्डी (सन् १७७३–१८४२) अर्थशास्त्रका प्रसिद्ध लेखक तो है ही, प्रख्यात इतिहासकार भी है। आर्थिक विचारधाराके विकासमें उसका अनुदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वह अपनेको आदम स्मिथका शिष्य कहता है परन्तु केवल सैद्धान्तिक विषयोंमें ही। व्यावहारिक समस्याओंके निदानमें सिसमाण्डीका स्मिथसे अत्यधिक मतभेद है और उसने स्मिथकी कटु आलोचना की है।

सिसमाण्डी समाजवादी नहीं है फिर भी समाजवादी लोग उसकी रचनाओंका गम्भीर अध्ययन करते हैं। ऐसा माना जाता है कि सिसमाण्डी एक युग प्रवर्तक विचारक है। उसकी रचनाओंने उन्नीसवीं शताब्दीके सभी प्रमुख आन्दोलनोंको प्रभावित किया है। चाहे ओवेन, फुर्ये और ब्लां जैसे उग्रपन्थी समाजवादी हों, चाहे मिल और रस्किन जैसे मानवीय-परम्परावादी हों; चाहे

---

१ रे : डेवलपमेंट ऑफ इकानामिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ १ । [illegible]

२ हेने : वही, पृष्ठ [illegible]।

रोशर, हिल्डेब्राण्ड और श्मोलर जैसे इतिहासवादी हों, चाहे मार्शल जैसे नव-परम्परावादी हों, चाहे राडबर्ट्स और लासाल जैसे राज्य-समाजवादी हों, चाहे मार्क्स और एंजिल जैसे मार्क्सवादी हों—सबपर सिसमाण्डीके विचारोंका प्रभाव परिलक्षित होता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सिसमाण्डीका जन्म और विकास उस युगमें हुआ, जब पूर्ण प्रतियोगिताका साम्राज्य था और सरकारने उत्पादनपर अंकुश रखना अथवा मालिकों और मजदूरोंके बीच हस्तक्षेप करना सर्वथा बन्द कर दिया था। औद्योगिक विकास अपनी चरमसीमाकी ओर जा रहा था। इंग्लैण्डमें मांचेस्टर, बर्मिंघम और ग्लासगो तथा फ्रांसमें लिली, सेदान जैसे नगर औद्योगिक केन्द्र बनते जा रहे थे। उद्योगोंके विकासके फलस्वरूप अमीरों और गरीबोंके बीचकी खाई चौड़ी होती जा रही थी। मजदूरोंका शोषण खूब ही बढ़ रहा था। उनसे सत्रह सत्रह घण्टे काम लिया जाता था।

सिसमाण्डीने सन् १७८९ की फरासीसी क्रान्ति देखी। उसके भले-बुरे परिणाम देखे, नेपोलियनी युद्धोंके दुष्परिणाम भी देखे, सन् १८१५–१८१८ और सन् १८२५ की मन्दियाँ देखीं, जिनके कारण बेकारी बढ़ी, बैंकोंका दिवाला निकला और व्यापारियोंकी बधिया बैठ गयी।

एक ओर इन ऐतिहासिक घटनाओं तथा युगकी तात्कालिक पुकारने सिसमाण्डीको प्रभावित किया, दूसरी ओर मैल्थस, रिकार्डो, से, सीनियर, लिस्ट, ओवेन, ओरटस आदि समकालीन विचारकोंकी विचारधाराओंने भी उसे प्रभावित किया।

जीवन-परिचय

सन् १७७३ में जेनेवामें सिसमाण्डीका जन्म हुआ। पादरी पिता उसे व्यापारी बनाना चाहते थे, फिर भी उसे अच्छी शिक्षा मिल गयी। कुछ दिन उसने सरकारी नौकरी भी की। इतिहास, राजनीति और साहित्यमें पहलेसे ही उसकी विशेष रुचि थी, बादमें वह अर्थशास्त्रकी ओर झुका।

सन् १८०३ में सिसमाण्डीने 'कामर्शल वेल्थ' नामक पुस्तक लिखी। उसके बाद १६ वर्ष वह प्रवास तथा शोध-कार्यमें लगा रहा। उसने इंग्लैण्ड और यूरोपके विभिन्न देशोंका भ्रमण किया और वहाँकी आर्थिक स्थितिका गहरा अध्ययन किया, जिससे उसके विचारोंका परिष्कार हुआ।

सिसमाण्डीकी प्रमुख अर्थशास्त्रीय रचना 'दि न्यू प्रिंसिपल ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी और ऑफ वेल्थ इन इट्स रिलेशन टु पॉपुलेशन' सन् १८१९ में प्रकाशित हुई। इसमें उसने मैल्थस और रिकार्डो आदिकी खरी आलोचना की

है। उसकी 'एसीज इन पोलिटिकल इकॉनॉमी' (६ खण्ड सन् १८३७-३८) में तत्कालीन इंग्लैण्ड और यूरोपके श्रमिक वर्गके जीवन-स्तरका गम्भीर अध्ययन है।

उसने ऐतिहासिक क्षेत्रपर 'हिस्ट्री ऑफ दि इटालियन रिपब्लिक्स' (१६ खण्ड) और 'हिस्ट्री ऑफ दि फ्रेंच पीपुल' (२ खण्ड) नामक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाएँ की हैं। सन् १८४२ में सिसमाण्डीका देहान्त हो गया।

सिसमाण्डीके प्रत्यक्ष शिष्य तो कम ही थे, पर उसने अपने विचारोंके द्वारा अर्थशास्त्रकी शास्त्रीय विचारधाराके प्रति तीव्र असन्तोष उत्पन्न कर दिया, जिससे आगे चलकर समाजवादी विचारधाराको पनपनेका अच्छा अवसर प्राप्त हुआ।

प्रमुख आर्थिक विचार

सिसमाण्डीके आर्थिक विचारोंको निम्न प्रकारसे विभाजित करके अध्ययन कर सकते हैं:

(१) अर्थशास्त्रका ध्येय एवं अध्ययनकी पद्धति
(२) वितरणकी योजना
(३) अति-उत्पादन और यंत्र
(४) जनसंख्याकी समस्या
(५) आर्थिक संकटोंके कारण
(६) सुझाव

१ अर्थशास्त्रका ध्येय

प्रश्न उठता है कि सिसमाण्डी अर्थशास्त्रीकी अपेक्षा आचारशास्त्री अधिक था। हो भी क्यों न? उसने अपनी आँखों देखा था कि इतने अधिक औद्योगिक विकासके बावजूद मानव दुःखी है। साथ ही इटली, फ्रांस, स्विट्जरलैण्डमें ही नहीं, इंग्लैण्ड, बेल्जियम और जर्मनीमें भी श्रमिकोंकी दशा अत्यन्त दयनीय है। वे भयंकर शोषणके शिकार हो रहे हैं। तभी तो वह यह मानता है कि अर्थशास्त्रका ध्येय या लक्ष्य केवल सम्पत्ति बटोरना नहीं है, उसका ध्येय है—मानवको अधिक सुखी बनाना। जो अर्थशास्त्र मानवकी प्रसन्नतामें वृद्धि नहीं करता, वह 'अर्थशास्त्र' ही नहीं है। गरीबोंकी दुरवस्थासे वह इतना करुणाभिभूत हो गया था कि उसने एक स्थानपर यहाँतक कह डाला है कि 'सरकार यदि एक वर्गको किसी दूसरे वर्गके हितोंकी बलि देकर भी क्षेम पहुँचानेका कभी विचार करे, तो उसे निश्चय ही गरीबोंको उस यातनासे क्षेम पहुँचाना चाहिए।'

सिसमाण्डीकी धारणा है कि अभीतक अर्थशास्त्रको 'सम्पत्तिका विज्ञान' माना

---

१ हे : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डॉक्ट्रिन्स, पृष्ठ ३१।
२ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डॉक्ट्रिन्स, पृष्ठ १९२।

गया है और राष्ट्रीय सम्पत्तिका सम्वर्द्धन ही उसका लक्ष्य रहा है। यह ठीक नहीं। अर्थशास्त्र 'मानवका विज्ञान' है। मानवका कल्याण करना, उसे अधिकतम सुख पहुँचाना और राष्ट्रीय कल्याणकी वृद्धि करना ही अर्थशास्त्रका एकमात्र लक्ष्य है।

लोक-कल्याणको अर्थशास्त्रका लक्ष्य बताकर सिसमाण्डी चाहता था कि उसे आदर्शवादी विज्ञानका स्वरूप प्रदान किया जाय और उसमें भावना तथा आचारको प्रमुख स्थान दिया जाय। तत्कालीन यूरोप और विशेषत इंग्लैण्डकी दयनीय स्थितिको देखकर मानो सिसमाण्डी यह प्रश्न करता है कि हमारे जीवनके आनन्दको हो क्या गया है? हम किस दिशामें जा रहे हैं? आज जहाँ हम चारों ओर वस्तुओंकी प्रगति देख रहे हैं, वहाँ सभी जगह तो मानव पीड़ित हो रहा है! आज विश्वमें सुखी मानव है कहाँ?[1]

सिसमाण्डी कहता है कि यह बात सर्वथा गलत है कि सम्पत्ति और धनको प्राधान्य दिया जाय और मानवकी उपेक्षा की जाय। सेने सिसमाण्डीकी इस धारणाका विशेष रूपसे मजाक उड़ाया है और कहा है कि अर्थशास्त्रको सिसमाण्डी शासकोंका विज्ञान बनाकर उसे सीमित कर देता है। ऐसा करना गलत है। कारण, यह तो आर्थिक समस्याओंका विज्ञान है। कुछ लोग सिसमाण्डीकी इस धारणाकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि अर्थशास्त्रमें भावना और आचारशास्त्र जोड़ना ठीक नहीं और व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यकी अपेक्षा शासकीय हस्तक्षेपको महत्त्व देना अनुचित है।

अध्ययनकी पद्धति

जहाँतक अर्थशास्त्रके अध्ययनकी पद्धतिका प्रश्न है, सिसमाण्डी इस बातपर बल देता है कि निगमन-प्रणालीके स्थानपर अनुगमन-प्रणालीका आश्रय लेना उचित है। वह कहता है कि व्यावहारिक समस्याओंका अध्ययन करके जब किसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करना हो, तो इतिहास, अनुभव एवं परीक्षणकी पद्धति ही काममें लानी चाहिए। अर्थशास्त्रमें मानव एवं मानवके स्वभावका तथा उसके व्यवहारका अध्ययन होना चाहिए। उसके लिए किसी एक ही बातपर अपनेको केन्द्रित कर देना ठीक नहीं। देश, काल, परिस्थिति आदिका भी समुचित ध्यान करके ही किसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करना चाहिए, अन्यथा हमारे सिद्धान्त अत्यन्त ही भ्रामक सिद्ध हो सकते हैं।[2]

२ वितरणकी योजना

केनेकी भाँति सिसमाण्डीने भी वितरणकी एक योजना प्रस्तुत की है। वह

---

१ ग्रे डेवलपमेण्ट ऑफ इकोनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ २०६ २०७।

२ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ १८८-१८६।

कहता है कि हम राष्ट्रीय वार्षिक आयसे आरम्भ करते हैं, जिसके द्वारा हमें जनता के उपभोगको सामग्रियाँ प्रस्तुत करनी हैं। राष्ट्रीय वार्षिक आयके दो भाग हैं (१) पूँजी और भूमिपर प्राप्त होनेवाला श्रम और (२) श्रम शक्ति। इनमें प्रथमांश पिछले वर्षके श्रमका परिणाम है। दूसरे भाग श्रम-शक्तिकी ही भविष्यकी वस्तु है। यह सम्पत्तिका रूप तभी ग्रहण कर सकती है, जब कि उसे इसका सुयोग मिले और विनिमय हो। श्रमके प्रतिवर्ष नया अधिकार प्राप्त होता है, जब कि पूँजी पिछले श्रमका स्थायी अधिकार है। दोनों अंश प्राप्त करनेवाले वर्गोंके हितोंमें पारस्परिक विरोध है।

सिसमाण्डी कहता है कि वार्षिक आय और वार्षिक उत्पादन दो भिन्न वस्तुएं हैं। सच्ची अर्थव्यवस्थामें वार्षिक उपभोग राष्ट्रीय आय द्वारा सीमित होगा और सारा उत्पादन उपभोगके काममें आ जायगा। वर्तमान वर्षकी वार्षिक आय भावी वर्षके वार्षिक उत्पादनके लिए खर्च की जाती है। यदि कभी वार्षिक उत्पादन गत वर्षकी आयसे बढ़ जाता है, तो उसका परिणाम यह होता है कि कुछ वस्तुएँ नहीं बिक पातीं जिससे अति-उत्पादन होता है। अतः वह उत्पादन और उपभोगके सामंजस्यपर बल देता है।

३ अति-उत्पादन

सिसमाण्डी यह मानकर चलता है कि वार्षिक उत्पादन वार्षिक आयसे बढ़ ही जाता है अतः अति उत्पादनकी समस्या उत्पन्न होती है। इसके फलस्वरूप पूँजीको हानि उठानी पड़ती है श्रम-शक्तिको बेकारी भुगतनी पड़ती है और वस्तुओंका मूल्य गिर जाता है, जिससे उपभोक्ताओंको अस्थायी लाभ होता है।

स्मिथ और रिकार्डो आदि अर्थशास्त्री अति-उत्पादनकी समस्या कोई समस्या ही नहीं मानते थे। उनका कहना था कि अति-उत्पादनकी स्थिति या तो उत्पन्न ही न होगी और होगी भी तो वह किसी उद्योगमें बहुत थोड़े समय टिकेगी। कारण, वे ऐसा मानते थे कि उत्पादनके साधनोंकी अपेक्षा आवश्यकताएँ असीम हैं और यदि कहीं अति-उत्पादन हुआ भी तो वहाँ एक वस्तुका मूल्य गिरेगा पर अन्यत्र किसी वस्तुका उत्पादन कम होनेसे उसका मूल्य चढ़ेगा और तब एक उद्योगके उत्पादनके साधन दूसरे उद्योगमें लग जायँगे और यों अति-उत्पादनकी समस्या स्वयं ही हल हो जायगी।

---

१ वही : वही, पृष्ठ ३११-३१४।
२ वही : वही, पृष्ठ ३१५।

सिसमाण्डी शास्त्रीय विचारकोंकी इस धारणाको भ्रामक और गलत बताता है कि अति-उत्पादनकी कोई समस्या है ही नहीं और है भी, तो माँग और पूर्तिके स्वाभाविक सतुलनसे वह स्वय हल हो जाती है। सिसमाण्डीका मत है कि पहलेके अर्थशास्त्रियोंकी यह धारणा व्यावहारिक नहीं, केवल सैद्धान्तिक है। अनुभव, इतिहास एव परीक्षण द्वारा इसका खोखलापन सिद्ध हो जाता है। आजका अध्यापक क्या कल डॉक्टर बन जा सकता है? जो जिस कार्यको करता है, वह कम वेतनपर अधिक काम करके भी उसी काममें लगा रहना चाहेगा, जबतक कि कुछ कारखाने बिल्कुल ही दिवाला न बोल दें। यों श्रम भी कम गतिशील है, पूँजी भी। पूँजीपति भी जिस उत्पादनमें लगा रहता है, उसीमें लगा रहना पसन्द करेगा। अपनी अचल पूँजीको तो वह तत्काल अन्य उद्योगमें लगा भी तो नहीं सकता। मदी पड़नेपर कपड़ा तैयार करनेवाली मशीनें जूतेके बोरे थोड़े ही तैयार करने लगेंगी! अत. पूँजीपति अपना उद्योग तो मुश्किलसे बदलेगा, हाँ, उत्पादनकी लागत घटानेके लिए शोषणके कार्यमें तीव्रता अवश्य ले आयेगा।[1] वह मजदूरोंसे अधिक काम लेगा, उनकी मजूरी घटा देगा, स्त्रियों और बच्चोंको भी कारखानेमें कामपर नियुक्त कर लेगा, जिससे मजदूरीका व्यय कम हो जाय।

यन्त्रोंका विरोध

सिसमाण्डी यन्त्रोंका और बड़े पैमानेपर किये जानेवाले उद्योगोंका तीव्र विरोधी है। कारण, उसकी यह स्पष्ट धारणा है कि यन्त्रोंके कारण बड़े पैमानेपर उत्पादन होता है, अति-उत्पादन होता है और उसके फलस्वरूप बेकारी बढ़ती है। जैसे ही कोई मशीन लगती है, वैसे ही कितने ही मजदूर निकाल बाहर किये जाते हैं। फिर उनकी जरूरत नहीं रह जाती। इतना ही नहीं, जो लोग रह जाते हैं, उन्हें भी तीव्र प्रतियोगिताका सामना करना पड़ता है। उसके कारण उनकी मजूरी पहलेकी अपेक्षा घट जाती है। झख मारकर उन्हें कम मजूरी स्वीकार करनी पड़ती है। मशीनोंसे मजदूरोंको नहीं, पूँजीपतियों और उद्योग-पतियोंको लाभ होता है। मजदूर बेचारे तो दिन-दिन अधिक पिसते जाते हैं। उत्पादन क्षमता बढ़ जानेपर भी उन्हें कम मजूरीपर अधिक काम करनेके लिए विवश होना पड़ता है।

सिसमाण्डीके पूर्ववर्ती अर्थशास्त्री यन्त्रों और बड़े पैमानेके उत्पादनकी प्रशसा करते नहीं अघाते थे। उनका कहना था कि इससे उत्पादन लागत कम पड़ती है, लोगोंको सस्ते दाममें वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं, धन बच जानेसे मनुष्यकी

---

१ जीद और रिस्ट वही पृष्ठ १६३।

कम शक्ति पड़ती है, जीवन-स्तर ऊँचा उठता है और उत्पादनमें व्यापकता आने एक कारखानेसे हटाये गये मजदूरोंको अन्यत्र काम मिल जाता है। पर सिसमाण्डी कहता है कि ये सभी तर्क भ्रामक हैं। इतिहास, अनुभव एवं परीक्षाकी कसौटी पर ये खरे नहीं उतरते। उत्पादन वृद्धिके साथ-साथ बेकारीमें भी वृद्धि होती है और उपभोगमें भी कमी हो जाती है।

सिसमाण्डी श्रमिकोंके शोषणकी तीव्र आलोचना करता हुआ कहता है कि पूँजीपति श्रमिकोंका शोषण करते हैं। उन्हें लाभ इसलिए नहीं होता कि वे लागतके ऊपर कुछ लाभकी मात्रा रखते हैं अपितु इसलिए होता है कि वे लागतमें कम मूल्य चुकाते हैं। दूसरोंके श्रमकी बलिपर ही लोग विलास करते हैं। श्रमिकोंको अपार श्रम करना पड़ता है और बदलेमें उतनी ही मजूरी मिलती है, जिससे वे किसी प्रकार जीवित बने रह सकें।[1]

प्रतिस्पर्धा और श्रमके सम्बन्धमें सिसमाण्डीने जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्होंने समाजवादियोंको बड़ी प्रेरणा दी है। उसका मत है कि यह कहना गलत है कि प्रतिस्पर्धासे समाजको लाभ होता है। उलटे होता यह है कि प्रतिस्पर्धाके कारण अकुशल उत्पादकोंका दिवाला पिट जाता है और पैसेवाले सशक्त पूँजीपति उपभोक्ताओं और श्रमिकोंको लाभ न उठाने देकर अपनी ही जेब भारी करते रहते हैं। लागत घटानेके लिए वे शासनके अनेक अनुचित उपाय काममें लाकर स्वयं तो दिन-दिन अमीर बनते जाते हैं और मजदूर बेचारे दिन-दिन शोषणकी चक्कीमें पिसते जाते हैं।

यही कारण है कि सिसमाण्डी नये आविष्कारोंका विरोध करता है। कहता है कि उनके कारण मनुष्यकी बुद्धि, उसकी शारीरिक शक्ति, उसका स्वास्थ्य, उसकी प्रसन्नता चौपट होती है, लाभ इतना ही है कि उनके कारण मनुष्यकी वस्तु पैदा करनेकी क्षमतामें कुछ वृद्धि हो जाती है। पर यह आर्थिक लाभ कितना महँगा है!

४ जनसंख्याकी समस्या

सिसमाण्डी मानता था कि अर्थशास्त्रका लक्ष्य यह है कि वह इस बातकी खोज करे कि जनसंख्या और सम्पत्तिके बीच क्या सम्बन्ध हो जिससे मनुष्योंको अधिकतम सुखकी प्राप्ति हो सके। अतः उसने जनसंख्याकी समस्या पर विशेष रूपसे विचार किया है।

सिसमाण्डीका कहना है कि एक ओर जहाँ सहानुभूति अथवा प्रेम मनुष्यको विवाह करनेके लिए प्रोत्साहित करते हैं, वहाँ अहंकार अथवा वस्तुस्थितिका

---

१ हेने : वही पृष्ठ ११[illegible]४ ।
२ [illegible] वही पृष्ठ २११ ।

विवेचन उसे विवाह करनेसे रोकता है। इन भावनाओंका द्वन्द्व चलता है और फल्न आयके अनुसार ही जनसंख्याका नियन्त्रण होता है। उसकी मान्यता है कि श्रमिक लोग तबतक विवाह नहीं करते, जबतक उन्हें कोई नौकरी नहीं मिल जाती अथवा किसी निश्चित आयका आश्वासन नहीं मिल जाता। परन्तु औद्योगिक अस्थिरता उनकी दूर दृष्टिको व्यर्थ बना देती है और मशीनोंके लग जानेसे बेकारी बढ़ने लगती है। सिसमाण्डी मैलथसकी जनसंख्या-सम्बन्धी स्वाभाविक मर्यादाओंको स्वीकार नहीं करता। उसका कहना यह है कि मनुष्यकी आय ही जनसंख्याकी वास्तविक सीमा है।[1]

५ आर्थिक सकटोंके कारण

सिसमाण्डीने औद्योगिक विकासके कुपरिणाम अपनी आँखों देखे थे और वह उनसे अत्यधिक प्रभावित हुआ था। वह पहला अर्थशास्त्री है, जिसने इन आर्थिक सकटोंके कारणकी खोज करनेका प्रयत्न किया। उसने पूँजीवादी उत्पादन-के अभिशापकी तहमें जानेकी चेष्टा की और इस तत्त्वको खोज निकाला कि औद्योगिक विकासने समाजको दो वर्गोंमें विभाजित कर दिया है—एक अमीर है, दूसरा गरीब। मध्यम-वर्ग क्रमश समाप्त होता जा रहा है। एक ओर किसान बड़े बड़े फार्मोंकी प्रतिस्पर्द्धामें टिक न पाकर मजदूर बनता जा रहा है, दूसरी ओर स्वतन्त्र शिल्पी भी पूँजीपतियोंके कारखानोंकी प्रतिस्पर्द्धामें टिक न पाकर मजदूर बनता जा रहा है। यों मजदूरोंकी सख्या बढ़ती है और उन्हें विवश होकर कम मजूरी स्वीकार करनी पड़ती है। वे दिन-दिन गरीब होते चलते हैं, उधर पूँजीपति-वर्ग दिन दिन अमीर होता चलता है।[2]

सिसमाण्डी मानता है कि आर्थिक सकटोंका मूल कारण है मजदूरोंकी दुर्दशा और वस्तुओंका अत्यधिक उत्पादन। बाजारमें वस्तुओंका बाहुल्य हो जाता है, पर मजदूरोंमें क्रय-शक्तिका अभाव होनेसे वस्तुएँ बिना बिकी पड़ी रहती हैं।

वस्तुओंके अति-उत्पादनके कई कारण हैं। जैसे, बाजारका व्यापक हो जाना और उत्पादकोंको इस बातका ठीक पता न रहना कि वे कितनी वस्तुएँ तैयार करें, माँगका ठीक पता होनेपर भी अपनी पूँजीके फैलावको देखते हुए उत्पादकों-का अति-उत्पादनकी ओर झुक जाना तथा मजूरीकी प्रथाके द्वारा राष्ट्रीय सम्पत्तिका मालिकों और मजदूरोंके बीच असमान वितरण होना आदि।

सिसमाण्डी कहता है कि इस अति-उत्पादनके कारण एक ओर गरीब लोग जीवनकी आवश्यकताओंसे वञ्चित रह जाते हैं, दूसरी ओर अमीरोंके भोग-विलासकी वस्तुओंकी माँग बहुत बढ़ जाती है। पुराने उद्योग समाप्त होते

---

१ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३३८।

२ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ १९९–२०१।

चलते हैं, पर नये उद्योग उस गतिसे बढ़ नहीं पाते। यह स्थिति भयंकर है और इसका निराकरण वांछनीय है।

६ सरकारी हस्तक्षेपका सुझाव

सिसमाण्डी मजदूर-वर्गकी दुरवस्थासे अत्यधिक दुःखी होकर कहता है कि 'मैं इस बातका इच्छुक हूँ कि नगरोंके और देहातके उद्योगोंपर अनेक स्वतन्त्र श्रमिकोंका आधिपत्य हो, न कि एकाध व्यक्ति ही सैकड़ों-हजारों श्रमिकोंपर अपनी सत्ता चलाये। श्रम तथा सम्पत्तिका पारस्परिक सम्बन्ध पुनः स्थापित होना चाहिए। थोड़ेसे लोगोंके हाथोंमें न तो सारी सम्पत्ति होनी चाहिए और न उन्हें इतनी सत्ता मिलनी चाहिए कि वे अन्यों व्यक्तियोंको अपने अधीन रख सकें।'[1]

सिसमाण्डीने इस स्थितिके निवारणके लिए तथा सार्वजनिक और व्यक्तिगत हितोंके पारस्परिक संघर्षको मिटानेके लिए शासकीय हस्तक्षेपकी माँग की है।

सिसमाण्डीके प्रमुख सुझाव इस प्रकार हैं :

(१) माँगके अनुरूप उत्पादन किया जाय।

(२) कुछ प्रत्यक्ष उपाय किये जायँ। जैसे :

१. आविष्कारोंपर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

२. श्रमिकोंको ऐसे साधन मिल सकें जिनसे उनके पास कुछ सम्पत्ति एकत्र हो सके।

३. छोटे उद्योग धन्धोंको पनपाया जाय।

४. श्रमिकोंको बीमारी, वृद्धावस्था, दुर्घटना आदिका सामना करनेके लिए समुचित सुविधा प्रदान की जाय।

श्रमिकोंके कामके घण्टे कम किये जायँ, उन्हें छुट्टियाँ दी जायँ, बच्चोंको नौकर रखनेपर प्रतिबन्ध लगाया जाय और वृद्धावस्थामें और बीमारीमें पूँजीपतिसे श्रमिकको पैसा दिलानेके लिए कुछ उपयुक्त व्यवस्था की जाय।

५. श्रमिकोंको यह अधिकार दिया जाय कि वे अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए संगठन कर सकें।

सरकारी हस्तक्षेपकी माँग करते हुए सिसमाण्डीने राजनीतिज्ञोंसे इस बातकी अपील की है कि वे अत्यधिक उत्पादनको रोकनेके लिए यथाशक्य चेष्टा करें।[2]

सिसमाण्डी न तो साम्यवादका समर्थक है और न सहकारिताका। साम्यवाद का तो वह स्पष्ट विरोधी है। ओवेन, थामसन और फूरियेके उद्योगविधानादिका

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ।

२ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३६६।

भी वह समर्थन नहीं करता, यद्यपि वह मानता है कि दोनोंके उद्देश्योंमें साम्य है।[१] वह इस बातपर जोर देता है कि आर्थिक विषमताका निराकरण वाञ्छनीय है, पर अपने सुझावोंके बावजूद उसे इस बातका भरोसा नहीं कि इनसे समस्या हल हो जायगी।[२] कहता है कि 'आजकी स्थितिसे सर्वथा भिन्न समाजकी स्थापना मानव-बुद्धिके परे प्रतीत होती है।'

मूल्यांकन

सिसमाण्डी अदम स्मिथकी परम्पराको स्वीकार करते हुए भी उससे भिन्न है। वह शास्त्रीय सिद्धान्त और पूँजीवादका समर्थक है, पर व्यावहारिक पक्षमें वह शास्त्रीय परम्पराके विरुद्ध है। श्रमिकोंकी करुण दशाका उसने जो निरीक्षण एवं परीक्षण किया, उसने उसके भावुक हृदयको वेध डाला और इसीका यह परिणाम था कि वह शास्त्रीय विचारधाराका आलोचक बन बैठा।

यों सिसमाण्डी समाजवादी विचारधाराका प्रेरक है, पर स्वयं वह समाजवादी भी नहीं है।

सिसमाण्डी अर्थशास्त्रको सम्पत्तिका विज्ञान नहीं मानता, वह उसे मानव-कल्याणका शास्त्र मानता है। उसके अध्ययनके लिए वह अनुभव, इतिहास और परीक्षणकी पद्धतिका समर्थन करता है।

अति उत्पादनके विषयमें सिसमाण्डीके विचार शास्त्रीय परम्परासे सर्वथा भिन्न हैं। अति-उत्पादन और केन्द्रीकरणका उसने तीव्र विरोध किया है। यन्त्रोंको वह हितकर नहीं, विनाश एवं शोषणका साधन मानता है। प्रतिस्पर्द्धाके भयंकर अभिशापमें वह बुरी भाँति सन्त्रस्त है और उसे वह अनर्थोंकी जननी मानता है। उसके कारण समाजमें गरीब और अमीर, दो वर्ग बनते हैं और मध्यम-वर्गकी समाप्ति होती चलती है। श्रमिकोंकी दशा सुधारनेके लिए सिसमाण्डी सरकारी हस्तक्षेपकी माँग करता है, श्रमिकोंको संगठित होनेका परामर्श देता है और यन्त्रों तथा नवीन आविष्कारोंका विरोध करता है। यों वह व्यक्तिगत सम्पत्तिका समर्थक है, अमीरोंका महत्त्व भी मानता है, पर गरीबोंके लिए उसके हृदयमें करुणा और सहानुभूति है।

शास्त्रीय परम्पराकी अनेक बातें स्वीकार करते हुए भी सिसमाण्डी परम्परावादी नहीं है। वह समाजवादी भी नहीं है, यद्यपि सहयोगी समाजवादी, मानवीय परम्परावादी, इतिहासवादी, नव-परम्परावादी, राज्य समाजवादी, मार्क्सवादी—

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २०७।

२ एरिक रोल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २३८।

सबके सब सिस्माण्डीकी विचारधारासे प्रभावित हैं। उन्नीसवीं शताब्दीकी सारी आर्थिक विचारधारापर सिस्माण्डीका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

समाजवादी विचारधारावालोंने भी सिस्माण्डीकी भाँति समाजको गरीब और अमीर इन दो वर्गोंमें बाँटा है और कहा है कि व्यक्तिगत हितोंमें और सामाजिक हितोंमें विरोध है औद्योगिक प्रगतिके फलस्वरूप मध्यम-वर्ग क्रमशः समाप्त होता जा रहा है तथा मध्यमवर्गी लोग श्रमिक बनते जा रहे हैं उत्पादनके साधन बुरे हैं और प्रतिस्पर्धा बुरी चीज है। इस स्थितिको सुधारनेके लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है। पर सिसमाण्डी जहाँ एक सीमातक ही सरकारी हस्तक्षेपका समर्थन करता है, वहाँ साम्यवादी अधिकतम सरकारी हस्तक्षेपकी माँग करते हैं। सिस्माण्डी जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सम्पत्तिका समर्थन करता है वहाँ साम्यवादी व्यक्तिगत स्वतंत्रताको कोई मूल्य ही नहीं देते और व्यक्तिगत सम्पत्तिका सर्वथा निर्मूलन कर देना चाहते हैं। सिसमाण्डीने लाभ और ब्याजकी पूर्ण समाप्ति नहीं चाही है साम्यवादी उसे पूर्णतः समाप्त कर देना चाहते हैं। एक महान् भेद दोनोंमें यह था कि सिस्माण्डी जहाँ शान्ति-पूर्ण और वैध उपायों द्वारा समाजकी स्थितिमें परिवर्तन लानेके लिए उत्सुक था वहाँ साम्यवादी रक्त-क्रान्तिके पुजारी थे।

ऐसी स्थितिमें सिसमाण्डीको न तो पक्का शास्त्रीय परम्परावादी माना जा सकता है और न साम्यवादी। वह दोनोंके बीचकी ऐसी कड़ी है, जिसकी महत्ता अस्वीकार नहीं की जा सकती।

आर्थिक विचारधाराके विकासमें सिस्माण्डी एक नक्षत्रकी भाँति जाज्वल्य मान है।

● ● ●

विचारधाराकी चार शाखाएँ : ४ :

सन् १७७६ में अदम स्मिथने 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' के माध्यमसे जिस शास्त्रीय विचारधाराको जन्म दिया, उसने लाडरडेल, रे और सिसमाण्डी जैसे प्रख्यात विचारकोंके सहयोगसे आगेका मार्ग प्रशस्त किया।

आगे चलकर इस विचारधाराने मुख्यत. ४ शाखाएँ ग्रहण कीं

१ आंग्ल विचारधारा (English classicism) जेम्स मिल (सन् १८२०), मैक्कुलख (सन् १८२५), सीनियर (सन् १८३६) ने इसे विशेष रूपसे विकसित किया। इस शाखाकी अन्तिम परिपक्वता जान स्टुअर्ट मिल (सन् १८४८) के हाथों हुई।

२ फरासीसी विचारधारा (French classicism) जे० बी० से (सन् १८०३) और बास्तिया (सन् १८५०) ने इसे विशेष रूपसे परिपुष्ट किया।

३ जर्मन विचारधारा (German classicism) राउ (सन् १८२६), थूने (सन् १८२६) और हर्मैन (सन् १८३२) ने इस शाखाके विकासमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

४ अमरीकी विचारधारा (American classicism) . कैरे (सन् १८३८) ने इस शाखाको विशेष रूपसे विकसित किया।

आगे हम प्रत्येक शाखाका संक्षेपमें विचार करेंगे।

१ आंग्ल विचारधारा

आंग्ल विचारधाराके मूल स्रोत तीन थे

१ बैंथमका उपयोगितावाद,

२. मैल्थसका जनसंख्या-सिद्धान्त और

३ रिकार्डोका भाटक-सिद्धान्त।

ऐसा तो नहीं है कि इस विचारधाराके विचारक सर्वांशमें एक-दूसरेके समर्थक रहे हों, पर उनका सामान्य दृष्टिकोण एक सा ही था और मोटी-मोटी बातोंमें उनका मतैक्य था।

उपयोगितावादका प्रभाव होनेके कारण इस धाराके विचारक स्मिथके स्वाभाविकतावादके आलोचक रहे हैं, उनका दृष्टिकोण भौतिकवादी रहा है।

रिकार्डोसे प्रभावित होनेके कारण ये विचारक भी निराशावादी थे और ऐसा मानते थे कि भाटक, मजूरी और लाभके हितोंमें पारस्परिक संघर्ष है। प्रगतिके

साथ साथ समाजकी स्थिति अचल रहने लगेगी और उसके उपरांत उसकी कार्य शाही स्थगित होकर स्थिति स्थिर होने लगेगी।

मूल्यके सिद्धान्तके सम्बन्धमें इस धाराके विचारक यह मानते थे कि मूल्यका निर्धारण होता है उत्पत्तिकी लागतसे। उन्होंने उपभोक्ताकी उपयोगिताके विषयमें तथ्यकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। उनके मतसे सम्पत्तिका अर्थ था विनिमयगत मूल्य। वे मानते थे कि व्यक्तिगत सम्पत्तिको अनेक गुना कर देनेसे समाजकी सम्पत्ति निकल आती है।

इस धाराके प्रतिनिधि विचारक हैं—जेम्स मिल, मैककुल्लक और सीनियर। जेम्स मिलका पुत्र जेम्स स्टुअर्ट मिल इस धाराका अन्तिम प्रतिनिधि माना जाता है परन्तु वह समाजवादी और इतिहासवादी आलोचकोंकी समीक्षासे प्रभावित होनेके कारण थोड़ा-सा इन लोगोंसे पृथक् पड़ता है। उसने इस बातकी चेष्टा की कि इन सभी विचारोंमें कुछ परस्पर सन्तुलन स्थापित किया जाय पर वह इस कार्यमें कृतकार्य नहीं हो सका। उसकी विचारधाराका अध्ययन पृथक् करना अच्छा होगा।

जेम्स मिल

जेम्स मिल (सन् १७७३–१८३६) प्रख्यात इतिहासकार और उपयोगितावादी दार्शनिक था। उसने सन् १८१८ में 'भारतवर्षका इतिहास' लिखा और सन् १८२१ में 'एलीमेण्ट्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी' लिखी। यह दूसरी पुस्तक अर्थशास्त्रपर उसकी प्रमुख पुस्तक मानी जाती है।

जेम्स मिलकी बेंथम और रिकार्डोसे मैत्री थी। तीनोंने मिलकर सन् १८२१ में 'पोलिटिकल इकॉनॉमी क्लब' की स्थापना की थी। मिलने ही रिकार्डोको इस बातके लिए प्रोत्साहित किया कि वह अपने अर्थशास्त्रीय विचारोंको प्रकाशित करे। अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल इकॉनॉमी' में उसने रिकार्डोकी ही विचारधाराका प्रतिपादन किया है।

मिलकी रचनाओंमें मजूरी कोष-सिद्धान्त, मैल्थसका जनसंख्या सिद्धान्त और रिकार्डोका किराया-सिद्धान्त ही विशिष्ट रूपसे व्यक्त हुआ है। उसने कोई नया मौलिक विचार न देकर केवल इतना ही किया कि अर्थशास्त्रको विशेष रूपसे व्यवस्थित करनेमें सहायता प्रदान की।

मैककुल्लक

जान रैमजे मैककुल्लक (सन् १७८९–१८६४) प्रसिद्ध अर्थशास्त्री विचारक था, पत्रकार था और लन्दन विश्वविद्यालयमें (सन् १८२८) में अर्थशास्त्रका प्रथम प्राध्यापक नियुक्त हुआ था।

हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ११।

उसकी प्रमुख रचना है—'**प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी**' (सन् १८२५)। उसने स्मिथकी 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' का तथा रिकार्डोको '**प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी**' का सम्पादन करके प्रचुर ख्यातिका अर्जन किया। उसने रिकार्डोकी जीवनी भी लिखी है।

मेक्कुलखने भी कोई नया मौलिक विचार नहीं दिया। पर इतना अवश्य है कि उसने रिकार्डोके सिद्धान्तोंका समर्थन एवं विवेचन विस्तारसे करके अर्थशास्त्र-की शास्त्रीय रचनामें प्रभूत योगदान किया। परवर्ती अर्थशास्त्रियोंपर उसका गहरा प्रभाव पड़ा।

मैक्कुलखने सबसे पहले मजदूरोंके हड़तालके अधिकारका समर्थन किया।[1] उसने अर्थशास्त्रमें अकशास्त्र तथा पुस्तक सूचीका श्रीगणेश किया।[2]

सीनियर

नासो विलियम सीनियर (सन् १७९०—१८६४) अर्थशास्त्रकी शास्त्रीय विचारधाराका सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि है। रिकार्डोसे लेकर जान स्टुअर्ट मिल्तककी विचार परम्परामें सीनियरने ही सर्वाधिक योग्यतासे अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तोंकी गवेषणा की। उसने शास्त्रीय परम्पराके गुण-दोषोंका तटस्थ दृष्टिसे विवेचन करते हुए अर्थशास्त्रको 'विशुद्ध अर्थशास्त्र' का स्वरूप प्रदान करनेमें विशेष श्रम किया।[3]

इंग्लैण्डमें सर्वप्रथम आक्सफोर्डमें सन् १८२५ में अर्थशास्त्रका अध्यापन प्रारम्भ किया गया और उक्त पदपर सर्वप्रथम सीनियरकी नियुक्ति हुई। सन् १८२५ से सन् १८३० तक और पुनः सन् १८४७ से सन् १८५२ तक वह आक्सफोर्डमें प्राध्यापक रहा। सन् १८३२ में वह रायल कमीशनका सदस्य मनोनीत किया गया था। सन् १८३६ में उसकी प्रमुख रचना '**आउटलाइन ऑफ दि साइन्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी**' प्रकाशित हुई।

सीनियरकी विश्लेषण शक्ति अनुपम थी। उसने अर्थशास्त्रके क्षेत्रको व्यवस्थित करनेपर बड़ा बल दिया। साथ ही मूल्य सिद्धान्त और वितरण-सिद्धान्त-को भी उसने विशिष्ट रूपसे विकसित किया। लाभके 'आत्म त्याग-सिद्धान्त' की उसकी देन महत्त्वपूर्ण है।

अर्थशास्त्रका क्षेत्र

सीनियरकी धारणा है कि अर्थशास्त्रको भौतिक विज्ञानोंकी भाँति विज्ञानका

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ १८२।
२ हेनेः वही, पृष्ठ ३१२।
३ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ३५५।

साथ-साथ समाजकी स्थिति अचल रहने लगेगी और उसके उपरांत उसकी कार्य वाही स्थगित होकर स्थिति विराम होने लगेगी।

मूल्यके सिद्धान्तके सम्बन्धमें इस धाराके विचारक ऐसा मानते थे कि मूल्यका निर्धारण होता है उत्पत्तिकी लागतसे। उन्होंने उपभोक्ताकी उपयोगिताके विषयगत तत्वकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। उनके लेखे सम्पत्तिका अर्थ था विनिमयगत मूल्य। वे मानते थे कि व्यक्तिगत सम्पत्तिको अनेक गुना कर देनेसे समाजकी सम्पत्ति निकल आती है।

इस धाराके प्रतिनिधि विचारक हैं—जेम्स मिल, मैकुलख और सीनियर। जेम्स मिलका पुत्र जेम्स स्टुअर्ट मिल इस धाराका अन्तिम प्रतिनिधि माना जाता है परन्तु वह समाजवादी और इतिहासवादी आलोचकोंकी समीक्षासे प्रभावित होनेके कारण थोड़ा-सा इन लोगोंसे पृथक् पड़ता है। उसने इस बातकी चेष्टा की कि इन सभी विचारोंमें कुछ परस्पर सन्तुलन स्थापित किया जाय पर वह इस कार्यमें कृतकार्य नहीं हो सका। उसकी विचारधाराका अध्ययन पृथक् करना अच्छा होगा।

जेम्स मिल

जेम्स मिल (सन् १७७३-१८३६) प्रख्यात इतिहासकार और उपयोगितावादी दार्शनिक था। उसने सन् १८१८ में 'भारतवर्षका इतिहास' लिखा और सन् १८२१ में 'एलीमेण्ट्स ऑफ पोलिटिकल इकोनॉमी' लिखी। यह दूसरी पुस्तक अर्थशास्त्रपर उसकी प्रमुख पुस्तक मानी जाती है।

जेम्स मिलकी बैंथम और रिकार्डोसे मैत्री थी। तीनोंने मिलकर सन् १८२१ में 'पालिटिकल इकानामी क्लब' की स्थापना की थी। मिलने ही रिकार्डोको इस बातके लिए प्रोत्साहित किया कि वह अपने अर्थशास्त्रीय विचारोंको प्रकाशित करा दे। अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल इकोनॉमी' में उसने रिकार्डोकी ही विचारधाराका प्रतिपादन किया है।

मिलकी रचनाओंमें माल्थसके पोष सिद्धान्त, मैल्थसका जनसंख्या सिद्धान्त और रिकार्डोका किराया सिद्धान्त ही विशिष्ट रूपसे व्यक्त हुआ है। उसने कोई नया मौलिक विचार न देकर केवल इतना ही किया कि अर्थशास्त्रको विशद रूपमें व्यवस्थित करनेमें सफलता प्राप्त की।[1]

मैकुलख

जान रामजे मैकुलख (सन् १७८९-१८६४) प्रसिद्ध अर्थशास्त्री विचारक था। यह पत्रकार था और लन्दन विश्वविद्यालयमें (सन् १८२८) में अर्थशास्त्रका प्रथम प्राध्यापक नियुक्त हुआ था।

[1] हे [illegible] इकानामिक थॉट, पृष्ठ ११५।

किया जा सकता कि सीनियरकी ये मान्यताएँ अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और इन्होंने अर्थशास्त्रके विज्ञानको सकुचित, सीमित एव व्यवस्थित करनेमें और उसे तर्कसङ्गत बनानेमें महत्त्वका कार्य किया है। इस दृष्टिसे सीनियरने स्मिथ और रिकार्डोकी कमीकी पूर्ति की है।[1]

मूल्य-सिद्धान्त

सीनियरका मूल्य-सिद्धान्त शास्त्रीय धारासे कुछ भिन्न है। उसने प्रत्येक वस्तुके मूल्यके ३ कारण बताये हैं

उपयोगिता, हस्तातरिता और सापेक्षिक न्यूनता।

उपयोगिताकी परिभाषा सीनियरके मतमें यह है कि मनुष्यकी किसी भी इच्छाकी तृप्ति वस्तुको जिस शक्ति द्वारा होती है, वह उपयोगिता है। उपयोगिता अनेक बातोंसे प्रभावित हुआ करती है और मुख्यत. वस्तुकी पूर्ति ही उसका आधार होती है। यह आवश्यक नहीं कि एक ही प्रकारके दो पदार्थोंसे दूनी तृप्ति हो। इसी प्रकार ऐसा भी सम्भव है कि एक सरीखे १० पदार्थोंसे ५ गुनी भी तृप्ति न मिले। सीनियर ऐसा मानता था कि मानवीय आवश्यकताएँ अनन्त होती हैं, इसलिए व्यक्ति सदा विभिन्न प्रकारकी विलासिताकी वस्तुओंकी माँग करता है।[2]

हस्तान्तरिता भी मूल्य निर्धारणका एक कारण है। उसके कारण किसी भी समय वस्तुकी उपयोगिताका उपभोग हो सकता है।

सीनियरकी यह भी मान्यता है कि माँगकी अपेक्षा वस्तु यदि कम है, तो उस कमीका भी मूल्यपर प्रभाव पड़ता है। साथ ही वस्तुकी पूर्ति निर्भर करती है उसकी उत्पादन-लागतपर—भूमि, श्रम और पूँजीपर। सीनियरके मतसे उद्योगोंमें उत्पादन-वृद्धि-नियमसे भी मूल्य प्रभावित होता है। इस सम्बन्धमें सीनियरने एकाधिकारकी भी चर्चा करते हुए कहा है कि उसमें वस्तुका मूल्य भी अपेक्षाकृत अधिक मिलता है और कुछ बचत भी होती है। यह एकाधिकार अपूर्ण भी होता है, पूर्ण भी। कहीं ऐसी एकाधिकारवाली वस्तुका उत्पादन बढ़ाना सम्भव होता है, कहीं पर नहीं।

सीनियरका मूल्य-सिद्धान्त अस्पष्ट है। कहीं तो उसने कहा है कि माँगका मूल्यपर अधिक प्रभाव पड़ता है और कहीं यह कहा है कि माँगका मूल्यपर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। एकाधिकारको उसने ४ भागोंमें विभाजित किया है।[3] पर वह विभाजन भी अवैज्ञानिक माना जाता है।

---

[1] भटनागर और सतीशबहादुर ए हिस्ट्री आफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २५५।

२ केवल कृष्ण ड्युवेट अर्थशास्त्रके आधुनिक सिद्धान्त, पृष्ठ २७८।

३ एरिक रोल ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३४५ ३४६।

रूप देना वांछनीय है। अर्थशास्त्रके अध्ययनका विषय होना चाहिए सम्पत्ति न कि प्रसन्नता या जन-कल्याण। उसमें आचारशास्त्र जोड़नेकी और नाना प्रकारके सुझाव देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उसका कल्पपक्ष हटाकर उसे शुद्ध विज्ञानका स्वरूप देना उचित है। वह मानता है कि अर्थशास्त्र तो सत्यका आविष्कारक तथा कारण और परिणामोंका विवेचक विज्ञान है। उसे मानव कल्याणके सुझाव देनेसे क्या तात्पर्य ? यह काम राजनीतिज्ञोंका है।

सीनियरने निगमन प्रणालीका समर्थन करते हुए कहा है कि कुछ सर्वमान्य एवं सर्वविदित सत्योंका आविष्कार करनेके उपरान्त अर्थशास्त्रियोंको उनकी व्याख्याद्वारा किन्हीं निष्कर्षोंपर पहुँचना चाहिए। तर्कसंगत होनेपर ये निष्कर्ष भी सत्य एवं सर्वमान्य ठहरेंगे।

चार मूल सिद्धान्त

सीनियरने सिद्धान्तोंके विवेचनतक ही अर्थशास्त्रका क्षेत्र सीमित माना है। उसकी दृष्टिमें विज्ञानका स्वरूप शुद्ध सैद्धान्तिक है, निगमन प्रणाली उसका आधार है। तर्कसंगत निरीक्षण उसका मार्ग है। सीनियरने इस विज्ञानके ये चार मूल सिद्धान्त स्वीकार किये हैं :[1]

(१) सुखवादी सिद्धान्त : मानव स्वल्प त्याग करके अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है।

(२) मेल्थसका जनसंख्या-सिद्धान्त : जनसंख्या नैतिक संयम अथवा प्राकृतिक नियन्त्रण द्वारा सीमित होती है।

(३) उद्योगोंमें क्रमागत-वृद्धि-सिद्धान्त : श्रम-शक्ति एवं मनोत्पादनके अन्य साधनोंके विस्तारसे अनन्त वृद्धि सम्भव है।

(४) कृषिमें क्रमह्रासी प्रत्याय-सिद्धान्त : खेतीमें सदा ही उत्पादन ह्रासका नियम लागू होता है।

सीनियरकी मान्यता है कि सुखवादी सिद्धान्त तो ऐसा सत्य है जिसे कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता। शेष तीनों सिद्धान्त परीक्षणके आधारपर निश्चित हुए हैं। अतः ये चारों सत्य सर्वमान्य एवं सर्वविदित हैं।

सीनियरके ये चारों सिद्धान्त भले ही परीक्षणपर तथ्यतामें सत्य नहीं सिद्ध होते, मेल्थसका जनसंख्या-सिद्धान्त प्रत्येक दशामें लागू नहीं उतरता उसी प्रकार उद्योगमें सदा क्रमागत वृद्धि ही होती हो और कृषिमें सदा क्रमागत ह्रास ही होता हो ऐसा भी नहीं कहा जाता; फिर भी इस तथ्यसे इनकार नहीं

---

१ सीनियर : पोलिटिकल इकोनामी, पृष्ठ २६।
२ ग्रे : डेवलपमेण्ट आफ इकोनामिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ १७८-१७९।

जनसंख्या सिद्धान्त, रिकार्डोके भाटक सिद्धान्त और आल्हागी प्रत्याय सिद्धान्तकी सफलतामें या तो शंका प्रकट की है या उन्हें अस्वीकार किया है।

फरासीसी विचारधाराके मुख्य प्रतिनिधि दो माने जाते हैं : से और बास्तिया।

जे० बी० से

जीन बपिस्ते से (सन् १७६७–१८३२) प्रख्यात पत्रकार, सैनिक, सरकारी कर्मचारी, व्यापारी, राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री था। सन् १८०३ में अर्थशास्त्र-पर उसकी प्रसिद्ध रचना 'पोलिटिकल इकॉनॉमी' प्रकाशित हुई, जिसने यूरोप और अमेरिकामें स्मिथके विचारोंके प्रसारमें सर्वाधिक योगदान किया।[1] उसने उलझनके दलदलसे निकालकर उनका भलीभाँति परिष्कार किया और उत्कृष्ट उदाहरणों द्वारा उनका समर्थन और प्रचार किया। परन्तु वह केवल स्मिथका दुभाषिया ही नहीं था, उसमें मौलिक प्रतिभा थी, जिसके द्वारा उसने कुछ विशिष्ट धारणाएँ भी प्रस्तुत कीं।[2]

सेके समयमें भौतिक विज्ञानोंका विशेष रूपसे विकास हो गया था। अतः उसने अर्थशास्त्रको इसी दृष्टिसे परखनेकी चेष्टा की और इस बातका प्रयत्न किया कि अर्थशास्त्र भी विशिष्ट विज्ञानका रूप ग्रहण कर सके। इसे नियमित एवं व्यवस्थित करनेमें सीनियरकी भाँति सेका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

औद्योगिक क्रान्ति हो चुकनेके कारण उसके गुण-दोष भी सेके नेत्रोंके समक्ष थे। उनका उसने इंग्लैण्ड जाकर भलीभाँति अध्ययन किया था। उसके विचारों-पर इन सब बातोंकी पूरी छाप है। औद्योगिक समाजमें उसने प्रबल आस्था प्रकट की है। उसका विपणि सिद्धान्त और मूल्य-सिद्धान्त विशेष रूपसे प्रख्यात है।

उसके प्रमुख विचारोंको तीन भागोंमें विभाजित कर उनका अध्ययन कर सकते हैं :

अर्थशास्त्रके सिद्धान्त, विपणि सिद्धान्त और मूल्य सिद्धान्त।

अर्थशास्त्रके सिद्धान्त

सेके मतसे सम्पत्तिके उत्पादन, वितरण तथा उपभोगका शास्त्र 'अर्थशास्त्र' है। वह सैद्धान्तिक और विवेचनात्मक विज्ञान है और जहाँतक व्यावहारिक नीतिका प्रश्न है, वहाँ वह सर्वथा तटस्थ है। वह मानता है कि प्रकृतिसे ही अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंका आविष्करण होना चाहिए।

सेकी मान्यता थी कि उत्पादनका अर्थ है—उपयोगिताका निर्माण। अतः उद्योग, व्यवसाय या कृषि—जिसके द्वारा भी उपयोगिताका निर्माण होता है, वह

---

1 हैने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३५५-३५६।

2 जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ १२२।

आत्मत्यागका सिद्धान्त

सीनियरने स्मिथ और रिकार्डो आदिके इस मतकी समीक्षा की है कि उत्पादनके केवल दो साधन हैं—भूमि और श्रम। सीनियर उत्पादनके ३ साधन मानता है—भूमि, श्रम और पूँजी। उसका कहना है कि इन तीनों साधनोंकी भाग भवित है, न्यायसंगत है।

सीनियरने पूँजीको उत्पादनका तीसरा साधन बताते हुए आत्मत्यागका नया सिद्धान्त प्रदान किया है। यह उसकी महत्त्वपूर्ण देन है।[1] वह ऐसा मानता है कि पूँजीकी सहायतासे उत्पादनमें वृद्धि होती है और कोई भी व्यक्ति तभी पूँजीका संचय करता है जब उसे इस बातका विश्वास होता है कि इसके कारण भविष्यमें उसे लाभ प्राप्त हो सकेगा। तब वह वर्तमानका उपभोग भविष्यके लिए स्थगित कर देता है और आत्मत्याग द्वारा अपनी कमाईका कुछ अंश बचाकर पूँजी एकत्र करता है। इस पूँजीका प्रतिदान ब्याजके रूपमें उसे मिलना ही चाहिए। हेनी कहता है कि सीनियरको इस सिद्धान्तके सम्बन्धमें सम्भव है जी॰ पी॰ स्क्रोपके २ वर्ष पूर्व प्रकाशित लेखसे कुछ प्रेरणा प्राप्त हुई हो।[2]

सीनियरकी सूक्ष्मबुद्धि प्रशंसनीय है। उसने अर्थशास्त्रको व्यवस्थित करनेमें, उसे विशुद्ध विज्ञानका स्वरूप प्रदान करनेमें तथा आत्मत्यागके सिद्धान्त द्वारा पूँजीका महत्त्व बढ़ानेमें और ब्याजका औचित्य स्थापित करानेमें प्रशंसनीय काम किया है। भले ही वह कुछ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंकी स्थापना नहीं कर सका फिर भी अर्थशास्त्रकी आंग्ल विचारधाराके विकासमें उसका अनुदान नगण्य नहीं।

७ फ्रांसीसी विचारधारा

फ्रांसीसी विचारधाराकी नींव सेने डाली। उसने स्मिथके सिद्धान्तोंको व्यवस्थित रूप प्रदान करके फ्रांसकी राष्ट्रीय भावनाके अनुकूल इस विचारधाराका विकास किया। इस विचारधाराकी विशेषता यह है कि इसमें आंग्ल विचारकोंके निराशावादके प्रतिकूल आशावाद भरा है।

फ्रांसीसी विचारकोंके आशावादके मूलमें उनकी राष्ट्रीय भावावादिता और व्यक्तिस्वतन्त्रता तो है ही, प्रकृतिवादियोंकी विचारधाराका भी प्रभाव है तथा समाजवादका विरोधी स्वर भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन विचारकोंमें सेके

---

1. जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ १५४।
2. देखें : हिस्टरी ऑफ इकॉनामिक थॉट, पृष्ठ ४८९।
3. जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ १२२।

जनसंख्या सिद्धान्त, रिकार्डोके भाटक सिद्धान्त और आल्डासी प्रत्यय-सिद्धान्तकी सफलतामें या तो शंका प्रकट की है या उन्हें अस्वीकार किया है।

फ्रांसीसी विचारधाराके मुख्य प्रतिनिधि दो माने जाते हैं : से और बास्तया।

जे० बी० से

जीन बपिस्ते से (सन् १७६७-१८३२) प्रख्यात पत्रकार, सैनिक, सरकारी कर्मचारी, व्यापारी, राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री था। सन् १८०३ में अर्थशास्त्र-पर उसकी प्रसिद्ध रचना 'पोलिटिकल इकॉनॉमी' प्रकाशित हुई, जिसने यूरोप और अमेरिकामें स्मिथके विचारोंके प्रसारमें सर्वाधिक योगदान किया।[1] उसने उलझनके दलदलसे निकालकर उनका भलीभाँति परिष्कार किया और उत्कृष्ट उदाहरणों द्वारा उनका समर्थन और प्रचार किया। परन्तु वह केवल स्मिथका दुभाषिया ही नहीं था, उसमें मौलिक प्रतिभा थी, जिसके द्वारा उसने कुछ विशिष्ट धारणाएँ भी प्रस्तुत कीं।[2]

सेके समयमें भौतिक विज्ञानोंका विशेष रूपसे विकास हो रहा था। अतः उसने अर्थशास्त्रको इसी दृष्टिसे परखनेकी चेष्टा की और इस बातका प्रयत्न किया कि अर्थशास्त्र भी विशिष्ट विज्ञानका रूप ग्रहण कर सके। उसे नियमित एवं व्यवस्थित करनेमें सीनियरकी भाँति सेका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

औद्योगिक क्रान्ति हो चुकनेके कारण उसके गुण-दोष भी सेके नेत्रोंके समक्ष थे। उनका उसने इंग्लैण्ड जाकर भलीभाँति अध्ययन किया था। उसके विचारों-पर इन सब बातोंकी पूरी छाप है। औद्योगिक समाजमें उसने प्रबल आस्था प्रकट की है। उसका विपणि सिद्धान्त और मूल्य सिद्धान्त विशेष रूपसे प्रख्यात है।

उसके प्रमुख विचारोंको तीन भागोंमें विभाजित कर उनका अध्ययन कर सकते हैं :

अर्थशास्त्रके सिद्धान्त, विपणि सिद्धान्त और मूल्य-सिद्धान्त।

अर्थशास्त्रके सिद्धान्त

सेके मतसे सम्पत्तिके उत्पादन, वितरण तथा उपभोगका शास्त्र 'अर्थशास्त्र' है। वह सैद्धान्तिक और विवेचनात्मक विज्ञान है और जहाँतक व्यावहारिक नीतिका प्रश्न है, वहाँ वह सर्वथा तटस्थ है। वह मानता है कि प्रकृतिसे ही अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंका आविष्करण होना चाहिए।

सेकी मान्यता थी कि उत्पादनका अर्थ है—उपयोगिताका निर्माण। अतः उद्योग, व्यवसाय या कृषि—जिसके द्वारा भी उपयोगिताका निर्माण होता है, वह

---

१ हेने : हिस्ट्री आफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३५५-३५६।

२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ १२३।

श्रम उत्पादक माना जायगा। स्मिथने श्रम विभाजनके सिद्धान्तपर जोर देते हुए भी कृषिकी उत्कृष्टता स्वीकार की थी। वह प्रकृतिवादियोंकी धारणासे अपने-आपको सर्वथा मुक्त करनेमें असमर्थ रहा था परन्तु सेने स्पष्ट शब्दोंमें यह धारणा व्यक्त की कि जो भी व्यवसाय या श्रम उपयोगिताके निर्माणमें योगदान करता है, वह उत्पादक है। अतः जीद और रिस्टका यह कहना उपयुक्त है कि प्रकृतिवादियोंकी धारणाको निर्मूल करनेमें सेको ही अग्रिम स्थान देना चाहिए।[1]

विपणि सिद्धान्त

सेका विपणि-सिद्धान्त उसकी दृष्टिमें परम क्रान्तिकारी सिद्धान्त था। उसका विश्वास था कि यह सिद्धान्त मानवको सच्चे भ्रातृत्वका आधार प्रदान करता है और इसके कारण विश्वकी सम्पूर्ण नीतिमें परिवर्तन हो जायगा। उसका कहना था कि प्रत्येक देश जितना उत्पादन कर सकता है, करे। इससे अति-उत्पादन की सम्भावना नहीं है। इसके कारण मानवका जीवन-स्तर उन्नत होगा और सबकी समृद्धि होगी।

से ऐसा मानता है कि द्रव्य तो विनिमयका कृत्रिम माध्यम है। वस्तुतः वस्तु-विनिमय ही वास्तविक व्यापार है। एक वस्तुके लिए अन्य वस्तुका विक्रय होता है। कोई वस्तु यदि न बिके, तो उसका कारण यह नहीं मानना चाहिए कि द्रव्यका अभाव है। वस्तुका अभाव ही उसका कारण हो सकता है। जैसे ही कहीं पर एक वस्तु उत्पन्न होने लगती है, वैसे ही वह अन्य वस्तुका बाजार बनाने लगती है। इस प्रकार अति-उत्पादन या उत्पादन-बाहुल्यकी कोई सम्भावना नहीं है। कहींपर कोई वस्तु अधिक है तो कहीं दूसरी वस्तु कम है। ये दोनों परस्पर पूरक हैं।

सेने अपने इस विपणि-सिद्धान्तसे कई परिणाम निकाले हैं। जैसे (१) बाजारके विस्तारसे माँगका विस्तार होगा और उसके कारण कीमतका स्तर ऊँचा चढ़ेगा। (२) आयातसे देशके उद्योगोंको कोई हानि नहीं पहुँचती। उनकी बनी वस्तुओंके लिए विदेशोंमें बाजार खुलता है। (३) प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तिकी समृद्धिमें योगदान करता है। हर आदमी उत्पादक भी है उपभोक्ता भी। यों सभी परस्पर एक-दूसरेकी समृद्धिमें हाथ बँटाते हैं।

से यह मानता है कि राष्ट्रीय जीवनमें कृषि, उद्योग और व्यापार—सबको साथ साथ समुन्नत होनेका अवसर प्राप्त होना चाहिए। स्मिथने उद्योगोंके विकास पर जितना जोर दिया है सेने उससे कहीं अधिक जोर दिया है।

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ १२४।
२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ १३ १३१।

मूल्य-सिद्धान्त

सेके मतसे दाम मूल्यका मापक है और मूल्य वस्तुकी उपयोगिताका मापक है। उसने उपयोगिताको ही मूल्य-निर्धारणका मूलतत्त्व माना है।

औद्योगिक विकासपर सेने अत्यधिक बल दिया है और उसकी महती सम्भावनाओंपर प्रकाश डालते हुए साहसीकी महत्ता स्वीकार की है। से ऐसा मानता है कि साहसीकी उपयोगिता पूँजीपतिसे भी अधिक है। साहसी जितना कुशल, दक्ष, इच्छा-शक्ति-सम्पन्न एवं सूझ-बूझवाला होगा, तदनुकूल ही उसे सफलता प्राप्त होगी। उत्पादन और वितरणके क्षेत्रमें औद्योगिक साहसीका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

हेनेका कहना है कि अनेक असगतियोंके बावजूद सेने अर्थशास्त्रकी विचारधाराके विकासमें महत्त्वपूर्ण हाथ बँटाया है। वह स्मिथ और रिकार्डोकी कोटिका नहीं है, फिर भी उसकी देन नगण्य नहीं।[१]

बासत्या

फ्रेडरिक बासत्या (सन् १८०१–१८५०) प्रख्यात पत्रकार एवं अर्थशास्त्री था। व्यापारी बननेकी उसकी योजना थी, पर २५ वर्षकी आयुमें उसे रियासत मिल गयी, तो पहले उसने कृषिका प्रयोग किया, बादमें से तथा अन्य फरासीसी अर्थशास्त्रीय विचारकोंकी रचनाओंसे आकृष्ट होकर वह अध्ययनमें जुट गया। आगे चलकर वह फ्रासके समाजवाद विरोधी अर्थशास्त्रियोंका नेता बन गया। सन् १८४५ में उसने 'फ्री ट्रेड' नामका पत्र निकाला। सन् १८४८ की क्रान्तिके बाद वह विधान निर्मात्री परिषद्का और फिर असेम्बलीका सदस्य बन गया। वहाँ उसने कम्युनिस्टों और समाजवादियोंके विरुद्ध मोर्चा लेनेमें ही विशेष रूपसे अपनी शक्ति लगायी। इसीसे मार्क्सने उसे 'वल्गर बुर्जुआ' कहकर पुकारा है। उसकी प्रमुख रचनाएँ दो हैं 'सोफिज्मस ऑफ प्रोटेक्शन' (सन् १८४६) और 'इकॉनॉमिक हारमनी' (सन् १८५०)।

मुक्त-व्यापार

बासत्याने आर्थिक हितोंके स्वाभाविक समन्वयपर बड़ा जोर दिया है। वह मानता था कि स्वतन्त्रता और सम्पत्तिसे सामाजिक समन्वयकी स्थापना होती है। अतः उन्हें स्वतंत्र रूपसे विकसित होनेका अवसर मिलना चाहिए। बासत्या मुक्त-व्यापारका बड़ा समर्थक था, प्रकृतिवादियोंसे भी अधिक। सरक्षणवादका वह तीव्र विरोधी था। उसका कहना था कि सरक्षणवादका तरीका भी शोषणका है, समाजवादका भी। सरक्षणवादकी उसने कटु आलोचना करते हुए कहा है कि

---

१ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३५८।

संरक्षणकी आवश्यकता उसीको पड़ती है जो अपने बलपर लाभ नहीं कमा सकता। उसीके पोषणके लिए सरकार संरक्षण देती है और दूसरोंकी आयके द्वारा उसका पोषण करती है। संरक्षणवादका उसने खूब ही मजाक उड़ाया है। वह कहता है कि मोमबत्ती बनानेवाले सूर्यके विरुद्ध प्रार्थनापत्र देंगे कि हमें संरक्षण दिया जाय! बायाँ हाथ कहेगा कि दाहिने हाथके विरुद्ध मुझे संरक्षण दिया जाय!

बास्त्या तीखा व्यंग्य करता हुआ कहता है कि 'राज्य एक महान् गल्प है जिसके माध्यमसे मनुष्य दूसरेकी कमाईके ऊपर पलता है!'[1] उसकी 'इकॉनामिक सोफिज्म्स' में उसका यह विनाशक पक्ष अपनी पूरी तीक्ष्णताके साथ दृष्टिगोचर होता है। 'सरकारोंके पुण्य' समाप्त कर मानवको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो'—इस बातपर बास्त्याका पूरा जोर है। खुली प्रतियोगिताके कारण उत्पादनका व्यय कम होगा और उचित वितरण होगा।

मूल्य सिद्धान्त

बास्त्याने अपने मूल्य-सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए उसमें 'सेवा' का तत्त्व मिला दिया है। उसने मूल्य और उपयोगिताके बीच कुछ सूक्ष्म-सा पार्थक्य खड़ा किया है। प्रकृतिदत्त निःशुल्क उपयोगिताको वह उपहाररूपी उपयोगिता बताता है और मानवीय श्रम द्वारा प्राप्त उपयोगिताको वह प्रयत्नरूपा उपयोगिता बताता है।

बास्त्या ऐसा मानता है कि सेवा ही उपयोगिताकी धारणा है। सेवा क्या है? सेवा है अन्य व्यक्तिके श्रमकी प्रयत्नकी बचत। दूसरोंकी आवश्यकताओंको तृप्त करनेका नाम है—सेवा। बास्त्याकी धारणा है, सेवाके प्रतिदानमें सेवाका ही विनिमय होता है। जिन वस्तुओंका विनिमय होता है उनका अनुपात ही मूल्य है। सेवा ही मूल्यका सार है। समाजकी प्रगतिके साथ-साथ उपहारोंकी वृद्धि होती जाती है और सेवा कम होती जाती है। मूल्य गिरता जाता है।

बास्त्याका 'सेवा' का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उसमें वस्तुओंके अतिरिक्त सभी प्रकारकी उत्पादक क्रियाएँ सम्मिलित हैं जैसे श्रम, मालिक, व्यापार आदि। संक्षेपमें उसमें वे सभी बातें आ जाती हैं जिनसे कोई भी सेवा होती है।

बास्त्याने फिजिओक्रेटोंका मान्क-सिद्धान्त, मैल्थसका जनसंख्या सिद्धान्त, रिकार्डोका श्रम-सिद्धान्त और सेका मूल्यका उपयोगिता-सिद्धान्त अस्वीकार किया है।

---

१ हैने : हिस्ट्री ऑफ इकानॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ ३३१।
२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ३३३।
३ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ३३, ३४।

पूँजीको वह 'सञ्चित सेवा' मानता है। उसकी धारणा है कि विनिमय करनेवाले दोनों पक्ष सञ्चित सेवाका उपयोग करते हैं, अतः सञ्चित सेवासे ही वस्तुओंके मूल्यका निर्धारण होगा।

आर्थिक विचारधाराके विकासमें बासत्याका अनुदान विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसमें गाम्भीर्यका अभाव है। उसने तत्कालीन औद्योगिक जीवनके अभिशापकी ओरसे आँख-सी मूँद ली है। गरीबों और मजदूरोंसे उसने कहा है कि वे अपने भाग्यपर सन्तोष करें, क्योंकि भविष्य उज्ज्वल है! उसके जर्मन अनुयायी तो इस सीमातक चले गये कि उन्होंने दरिद्रताका अस्तित्वतक स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। गनीमत है कि बासत्याने गरीबोंका अस्तित्व तो मान लिया है।

३. जर्मन विचारधारा

सन् १७९४ में गार्वेने स्मिथकी 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' का जर्मनमें अनुवाद किया। तबसे जर्मन विचारक स्मिथकी विचारधारासे प्रभावित हुए। वे शास्त्रीय विचारधाराकी ओर झुके तो अवश्य, परन्तु उन्होंने उस विचारधाराको सर्वांशमें स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपनी मौलिकता बनाये रखी।

जर्मन विचारकोंपर कामेरल्वादका प्रभाव विशेष रूपसे था। उन्होंने शास्त्रीय विचारधाराका कामेरलवादसे सम्मिश्रण कर दिया। स्मिथको सामान्यतः उन्होंने मान्यता प्रदान की, पर रिकार्डोके भाटक-सिद्धान्तको अस्वीकार कर दिया। उन्होंने अर्थशास्त्रको विशुद्ध विज्ञान बनानेके आंग्ल विचारकोंके मतका समर्थन नहीं किया, प्रत्युत उन्होंने ऐसा माना कि आर्थिक सिद्धान्तोंमें राष्ट्रीय हितों एवं नैतिक आदर्शोंका स्थान होना ही चाहिए। वह 'अर्थशास्त्र' किस कामका, जिसमें राजनीति एवं नीतिशास्त्रके लिए समुचित स्थान ही न हो! कामेरलवाद जर्मन विचारधाराकी अपनी विशिष्टता है। विश्वविद्यालयमें उसका अध्ययन और अध्यापन पूर्ववत् चलता रहा।

यों क्रास, सर्टोरियस, लूडर, हूफलैण्ड, लोत्स, जैकब, नेबेनियस आदि विचारकोंने सन् १८०० से १८५७ तक जर्मन विचारधाराको विकसित करनेमें अच्छा योगदान किया, पर जर्मन विचारधाराके तीन विशिष्ट प्रतिनिधि माने जाते हैं: राउ, हर्मन और थूने।[1]

राउ

कार्ल हिनरिख राउ (सन् १७९२–१८७०) हेडिलबर्ग विश्वविद्यालयमें लगभग ५० वर्षतक अर्थशास्त्रका प्राध्यापक था। उसकी 'टेक्स्ट बुक ऑफ पोलि-

---

[1] हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३५२।

टिकल इकॉनॉमी (सन् १८२६–१८३७) अर्थशास्त्रकी प्रामाणिक रचना मानी जाती है।

राउ अर्थशास्त्र एवं अर्थनीति दोनोंको भिन्न मानता है। अर्थशास्त्रके सम्बन्धमें वह स्मिथ और सेका अनुयायी है, अर्थनीतिके लिए वह मानता है कि राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे उसका नियमन वांछनीय है। उसकी यह दृढ़ धारणा है कि यदि दोनोंमें संघर्षकी स्थिति उत्पन्न हो, तो राष्ट्रीय अर्थनीतिको प्राथमिकता देनी चाहिए।

विनिमयगत मूल्य और उपयोगितागत मूल्यके सम्बन्धमें राउने महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। मूल्यके विनिमयगत सिद्धान्तके विषयमें राउका बड़ा हाथ माना जाता है।[1] उसने इस धारणाकी कड़ी टीका की है कि पूँजीकी मात्रापर श्रमिकोंकी माँग निर्भर करती है। श्रमिकोंकी सेवाको वह अनुत्पादक मानता है।

हर्मेन

फ्रेडरिक बेनेडिक्ट विल्हेल्म फान हर्मेन (सन् १७९५–१८६८) जर्मनीका रिकार्डो माना जाता है। वह म्यूनिख विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक रहा था और बादमें उसने विभिन्न सरकारी पदोंपर काम किया। राजनीति, अर्थशास्त्र और सांख्यिकीपर उसने अनेक पुस्तिकाएँ लिखीं। सन् १८३२ में अर्थशास्त्रपर उसकी प्रमुख रचना 'इनवेस्टीगेशन्स इन पोलिटिकल इकॉनॉमी' प्रकाशित हुई।

हर्मेनने तत्कालीन अर्थशास्त्रकी कमियोंकी ओर विचारकोंका ध्यान आकृष्ट किया। यद्यपि वह स्मिथका अनुयायी था, तथापि अनेक बातोंमें उसका उससे मतभेद था। वह इस बातको अस्वीकार करता है कि व्यक्तिका हित और सार्वजनिक हित एक ही है। वह बताता है कि दोनोंके हितोंमें प्रायः ही संघर्ष हुआ करता है। वह इस बातका समर्थन नहीं करता कि व्यक्तिगत स्वार्थकी प्रेरणासे मनुष्य जो कुछ काम करता है वह राष्ट्रीय हितकी सभी माँगोंकी पूर्ति करेगा ही। इस राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाकी सीमाके अन्तर्गत नागरिक भावना भी होनी ही चाहिए।

आय-सिद्धान्तके सम्बन्धमें हर्मेनने कुछ महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये। वह इस बातको स्वीकार नहीं करता कि उत्पादनके अन्य साधनोंपर मिलनेवाला सामान्य लाभ कोई भिन्न वस्तु है। इसके लिए वह विशेष आनेवाली मदिरा मशीनसे होनेवाले उत्पादनकी कीमत और लाभमें बननेवाली रही मशीनसे

---

१ चार्ल्स जीद : द हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३१७।

२ हेनी : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ५२८-५२९।

३ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ८३।

१

होनेवाले उत्पादनकी कीमत आदिका उदाहरण देकर कहता है कि पूँजीके मामलेमें भी अतिरिक्त लाभ होता और हो सकता है।[1]

हर्मनने ब्याज और लाभमें स्पष्ट भेद करते हुए साहसीको उत्पादनका एक विशिष्ट अंग माना है। मालिकके साहसको वह श्रमिकोंकी माँगका आधार नहीं मानता, प्रत्युत उपभोक्ताओंकी माँगको ही वह श्रमिकोंकी वास्तविक माँगका आधार मानता है। शास्त्रीय विचारधाराके मजूरी कोषके सिद्धान्तको वह नहीं मानता।

हर्मनके विचारोंका उसके जीवनकालमें बहुत ही कम प्रभाव पड़ा।[2] थूनेमें उसकी अपेक्षा अधिक मौलिकता मानी जाती है।

थूने

जॉन हेनरिख फान थूने (सन् १७८३–१८५०) सहृदय भूस्वामी था, जिसे अपने श्रमिकोंके प्रति पर्याप्त सहानुभूति थी। उसने अपने फार्मपर अपने आर्थिक विचारोंके प्रयोग किये। वह व्यावहारिक किसान था। श्रमिकोंके प्रति सहानुभूति होनेके कारण वह उनकी सामाजिक समस्याओंका विशेष रूपसे अध्ययन करने लगा। उसकी इस दिलचस्पीने ही संयोगसे उसे अर्थशास्त्री बना दिया।[3]

थूनेकी प्रख्यात रचना 'दि आइसोलेटेड स्टेट' (सन् १८२६–१८६३) अर्थशास्त्रके साहित्यमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस पुस्तकमें थूनेने एक ऐसे काल्पनिक राज्यका वर्णन किया है, जिसका केन्द्रबिन्दु एक नगर है। उसके चारों ओर गोलाकार भूमिखण्ड है। यह सारी भूमि एक-सी उपजाऊ है तथा वहाँपर लगनेवाले श्रमका उत्पादन भी एक-सा है और आसपासके नागरिक और ग्रामीण समुदाय परस्पर सहानुभूतिपूर्ण हैं। इन सब उपादानोंके द्वारा थूनेने यह दिखाने की चेष्टा की है कि भूमिकी स्थिति और बाजारसे उसकी दूरीका भाटकपर कैसा क्या प्रभाव पड़ता है।

थूनेने अपने फार्मका विधिवत् हिसाब-किताब रखा और उसे अपने विवेचनका आधार बनाया। उसने यह निष्कर्ष निकाला कि 'किसी भी भूमिखण्डका भाटक उन सुविधाओंका परिणाम है, जो सबसे खराब भूमिखण्डकी तुलनामें उसे प्राप्त हों, फिर वे चाहे स्थितिकी सुविधाएँ हों अथवा भूमिकी उपजकी सुविधाएँ हों।'[4]

---

१ जीद और रिस्ट - वही, पृष्ठ ५७४।
२ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ६६१।
३ ग्रे डेवलपमेण्ट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ २३६।
४ ग्रे वही, पृष्ठ २४३।

थ्यूनेने मजदूरी सिद्धान्तका विवेचन करते हुए सीमान्तकी मान्यताका उपयोग किया है। वह कहता है कि किसी भी भूमिखण्डपर एक निश्चित बिन्दुके आगे जितना अतिरिक्त श्रम लगाया जायगा उसके अनुकूल उत्पादनमें वृद्धि नहीं होगी। इक्कीसवें मजदूरके श्रमसे जितनी अतिरिक्त उपज होगी, उतनी बाईसवें मजदूरके श्रमसे नहीं होगी और तेईसवें मजदूरके श्रमसे अपेक्षाकृत और भी कम उपज बढ़ेगी। अतः श्रमकी वृद्धि उस समयतक जारी रखनी चाहिए, जबतक कि अन्तिम मजदूरके द्वारा बढ़नेवाली उपज उसको दी जानेवाली मजदूरीके समान हो।[1] स्वाभाविक मजदूरीके वह दो अंग मानता है (१) कार्यकुशल को रहनेके लिए श्रमिक द्वारा किया जानेवाला व्यय और (२) श्रमके लिए उसे मिलनेवाला पुरस्कार। उसने स्वाभाविक मजदूरीका यह सूत्र निकाला है।[2]

स्वाभाविक मजदूरी = $\sqrt{\text{अ प}}$

अ = श्रमिककी आवश्यकताओंका मूल्य

प = श्रमिककी उत्पादकता

इस सूत्रपर थ्यूने इतना लट्टू था कि वह चाहता था कि यह मेरी कब्रपर अंकित कर दिया जाय।

मुक्त-व्यापारके समर्थनमें थ्यूने अपनी पुस्तकके प्रथम खण्डमें स्मिथका समर्थक तो है परन्तु आगे चलकर द्वितीय खण्डमें वह अपने विचारोंमें कुछ संशोधन करते हुए कहता है कि राष्ट्रीय दृष्टिकोणको देखते हुए आवश्यक होनेपर उसपर नियन्त्रण करना चाहिए। वह मानता है कि सार्वदेशिक तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोणोंमें विशेष अन्तर नहीं है। अर्थशास्त्रमें दोनोंको ही उचित माना जाता है।

४ अमरीकी विचारधारा

अमरिकामें विशेष रूपसे नेशनल की आशावादी प्रवृत्तियोंका जोरदार स्वागत हुआ। असीम साधन और विस्तृत भू-प्रदेशमें ऐसा होना स्वाभाविक भी था। नये राष्ट्रका उदय हो रहा था। भूमिकी कोई कमी नहीं थी। प्राकृतिक साधनोंका कोई अभाव नहीं था। जनसंख्याकी समस्या उत्पन्न नहीं हुई थी। अतः मैल्थस और रिकार्डोकी निराशावादी भावनाओंके प्रचारके लिए अमेरिकामें गुंजाइश ही नहीं थी। मुक्त-व्यापारको यहाँ इसलिए विशेष समर्थन नहीं मिला ताकि उसके चलते कहीं राष्ट्रीय उद्योगोंको क्षति न पहुँचे और ब्रिटेनका प्रतिद्वन्द्वी औद्योगिक विकास कहीं उन्हें पीछे न छोड़ दे। अतः अमरिकामें स्मिथकी विचारधारा

[1] वही, पृष्ठ ३८८-३८९।

[2] वही, पृष्ठ ३८९।

[3] हेने : हिस्ट्री आफ इकोनामिक थॉट, पृष्ठ २७१-२७४।

भलीभाँति पनपी तो सही, पर उसने राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे संरक्षणपर भी जोर दिया।

यों बैंजमिन फ्रैंकलिनको अमेरिकाका प्रथम अर्थशास्त्री कहा जा सकता है। उसने मुद्रा और जनसंख्यापर कुछ उत्तम विचार प्रकट किये थे, सन् १७६६ में उसकी एक रचना 'लन्दन क्रानिकल' में छपी थी, पर यों अमेरिकाका प्रभावशाली एवं ख्यातनामा सर्वप्रथम अर्थशास्त्री कैरे ही माना जाता है। उसके पहले हेमिल्टन (सन् १७५७–१८०४) और डेनियल रेमाण्ड (सन् १८२०) ने भी अर्थशास्त्रके सम्बन्धमें कुछ विचार दिये थे। लिस्टपर हेमिल्टनके विचारोंका कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। रेमाण्ड और हेमिल्टनके विचारोंमें बहुत कुछ साम्य है। एवरिट (सन् १७९८–१८४७) और फिलिप्स (सन् १७८४–१८७३) का भी कैरेके पूर्ववर्तियोंमें नाम लिया जाता है, पर इन सबमें कोई विशेष प्रतिभा नहीं मिलती। विश्वकी आर्थिक विचारधारापर अमेरिकाके जिस प्रमुख विचारकका विशेष प्रभाव पड़ा है, वह है कैरे।

कैरे आशावादी प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रतिनिधि माना जाता है। उसके दीर्घ जीवनकालमें अमेरिकापर तथा यूरोपपर उसकी पर्याप्त छाप पड़ी।[1]

कैरे

हेनरी चार्ल्स कैरेका जन्म फिलाडेल्फियामें सन् १७९३ में हुआ। पिताका पुस्तक-प्रकाशनका व्यवसाय था, जिसमें सन् १८१४ में कैरे भी शामिल हो गया और सन् १८२१ में उसने उसकी व्यवस्था सँभाली। अच्छी सम्पत्ति जमा करके सन् १८३५ में वह व्यापारसे विरत हो गया और उसके बाद उसने जीवनके अन्तिम ४४ वर्ष साहित्य और अध्ययनमें लगाये। ८६ वर्षकी आयुमें कैरेका देहान्त हुआ।

कैरेने १३ बड़ी और ५७ छोटी पुस्तकें लिखीं, जिनमें सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक है—**'दि प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल साइन्स'**। यह सन् १८५७ से १८६० के बीच ३ खण्डोंमें प्रकाशित हुई। इससे पहलेकी उसकी आरम्भिक रचनाओंमें *'प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी'* (सन् १८३७–४०)—(तीन खण्डोंमें)—तथा *'हारमनी ऑफ इन्टरेस्ट्स, एग्रीकल्चरल, मैन्युफैक्चरिंग एण्ड कामर्शल'* आदि भी महत्त्वपूर्ण हैं, पर *'प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल साइन्स'* में कैरेने पिछली सभी रचनाओंमें प्रतिपादित किये गये अपने सभी सिद्धान्तोंका विधिवत् एवं विशद रूपमें विवेचन किया है। इस पुस्तकका अमेरिका, यूरोप और जापानमें व्यापक रूपमें अध्ययन किया गया।

कैरेने मूल्य, सामाजिक प्रगति एवं वितरण आदिका तो विस्तारसे विवेचन

१ ये : डेवलपमेंट आफ इकानामिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ २८६।

किया ही है, इसके अतिरिक्त उसने भाटक, जनसंख्या तथा टैरफके सम्बन्धमें भी कुछ विशिष्ट विचार प्रकट किये हैं।

कैरेने मूल्यके सिद्धान्तका विस्तारसे विवेचन किया है।[1] श्रमको वह मूल्यका एकमात्र कारण मानता है। उसका मूल्य-सिद्धान्त श्रम-सिद्धान्त ही है। वह कहता है कि किसी भी वस्तुका मूल्य उसमें लगी श्रमकी मात्रासे निर्धारित होता है फिर वह चाहे वर्तमानकी बात हो, चाहे अन्य किसी समयकी। आवश्यकताओं-की तृप्तिके लिए जिन साधनोंकी आवश्यकता होती है उन साधनोंकी प्राप्तिके लिए प्रकृतिसे संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्षमें जितनी शक्ति व्यय होती है जितना श्रम लगता है उसीके अनुरूप मूल्य निर्धारित होता है। श्रम मानवीय प्रगतिके साथ पूँजी भी श्रमका हाथ बँटाने लगती है तो मनुष्यपर प्रकृतिका दबाव कम होने लगता है, फलतः मूल्य घटने लगता है।

कैरे अपने मूल्य-सिद्धान्तको भूमिपर भी लागू करता है कम्पे भाटकपर भी। भाटकको वह पृथक् नहीं मानता। कहता है कि 'भूमिगत पूँजी और संपगत पूँजीमें कोई भेद नहीं। पूँजीपर जिस प्रकार ब्याज प्राप्त होता है उसी प्रकार भूमिसे भाटक प्राप्त होता है। प्रकृति द्वारा प्राप्त अन्य असीम उपहारोंकी भाँति समस्त भूमिगत सम्पत्तिका मूल्य एकमात्र उसके दोहन एवं सुधारमें लगे हुए श्रमकी मात्रासे ही निर्धारित होता है। भूमिके सुधारनेमें उस कृषिके उपयुक्त बनानेमें उसे उपजाऊ बनानेमें श्रमकी जो मात्रा लगती है, उसीपर भूमिका मूल्य निर्भर करता है।

कैरे अत्यधिक आशावादी है। समाजकी प्रगतिमें उसकी अत्यधिक आस्था है। अमेरिकाकी तत्कालीन स्थिति विस्तृत भूमि असीम खनिज पदार्थ साधनों की प्रचुरता और थोड़ी जनसंख्या नये-नये निवासी जिनमें अपार आत्मविश्वास और उत्साह भरा था—इन सब कारणोंसे उसका आशावादी होना स्वाभाविक था। तभी तो उसने मैल्थस और रिकार्डोके निराशावादी दृष्टिकोणकी कड़ी टीका की है।

कैरेकी मान्यता है कि प्राकृतिक साधनोंपर समझदारीसे श्रमका उपयोग कर उत्पादनमें असीम वृद्धि की जा सकती है, जिससे समाज उत्तरोत्तर प्रगति कर सकता है। रिकार्डोके भाटककी प्रत्याय-सिद्धान्तको वह मिथ्या बताता है और कहता है कि वह भूमिपर, अमरू.ए. नहीं ऐसा।, कैरे रिकार्डोकी ...

---

१ कैरे : प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियल साइन्स, खण्ड १, अध्याय ५, पृष्ठ १२२।
२ कैरे : पोलिटिकल इकॉनॉमी, खण्ड १, पृष्ठ १२६-२९।
३ हे : डेवलपमेंट ऑफ इकॉनॉमिक थाट्स, पृष्ठ ४२१-४२२।

स्वीकार नहीं करता कि सबसे पहले सर्वोत्तम भूमिखण्ड जोते गये, उसके बाद निकृष्टतम भूमिखण्ड जोते गये। केरे मानता है कि बात इससे सर्वथा उल्टी है। वह कहता है कि नये जाकर बसनेवाले लोग सबसे पहले ऊसर बंजर जमीन जोतते हैं, फिर वे उपजाऊ भूमिकी ओर अग्रसर होते हैं।

शास्त्रीय विचारकोंके निराशावादी दृष्टिकोणको केरे नहीं मानता। उन लोगोंने इस बातपर जोर दिया है कि प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेमें मनुष्य असमर्थ है। केरे कहता है कि प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेके लिए ही तो मनुष्यका जन्म हुआ है।

माल्थसके जनसंख्या-सिद्धान्तको वह इस ईश्वरीय आदेशके विपरीत मानता है कि 'तुम फलो-फूलो और अपनी संख्यामें वृद्धि करो।' केरेकी मान्यता है कि मनुष्य साथ चाहनेवाला प्राणी है। उसीसे उसकी नैतिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रगति और उन्नति होती है। माल्थसके इस सिद्धान्तको भी केरे अस्वीकार करता है कि खाद्य-सामग्रीकी समुचित वृद्धि नहीं होती। वह कहता है कि उपभोक्ता बढ़ते हैं, तो उत्पादक भी तो बढ़ते हैं। युद्धसे जनसंख्याके नियमनकी बात भी केरेको नहीं जँचती। केरेका मत है कि कृषि ही एकमात्र ऐसा क्षेत्र है, जहाँ निरन्तर असीम मात्रामें श्रम और पूँजीका उपयोग करके उत्पादनमें क्रमागत वृद्धि प्राप्त की जा सकती है।

केरेने मानवताका भविष्य उज्ज्वल बताते हुए इस बातपर जोर दिया है कि चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं। अगली पीढ़ियाँ अपनी समस्याएँ स्वयं हल कर लेंगी। मानव-विकासके साथ साथ उसकी प्रजनन-शक्ति भी क्षीण होती चलती है। अतः जनसंख्याकी समस्या स्वयं ही सुलझ जायगी।[1]

केरे पहले मुक्त-व्यापारका समर्थक था, बादमें वह संरक्षणवादी बन गया। उसने संरक्षणवादके समर्थनमें जो तर्क प्रस्तुत किये हैं, उनमें वैज्ञानिकताका अभाव है। उसके तर्कोंमें मूल बातें दो हैं (१) सामीप्यका लाभ और (२) भूमिको उसका अपव्यय लौटा देनेकी आवश्यकता। केरे प्रगतिके लिए उत्पादकों और उपभोक्ताओंका सामीप्य चाहता है। दूर देशके व्यापारमें यह सामीप्य नहीं रहता। लोगोंको बाहर जाना पड़ता है, आत्मनिर्भरता नहीं रहती। पराया आश्रय लेनेसे, व्यापारमें हस्तक्षेप होनेसे युद्धकी आशंका होती है, जिससे भयंकर क्षति उठानी पड़ती है। मुक्त-व्यापारके कारण वस्तुओंकी उत्पादन-लागत घटानेका प्रयत्न होता है, जिससे मजूरी घटती है और मनुष्यको यंत्र बना लिया

---

१ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३२४-३२६।

जाता है। उसके कारण कुछ लोग धनी हो जाते हैं, शेष सारी जनता दरिद्र।[1] केरे भूमिका अपव्यय रोकनेकी दृष्टिसे भी संरक्षणका समर्थन करता है। उसकी मान्यता है कि यदि भूमिका अपव्यय रोका रहे, तो उसकी उपज कभी कम नहीं होगी। मुक्त-व्यापारमें यह असम्भव है, विदेशोंको कच्चा माल जानेसे भूमि उससे वंचित हो जाती है, फलतः उत्पादनपर उसका कुप्रभाव पड़ता है।

संरक्षणका समर्थक होनेके कारण केरेको अमेरिकाका सर्वप्रथम राष्ट्रवादी भी कहा जा सकता है। पर जो हो, कुछ असंगतियोंके बावजूद आर्थिक विचारधाराके विकासमें केरेका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[2] केरेकी विचारधाराका पेशीन स्मिथ, फ्रांसिस बावेन, होरेस ग्रीली आदि अमेरिकन शास्त्राके लोगोंपर तो प्रभाव पड़ा ही, फ्रांसीसी विचारक बास्तियापर भी उसका कुछ प्रभाव पड़ा था। उसने उसके मूल्य और वितरणके सिद्धान्तको समुचित रूपमें उठाया और आशावादको भी।

● ● ●

१ हेने : वही, पृष्ठ ४२०-४२१।
२ ग्रे : डेवलपमेण्ट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ २५१-५२।

समाजवादी विचारधारा : १

समाजवादी पृष्ठभूमि : १ :

"सोना ! सोना !! अधिक सोना !!!" वाणिज्यवादकी इस धातु-पिपासाने प्रकृतिवादको विकसित होनेका अवसर प्रदान किया। प्रकृतिवादने शुष्क उत्पत्ति-को ही देशके कल्याणका साधन माना। एकने सोने-चाँदीकी पूजा की, दूसरेने भूमिके महत्त्वको सर्वोपरि बताया। एकने कड़े नियन्त्रणोंका समर्थन किया, दूसरेने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यका नारा लगाया और सारे नियन्त्रण समाप्त करनेकी माँग की। एक व्यापार-वाणिज्यको ही सब कुछ मानता था, दूसरा कृषिको ही सर्वस्व मानता था और कहता था कि जो व्यक्ति कृषि नहीं करता, वह अनुत्पादक है।

इन दोनों विचारधाराओंके बीचसे निकल पड़ी—शास्त्रीय विचारधारा। स्मिथने अर्थशास्त्रको व्यवस्थित रूप देनेकी चेष्टा की, सुन्दर और रोचक शैलीमें अपने विचारोंका प्रतिपादन किया, श्रमको ही मूल्यका वास्तविक मापदण्ड बताया।

मिल-मालिकों और मजूरोंके पारस्परिक संघर्षोंका चित्रण करते हुए सिसमन ने इस विचारको बल दिया कि व्यक्तियोंपर किसी भी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए। वह ज़माना ऐसा था कि एक ओर मजदूर एडिनबराके 'स्टडी ऑफ ब्रोटियेज' के अनुसार मजूरीकी माँग कर रहे थे दूसरी ओर मालिकोंका दल यह था कि वे अपने इच्छानुसार मजूरी देना चाहते थे। सिसमन व्यक्ति स्वातन्त्र्यके पक्षमें जो तर्क उपस्थित किये, उनका पूरा-पूरा लाभ मिल-मालिकोंने उठाया। परिणाम यह हुआ कि सरकारने उक्त कानून ही रद्द कर दिया।

समाजवादका उदय क्यों ?

अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें औद्योगिक विकास औद्योगिक क्रान्तिको जन्म दे रहा था। यंत्रोंके प्रादुर्भावके साथ-साथ पूँजीवाद पूरे ज़ोरसे पनप रहा था। पूँजीवादका अभिशाप भी स्पष्ट हो रहा था। अमीरों और गरीबोंके बीचकी खाई चौड़ी होती चली जा रही थी। शास्त्रीय विचारधाराने उसके विस्तारका ही काम किया। आर्थिक संघर्षने जो स्थिति उत्पन्न कर दी उसका कोई उपयुक्त समाधान शास्त्रीय विचारकोंके पास था नहीं। फलतः समाजवादका उदय हुआ।

दो प्रमुख कारण

अशोक मेहताने समाजवादके उदयके दो कारण बताये हैं : (१) नैतिक आकर्षण और (२) दक्षताका अभाव। समृद्धिके युगमें समाजवादकी ओर लोग उसके नैतिक आकर्षणके कारण आकृष्ट होते हैं और अभावके समयमें पूँजीवादकी अन्धेरगर्दी और विवेकहीनताके कारण व्यक्ति समाजवादकी ओर खिंचते हैं।[1]

नैतिक आकर्षण

अशोक मेहता कहते हैं कि क्या कारण है कि आप हम और हमारे जैसे व्यक्ति समाजवादके महान् और आत्मसम्मान आदर्शके लिए अपना सर्वस्व बलिदान करनेके लिए प्रस्तुत हैं ? समाजवादमें ऐसी कौन-सी वस्तु है जो हमें अपने निश्चित जीवनक्रमसे बाहर अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है और हमें समय शक्ति साधन और आवश्यकता प्रतीत होनेपर जीवनतकका उत्सर्ग कर देनेके लिए प्रेरित करती है ? इसके लिए दो ही कारण सम्भव हैं। पहला कारण है नैतिक आकर्षण।

"विश्वमें इतना अन्याय है कि आप उसके विरुद्ध विद्रोह कर बैठते हैं। हमारी सामाजिक व्यवस्था नितान्त न्यायविरुद्ध एवं नैतिक दृष्टिसे दोषपूर्ण है। एक ओर मुट्ठीभर धनी व्यक्ति रहें और दूसरी ओर असंख्य निर्धन व्यक्ति रहें

---

[1] अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, १९५४ पृष्ठ ५।

एक ओर थोड़ेसे व्यक्ति विलासी जीवन व्यतीत करें और दूसरी ओर लाखों व्यक्तियोंको जीवनके लिए परम आवश्यक वस्तुओंके भी लाले पड़े रहें, कारखाने बन्द पड़े रहें और मजदूर लोग बेकार रहें, 'जहाँ सम्पत्तिका संचय हो रहा हो और मानव क्षीण हो रहा हो'—यह सब क्या है? ये सब किसी ऐसी स्थितिके पहलू हैं, जो चेतनाशील प्रत्येक व्यक्तिको नैतिक चुनौती देते हैं। कोई सम्पत्तिवान् दूसरे लोगोंका शोषण करे, उनके श्रम, स्वेद एवं अश्रुके मूल्यपर अपनी तिजोरी भरे और घृणित विलासी जीवन व्यतीत करे—यह ऐसी स्थिति है, जिससे मानवकी अन्तरात्मा काँप उठती है। स्थितिकी यह विषमता हमसे उत्तर माँगती है और उसका उत्तर हमें समाजवादमें प्राप्त होता है, जिसमें मानव स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त करेगा, जिसमें उत्पीड़क और उत्पीड़ित, शोषक और शोषितका भेद समाप्त हो जायगा और पहली बार ऐसे समाजकी स्थापना होगी, जिसमें मानवके साथ मानवका भ्रातृवत् सम्बन्ध होगा।

'आखिर क्या कारण था कि इतने अधिक बुद्धिमान् कार्ल मार्क्सने उस युग में अपने जीवनके तीसने अधिक वर्ष समाजवादके सिद्धान्त एवं आदर्शका निरूपण करनेमें लगाये, जब कि उनका परिवार भूखा मर रहा था, पत्नीकी चिकित्साके लिए पासमें पैसे नहीं थे और वे कई कई बार भाड़ा न चुका सकनेके कारण मकानोंसे निकाल बाहर किये गये थे। उन्होंने ऐसा इसीलिए किया कि समाजवादके नैतिक आकर्षणसे वे अपनेको बचा नहीं सके। चारों ओर व्याप्त अन्यायने मार्क्सको पूर्णतः इस ओर ध्यान देनेके लिए विवश कर दिया और उसीके परिणामस्वरूप मार्क्सके ही शब्दोंमें 'समाजवादका वैज्ञानिक रूप' सामने प्रकट हुआ।

दक्षताका अभाव

'बहुतसे लोग दक्षताके अभावके कारण समाजवादी बन जाते हैं। उत्पादन और वितरणमें जो कौशल शून्यता और अपव्यय होता है, उसे किसने नहीं देखा? भूमि बजर पड़ी रहती है, कारखाने सुस्त पड़े रहते हैं। भलीभाँति प्रशिक्षित युवक और युवतियाँ कामकी तलाशमें घूमती रहती हैं और उन्हें काम नहीं मिलता। समाजमें भ्रष्टाचार, अदक्षता और आन्तरिक विरोधके फलस्वरूप देशके उत्पादन-स्रोतोंको स्पर्श नहीं किया जाता, उनका संगठन नहीं होता और लाभ नहीं उठाया जाता। हम पूँजीवादके विरोधी बन बैठते हैं, क्योंकि हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि उत्पादनकी पूँजीवादी पद्धति, पूँजीवादी समाजव्यवस्था उत्पादन, विनिमय तथा वितरणकी समस्याओंको युक्तिसंगत रीतिसे हल करनेमें असमर्थ है।'[१]

---

१ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृ० ३, ४।

समाजवादके जन्मदाता

यों तो सिस्माण्डीने शास्त्रीय विचारधारा और पूँजीवादी पद्धतिके विरुद्ध कुछ सामान्य विचार प्रकट किये थे जिनका समाजवादी विचारकोंने आगे चलकर समुचित लाभ उठाया था पर सिस्माण्डी था शास्त्रीय विचारधाराका प्रतिपादक। वह समाजवादी नहीं था समाजवादका प्रेरक अवश्य था। उसने शास्त्रीय परम्परा का और पूँजीवादका ही समर्थन किया, फिर भी समाजवादके विकासमें उसकी देन अनमोल है।

सेण्ट साइमन 'समाजवादका जनक' माना जाता है यद्यपि पूर्णतः समाजवादी वह भी नहीं था। पर इतना तो निश्चित है कि आलसी वर्गका उन्मूलन करके वह समाजमें तीव्र क्रान्ति लानेका पक्षपाती था। उसने समाजकी अर्थ-व्यवस्था का विधिवत् विश्लेषण किया और नये सामाजिक संगठनकी रूपरेखा प्रस्तुत की जिसका आधार व्यक्तिगत सम्पत्ति थी। पर उसके अनुयायियोंने साइमनकी इस कमीकी पूर्ति कर दी। उन्होंने गुरुकी ही दलीलोंसे व्यक्तिगत सम्पत्तिका विरोध करके समाजवादकी आधारशिला दृढ़ बना दी।

समाजवादकी पृष्ठभूमिमें ओवेन, फूर्ये, थामसन, ब्लाँ और प्रोधोंका सबसे बड़ा हाथ माना जाता है।

'समाजवाद' शब्द

'समाजवाद' शब्दका मुद्रणमें सर्वप्रथम प्रयोग सन् १८ १ मे इटलीमें हुआ। परन्तु उस समय 'समाजवाद' शब्द जिस अर्थमें प्रयुक्त हुआ वह बादमें प्रयुक्त होनेवाले 'समाजवाद' शब्दसे सर्वथा भिन्न था। सन् १८२७ में ओवेनके अनुयायियोंके लिए 'कोआपरेटिव मैगजीन' में 'समाजवादी' शब्दका प्रयोग किया गया। सन् १८११ में फरासीसी पत्र 'ल ग्लोब' में सेण्ट साइमनके सिद्धान्तकी व्याख्या और विशेषता प्रकट करनेके लिए 'समाजवाद' शब्दका प्रयोग किया गया। उसके बादके सवा सौ वर्षोंमें इस शब्दका न जाने कितने भिन्न-भिन्न अर्थोंमें प्रयोग किया गया है।

प्रायः प्रारम्भसे ही 'समाजवाद' शब्द किसी-न-किसी विशिष्टतासूचक या अर्थको सीमित करनेवाले विशेषणके साथ प्रयुक्त होता रहा है। कतिपय विशेषणों की रचना विरोधियोंने कुछ मतोंको तुच्छ दिखानेके लिए की। मार्क्स द्वारा अपने घोषणापत्रमें प्रयुक्त 'सामन्तीय समाजवाद' और 'पेटी बुर्जुआ समाजवाद' इसका उदाहरण है। क्षेत्रको सीमित करनेवाले बहुत-से शब्द जान-बूझकर चुने गये।

जैसे, 'वास्तविक समाजवाद', 'राज्य समाजवाद', 'क्रिश्चियन समाजवाद', 'फेबियन समाजवाद', 'शिल्पीसंघ (गिल्ड) समाजवाद', 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' ।[1]

प्रारम्भिक विचारधारा

प्रोफेसर कोलने प्रारम्भिक समाजवादी विचारधाराका विवेचन करते हुए कहा है 'अधिकांश 'वामपंथी' एकाधिकारका दोष प्रकट करनेमें एकमत थे, किन्तु एकाधिकार क्या है, इस विषयमें उनमें मतभेद था। कुछ लोग सभी बड़ी बड़ी सम्पत्तियोंको एकाधिकारपूर्ण मानते थे, क्योंकि उन सम्पत्तियोंके कारण ही कुछ लोगोंको दूसरोंपर अनुचित अधिकार प्राप्त था, जब कि अधिकतर लोगोंने वैधताप्राप्त विशेषाधिकारको एकाधिकार माना और उसे सामन्तवादी अधिकारों और आर्थिक संस्थाओंकी पुरानी प्रणालीके साथ रखा। कुछ लोगोंने बड़े पैमानेके व्यवसायों और खासकर रेलवे, नहरों तथा दूसरे 'उपयोगी' उद्योगोंमें धन लगानेकी बड़ी बड़ी परियोजनाओंका पक्ष लिया। दूसरे लोग उद्योग-विरोधी थे। उनका विश्वास था कि छोटे-छोटे समुदायोंके अतिरिक्त अन्य किसी रूपमें लोग सुखी नहीं रह सकते और न पारिवारिक कृषि या शिल्पके छोटे कारखानेके अतिरिक्त अन्य कहीं सन्तोषप्रद कार्य ही कर सकते हैं। कुछ लोग सम्पत्तिको बाँटनेके पक्षमें थे, तो अन्य लोग उसे सामुदायिक या अन्य किसी प्रकारके सामूहिक स्वामित्वमें रखनेके पक्षपाती थे। कुछ लोग चाहते थे कि सभी व्यक्तियोंकी आय एक हो, अन्य लोग 'हर व्यक्तिको उसकी आवश्यकताके अनुसार' वितरणके इच्छुक थे और इससे भी आगे कुछ लोगोंका ऐसा आग्रह था कि समाजको दी गयी सेवाके अनुपातमें पारिश्रमिक मिलना चाहिए। वे चाहते थे कि आर्थिक असमानताकी कोई न कोई ऐसी व्यवस्था रहनी चाहिए, जिससे अधिक उत्पादनके लिए उत्साह मिलता रहे।'[2]

समाजवादकी विचारधाराके उदयकालमें इस प्रकारके अनेक भिन्न मत प्रकट किये गये हैं। आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यकालमें इस बातकी आवश्यकता प्रतीत हुई कि इन सभी विचारोंको व्यवस्थित करके किसी विशेष साँचेमें ढाला जाय। फ्रेडरिक एंजिल्सने इस दिशामें महत्त्वपूर्ण कार्य किया और उसने समाजवादको उतोपीय (कल्पनाशील) और वैज्ञानिक, ऐसे दो विशिष्ट मार्गोंमें विभाजित किया। सन् १८३८ में यह विभाजन-रेखा खींची गयी। उससे पहलेकी विचारधारा उतोपीय मानी जाती है, बादकी वैज्ञानिक।

उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें उतोपीय समाजवादका प्राबल्य रहा। इस कल्पनाशील समाजवादके स्तम्भ हैं—सेण्ट साइमन (सन् १७६०—१८२५),

१ अशोक मेहता 'एशियाई समाजवाद एक अध्ययन', पृष्ठ २-३।
२ जी० डी० एच० कोल सोशलिस्ट थॉट, खण्ड १, पृष्ठ ३०४-५।

राबर्ट ओवेन (सन् १७७१–१८५८) चार्ल्स फूरिये (सन् १७७२–१८३७), विलियम थाम्पसन (सन् १७८३–१८३३), लुई ब्लाँ (सन् १८११–१८८२) और प्रोदों (सन् १८०९–१८६५)।

वैज्ञानिक समाजवादके स्तम्भ हैं कार्ल मार्क्स (सन् १८१८–१८८३) और फ्रेडरिक एंजिल्स (सन् १८२०–१८९५)।

समाजवादी विचारधाराके उद्गमपर हम पहले विचार करेंगे, विकासपर बादमें।

सेण्ट साइमन

सेण्ट साइमनको 'औद्योगिक क्रान्तिके पालनेमें पोषित शिशु' की संज्ञा दी जाती है।[1] उसका जन्म हुआ सन् १७६० में जब कि औद्योगिक क्रान्तिने विश्वके रंगमंचपर पदार्पण किया और सन् १८२५ में उसकी मृत्यु हुई, जब इंग्लैण्डमें औद्योगिक क्रान्ति अपने विकासकी चरम सीमापर थी। यों यह सत्य है कि औद्योगिक क्रान्तिके साथ-साथ सेण्ट साइमनके विचारोंका विकास हुआ। उद्योगवादकी उसपर गहरी छाप है और इसलिए कुछ विचारक उसे 'उद्योगवादका महंत' कहकर भी पुकारते हैं।

जीवन-परिचय

फ्रांसके एक सम्पन्न परिवारमें काउण्ट हेनरी द सेण्ट साइमनका जन्म हुआ। बाल्यावस्थासे ही उसमें साहस एवं शौर्यकी भावनाएँ थीं। १६ वर्षकी ही आयुमें अमेरिका जाकर वहाँके स्वाधीनता-संग्राममें उसने भाग लिया। पश्चात् वह अपनी पैतृक सम्पत्तिसे हाथ धो बैठा। पर सट्टेकी मात्रा पर्याप्त होनेसे उसने थोड़े ही समयके भीतर अपना भाग्य पुनः चमका लिया। कुछ दिनोंके उपरांत साइमन पुनः संदेहमें गिरफ्तार कर लिया गया, पर बादमें छोड़ दिया गया। तभीसे वह अपने आपको एक प्रकारका मसीहा मानने लगा और एक नवीन औद्योगिक समाजकी रचनामें विशेष रूपसे तत्पर हो गया। यूरोप लौटकर उसे दो बार आर्थिक संकटोंमें पड़ना पड़ा। एक बार फ्रांसीसी क्रांतिके समय और दूसरी बार अपनी शाहखर्चीके कारण। विवाह किया और कुछ दिन बाद तलाक दे डाला। अपने जीवनके अन्तिम दिन अत्यन्त अभावमें बीते। सन् १८२३ में उसने इसी कारण आत्महत्या करनेकी भी चेष्टा की पर बादमें एक अमीरकी कृपासे उसके अन्तिम दो वर्ष किसी प्रकार कट गये।

सेण्ट साइमनने यों तो अनेक रचनाएँ कीं पर अधधारणसे सम्भवतः उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं— 'इण्डस्ट्री' (सन् १८१७-१८१८) 'दि इण्डस्ट्रियल सिस्टम

---

[1] जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ २११।

(सन् १८२१-१८२८) और 'क्टेक्चिस्म एण्ड इनसर्स ऑन इण्डस्ट्री' (सन् १८२३-२४)। इन सभी रचनाओंमें प्रायः एक से ही विचारोंका पुनः-पुनः प्रतिपादन किया गया है।

साइमनके अनुयायी लोगोंने साइमनके विचारोंको विशेष रूपमें विकसित किया। वे उसे एक नवीन धर्मका प्रवर्तक मानते थे।

प्रमुख आर्थिक विचार

औद्योगिक क्रान्तिके फलस्वरूप बढ़नेवाली आर्थिक विषमता और आर्थिक सघर्षोंके बीच साइमनका जन्म और विकास होनेके कारण उसपर क्रान्तिका पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। अमेरिकाके स्वाधीनता संग्राममें भाग लेनेके कारण और फरासीसी क्रान्तिसे प्रभावित होनेके कारण भी साइमनके विचार ऐसे बने कि वह सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ढाँचेको ही बदल देनेकी बात सोचने लगा। सिसमाण्डी, टामस मूर, मेवली, मोरली, गाडविन, प्रेव्यूफ, ओवेन, फूर्य आदि समकालीन विचारकोंने भी साइमनको प्रभावित किया।

साइमनने दो क्रान्तियोंमें भाग लिया था, समाजकी दयनीय स्थिति उसे खटकती थी, सामाजिक समस्याओंका उसने गम्भीरतासे अध्ययन किया था और वह इस निष्कर्षपर पहुँचा था कि इस दिशामें क्रान्ति किये बिना, सारे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढाँचेमें आमूल परिवर्तन किये बिना समाजका कल्याण सम्भव नहीं।

'मानव द्वारा मानवके शोषण' का नारा सबसे पहले सेण्ट साइमनने ही बुलन्द किया। उसके तर्कों और शब्दावलियोंका आगे चलकर समाजवादियोंने भरपूर उपयोग किया, पर इतना निश्चित है कि उसका अन्तिम समर्थन पूँजीवादको ही था, पर उसकी विचारधाराके इस अभावको उसके अनुयायियोंने पूरा कर दिया। उनका मसीहा जहाँ व्यक्तिगत सम्पत्तिका समर्थक था, वहीं ये अनुयायी लोग उसके तीव्र विरोधी थे। इस तरह पैगम्बर और उसके अनुयायियोंने दो धाराएँ ग्रहण कीं।[1]

सेण्ट साइमनके प्रमुख आर्थिक विचारोंको दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है

(१) उद्योगवाद,

(२) शासन-व्यवस्था।

१ उद्योगवाद

सेण्ट साइमन यह मानकर चलता है कि समाजकी समृद्धिका मूल आधार है धनोत्पादन और धनोत्पादनके लिए अनिवार्य आवश्यकता है औद्योगिक विकास-

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ २१८।

रावर्ट ओवेन (सन् १७७१-१८५८), चार्ल्स फूर्ये (सन् १७७२-१८३७) विलियम थामसन (सन् १७८१-१८३३), लुई ब्लाँ (सन् १८११-१८८२) और प्रोधों (सन् १८०९-१८६५)।

वैज्ञानिक समाजवादके स्तम्भ हैं कार्ल मार्क्स (सन् १८१८-१८८३) और फ्रेडरिक एंजिल्स (सन् १८२०-१८९५)।

समाजवादी विचारधाराके उद्गमपर हम पहले विचार करेंगे, विकासपर बादमें।

सेण्ट साइमन

सेण्ट साइमनको 'औद्योगिक क्रान्तिके पालनेमें पोषित शिशु' की संज्ञा दी जाती है। उसका जन्म हुआ सन् १७६० में, जब कि औद्योगिक क्रान्तिने विश्वके रंगमंचपर पदार्पण किया और सन् १८२५ में उसकी मृत्यु हुई, जब इंग्लैण्डमें औद्योगिक क्रान्ति अपने विकासकी चरम सीमापर थी। यों यह स्पष्ट है कि औद्योगिक क्रान्तिके साथ-साथ सेण्ट साइमनके विचारोंका विकास हुआ। उद्योगवादकी उसपर गहरी छाप है और इसलिए कुछ विचारक उसे 'उद्योगवादका महंत' कहकर भी पुकारते हैं।

जीवन-परिचय

फ्रांसके एक सम्पन्न परिवारमें क्लाउड हेनरी द सेण्ट साइमनका जन्म हुआ। बाल्यावस्थासे ही उसमें साहस एवं शौर्यकी भावनाएँ थीं। १६ वर्षकी ही आयुमें अमेरिका जाकर वहाँके स्वाधीनता-संग्राममें उसने भाग लिया। फलतः वह अपनी पैतृक सम्पत्तिसे हाथ धो बैठा। पर साहसकी मात्रा पर्याप्त होनेसे उसने थोड़े ही समयके भीतर अपना भाग्य पुनः चमका लिया। कुछ दिनोंके उपरान्त साइमन पुनः संदेहमें गिरफ्तार कर लिया गया, पर बादमें छोड़ दिया गया। तभीसे वह अपनेआपको एक मसीहाका गवाह मानने लगा[1] और एक नवीन औद्योगिक समाजकी रचनामें विशेष रूपसे तत्पर हो गया। यूरोप लौटकर उसे दो बार आर्थिक संकटोंमें पड़ना पड़ा। एक बार फ्रांसीसी क्रान्तिके समय और दूसरी बार अपनी शाहखर्चीके कारण। विवाह किया और कुछ दिन बाद तलाक दे डाली। अतएव जीवनके अन्तिम दिन अत्यन्त अभावमें बीते। सन् १८२३ में उसने इसी कारण आत्महत्या करनेकी भी चेष्टा की, पर बादमें एक अमीरकी कृपासे उसके अन्तिम दो वर्ष किसी प्रकार कट गये।

सेण्ट साइमनने यों तो अनेक रचनाएँ कीं, पर अर्थशास्त्रसे सम्बद्ध उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं— 'इण्डस्ट्री' (सन् १८१७-१८१८), 'दि इण्डस्ट्रियल सिस्टम'

१. जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ २१५।

श्रमिक-वर्ग ही पा सकेगा। उसमें प्रत्येक व्यक्तिको श्रम करना पड़ेगा। अकर्मण्य और आलसी-वर्ग स्वतः ही लुप्त हो जायगा। श्रमिक वर्गमें सबके प्रति समानताका व्यवहार होगा। लोगोंकी क्षमता, प्रतिभा, शक्ति एवं सामर्थ्यके कारण थोड़ा-बहुत अन्तर रहे तो रहे। प्रत्येकको उसकी क्षमता, शक्ति, सामर्थ्य एवं पूँजीके अनुरूप सामाजिक लाभोंकी प्राप्ति हो सकेगी।[1]

स्पष्ट है कि साइमन पूँजीपतिको उचित अंश देनेके लिए उत्सुक है। वह जन्मगत, श्रेणीगत सभी भेदोंकी समाप्तिके लिए आतुर है और प्रत्येकको उसकी उत्पादन-क्षमताके अनुरूप उत्पादनका अंश देनेको प्रस्तुत है। उसके इस औद्योगिक राज्यमें व्यक्तिगत सम्पत्तिके लिए समुचित स्थान है। उसका राष्ट्रीयकरण तो वह नहीं चाहता, वह उसके पुनर्वितरणका समर्थक है, जिससे वह उत्पादनके लिए अधिक अनुकूल सिद्ध हो सके। गरीबी, बेकारी और आर्थिक संकटके निवारणका साइमनकी दृष्टिमें एक ही उपाय है और वह है यही कि प्रत्येक व्यक्ति श्रम करे। श्रम ही जीवन धारणका एकमात्र साधन होगा। वह मानता है कि श्रम और पूँजीके बीच कोई विरोध नहीं है। विरोध है, तो श्रमिकों और अकर्मण्योंके ही बीच है। यह विरोध तभी मिटेगा, जब प्रत्येक व्यक्तिको काम करना पड़ेगा।[2]

साइमन प्रथम व्यक्ति था, जिसने कार्यक्षमताकी दृष्टिसे विचार किया और दक्षताके अभाव तथा खेतिहर जीवनके ढीले-ढाले ढंगके विरुद्ध आवाज उठायी। काहिलोंसे उसे सबसे अधिक घृणा थी। उसने सबसे पहले इस बातका अनुभव किया कि नये समाजको जन्म देनेके लिए विज्ञानका अर्थव्यवस्थाके साथ गठबन्धन किया जाय, दरिद्रता, अभाव, गन्दगी और रोगके दानवोंसे मानव-जीवनको मुक्त करनेके लिए विज्ञान और अर्थव्यवस्थाको परिणय-सूत्रमें आबद्ध किया जाय।[3]

२. शासन-व्यवस्था

सेण्ट साइमनने जिस भावी समाजकी कल्पना की है, उसके लिए वह 'राज्य करनेवाली सत्ता' के स्थानपर 'प्रशासन करनेवाली सत्ता' चाहता था। राजनीति, राजनीतिज्ञों और लोकतन्त्रका उसके लिए कोई उपयोग नहीं था। वह शक्तिको वैज्ञानिकों, शिल्पियों और उद्योग चलानेवालोंके हाथमें रखना चाहता था।[4] साइमनकी ऐसी मान्यता थी कि नयी समाज-व्यवस्थाके लिए जो प्रशासक सत्ता होगी, वह वर्तमान शासकीय सत्तासे भिन्न होगी। उसका प्रमुख कार्य

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ २१७–२१६।
२ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४२७।
३ अशोक मेहता डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ २०।
४ अशोक मेहता 'एशियाई समाजवाद–एक अध्ययन', पृष्ठ १०।

की। यह उद्योगवाद ही भावी समाज-रचनाका आधार हो सकता है। साइमनकी दृष्टिमें औद्योगिक वर्ग और उसके समर्थक, बुद्धिजीवी लोग, व्यापारी और इंजीनियर आदि ही वास्तवमें श्रमनिष्ठ हैं और उत्पादक हैं, शेष व्यक्ति आलसी और अनुत्पादक हैं। इस प्रकार वह समाजमें दो वर्ग मानता है—एक श्रमिक और दूसरा आलसी।

इस सम्बन्धमें साइमनने एक उपमा दी, जो उसीके नामसे आर्थिक जगत्‌में अत्यन्त प्रख्यात है।[1] वह कहता है :

कल्पना कीजिये कि फ्रांसके प्रथम श्रेणीके ५० डाक्टर, ५० रसायनज्ञ, ५० शरीरशास्त्रज्ञ, ५० बैंकर, २०० व्यापारी, ६०० कृषक और ५०० उद्योगपति आदि काल-कवलित हो जाते हैं, तो इनके अभावमें फ्रांसको जो अपूरणीय क्षति सहन करनी पड़ेगी, उसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इन उत्पादकोंके अभावमें राष्ट्र जीवन शून्य-सा हो जायगा।

इसके स्थानपर यदि हम ऐसी कल्पना करें कि कला, विज्ञान और उद्योगके ये निर्माता, उत्पादनके ये स्तम्भ जीवित रहते हैं और उनके बजाय सारा राजकुल, सभी राज्याधिकारी, सेनाधिकारी, धर्माधिकारी, न्यायाधीश और कुलीन वर्गके १ लाख व्यक्ति काल-कवलित हो जाते हैं, तो फ्रांसकी क्या क्षति होगी? यह सही है कि इन १ लाख १० हजार नागरिकोंके निधनसे फ्रांसकी भावनाशील जनताको थोड़ा सा मानसिक क्लेश तो अवश्य होगा, परन्तु उससे समाजको रत्तीभर भी असुविधा नहीं होगी।

तात्पर्य यह कि कुलीन-वर्ग, पादरी-पुजारी, राजनीतिक नेता या अधिकारी वर्ग केवल शासनके लिए है, उसकी और उपयोगिता नहीं। इस वर्गके बिना भी समाजका काम चल सकता है। पैतृक सम्पत्ति अथवा सम्मानपर आश्रित आलसी वर्ग राष्ट्रके लिए अनुपयोगी है। उसकी उपयोगिता यदि कुछ है, तो वह केवल दिखावटी है। पर औद्योगिक वर्गके बिना तो समाजका काम ही नहीं चल सकता।

सेंट साइमनकी मान्यता है कि उद्योग ही समाजका प्राण है और औद्योगिक वर्गके बिना राष्ट्रकी समृद्धि ही रुक जायगी। इसी मान्यताके आधारपर साइमनने भावी समाजकी जो कल्पना की है, उसमें न सामन्तोंके लिए स्थान है और न पादरी पुजारियोंके लिए। वह समाज श्रमनिष्ठ एवं कर्मनिष्ठ व्यक्तियोंका ही होगा। पड़े रहकर मौज करनेवाले अकर्मण्य व्यक्तियोंके लिए उसमें कोई स्थान नहीं रहेगा। साइमनके नये समाजमें शरीर श्रमिक, कृषक, दस्तशिल्पी, निर्माता, बैंकर, कलाकार, व्यापारी आदि ही रहेंगे। उसमें रहनेका अवसर एकमात्र

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २१६।

ही, कार्यक्षमतामें भी वृद्धि होगी। उसने कार्यक्षमता शक्तिका स्थान ग्रहण कर लेगी और दिशा-सूचक निर्देशनका। इस प्रकार समाज दिन-दिन उन्नतिके पथकी ओर अग्रसर होता चलेगा। राजनीतिके स्थानपर लोक कल्याणकी ओर मनका ध्यान केन्द्रित होता चलेगा।[1]

साइमन उद्योगका केन्द्रीकरण चाहता है, पर उसने व्यक्तिगत सम्पत्तिको प्रश्रय दिया है। अतः उसकी विचारधारा समाजवादी नहीं है, फिर भी आगे चलकर समाजवादियोंने और साम्यवादियोंने सेण्ट साइमनकी विचारधाराके अनेक अंशोंका उपयोग किया और उसके आधारपर नयी मान्यताएँ प्रस्थापित कीं। ब्लाँ, मेजर, सोरेल, मार्क्स, एञ्जिल आदि सब सेण्ट साइमनके ऋणी हैं।

सेंट साइमनवादी

सेंट साइमनका हृदय दीनोंकी दुर्दशा देखकर द्रवित हो उठा था। उसीकी अभिव्यक्ति उसके विचारोंमें झलकती है। वह चाहता था कि अन्याय किसीके प्रति न हो, श्रम प्रत्येक व्यक्ति करे और उत्पादनमें अधिकाधिक वृद्धि हो। औद्योगिक उत्पादनकी ओर उसका झुकाव था, विज्ञानका वह प्रशंसक था। उसकी शिष्य-मण्डलीने उसकी विचारधाराको अनेकांशमें ग्रहण किया, पर उसने व्यक्तिगत सम्पत्तिकी साइमनकी तर्क-पद्धतिको अस्वीकार कर दिया और इस प्रकार समाज-वादी विचारधाराके उदयकी भूमिका प्रस्तुत कर दी।

साइमनने अपनेको मसीहा मान लिया था और उसके शिष्य उसे उसी दृष्टिसे देखते थे। वे शिष्य अपना सारा संगठन धार्मिक ढंगपर चलाते थे। इनके अपने गिरजाघर थे, अपने पादरी थे, अपने प्रचारकोंके दल थे। अनेक पुस्तिकाएँ भी इन लोगोंकी ओरसे प्रकाशित हुई थीं। उनका बड़ी धूमधामसे प्रचार किया जाता था। शिष्यों और उपासकोंकी भारी भीड़ जुटा करती थी। 'ल प्रोडक्त्यौर' नामक इनका एक पत्र भी था। इन सब साधनोंके द्वारा सेंट साइमनके विचारोंका अधिकाधिक प्रचार उसके शिष्योंने किया। इन शिष्योंकी यह दूरदर्शिता ही थी कि उन्होंने इस कौशल द्वारा अपने मसीहाके विचारोंका प्रचार किया। यदि वे इसके लिए किसी अन्य मार्गका आश्रय लेते, तो उन्हें अपने क्रान्तिकारी विचारों को लोक-मानसतक पहुँचानेका अवसर ही न प्राप्त होता।

साइमनकी शिष्य-मण्डलीमें कई व्यक्ति अत्यधिक प्रतिभाशाली थे। उन्होंने अपने मसीहाके सिद्धान्तोंका प्रचार ही नहीं किया, उन्हें विकसित करके पुष्ट भी किया और व्यक्तिगत सम्पत्तिका विरोध करके गुरुसे एक भिन्न मार्ग भी खोज निकाला, जिसने समाजवादकी आधारशिलाका काम किया।

[1] जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ २२०।

यह होगा कि उत्पादनके साधनोंका नियोजन इस विधिसे किया जाय, जिससे उत्पादनमें अधिकतम वृद्धि हो सके। नयी प्रशासक संस्थाका जनतापर नियंत्रण रखने, उपद्रव रोकने, चोरियाँ बन्द करने, न्याय करने आदिका काम तो कम रहेगा, मुख्य कार्य यही रहेगा कि उद्योग-धन्धोंका अधिकतम विकास किस प्रकार किया जाय। वर्तमान अधिकारी-वर्गके स्थानपर साइमनके नये समाजमें उद्योग-वर्गके सूत्रधार ही सारा सूत्र अपने हाथमें रखेंगे।

सेंट साइमनकी धारणा थी कि सम्पत्तिके अधिकारके नियम जनमत तथा सामाजिक सुविधाके अनुसार बदलने चाहिए। वह कहता था कि 'मानव-समाजका संघटन इस प्रकार करना चाहिए कि वह अधिकसे अधिक लोगोंके लिए लाभदायक सिद्ध हो। बहुजन समाजके नैतिक और भौतिक सुधारके लिए तथा सम्पत्ति प्राप्तिके लिए उनके कार्य और उनकी कार्यपद्धतियाँ क्या हों, इसका निर्णय स्वयं उन्हें ही करना चाहिए।'[1]

सेंट साइमनका विश्वास था कि भावी समाजके सदस्य गुण सभी चरितार्थ हो सकते हैं जब प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था दोनों ही नवोदित व्यवसायक वर्गके हाथमें हो। राज्य, राजनीति और राजनीतिज्ञोंका उसकी दृष्टिमें कोई महत्त्व नहीं था। राज्यकी वह भर्त्सना करता था और राजनीतिज्ञोंके प्रति तिरस्कारकी भावना रखता था। विज्ञान और इंजीनियरिंगमें उसकी आस्था थी और यही कारण था कि वह कहता था कि औद्योगिक शासन-तंत्र उत्पादनकी शक्तियोंका संघटन करेगा, मनुष्योंका संघटन नहीं। साइमन मानता था कि उसने जो लक्ष्य निर्धारित किया है उसकी पूर्तिके लिए वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व समाप्त कर उसके स्थानपर औद्योगिक नेतृत्वकी स्थापना की जायगी।

नयी शासन-व्यवस्थामें निर्माता, साहसी, श्रमिकों तथा उपभोक्ताओंके हितोंकी रक्षाकी व्यवस्था होगी। उसके लिए दो सदन रहेंगे। एक सदनमें शिल्पियों, व्यापारियों, उद्योगपतियों, कृषकोंके निर्वाचित प्रतिनिधि रहेंगे, दूसरे सदनमें वैज्ञानिक, विचारकों, कलाकारों और श्रमिकोंके निर्वाचित प्रतिनिधि रहेंगे। दोनों सदन मिलकर ऐसे नियमोंकी रचना करेंगे जिनके द्वारा वस्तुके उत्पादन, उद्योग वाणिज्य व्यवसायकी अभिवृद्धि हो सकेगी। दोनों सदनोंके *निर्णयोंका* एकमात्र लक्ष्य होगा—देशका भौतिक सर्वांगीण विकास।

साइमन ऐसा मानता था कि उसने जैसी प्रशासकीय व्यवस्थाकी रूपरेखा प्रस्तुत की है उसके द्वारा वैज्ञानिकोंकी *प्रतिभा एवं श्रमिक और सामग्री* आदिके लिए समुचित सदुपयोग हो सकेगा। फलतः देशकी भौतिक समृद्धि तो होगी

---

१ गीड और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकनामिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ २१।

२ गीड और रिस्ट : वही, पृष्ठ २१०—२११।

हो, कार्यक्षमतामें भी वृद्धि होगी। उसने कार्यक्षमता शक्तिका स्थान ग्रहण कर लेगी और दिशा सूचन निर्देशनका। इस प्रकार समाज दिन दिन उन्नतिके पथकी ओर अग्रसर होता चलेगा। राजनीतिके स्थानपर लोक कल्याणकी ओर सबका ध्यान केन्द्रित होता चलेगा।[1]

साइमन उद्योगका केन्द्रीकरण चाहता है, पर उसने व्यक्तिगत सम्पत्तिको प्रश्रय दिया है। अतः उसकी विचारधारा समाजवादी नहीं है, फिर भी आगे चलकर समाजवादियोंने और साम्यवादियोंने सेण्ट साइमनकी विचारधाराके अनेक अंशोंका उपयोग किया और उसके आधारपर नयी मान्यताएँ प्रस्थापित कीं। ब्लॉ, मेजर, सोरेल, मार्क्स, एंजिल्स आदि सब सेण्ट साइमनके ऋणी हैं।

सेंट साइमनवादी

सेंट साइमनका हृदय दीनोंकी दुर्दशा देखकर द्रवित हो उठा था। उसीकी अभिव्यक्ति उसके विचारोंमें झलकती है। वह चाहता था कि अन्याय किसीके प्रति न हो, श्रम प्रत्येक व्यक्ति करे और उत्पादनमें अधिकाधिक वृद्धि हो। औद्योगिक उत्पादनकी ओर उसका झुकाव था, विज्ञानका वह प्रशंसक था। उसके शिष्य-मण्डलीने उसकी विचारधाराको अनेकांशमें ग्रहण किया, पर उसने व्यक्तिगत सम्पत्तिकी साइमनकी तर्क पद्धतिको अस्वीकार कर दिया और इस प्रकार समाजवादी विचारधाराके उदयकी भूमिका प्रस्तुत कर दी।

साइमनने अपनेको मसीहा मान लिया था और उसके शिष्य उसे उसी दृष्टिसे देखते थे। ये शिष्य अपना सारा संगठन धार्मिक ढंगपर चलाते थे। इनके अपने गिरजाघर थे, अपने पादरी थे, अपने प्रचारकोंके दल थे। अनेक पुस्तिकाएँ भी इन लोगोंकी ओरसे प्रकाशित हुई थीं। उनका बड़ी धूमधामसे प्रचार किया जाता था। शिष्यों और उपासकोंकी भारी भीड़ जुटा करती थी। 'ल प्रोडक्ट्योर' नामक इनका एक पत्र भी था। इन सब साधनोंके द्वारा सेंट साइमनके विचारोंका अधिकाधिक प्रचार उसके शिष्योंने किया। इन शिष्योंकी यह दूरदर्शिता ही थी कि उन्होंने इस कौशल द्वारा अपने मसीहाके विचारोंका प्रचार किया। यदि वे इसके लिए किसी अन्य मार्गका आश्रय लेते, तो उन्हें अपने क्रान्तिकारी विचारों को लोक-मानसतक पहुँचानेका अवसर ही न प्राप्त होता।

साइमनको शिष्य-मण्डलीमें कई व्यक्ति अत्यधिक प्रतिभाशाली थे। उन्होंने अपने मसीहाके सिद्धान्तोंका प्रचार ही नहीं किया, उन्हें विकसित करके पुष्ट भी किया और व्यक्तिगत सम्पत्तिका विरोध करके गुरुसे एक भिन्न मार्ग भी खोज निकाला, जिसने समाजवादकी आधारशिलाका काम किया।

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २२०।

साइमनवादी शिष्य मंडलीमें प्रमुख थे—सैं अमन्द बेजार्ड (सन् १७९१-१८३२) प्रासेपर एनफेन्टिन (सन् १७९६-१८६४), आगस्त कोम्ट (सन् १७९८-१८५७), आगस्टिन थियरी, ओलिन्द रोड्रिग्स। बेजार्ड और एनफेन्टिनने अपनी लेखनी और वाणी द्वारा साइमनके आन्दोलनको विशेष बल प्रदान किया। दोनोंने मिलकर ४७ पुस्तिकाएँ लिखीं। फ्रांसकी शिक्षित और सम्य जनतापर जब इन विचारोंका अच्छा प्रभाव पड़ने लगा तब फरासीसी सरकारने इस आन्दोलनको दबानेकी चेष्टा की। फलतः साइमनवाद विशेष पनप नहीं सका।

बजार्डकी 'एक्सपोजीशन ऑफ दि डाक्ट्रिन्स ऑफ सेण्ट साइमन (दो खण्ड) साइमनवादियोंकी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है। इसके प्रथम खण्डमें इस आन्दोलनके सम्बन्धमें आर्थिक एवं सामाजिक विचारोंका उत्तम संग्रह है।

प्रमुख आर्थिक विचार

साइमनवादियोंके विचारोंको दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है :

(१) व्यक्तिगत सम्पत्तिका विरोध

(२) सामूहिक स्वामित्व।

व्यक्तिगत सम्पत्तिका विरोध

साइमनवादी विचारकोंका कहना था कि चाहे आर्थिक न्यायकी दृष्टिसे देखें चाहे सामाजिक न्यायकी दृष्टिसे देखें चाहे ऐतिहासिक न्यायकी दृष्टिसे देखें व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रत्येक दृष्टिसे निंद्य है। जैसे भी हो उसे समाप्त ही कर देना चाहिए।

जहाँतक आर्थिक न्यायका प्रश्न है वर्तमान व्यवस्थामें जहाँ भू-स्वामी अधिकाधिक भाग और स्वामित्व प्राप्त कर लेना चाहते हैं वहाँ वे श्रमिकको कमसे कम देना चाहते हैं। जो व्यक्ति श्रम करता है उसे न्यूनतम मिले और जो व्यक्ति श्रम न करे उसे अत्यधिक लाभ मिले यह श्रमिकोंका स्पष्ट शोषण और अन्याय है। फलतः यह विषम वितरण सर्वथा अनुचित है। यह कहना भी ठीक नहीं कि भू-स्वामी या पूँजीपति भी तो अपनी आय-वृद्धिके लिए कठिन श्रम करते हैं वे जितना श्रम करते हैं उसकी अपेक्षा वे कई गुना लाभ उठा लेते हैं। यह दूसरोंके श्रमका शोषण छोड़कर और क्या है।

सिसमाण्डीने भी 'शोषण' शब्दका प्रयोग किया था पर सिसमाण्डी और

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २२२, २२६।

साइमनवादियोंके अर्थमें थोड़ासा अन्तर है। सिसमाण्डीका कहना था कि ब्याज पूँजीकी आय है, अत. वह सर्वथा उचित है, किन्तु यदि श्रमिकको पर्याप्त मजूरी न दी जाय, तो श्रमिकका शोषण भी किया जा सकता है, पर यह दोष अस्थायी है। इसे ठीक किया जा सकता है। साइमनवादी लोगोंका कहना था कि यह समाज-व्यवस्थाका मूलभूत दोष है। व्यक्तिगत सम्पत्तिसे इसका उद्भव है। अत जबतक व्यक्तिगत सम्पत्तिकी समाप्ति न की जाय, तबतक शोषण भी नहीं मिट सकता।

जहाँतक सामाजिक न्यायका प्रश्न है, साइमनवादियोंका कहना था कि प्रकृतिवादी और शास्त्रीय परम्परावालोंका यह दृष्टिकोण गलत है कि भू-स्वामियोंको उत्पादनका समुचित अश न मिले, तो वे न भूमिको उर्वरा ही बनानेका प्रयत्न करेंगे और न कृषिमें सहायक ही होंगे, फलत श्रमिक भी भूमिसे लाभ उठानेसे वञ्चित रहेंगे, अत व्यक्तिगत सम्पत्ति बनी रहनी चाहिए। साइमनवादी कहते थे कि इस बातका क्या भरोसा कि सम्पत्तिके स्वामीकी मृत्यु होनेपर उसका पुत्र भी पिताकी ही तरह निकलेगा ? वह यदि नालायक निकले और उत्पादनमें भाग न लेते हुए भी सम्पत्ति-स्वामी होनेके नाते उत्पादनका लाभ उठाता रहे, तो क्या होगा ? वह यदि सामाजिक हितकी दृष्टिसे अपनी सम्पत्तिका उपयोग न करे, तो व्यक्तिगत सम्पत्तिका अधिकार देनेमें क्या लाभ ? अत. सामाजिक हितकी दृष्टिसे भी व्यक्तिगत सम्पत्तिका बनाये रखना अनुचित है। उसका राष्ट्रीय-करण होना ही चाहिए।

ऐतिहासिक दृष्टिसे भी अब व्यक्तिगत सम्पत्तिको बनाये रखना अनुचित है। यह आवश्यक नहीं कि कई वर्ष पूर्व जो बात ठीक रही हो, वह आगे भी उसी प्रकार ठीक ही बनी रहेगी। एक युगमें मनुष्य दास रखता था, सामन्तशाहीके युगमें सम्पत्तिका उत्तराधिकार सबसे बड़े पुत्रको ही मिलता था, पर फरासीसी क्रान्तिके उपरान्त स्थितिमें परिवर्तन हो गया। सम्पत्ति सभी पुत्रोंमें समान रूपसे बाँटी जाने लगी। अत ऐतिहासिक न्यायका तर्क सर्वथा असङ्गत है। इतिहास जब-तब करवटें बदलता रहता है। अत यह सम्भव है कि शीघ्र ही वह दिन आ जाय, जब समाजवादी व्यवस्था लागू हो जाय और व्यक्तिगत सम्पत्ति पूर्णत. समाप्त कर दी जाय।[१]

सामूहिक स्वामित्व

सेण्ट साइमनवादियोंकी धारणा है कि जबतक आनुवंशिकता समाप्त नहीं होती, व्यक्तिगत सम्पत्तिका उच्छेद नहीं होता, श्रमिक-वर्गका समाजपर प्रभुत्व

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ २३५।

स्थापित नहीं होता, आलसी लोगोंका निष्कासन नहीं होता, फलतः समाजका वैषम्य भी समाप्त नहीं होता। सामाजिक विषमताका परिहार करनेके लिए, सम्पत्तिके असमान वितरणका उन्मूलन करनेके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त कर दी जाय और उसके स्थानपर सम्पत्तिपर सामूहिक स्वामित्व हो।

साइमनवादियोंकी माँग थी कि सम्पत्तिपर पुत्रका उत्तराधिकार न रहे। सारी सम्पत्ति राज्यकी हो। राज्य ही इस बातका निर्णय करे कि कौनसी सम्पत्ति किस वस्तुके उत्पादनमें लगायी जाय तथा उत्पादनके सहायक साधनोंको कितना अंश दिया जाय। राज्य सबके हितको दृष्टिमें रखते हुए साधनोंका वितरण करे। प्रत्येकको अवसरकी समानता प्राप्त हो, ताकि वह अपनी प्रतिभा, क्षमता, शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुकूल उत्पादनमें वृद्धि कर सके। व्यक्तियोंके श्रमके परीक्षणके लिए तथा उत्पादनकी दिशा-दर्शनके लिए राज्य ऐसे व्यक्तियोंको प्रमुख या निरीक्षकके रूपमें नियुक्त करे, जो समाजके हितको सर्वोपरि मानकर उसकी उन्नति और विकासमें अत्यन्त रुचिपूर्वक लगेंगे।[1]

साइमनवादियोंकी यह सारी योजना सुनियोजित है। इसमें दो ही कमियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक तो उन्होंने इस बातका स्पष्टीकरण नहीं किया कि ये औद्योगिक प्रमुख चुने कैसे जायँगे, और दूसरे यह कि सारी सम्पत्ति राज्यके हाथमें पहुँचेगी कैसे ! क्या सरकार सम्पत्तिवानोंसे सम्पत्ति छीन लेगी अथवा भारी मुआवजा देकर उनसे ले लेगी अथवा सम्पत्तिवान् स्वयं ही अपनी सम्पत्तिका त्याग कर उसे राजकीय कोषमें जमा कर देंगे।

मूल्यांकन

सें साइमनवादियोंने जनताके मनोविज्ञानका सदुपयोग कर अपने क्रान्तिकारी विचारोंको धार्मिक चोगा पहनाया था। सम्भव है वे ऐसा मानते रहे हों कि धार्मिक रूप देनेसे जनता स्वेच्छया इन बातोंको स्वीकार कर लेगी और इस प्रकार सारी समस्याका तत्परतासे निराकरण हो जायगा।

सेंट साइमनवादी व्यक्तिगत सम्पत्तिका तीव्र विरोध करके आर्थिक विचारधाराको एक नया मोड़ देते हैं। वे मानते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति अनेक अन्यायोंकी मूल है और इसके कारण आलस्य एवं परावलम्बी वृत्ति होती है तथा अनेक व्यक्ति परोपजीवी बनते हैं। अतः वे चाहते हैं कि आनुवंशिकता समाप्त कर दी जाय, देशकी समस्त सम्पत्ति—सारे उत्पादन यंत्र, सारी भूमि, सारी

---

[1] जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २१०-२११।

पूँजी तथा सारे व्यक्तिगत कोष एक केन्द्रीय कोषमें संचित कर लिये जायँ और फिर उसमेंसे जिसकी जैसी कार्यक्षमता हो, जिसकी जैसी प्रतिभा हो, जिसकी जैसी योग्यता हो, तदनुकूल सम्पत्तिका वितरण कर दिया जाय।

सेंट साइमनवादी समाजवादके वास्तविक जन्मदाता हैं। राजकीय कोपके कारण साइमनवाद समाप्त हो गया अवश्य, पर उसकी विचारधाराने समाजवादकी सारी रूपरेखा प्रस्तुत कर दी। कई साइमनवादी विचारकोंने उच्च सरकारी पद ग्रहण करके अपनी व्यवहारकुशलता और व्यापारिक तंत्रकी दक्षताका भी सम्यक् परिचय प्रदान किया।

आर्थिक विचारधाराके विकासमें सेंट साइमन और उनके अनुयायियोंकी देन अविस्मरणीय है।

स्थापित नहीं होता, आलसी लोगोंका निष्कासन नहीं होता, तबतक समाजका वैषम्य भी समाप्त नहीं होता। सामाजिक विषमताका परिहार करनेके लिए, सम्पत्तिके असमान वितरणका उन्मूलन करनेके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त कर दी जाय और उसके स्थानपर सम्पत्तिपर सामूहिक स्वामित्व हो।

साइमनवादियोंकी माँग थी कि सम्पत्तिपर पुत्रका उत्तराधिकार न रहे। सारी सम्पत्ति राज्यकी हो। राज्य ही इस बातका निर्णय करे कि कौनसी सम्पत्ति किस वस्तुके उत्पादनमें लगायी जाय तथा उत्पादनके सहायक साधनोंको कितना अंश दिया जाय। राज्य समाजके हितको दृष्टिमें रखते हुए साधनोंका वितरण करे। प्रत्येकको अवसरकी समानता प्राप्त हो, ताकि वह अपनी प्रतिभा क्षमता शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुकूल उत्पादनमें वृद्धि कर सके। व्यक्तियोंकी क्षमताके परीक्षणके लिए तथा उत्पादनकी दिशा-संचालनके लिए राज्य ऐसे व्यक्तियोंको प्रमुख या निरीक्षकके रूपमें नियुक्त करे, जो समाजके हितको सर्वोपरि मानकर उसकी उन्नति और विकासमें अत्यन्त रुचिपूर्वक लगें।[1]

साइमनवादियोंकी यह सारी योजना सुनियोजित है। इसमें दो ही कमियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक तो उन्होंने इस बातका स्पष्टीकरण नहीं किया कि ये औद्योगिक प्रमुख चुने कैसे जायँगे, और दूसरे यह कि सारी सम्पत्ति राज्यके हाथमें पहुँचेगी कैसे? क्या सरकार सम्पत्तिवानोंसे सम्पत्ति छीन लेगी अथवा कोई मुआवजा देकर उनसे ले लेगी अथवा सम्पत्तिवान् स्वयं ही अपनी सम्पत्तिका त्याग कर उसे राजकीय कोषमें जमा करा देंगे।

मूल्यांकन

सेंट साइमनवादियोंने जनताके मनोविज्ञानका सदुपयोग कर अपने क्रान्तिकारी विचारोंको धार्मिक चोला पहनाया था। सम्भव है, वे ऐसा मानते रहे हों कि धार्मिक रूप दे देनेसे जनता स्वेच्छया इन बातोंको स्वीकार कर लेगी और इस प्रकार सारी समस्याका सरलतासे निराकरण हो जायगा।

सेंट साइमनवादी व्यक्तिगत सम्पत्तिका तीव्र विरोध करके आर्थिक विचार धाराको एक नया मोड़ देते हैं। वे मानते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति अनेक अनर्थोंकी मूल है और इसके कारण आलस्य एवं प्रमादकी वृद्धि होती है तथा अनेक व्यक्ति परोपजीवी बनते हैं। अतः वे चाहते हैं कि आनुवंशिकता समाप्त कर दी जाय देशकी समस्त सम्पत्ति—सारे उत्पादन-यंत्र सारी भूमि सारी

---

[1] जीद और रिस्ट : वही पृष्ठ २१०-२११।

पूँजी तथा सारे व्यक्तिगत कोष एक केन्द्रीय कोषमें संचित कर लिये जायँ और फिर उसमेंसे जिसकी जैसी कार्यक्षमता हो, जिसकी जैसी प्रतिभा हो, जिसकी जैसी योग्यता हो, तदनुकूल सम्पत्तिका वितरण कर दिया जाय।

सेंट साइमनवादी समाजवादके वास्तविक जन्मदाता हैं। राजकीय कोपके कारण साइमनवाद समाप्त हो गया अवश्य, पर उसकी विचारधाराने समाजवादकी सारी रूपरेखा प्रस्तुत कर दी। कई साइमनवादी विचारकोंने उच्च सरकारी पद ग्रहण करके अपनी व्यवहारकुशलता और व्यापारिक तंत्रकी दक्षताका भी सम्यक् परिचय प्रदान किया।

आर्थिक विचारधाराके विकासमें सेंट साइमन और उनके अनुयायियोंकी देन अविस्मरणीय है।

● ● ●

स्थापित नहीं होता, आलसी लोगोंका निष्कासन नहीं होता, तबतक समाजका वैमनस्य भी समाप्त नहीं होता। सामाजिक विषमताका परिहार करनेके लिए, सम्पत्तिके असमान वितरणका उन्मूलन करनेके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त कर दी जाय और उसके स्थानपर सम्पत्तिपर सामूहिक स्वामित्व हो।

साइमनवादियोंकी माँग थी कि सम्पत्तिपर पुत्रका उत्तराधिकार न रहे। सारी सम्पत्ति राज्यकी हो। राज्य ही इस बातका निर्णय करे कि कौनसी सम्पत्ति किस वस्तुके उत्पादनमें लगायी जाय तथा उत्पादनके सहायक साधनोंका कितना अंश दिया जाय। राज्य सबके हितको दृष्टिमें रखते हुए साधनोंका वितरण करे। प्रत्येकको अवसरकी समानता प्राप्त हो ताकि वह अपनी प्रतिभा क्षमता शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुकूल उत्पादनमें वृद्धि कर सके। व्यक्तियोंकी क्षमताके परीक्षणके लिए तथा उत्पादनको दिशा-प्रदानके लिए राज्य ऐसे व्यक्तियोंको प्रमुख या निरीक्षकके रूपमें नियुक्त करे जो समाजके हितको सर्वोपरि मानकर उसकी उन्नति और विकासमें अत्यन्त रुचिपूर्वक लगें।[१]

साइमनवादियोंकी यह सारी योजना सुनियोजित है। इसमें दो ही कमियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक तो उन्होंने इस बातका स्पष्टीकरण नहीं किया कि ये औद्योगिक प्रमुख चुने कैसे जायेंगे और दूसरे यह कि सारी सम्पत्ति राज्यके हाथमें पहुँचेगी कैसे? क्या सरकार सम्पत्तिवालोंसे सम्पत्ति छीन लेगी अथवा कोई मुआवजा लेकर उनसे ले लेगी अथवा सम्पत्तिवान् स्वयं ही अपनी सम्पत्तिका त्याग कर उसे राजकीय कोषमें जमा करा देंगे।

मूल्यांकन

सेंट साइमनवादियोंने जनताके मनोविज्ञानका सदुपयोग कर अपने क्रान्तिकारी विचारोंको धार्मिक जामा पहनाया था। सम्भव है वे ऐसा मानते रहे हों कि धार्मिक रूप दे देनेसे जनता स्वेच्छया इन बातोंको स्वीकार कर लेगी और इस प्रकार सारी समस्याका सरलतासे निराकरण हो जायगा।

सेंट साइमनवादी व्यक्तिगत सम्पत्तिका तीव्र विरोध करके आर्थिक विचार धाराको एक नया मोड़ देते हैं। वे मानते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति अनेक अनर्थोंकी मूल है और इसीके कारण आलस्य एवं प्रमादकी वृद्धि होती है तथा अनेक व्यक्ति परोपजीवी बनते हैं। अतः वे चाहते हैं कि आनुवंशिकता समाप्त कर दी जाय देशकी समस्त सम्पत्ति—सारे उत्पादन-यंत्र, सारी भूमि सारी

---

१ जीद और रिस्ट : वही पृष्ठ २१०-२११।

सहयोगी समाजवाद · ३

औद्योगिक क्रान्तिके फलस्वरूप समाजमें जिस वैषम्य एवं आर्थिक संकटका प्रादुर्भाव होने लगा था, उसने तत्कालीन विचारकोंका इस ओर तीव्रतासे ध्यान आकृष्ट किया। एक ओर अमीर दिन-दिन अमीर बनते चले जा रहे थे, दूसरी ओर गरीब दिन दिन गरीब। बेकारी और तबाही, दुर्भिक्ष और दारिद्र्यका चारों ओर प्रसार हो रहा था। इस दुर्भाग्यका कारण क्या है और इसका निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है—इन बातोंपर विचारकोंका चिन्तन चलने लगा था। उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति ही इन सारे अनर्थोंका मूल कारण है।

इस वैषम्यके निराकरणके लिए किन्हींने अत्यन्त सामान्य सुझाव दिये, किन्हींने इस बातपर जोर दिया कि सारी अर्थ-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था ही बदल देनी चाहिए, किन्हींने व्यक्तिगत सम्पत्तिका समर्थन करते हुए कुछ सुझाव उपस्थित किये और किन्हींने उसका उन्मूलन ही कर डालनेकी माँग की।

इसी चिन्तनधारामेंसे सहयोगी समाजवाद (Associationism) का जन्म हुआ। ओवन और फूरे, थामसन और ब्लाँ जैसे विचारकोंने कहा कि किसी निश्चित योजनाके अनुसार लोग यदि स्वेच्छासे सहयोग करें, तो सम्पत्तिकी अव्यवस्था और वितरणकी अन्यायपूर्ण पद्धति समाप्त की जा सकती है। इन लोगोंकी मान्यता थी कि प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा मिटा दी जाय और उसके स्थानपर सहकार और सहयोगिताकी प्रतिष्ठा कर दी जाय, तो आर्थिक वैषम्य दूर किया जा सकता है।

इन विचारकोंकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने कल्पनाशील विचारोंकी अभिव्यक्ति करके ही नहीं रह गये, इन्होंने उन्हें मूर्त स्वरूप देनेकी भी चेष्टा की। वे जिस प्रकारके समाजकी स्थापना करना चाहते थे उसे स्थापित करनेका भी उन्होंने प्रयत्न किया। यह बात दूसरी है कि उनके प्रयोग सफल नहीं हो सके पर विचारधाराके विकासमें उन्होंने सक्रिय हाथ बँटाया। इन लोगोंकी व्यावहारिक योजनाएँ भिन्न भिन्न थीं परन्तु सबके मूलमें यह भावना विद्यमान थी कि सहयोगकी आधारशिला रखनेपर ही पूँजीवादके अभिशापसे मुक्त हुआ जा सकता है।

१ सहयोगी समाजवादकी मुख्य विचारधाराएँ ये हैं

ओवेनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'गास्पेल ऑफ दि न्यू मारल वर्ल्ड' (सन् १८३४) और 'ह्वाट इज सोशलिज्म ?' (सन् १८४३)। उसने 'इकॉनॉमिस्ट' आदि पत्रोंमें अनेक लेख प्रकाशित किये।

पूर्वपीठिका

ओवेनके विचारोंपर इंग्लैण्डकी औद्योगिक क्रान्तिका अत्यधिक प्रभाव था। उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली आर्थिक विषमता, पूँजीपति और श्रमिक, ऐसे दो वर्ग, श्रमिकोंकी दयनीय स्थिति, बेकारी, आर्थिक संकट, मूल्योंका उतार-चढ़ाव, साहूकारोंका शोषण, आयर्लैंडका अन्न-संकट, दुर्भिक्ष आदि सारी बातोंने ओवेनके कल्पनाशील मस्तिष्कको प्रेरित किया कि वह इस भयंकर स्थितिके निवारणके लिए कुछ सक्रिय कदम उठाये। अमरीकाका स्वातन्त्र्य-संग्राम और फ्रांसकी राज्यक्रान्ति भी उसे इसके लिए प्रेरित कर रही थी। उधर श्रमिक और ऋणी व्यक्ति मालिकों और साहूकारोंके पंजोंसे छुटकारा पानेके लिए ट्रेड यूनियनों—श्रम संघों और उपभोक्ता भण्डारोंकी स्थापना कर रहे थे, पर उन्हें अपने इस प्रयासमें सफलता नहीं प्राप्त हो रही थी।

ओवेनके प्रयोग

ओवेनने श्रमिकोंकी दशा सुधारनेके निमित्त अपनी मिलमें अनेक सुधार किये। जैसे, कामके घण्टे १७ से घटाकर १० कर देना, १० वर्षसे कम आयुके बच्चोंको नौकर न रखना, जुर्माना या अन्य प्रकारके दण्ड बन्द कर देना, मजदूरोंके बच्चोंके निःशुल्क शिक्षणका प्रबन्ध करना, मजदूरोंको उचित वेतन देना, उनके लिए आवासकी उत्तम व्यवस्था करना, उनके लिए सस्ती दूकानें खोलना आदि।[1]

आज भले ही ये सुधार कोई विशेष महत्त्वपूर्ण न प्रतीत हों, पर आजसे डेढ़ सौ वर्ष पूर्व ऐसे सुधारोंको व्यवहारमें लाना क्रान्तिकारी माना जाता था। तत्कालीन उद्योगपति, राजनीतिज्ञ और समाज-सुधारक दूर दूरसे यह देखने आते थे कि ओवेन साहबकी मिलमें कैसे सुधार कार्यान्वित किये जा रहे हैं।

कुछ उद्योगपति ओवेनके इन सुधारोंका तीव्र विरोध करते थे। उनका कहना था कि इन सुधारोंका परिणाम यह होगा कि श्रमिकोंकी आदतें बिगड़ जायँगी, जिनसे न तो श्रमिकोंका ही वास्तविक हित होगा, न कारखानेदारोंका।

ओवेन अपने इन आलोचकोंको उत्तर देते हुए कहता था कि 'अनुभवसे आप लोगोंको इस बातका ज्ञान हो ही गया होगा कि किसी बढ़िया मशीनोंवाले कारखानेसे, जहाँ मशीनें सदा स्वच्छ और कार्यशील रहती हैं, किसी घटिया मशीनोंवाले कारखानेमें, जहाँ मशीनें गन्दी और सुस्त पड़ी रहती हैं, कितना

[1] जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ २४७।

राबर्ट ओवेन एक आश्चर्यजनक व्यक्ति था, जिससे उन्नीसवीं शताब्दीके अनेक आन्दोलनोंका उद्भव हुआ। ओवेनको ब्रिटिश समाजवाद और सहकारिताका संस्थापक कहा गया है। सर राबर्ट पीलकी भाँति कारखानोंमें सुधारके आन्दोलनका श्रीगणेश करनेका श्रेय उसे प्राप्त है। शैक्षणिक प्रणालीके क्षेत्रमें उसका एक निश्चित स्थान है। वह 'मुक्तिसंगत' आन्दोलनका जनक था। नैतिक तथा धर्मनिरपेक्षवादी व्यवस्थामें उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन सब बातोंके साथ-साथ वह अपने अध्यवसाय द्वारा निर्मित उद्योगपति, श्रमजीवियोंका नेता और दृढ़ यूनियन आन्दोलनका प्रेरणा-स्रोत था।[1]

ओवेन ब्रिटिश समाजवादका जनक माना जाता है। वह व्यावहारिक समाज-सुधारक था। उसने समाजवादी सिद्धान्त भी दिये और उन्हें अपनी कल्पनाके अनुरूप मूर्त स्वरूप देनेका भी प्रयत्न किया।

जीवन-परिचय

राबर्ट ओवेनका जन्म इंग्लैण्डके वेल्स प्रान्तमें सन् १७७१ में एक शिल्पीके घरमें हुआ था। उसने अपने बलपर ही अपना शिक्षण प्राप्त किया। छोटी आयुमें ही उसने एक मिलमें काम आरम्भ किया और उत्तरोत्तर उन्नति करता गया। २८ वर्षकी आयुमें ओवेन न्यू लेनार्क मिलका साझीदार व्यवस्थापक नियुक्त हुआ। उस समय उसने मिल-मजदूरोंकी स्थिति सुधारनेकी चेष्टा की।

सन् १८१५ में ओवेनने अपना व्यापार छोड़कर सामुदायिक बस्तियोंकी स्थापना करनेका प्रयत्न किया। सन् १८२५ में उसने अमेरिकाके इण्डियानामें पहली एक बस्ती बसायी जिसका नाम था—न्यू हारमनी कालोनी। दूसरी बस्ती उसने स्काटलैण्डके आरबिस्टन स्थानपर बसायी। इन बस्तियोंमें ओवेनको भारी क्षति सहन करनी पड़ी। सन् १८३२ में उसने लन्दनमें एक राष्ट्रीय समतुल्य श्रम बाजारकी स्थापना की। उसका यह कार्य अत्यन्त साहसपूर्ण था और सहकारिताका एक अद्भुत प्रयोग था पर यह भी असफल रहा। सन् १८३४ से अपने जीवनके अन्ततक वह लेखन-कार्य करता रहा। सन् १८५८ में उसका देहान्त हो गया।

---

१ [illegible] पृ० [illegible] १ [illegible]।

अनुरूप ही उसका व्यक्तित्व विकसित होता है। मनुष्य जो कुछ होता है, उसमें बहुत बड़ा प्रभाव सामाजिक परिस्थितियों और वातावरणका होता है।

सामाजिक पृष्ठभूमि, सामाजिक वातावरणसे पृथक् करके मानवकी कल्पना नहीं की जा सकती, इसे रावर्ट ओवेनने अच्छी तरह समझ लिया था। इतना ही नहीं, वह यह भी मानता था कि वातावरण मानवको बना भी सकता है, बिगाड़ भी सकता है। मानवपर वातावरणके प्रभावको रावर्ट ओवेन द्वारा स्वीकार किये जानेसे समाजवादी विचाररूपी ढाँचेको एक स्तम्भ मिल गया।[1]

ओवेनने यह अनुभव किया कि वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचेमें रहते हुए श्रमिकोंकी स्थितिमें समुचित सुधार करना कठिन है। न तो मिल-मालिक ही उसके उदाहरणसे प्रभावित हो रहे हैं और न सरकार ही आवश्यक कानून बना रही है। इस स्थितिमें कहीं चलकर नयी बस्तियोंका प्रयोग करना वाछनीय है।

ओवेनने अमेरिकाके इण्डियानामें एक बस्ती बसायी, दूसरी बस्ती स्काट-लैण्डमें बसायी गयी। 'संयुक्त श्रम, व्यय और सम्पत्ति तथा सुविधा' के सिद्धान्त-पर इन बस्तियोंकी स्थापना की गयी। यहाँ कृषिकी व्यवस्थाके साथ उत्पादनकी भी व्यवस्था थी। इस बातका ध्यान रखा गया था कि उसमें श्रमगत भिन्नता और हितगत भिन्नता न हो तथा सक्रिय और ज्ञानवान् श्रमजीवी वर्ग उत्पन्न हो। प्रत्येक व्यक्तिपर सीधा उत्तरदायित्व था। सब कामोंको आपसमें बाँटकर करना था। गुटबन्दी और कटुताकी जड़ चुनावकी व्यवस्था नहीं थी।[2] ओवेन चाहता था कि ऐसे वातावरणका निर्माण हो, जिसमें सभी लोग शिक्षित हों, एकसा कानून सबपर लागू हो और व्यक्तियोंकी चेतन प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हों। ओवेनके आदर्शके अनुरूप कुछ अन्य लोगोंने भी नयी बस्तियोंकी स्थापना की, परन्तु ओवेन तथा उसके अन्य साथियोंका यह प्रयोग असफल रहा। इन बस्तियोंमें बसनेवाले व्यक्तियोंकी अशिक्षा, स्वार्थ और जड़ता ही वह मूल कारण थी, जिसके फलस्वरूप ओवेनका यह क्रान्तिकारी प्रयोग विफल हो गया।

नयी बस्तियोंके अपने प्रयोगमें ओवेन चाहता था कि सामाजिक प्रगतिमें बाधक तीन प्रमुख बाधाओं—व्यक्तिगत सम्पत्ति, धर्म और विवाहका उन्मूलन कर दिया जाय। पर वह अपने प्रयत्नमें कृतकार्य न हो सका। वह बहुत दूरकी सोचता था, परन्तु युग उसके विचारोंसे बहुत पीछे था।[3]

---

१ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ २६।
२ अशोक मेहता : एशियाई समाजवाद : एक अध्ययन, पृष्ठ ५०-५१।
३ भटनागर और सतीशबहादुर : ए हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक थॉट, पृष्ठ १६३-१६४।

अन्तर होता है। जिन मशीनोंकी सफाई, स्वच्छता, कार्य-कुशलताकी ओर भरपूर ध्यान दिया जाता है, वे बढ़िया ढंगसे चलती हैं और अच्छा परिणाम देती हैं। जिन मशीनोंकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता, उनकी ठीक तरहसे सफाई नहीं की जाती, अच्छी तरह जिनमें तेल नहीं दिया जाता, वे चलती तो हैं पर रोती हुई। जो बात निर्जीव मशीनोंके साथ है तो क्या आप मानेंगे कि यदि आप उनसे कहीं अधिक उत्तम और अनन्त शक्ति-सम्पन्न मानवोंकी ओर भरपूर ध्यान दें, तो कितना उत्तम परिणाम निकल सकता है। उन्हें पर्याप्त वस्त्र, भोजन और पौष्टिक पदार्थ दिये जायँ, उनके साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार किया जाय तो कितना अधिक सुपरिणाम निकल सकता है, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। अपर्याप्त पोषण देनेसे उनके मस्तिष्कमें जो बिगाड़ पैदा होता है, जो बेचैनी और झुंझलाहट पैदा होती है, उसके कारण वे भरपूर उत्पादन कर नहीं पाते, उनकी शक्ति क्षीण होती जाती है और वे अकालमें ही काल-कवलित हो जाते हैं।' ओवन कहता है कि श्रमिकोंकी दशा सुधारनेमें मेरा अपना ही लाभ है। उसने कर्मचारियोंको अधिक वेतन दिया, काम न करनेके समयका भी पैसा दिया, बीमारी और वृद्धावस्थाके बीमेकी व्यवस्था की। अच्छे मकान दिये, लागत मूल्यपर खाद्यान्न दिया और शिक्षा तथा मनोरंजनकी सुविधाएँ प्रदान कीं। इससे ओवेनको विश्वख्याति तो मिली ही, उत्तम मुनाफा भी मिला।

ओवेन श्रमिकोंके प्रति करुणासे प्रेरित तो था ही, वह यह भी मानता था कि श्रमिकोंकी दशामें सुधार होनेसे उनकी कार्य-कुशलतामें वृद्धि हो जाती और परिणामस्वरूप मालिकोंके लाभमें भी वृद्धि होगी ही।

ओवेनको यह आशा थी कि अन्य मिल-मालिक ओवेनका अनुकरण करेंगे। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। ओवेनकी आशा निराशामें परिणत हो गयी। तब उसने धारासभाके द्वारा श्रमिकोंकी दशा सुधारनेकी चेष्टा की। पहले ब्रिटिश सरकारका और फिर अन्य देशोंकी सरकारोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट करनेका उसने प्रयत्न किया। इन दोनों प्रयत्नोंमें आशानुरूप सफलता प्राप्त न होनेपर ओवेन नयी बस्तियोंकी स्थापनाकी ओर झुका।[1]

ओवेनने अपनी लेनार्क मिलको अपनी प्रयोगशाला बना लिया था। वहाँ उसने अपने अनुभव एवं बुद्धिसे 'वातावरणका सिद्धान्त' खोज निकाला। उसकी मान्यता थी कि समुचित अवसर एवं उचित नेतृत्व प्राप्त हो तो सभी व्यक्ति अच्छे बन सकते हैं। कोई भी व्यक्ति जन्मसे बुरा नहीं होता। वातावरणके

---

[1] जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २५ ।

अनुरूप ही उसका व्यक्तित्व विकसित होता है। मनुष्य जो कुछ होता है, उसमे बहुत बड़ा प्रभाव सामाजिक परिस्थितियों और वातावरणका होता है।

सामाजिक पृष्ठभूमि, सामाजिक वातावरणसे पृथक् करके मानवकी कल्पना नहीं की जा सकती, इसे राबर्ट ओवेनने अच्छी तरह समझ लिया था। इतना ही नहीं, वह यह भी मानता था कि वातावरण मानवको बना भी सकता है, बिगाड़ भी सकता है। मानवपर वातावरणके प्रभावको राबर्ट ओवेन द्वारा स्वीकार किये जानेसे समाजवादी विचाररूपी ढाँचेको एक स्तम्भ मिल गया।[1]

ओवेनने यह अनुभव किया कि वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचेमें रहते हुए श्रमिकोंकी स्थितिमें समुचित सुधार करना कठिन है। न तो मिल-मालिक ही उसके उदाहरणसे प्रभावित हो रहे हैं और न सरकार ही आवश्यक कानून बना रही है। इस स्थितिमें कहीं चलकर नयी बस्तियोंका प्रयोग करना वाछनीय है।

ओवेनने अमेरिकाके इण्डियानामें एक बस्ती बसायी, दूसरी बस्ती स्काटलैण्डमें बसायी गयी। 'संयुक्त श्रम, व्यय और सम्पत्ति तथा सुविधा' के सिद्धान्त-पर इन बस्तियोंकी स्थापना की गयी। यहाँ कृषिकी व्यवस्थाके साथ उत्पादनकी भी व्यवस्था थी। इस बातका ध्यान रखा गया था कि उसमें श्रमगत भिन्नता और हितगत भिन्नता न हो तथा सक्रिय और ज्ञानवान् श्रमजीवी वर्ग उत्पन्न हो। प्रत्येक व्यक्तिपर सीधा उत्तरदायित्व था। सब कामोंको आपसमें बाँटकर करना था। गुटबन्दी और कटुताकी जड़ सुनावकी व्यवस्था नहीं थी।[2] ओवेन चाहता था कि ऐसे वातावरणका निर्माण हो, जिसमें सभी लोग शिक्षित हों, एकसा कानून सबपर लागू हो और व्यक्तियोंकी चेतन प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हों। ओवेनके आदर्शके अनुरूप कुछ अन्य लोगोंने भी नयी बस्तियोंकी स्थापना की, परन्तु ओवेन तथा उसके अन्य साथियोंका यह प्रयोग असफल रहा। इन बस्तियोंमें बसनेवाले व्यक्तियोंकी अशिक्षा, स्वार्थ और जड़ता ही वह मूल कारण थी, जिसके फलस्वरूप ओवेनका यह क्रान्तिकारी प्रयोग विफल हो गया।

नयी बस्तियोंके अपने प्रयोगमें ओवेन चाहता था कि सामाजिक प्रगतिमें बाधक तीन प्रमुख बाधाओं—व्यक्तिगत सम्पत्ति, धर्म और विवाहका उन्मूलन कर दिया जाय। पर वह अपने प्रयत्नमें कृतकार्य न हो सका। वह बहुत दूरकी सोचता था, परन्तु युग उसके विचारोंसे बहुत पीछे था।[3]

---

१ अशोक मेहता डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ २६।

२ अशोक मेहता एशियाई समाजवाद एक अध्ययन, पृष्ठ ५०-५१।

३ भटनागर और सतीशबहादुर ए हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक थॉट, पृष्ठ ११३-११४।

ओवेनकी मान्यता थी कि मनुष्यमें उत्तम कर्मशीलता और उत्तम बुद्धि वातावरणजन्य होती है अतः उसे क्षमताके अनुकूल वेतन न दिया जाय, आवश्यकताके अनुकूल दिया जाय। इस सिद्धान्तके फलस्वरूप समाजमें समानताका विस्तार हो सकेगा।[1]

नयी बस्तियोंके प्रयोगमें विफल होनेपर ओवेनने एक और नया प्रयोग किया श्रम-बाजारका। वह मानता था कि मुनाफा ही सारे अनर्थोंकी जड़ है और द्रव्य ही मुनाफा-वृद्धिका कारण है। द्रव्यके ही कारण असंख्य अपराध होते हैं। इसके कारण जघन्य कृत्य होते हैं और चरित्रका नाश होता है। द्रव्यके कारण वस्तुओंके मूल्यमें उतार-चढ़ाव आता है और श्रमिकोंको जीवनोपयोगी पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं हो पाती। इस मुनाफेका उन्मूलन करके ही समाजमें सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। इस उद्देश्यको सामने रखकर ओवेनने सन् १८३२ में राष्ट्रीय समतुल्य श्रम-बाजारकी स्थापना की और श्रम-हुण्डियाँ चालू कीं।

प्रत्येक श्रमिक अपनी उत्पादित सामग्री देकर उसके परिमाणमें अपने श्रमके घण्टेके हिसाबसे श्रम-हुण्डी ले लेता था और जिस उपभोक्ताको उस वस्तुकी आवश्यकता होती थी वह समान मूल्यकी श्रम-हुण्डी देकर उस वस्तुको ले जाता था। ओवेन मानता था कि इस प्रकार श्रमका विनिमय होगा और द्रव्य तथा मुनाफा आप ही अपनी मौत मर जायगा।

इस श्रम-बाजारने पहले तो अच्छी ख्याति प्राप्त की। कोई ८४ व्यक्तियोंने इसमें सहयोग प्रदान किया। कई स्थानोंपर इसकी शाखाएँ खुल गयीं। परन्तु बादमें श्रमिकोंकी बेईमानीके कारण यह प्रयोग भी असफल हो गया। इसके मुख्य कारण दो थे :

१. श्रमिक अपने श्रमके घण्टे अधिक बताकर अधिक श्रम-हुण्डियाँ लेने लगे।

२. श्रमिक घटिया चीजें लाकर देने लगे, जिन्हें कोई खरीदना पसन्द न करता था।

ओवेनकी शिक्षा आर्थिक जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें सहकार और नयी चेतना फूँकनेवाले संगठनोंके आधारपर स्थापित कृषि-व्यवस्थाके द्वारा नवजीवनका मौलिक तत्त्व प्राप्त किया जा सकता है। व्यवसायगत नव-चेतनाकी नीति सन् १८३३ में भवन निर्माणकारी मजदूरोंके प्रधान राष्ट्रीय शिल्पी संघ—'ग्रैण्ड नेशनल गिल्ड आफ बिल्डर्स' की स्थापना-सम्बन्धी प्रस्तावोंमें घोषित की गयी थी। उसमें उत्पादकोंकी तरह आत्मशासनका तत्त्व भी सामुदायिक निर्माण

---

१. जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ २८८।

है। यह सबसे अच्छा कृषिमें, कृषि-बस्तियोंमें और सामुदायिक गाँवोंमें पल्लवित हो सकता है, किन्तु सहकारिता और दस्तकारीमें भी विकासकी गुंजाइश थी, बशर्ते कि स्वायत्तता, विकेन्द्रीकरण और सहयोगका दृढतासे पालन किया जाता।[1]

प्रमुख आर्थिक विचार

ओवेनके प्रयोग सफल नहीं हो सके, यह बात दूसरी है, पर आर्थिक विचारधाराके विकासमें ओवेनके विचारोंका स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उसके विचारोंको मुख्यत तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है :

(१) श्रमिकोंकी स्थितिमें सुधार,
(२) नये वातावरणका निर्माण और
(३) मुनाफेका विरोध।

१ श्रमिकोंकी स्थितिमें सुधार

ओवेन श्रमिकोंकी दयनीय स्थितिसे भलीभाँति परिचित था। मानवीय करुणासे उसका हृदय ओतप्रोत था। यही कारण था कि उसने इस बातका प्रयत्न किया कि श्रमिकोंकी स्थितिमें सुधार हो। उसकी मान्यता थी कि उनके कामके घण्टे कम करनेसे, जुर्माने आदिकी नृशंस प्रथा बन्द कर देनेसे, उनके लिए भोजन, आवास, छुट्टी, वेतन, भत्ते आदिकी समुचित व्यवस्था कर देनेसे उनकी दशामें निश्चय ही सुधार होगा और शरीरसे जब वे सशक्त होंगे और चिन्ताओं-से मुक्त रहेंगे, तो उनकी कार्यक्षमता निश्चय ही बढ़ेगी, जिसके कारण कारखाने-दारोंको भी अन्तत लाभ ही होगा।

ओवेनकी अपेक्षाके अनुकूल अन्य कारखानेदारोंने उसके सुधारोंका अनुकरण नहीं किया, उल्टे उन्होंने विरोध किया। तब ओवेनने राज्यका आश्रय लेकर श्रमिकोंके हितार्थ कानून बनवानेकी चेष्टा की।

लार्ड शेफ्ट्सबरीके बहुत पहले ओवेनने इस बातका आन्दोलन चलाया था कि कारखानेमें काम करनेवाले बच्चोंके कामके घण्टे नियत कर दिये जायें। ओवेनके आन्दोलनका ही यह परिणाम था कि सन् १८१९ में पहला कारखाना-कानून बना। इस कानूनमें कहा गया था कि ९ सालसे कम उम्रका कोई बच्चा किसी कारखानेमें नौकर नहीं रखा जा सकता। ओवेनका बस चलता, तो वह १० सालसे कम उम्रके किसी बच्चेको कारखानेमें नौकर न रखने देता।[2]

इस कानूनके बाद सन् १८३३ में लार्ड अलथार्पका कारखाना-कानून बना, जिसके अनुसार श्रमिकों और बच्चोंके काम करनेके घण्टे निश्चित कर दिये गये

---

१ अशोक मेहता . एशियाई समाजवाद . एक अध्ययन, पृष्ठ ५१-५४।
२ जीद और रिस्ट . ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ २४८।

और कारखाना निरीक्षकोंकी नियुक्ति होने लगी। सन् १८४७ में १० घण्टे काराका कारखाना-कानून बना। फिर खनिक-कानून बना। सन् १८५०, १८५४ १८७८ में ऐसे कई कानून बने। ये कानून केवल इंग्लैण्डमें ही बनकर नहीं रह गये फ्रांस, जर्मनी तथा यूरोपके अन्य देशोंमें भी ऐसे कानून बने।

ओवेनकी इस मान्यतासे कि श्रमिकोंकी स्थिति सुधरनेसे उनकी कामकाजान वृद्धि होगी और इसके कारण कारखानेदारोंको लाभ पहुँचेगा; यह प्रकट होता है कि वह पुरानी अवस्थाव्यवस्थाका पोषक ही था। उसके विचार सुधारवादी तो थे पर वे क्रान्तिकारी नहीं थे।

२. नये वातावरणका निर्माण

ओवेनका मूल विचार था कि मनुष्य जन्मना बुरा नहीं होता, वातावरण ही उसे बुरा भला बनाता है। उसका नारा था कि 'वातावरणका परिवर्तन कर दो समाजका परिवर्तन हो जायगा'। सामाजिक वातावरण तत्कालीन शिक्षा पद्धति, कानून और व्यक्तिकी वेतन प्रवृत्तियोंका परिणाम होता है। इन सब बातोंमें यदि परिवर्तन कर दिया जाय तो मनुष्यमें भी परिवर्तन हो जायगा।

ओवेनके सभी प्रयोगोंके मूलमें वातावरणकी यह भावना काम करती थी फिर वह मिलमें सुधारकी बात हो नयी बस्तियोंकी बात हो या कानून बनवानेकी बात हो।

वातावरणके प्रभावपर सबसे अधिक बल देनेवाले सर्वप्रथम विचारक ओवेन ही हैं। इस कारण उसे निदान शास्त्र (Etiology) का जन्मदाता माना जाता है। निदानशास्त्र समाजशास्त्रका वह अंग है जिसमें मनुष्य वातावरणके हाथका कंदुक माना जाता है।

ओवेनने वातावरणके सिद्धान्तपर जोर देते हुए उत्तरदायित्वकी भावनाको थोथा बताया है और कहा है कि इसके कारण मानव-जातिकी भारी हानि हुई है। मनुष्य जो भी भला-बुरा कार्य करता है उसका उत्तरदायित्व भले या बुरे वातावरणपर है न कि मनुष्यपर। बुरे वातावरणमें मनुष्य बुरा काम करनेके लिए विवश रहता है।

तभी तो ओवेनने योग्यताके अनुसार वेतन देनेके स्थानपर आवश्यकताके अनुसार वेतन देनेपर जोर दिया है। कारण योग्यता तो वातावरणकी उपज है।

३. मुनाफेका विरोध

ओवेन मुनाफेको पाप मानता है। वह कहता है कि किसी भी वस्तुको उसके लागत मूल्यपर ही बेचना उचित है। उसपर मुनाफा कमानेके कारण ही

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २४८-२४६।

असंख्य अनर्थ होते हैं। मुनाफा ही सारे आर्थिक संकटों और संघर्षोंका मूल कारण है। व्यापारी-वर्ग मुनाफा कमानेके लिए वस्तुओंका मूल्य चढ़ा देता है। वह वस्तुओंको सस्ता खरीदकर महँगा बेचता है और इस प्रकार मुनाफा कमाता है। इसके फलस्वरूप उत्पादन उपभोगके अनुसार न होकर लाभके अनुसार किया जाता है। बेचारा श्रमिक इस मुनाफेके कारण उन्हीं वस्तुओंका उपभोग नहीं कर पाता, जिनका उत्पादन वह स्वयं ही करता है। अतः मुनाफेका अन्त होना आवश्यक है।

यह मुनाफा द्रव्य, सोने-चाँदीके रूपमें होता है। प्रतिस्पर्द्धा और प्रतियोगिताके बलपर पनपता है। इसके निवारणके लिए यह आवश्यक है कि प्रतिस्पर्द्धाका उन्मूलन किया जाय, मुनाफेका उन्मूलन किया जाय और द्रव्यका उन्मूलन किया जाय।

ओवेनने इस समस्याके निराकरणके लिए सहयोग तथा श्रम-हुंडियोंका सिद्धान्त निकाला। उसकी मान्यता थी कि किसी भी वस्तुके उत्पादनमें जितना समय लगता है, वही उसका मूल्य है। श्रम-हुंडियोंके रूपमें श्रमका विनिमय कर लेनेसे तथा सहयोगी समाजका विकास कर लेनेसे न तो द्रव्यकी आवश्यकता रहेगी, न मुनाफा कमाया जा सकेगा और न प्रतिस्पर्द्धा ही जीवित रह सकेगी।

श्रम-हुंडियोंके विकल्पके अपने आविष्कारको ओवेन 'मेक्सिको और पेरूकी सभी खानोंसे भी अधिक मूल्यवान्' मानता था।[१]

ओवेनके सहकारिताके विचारकी उपयोगिता किसीसे छिपी नहीं है। वह मानता था कि श्रमिकों, शिल्पियों और उपभोक्ताओंके पारस्परिक सहयोग द्वारा मुनाफेका उन्मूलन किया जा सकता है। उपभोक्ताओंके सहकारी भण्डारोंने ओवेनकी इस धारणाको मूर्त स्वरूप प्रदान किया। इससे मध्यवर्ती व्यापारी भी समाप्त हो गये और मुनाफा भी। पर इसमें मुनाफेकी समाप्तिके साथ द्रव्यकी समाप्ति नहीं हुई। द्रव्य रहा, पर मुनाफा समाप्त हो गया।[२]

मूल्यांकन

सामाजिक और आर्थिक विषमताके विरुद्ध जेहाद बोलनेवाले व्यावहारिक सुधारक ओवेनने श्रम-सुधारोंको जन्म दिया तथा औद्योगिक मनोविज्ञानके विकासमें सहायता प्रदान की। आगामी ५० वर्षोंमें जो श्रम 'विधान' बने, उनपर ओवेनकी स्पष्ट छाप है।

ओवेनके वातावरणके सिद्धान्तने निदान-शास्त्रकी नींव डाली।

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ २५१।
२ जीद और रिस्ट वही पृष्ठ २५३।

और कारखाना-निरीक्षकोंकी नियुक्ति होने लगी। सन् १८७० में १ पक्ष कामका कारखाना-कानून बना। फिर खनिक-कानून बना। सन् १८५०, १८६४ १८७१ में ऐसे कई कानून बने। ये कानून केवल इंग्लैण्डमें ही लागू नहीं रह गये प्रत्युत, जर्मनी तथा यूरोपके अन्य राज्योंमें भी ऐसे कानून बने।

ओवेनकी इस मान्यतासे कि श्रमिकोंकी स्थिति सुधरनेसे उनकी कार्यक्षमताम वृद्धि होगी और इसके कारण कारखानदारोंको लाभ पहुँचेगा यह प्रकट होता है कि वह पुरानी अर्थव्यवस्थाका पोषक ही था। उसके विचार सुधारवादी तो थे, पर वे क्रान्तिकारी नहीं थे।

२ नये वातावरणका निर्माण

ओवेनका मूल विचार था कि मनुष्य जन्मना बुरा नहीं होता, वातावरण ही उसे बुरा भला बनाता है। उसका नारा था कि 'वातावरणका परिवर्तन कर दो समाजका परिवर्तन हो जायगा'। सामाजिक वातावरण तत्कालीन शिक्षा पद्धति, कानून और व्यक्तिकी केवल प्रवृत्तियोंका परिणाम होता है। इन सब बातोंमें यदि परिवर्तन कर दिया जाय तो मनुष्यमें भी परिवर्तन हो जायगा।

ओवेनके सभी प्रयोगोंके मूलमें वातावरणकी यह भावना काम करती थी फिर वह मिलमें सुधारकी बात हो नयी बस्तियोंकी बात हो या कानून बनानेकी बात हो।[1]

वातावरणके प्रभावपर सबसे अधिक बल देनेवाला सर्वप्रथम विचारक ओवेन ही है। इस कारण उसे निवानशास्त्र (Ethology) का जन्मदाता माना जाता है। निवानशास्त्र समाजशास्त्रका वह अङ्ग है, जिसमें मनुष्य वातावरणके हाथका कंदुक माना जाता है।

ओवेनने वातावरणके सिद्धान्तपर जोर देते हुए उत्तरदायित्वकी भावनाको थोथा बताया है और कहा है कि इसके कारण मानव-जातिकी भारी हानि हुई है। मनुष्य जो भी कम बुरा कार्य करता है उसका उत्तरदायित्व अबे या बुरे वातावरणपर है न कि मनुष्यपर। बुरे वातावरणमें मनुष्य बुरा काम करनेके लिए विवश रहता है।

तभी तो ओवेनने योग्यताके अनुसार वेतन देनेके स्थानपर आवश्यकताके अनुसार वेतन देनेपर जोर दिया है। कारण योग्यता तो वातावरणकी उपज है।

३ मुनाफेका विरोध

ओवेन मुनाफेको पाप मानता है। वह कहता है कि किसी भी वस्तुको उसके लागत मूल्यपर ही बेचना उचित है। उसपर मुनाफा कमानेके कारण ही

---

1. बीयर और रिस्ट : वही पृष्ठ ४८ २४६।

था। व्यापारियों और उद्योगपतियोंकी बेईमानी उसकी आँखोंमें खटक रही थी। निराश्रितों, पीड़ितों और अकिंचनोंकी दयनीय स्थिति उसे काटे खा रही थी। तभी उसने ऐसे नये समाजकी रचनाका स्वप्न देखा, जिसमें न दारिद्र्य हो, न शोषण, न अन्याय हो, न अत्याचार, न घृणा हो, न वैमनस्य। बड़े उद्योगोंसे उसे घृणा थी। कृषि, लघु उद्योगों तथा विकेन्द्रीकरणका वह पक्का समर्थक था। जीदके अनुसार 'ओवेनका प्रभाव भले ही फूर्येसे अधिक दिखाई पड़ता है, पर फूर्येकी बौद्धिक देन अधिक व्यापक दृष्टिवाली है। फूर्येने सभ्यताके दोषोंको अत्यन्त ही बारीकीसे अनुभव किया है, उसमें भविष्यको दैवी गुणसम्पन्न बनानेकी विलक्षण शक्ति है।'[1]

अशोक मेहताके शब्दोंमें 'सेंट साइमन यदि ऊपर उठते हुए उद्योगपतिके प्रवक्ता और गुणगायक थे, यदि वे इंजीनियर या बैंकरकी भूमिकाको गौरवपूर्ण बनानेमें समर्थ रहे, तो फूर्ये निराश्रित और हतोत्साह मध्यमवर्गीय व्यक्तिकी भावना, ह्रास और उत्थानका प्रतीक था। फूर्ये आश्रयहीनोंकी मनोदशा, अनुभूति और अभिलाषाओंका प्रतिनिधित्व करता था। उसने उच्च बुर्जुआ-वर्गके विरुद्ध छोटे लोगोंकी कटुता प्रकट की। एक ओर जहाँ सेंट साइमनको उत्पादनमें अदक्षताकी चिन्ता थी, वहाँ फूर्ये त्रुटिपूर्ण वितरण व्यवस्था और आर्थिक जीवनमें अन्यायोंको लेकर परेशान था। फूर्येमें नैतिक तत्त्व बहुत बलवान् था। उसने देखा कि पूँजीवाद सभी चीजोंको बर्बाद कर रहा है, सभ्यता भ्रष्ट हो चुकी है और वाणिज्यसे लेकर विवाहतक सभी सामाजिक परम्पराओंमें विकृति आ गयी है। अक्षमताके सम्बन्धमें फूर्येकी धारणा सेंट साइमनकी विचारधारासे बहुत भिन्न है। सेंट साइमनका दृष्टिकोण वही है, जो उपक्रमी, ऊपर उठ रहे बुर्जुआ-वर्ग, अर्थ-व्यवस्थाके नये व्यवस्थापक, इंजीनियर, बैंकर और बड़े उद्योग-पतिका होता है। फूर्येका दृष्टिकोण किसान, शिक्षक, क्लर्क और छोटे व्यापारीका दृष्टिकोण था। फूर्येका सामान्य दृष्टिकोण यह था कि उत्पादन और वितरण मिले-जुले रूपमें हो। उसने इस बातपर जोर दिया कि अपनी पसन्दके अनुसार लोगोंको कोई भी कार्य करनेके लिए स्वतन्त्र होना चाहिए। फूर्येके चिन्तनमें कृषिकी प्रधानता थी। सेण्ट साइमनने जहाँ औद्योगिक विकासपर जोर दिया, वहाँ फूर्ये उद्योग-विरोधी बना रहा और कृषिको प्रधानता देनेपर बराबर जोर देता रहा।'[2]

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २५५।
२ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ २१—२५।

आवश्यकताके अनुकूल वेतन देनेकी उसकी उदारताने सामाजिक समता की ओर लोगोंका ध्यान आकृष्ट किया तथा 'समाजवाद' शब्दका प्रयोग कर समाजवादी विचारधाराको आगे बढ़ाया।

ओवनने श्रम विधानोंके आन्दोलनको बल दिया, सहयोग और सहकारिताके आन्दोलनकी नींव डाली, सामाजिक विषमताके प्रतिकारके लिए, मुनाफेके उन्मूलनके लिए व्यावहारिक उपाय सुझाये। वातावरणके परिष्कारके नयी बस्तियों की स्थापनाके और प्रतिस्पर्धाकी समाप्तिके उसके प्रयोग असफल सिद्ध होनेपर भी आर्थिक विचारधाराके विकासके लिए परम उपयोगी सिद्ध हुए। कुछ असंगतियोंके बावजूद ओवेनकी देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ही मानी जाती है।

उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स, जान रस्किन विलियम मारिस और मैथ्यू आर्नोल्ड जैसे अंग्रेज विचारकोंपर ओवेनका भारी प्रभाव पड़ा। रस्किन और मारिसके इंग्लैण्डके 'उपवन नगर आन्दोलन' पर ओवेनका स्पष्ट प्रभाव है। विलियम थामसनने ओवेनके श्रम-सिद्धान्तको विकसित किया, जिसने आगे चलकर मार्क्सपर गहरा प्रभाव डाला। ओवेनकी समाजवादी विचारधाराने उसे 'ब्रिटिश समाजवादका जनक' बना दिया।

फूर्ये

कल्पनाके हाथोंमें मुक्तहस्त क्रीड़ा करनेवाले फ्रान्सवासी मैरिये चार्ल्स फूर्ये (सन् १७७२–१८३७) ने समाजवाद और सहकारिताकी विचारधाराको विकसित करनेमें अत्यधिक हाथ बँटाया है। जीवनकालमें इस प्रतिभावान् और स्वप्नदर्शी विचारकको उचित प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकी पर मृत्युके उपरान्त उसकी विचारधाराने यूरोपमें ही नहीं अमेरिकामें भी अपने पैर फैलाये।

फूर्येका जन्म फ्रान्समें हुआ था। वह आजीवन अविवाहित रहा। [illegible] वर्षकी अवस्थातक उसने व्यापार किया और तदुपरान्त उसने अपना सारा ध्यान समाज सुधारकी ओर लगाया।

सन् १८२ में फूर्येकी प्रसिद्ध रचना 'दि न्यू इण्डस्ट्रियल वर्ल्ड' का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तकमें फूर्येके विचारोंका सम्यक् प्रतिपादन है। उसमें कुछ अटपटी बातें भी हैं परन्तु वे फूर्येकी 'सनक' मानी जा सकती हैं।

फूर्येकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सरल और प्राकृतिक जीवनपर जोर देता है। वह गाँवोंकी ओर लौटनेका पक्षपाती है सहयोगात्मक जीवनका पुजारी है और कृषिका जबरदस्त समर्थक है। मनोविज्ञानका उसे ज्ञान है। मानवकी विभिन्न रुचियोंका उसे ध्यान है। अतः वह श्रमको आकर्षक बनानेपर बड़ा बल देता है। पूँजीवादका भयंकर अभिशाप उसके नेत्रोंके समक्ष नाच रहा

होगी, सयुक्त कम्पनीकी भाँति वे उसके स्वामी होंगे। श्रम, पूँजी और योग्यतामें सबका अनुदान रहेगा और उत्पत्तिकी बचतका वितरण इस प्रकार कर लिया जायगा—श्रमके लिए ५/१२, पूँजीके लिए ४/१२ और योग्यताके लिए ३/१२। सभी व्यक्ति समान भागसे उसमें श्रम करेंगे, पूँजी लगायेंगे और योग्यता प्रदर्शित करेंगे, इसलिए सबको उसमें भाग मिलेगा। अत. श्रम और पूँजीका सघर्ष स्वत समाप्त हो जायगा।

फूर्येकी इस सामाजिक इकाईमें सेवा करनेवाले ही सेवाका आनन्द लेंगे। कुछ लोग खेतीका काम करेंगे, कुछ बगीचेका, कुछ लोग बुनकरका काम करेंगे, कुछ अन्य प्रकारका। सबको अपनी रुचिके अनुकूल कार्य करनेकी स्वतत्रता होगी। ऐसा भी सम्भव है कि आज कोई बगीचेमें काम करे, कल करघेपर कपड़ा बुने और परसों पाकशालामें भोजन बनाये।

पूर्ण सहकारिता

फूर्येको क्रान्तिकी मूल आधारशिला है—सहयोगात्मक जीवन। उसे कृपि और सादे सरल जीवनमे सुख प्रतीत हुआ, बाजार और प्रतिस्पर्द्धामें भयकर दु.ख। अत. उसने ऐसा आवश्यक माना कि उपभोक्ता ही स्वय उत्पादन करे और उत्पादक ही स्वय उपभोग करे। इसके लिए वह स्वप्रेरणाका तीव्र समर्थक था।

फूर्येकी मान्यता थी कि जीवनमे सुखकी अभिवृद्धि केवल तभी सम्भव है, जब मानवके जीवनमें कोई विवशता न हो, कोई परेशानी न हो और उसके कार्यमें आकर्षण हो, रुचि हो, सन्तोष हो। इसके लिए ऐसा सगठन आवश्यक है, जिसमें सहयोग और साहचर्यकी भावना हो, पृथकत्व और प्रतिस्पर्द्धाका नाम न हो। आवेगोंका दमन न करके उनके अभिव्यक्तीकरणकी स्वतत्रता हो। फूर्ये मानता था कि इस प्रकारका स्वस्थ जीवन सहयोगकी भावभूमिपर प्रतिष्ठित खेतिहर समाजमें ही सम्भव है। यह समाज न तो इतना छोटा रहे कि व्यवसायको सीमित कर दे और न इतना व्यापक ही हो कि सहयोगसे कार्य करनेकी मानवकी शक्तिको ही कुठित कर डाले।

फूर्ये चाहता था कि उसके नव-समाजका उत्पादन व्यक्तिगत लाभके लिए न होकर, सारे समुदायके हितकी दृष्टिसे हो। जो भी वस्तुएँ तैयार की जायँ, वे उत्तम हों, टिकाऊ हों और उनके निर्माणमें निर्माताओंको उत्साह और सन्तोषकी अनुभूति हो। वह मानता था कि इस सहयोगात्मक जीवनके फलस्वरूप लोगोंको सन्तोषप्रद काम मिलेगा, विभिन्न व्यवसाय और उद्योग पनपेंगे,

प्रमुख आर्थिक विचार

फूरियेके आर्थिक विचारोंको मुख्यतः ४ भागोंमें विभाजित किया जा सकता है :

१ फलान्स्टरी या फलान्क्सकी कल्पना,
२ पूर्ण सहकारिता,
३ भूमिकी ओर प्रत्यावर्तन और
४ श्रममें रोचकता।

फलान्स्टरी

फूरियेकी कल्पनाकी इकाई है—'फलान्स्टरी'। संक्षेपमें उसे लोग 'फलान्क्स' भी कहकर पुकारते हैं। ओवेनकी न्यू हारमनी बस्तीकी भाँति यह फूरियेकी आदर्श सामाजिक इकाई है।

सरिताके रमणीक तटपर प्रकृतिकी गोदमें ४ परिवारोंकी यह छोटी-सी बस्ती ४ एकड़ भूमिपर बसी होगी। ये सारे परिवार एक वृहद् भवनमें निवास करेंगे। उनके उपभोगके पदार्थ सामुदायिक रहेंगे, केवल निवासके कमरे स्वतंत्र रहेंगे। भोजनालय, व्याख्यानालय, शिक्षालय, वाचनालय आदि सभी स्थान सार्वजनिक रहेंगे, जहाँ १५ व्यक्तियोंके खान-पान तथा अन्य उपभोगोंकी समुचित व्यवस्था रहेगी। अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए उन्हें अन्यत्र कहीं नहीं जाना पड़ेगा। प्रत्येक मनुष्य अपनी रुचिके अनुकूल अपना कमरा चुन लेगा, फिर चाहे वह संयुक्त भोजनालयमें भोजन करे और चाहे अपने कमरेमें ही। किसीकी स्वतंत्रतामें कोई बाधा नहीं रहेगी। पाक-क्रिया और सफाईका काम सब लोग मिलकर करेंगे। भोजन, बिजली, सफाई आदिकी सामुदायिक व्यवस्था रहनेसे व्ययमें भी कमी आयेगी और उसके कारण फलान्स्टरीके निवासियोंका रहन-सहनका खर्च कम पड़ेगा, फिर भी पाँच प्रकारकी श्रेणियाँ रहेंगी। जो जिस श्रेणीका होगा, वह उसके अनुकूल अपनी व्यवस्था कर सकेगा।

यहाँके निवासी अपनी भूमिपर स्वयं ही सार्वजनिकरूपसे कृषि करेंगे। खेत, सब्जी आदिके उत्पादनपर, मधुमक्खी-पालन और मुर्गी पालनपर उनका विशेष भार रहेगा; अन्न धान्य आदिके उत्पादनपर कम। कारण, इसमें नीरस श्रम अधिक लगता है। सारा उत्पादन सहकारिताके आधारपर स्वावलम्बनकी दृष्टिसे होगा। कृषिके अतिरिक्त छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे भी चलाये जायँगे। फिर भी यदि किसी वस्तुकी कमी पड़ेगी अथवा किसीका आधिक्य हो जायगा, तो अन्य फलान्स्टरीसे उसकी पूर्ति की जा सकेगी अथवा अतिरिक्त सम्पत्ति वहाँ भेजी जा सकेगी।

फलान्स्टरीके सदस्य पूर्ण सहकारी पद्धतिसे काम करेंगे और जो कुछ सम्पत्ति

उपस्थित करता है। वह कृषि और छोटे उद्योगोंकी सहायतासे छोटी-छोटी सामाजिक इकाइयोंको आत्मनिर्भर बनानेका इच्छुक है और इस प्रकार पुरुष और प्रकृतिके बीच सामञ्जस्य स्थापित करनेके लिए सचेष्ट है। ओवेनकी वातावरणको परिवर्तित करनेकी भावना फूर्येमें भी स्पष्ट है, अन्यथा वह फलान्स्टरीकी कल्पना खड़ी ही क्यों करता ?[1]

श्रममें रोचकता

फूर्येने मानवके मनोविज्ञानका अच्छा अध्ययन किया था। फलान्स्टरीमें सामुदायिक जीवनके सारे कार्य सहकारिताकी पद्धतिपर स्वय जनता द्वारा किये जानेकी योजना थी। किसी एक ही कामको करते रहनेसे नीरसताका अनुभव न हो, इस दृष्टिसे इस बातकी व्यवस्था की गयी थी कि समय-समयपर काममें परिवर्तन होता रहे। फूर्ये इस बातपर जोर देता था कि कार्यका आधार आकर्षण हो, न कि नियत्रण। उसका यह आकर्षण-नियम मानवकी तीन प्रवृत्तियोंपर आधृत था

नाना प्रकारकी पसन्द और परिवर्तनकी प्रवृत्ति,
प्रतिस्पर्द्धाकी प्रवृत्ति और
मिल-जुलकर कार्य करनेकी प्रवृत्ति।

फूर्येका विचार था कि इन मूल प्रवृत्तियोंको सँजोकर ही आकर्पणको उत्पादनका आधार बनाया जा सकता है। इससे उत्पादनमें कई गुनी वृद्धि तो होगी ही, वितरण भी न्यायसगत रीतिसे होने लगेगा।[2]

फूर्ये चाहता था कि श्रममें ऐसा आकर्षण रहना चाहिए कि मनुष्य स्वत. ही उसकी ओर आकृष्ट हो। उसमें खेल जैसा आनन्द प्रतीत होना चाहिए। सगीत भी उसके साथ सम्मिलित रहे, ताकि मानवको न तो थकानकी अनुभूति हो और न नीरसताकी। श्रममें रोचकता उत्पन्न करनेके लिए थोड़े-थोड़े अन्तरपर काममें परिवर्तन भी किया जा सकता है और व्यक्तियोंको विभिन्न श्रेणियोंमें भी विभाजित किया जा सकता है। फिर यह निर्णय लोगोंपर छोड़ दिया जाय कि वे किस श्रेणीमें जाना पसन्द करते हैं या कौन सा काम करना उन्हें रुचता है।

फूर्येकी यह विशेषता है कि वह श्रमको रोचक बनानेपर इतना जोर देता है। उससे पहलेकी परम्परामें तो श्रम एक अभिशाप ही माना जाता था। मनुष्य विवश होकर, परिस्थितियोंसे लाचार होकर, स्वार्थसे प्रेरित होकर अथवा डण्डेकी मारसे बचनेके लिए श्रम करता था। ऐसी स्थितिमें उसमें आनन्दका प्रश्न ही कहाँ

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ २५७।
२ अशोक मेहता डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ २४।

मानवकी सीधी-सादी आवश्यकताओंकी भलीभाँति पूर्ति होगी और लोगोंमें परस्पर घनिष्ठ मित्रताका उदय होगा ।[1]

फूरियेने सहकारिताको पूर्ण रूपसे विकसित करनेकी कल्पना उपस्थित की है। सहकारी उत्पादन, सहकारी उपभोग, सहकारी सुधार समिति सहकारी मधुसंघी समिति सहकारी वितरण समिति—सभी प्रकारके सहकारपर उसने जोर दिया है। ओवेन जहाँ केवल उपभोक्ता सहकारी समितियोंतक सीमित रहा था, वहाँ फूरियेने सहकारिताको अत्यधिक व्यापक बनाया ।

फूरियेने पूँजीपतियों, श्रमिकों और उपभोक्ताओंके पारस्परिक हितोंके संघर्ष को मिटानेके लिए सहभागिताका एक उत्तम उदाहरण उपस्थित किया है। उसकी यह आर्थिक मान्यता बड़ी महत्त्वपूर्ण है। उसने तीनोंको एकमें मिलानेकी चेष्टा की है। संघर्षका कारण तो तब उपस्थित होता है, जब व्यक्ति भिन्न-भिन्न होते हैं जहाँ पूँजी श्रम और उपभोग तीनोंका सम्बन्ध एक ही व्यक्तिसे होगा, वहाँ संघर्ष कैसा ?

भूमिकी ओर प्रत्यावर्तन

भूमिकी ओर प्रत्यावर्तनकी फूरियेकी धारणामें दो बातें अन्तर्हित थीं :

एक तो यह कि फूरिये चाहता था कि उद्योगोंके अभिशापसे पीड़ित नगरोंमें जनसंख्याकी जो वृद्धि हो रही है, उसका विकेन्द्रीकरण हो । लोग उपयुक्त स्थान चुनकर फलन्स्टरियोंमें विभक्त हो जायँ । हाँ स्थान चुननेमें इस बातका विशेष ध्यान रखा जाय कि यह नयी सामाजिक बस्ती किसी सुरम्य स्थलीमें ही बसायी जाय जहाँ सरिताका सुन्दर कुकूल हो वनों और पर्वतोंका प्राकृतिक सौंदर्य आसपास बिखरा पड़ा हो और जहाँ कृषिके लिए उत्तम भूमि प्राप्त की जा सके। रस्किन और मारिसके विभिन्न उपवन-नगरोंकी स्थापना कर रहे हैं उनकी पूर्वकल्पना फूरियेने ही की है।

दूसरी बात यह कि फूरिये बड़े उद्योगोंके विकासको सीमित करना चाहता था। वह चाहता था कि उनके स्थानपर छोटे उद्योगोंको अधिकतम विकासका अवसर मिले। बड़े उद्योग केवल उतने ही बढ़ें जितनेकी अनिवार्य आवश्यकता हो ।[2]

भूमिकी ओर प्रत्यावर्तनका फूरियेका उद्देश्य यही था कि लोग बड़े उद्योगोंके स्थानपर कृषिकी ओर झुकें। गांधीजी यह स्वीकार नहीं करता परन्तु बड़े उद्योगोंके अभिशापसे जनताको मुक्त करनेके लिए यह फलन्स्टरीकी कल्पना

---

१ चार्ल्स जीड़ा : फूरियेरके समाजवाद : ए० अध्ययन पृष्ठ १४।
२ जीड और रिस्ट : वही पृष्ठ १९ ।
३ जीड और रिस्ट : वही पृष्ठ १९ ।

उपस्थित करता है। वह कृषि और छोटे उद्योगोंकी सहायतासे छोटी छोटी सामाजिक इकाइयोंको आत्मनिर्भर बनानेका इच्छुक है और इस प्रकार पुरुष और प्रकृतिके बीच सामंजस्य स्थापित करनेके लिए सचेष्ट है। ओवेनकी वातावरणको परिवर्तित करनेकी भावना फूर्यमें भी स्पष्ट है, अन्यथा वह फ्लान्स्टरीकी कल्पना खड़ी ही क्यों करता ?[1]

श्रममें रोचकता

फूर्येने मानवके मनोविज्ञानका अच्छा अध्ययन किया था। फ्लान्स्टरीन सामुदायिक जीवनके सारे कार्य सहकारिताकी पद्धतिपर स्वयं जनता द्वारा किये जानेकी योजना थी। किसी एक ही कामको करते रहनेसे नीरसताका अनुभव न हो, इस दृष्टिसे इस बातकी व्यवस्था की गयी थी कि समय समयपर काममें परिवर्तन होता रहे। फूर्ये इस बातपर जोर देता था कि कार्यका आधार आकर्षण हो, न कि नियन्त्रण। उसका यह आकर्षण-नियम मानवकी तीन प्रवृत्तियोंपर आधृत था

नाना प्रकारकी पसन्द और परिवर्तनकी प्रवृत्ति,
प्रतिस्पर्द्धाकी प्रवृत्ति और
मिल-जुलकर कार्य करनेकी प्रवृत्ति।

फूर्येका विचार था कि इन मूल प्रवृत्तियोंको सँजोकर ही आकर्षणको उत्पादनका आधार बनाया जा सकता है। इससे उत्पादनमें कई गुनी वृद्धि तो होगी ही, वितरण भी न्यायसंगत रीतिसे होने लगेगा।[2]

फूर्ये चाहता था कि श्रममें ऐसा आकर्षण रहना चाहिए कि मनुष्य स्वतः ही उसकी ओर आकृष्ट हो। उसमें खेल जैसा आनन्द प्रतीत होना चाहिए। संगीत भी उसके साथ सम्मिलित रहे, ताकि मानवको न तो थकानकी अनुभूति हो और न नीरसताकी। श्रममें रोचकता उत्पन्न करनेके लिए थोड़े-थोड़े अन्तरपर काममें परिवर्तन भी किया जा सकता है और व्यक्तियोंको विभिन्न श्रेणियोंमें भी विभाजित किया जा सकता है। फिर यह निर्णय लोगोंपर छोड़ दिया जाय कि वे किस श्रेणीमें जाना पसन्द करते हैं या कौन सा काम करना उन्हें रुचता है।

फूर्येकी यह विशेषता है कि वह श्रमको रोचक बनानेपर इतना जोर देता है। उससे पहलेकी परम्परामें तो श्रम एक अभिशाप ही माना जाता था। मनुष्य विवश होकर, परिस्थितियोंसे लाचार होकर, स्वार्थसे प्रेरित होकर अथवा डण्डेकी मारसे बचनेके लिए श्रम करता था। ऐसी स्थितिमें उसमें आनन्दका प्रश्न ही कहाँ

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ २५७।
२ अशोक मेहता डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ २८।

उठता है। पर फूरिये जिस भावी समाजकी आधारशिला रखा करता है, उसमें वह चाहता है कि श्रम आनन्दका साधन बने। वह ऐसे समाजका स्वप्न देखता है जिसमें मनुष्य श्रम करनेके लिए विवश नहीं किया जायगा न रोटीके लिए, न न्यायके लिए और न सामाजिक या धार्मिक कर्तव्यके पालनके लिए। उसके समाजमें सभी लोग आनन्दके लिए श्रम करेंगे जैसे वे खेलने जा रहे हों।[1]

मूल्यांकन

सामाजिक विकृतियोंके निवारणके लिए आज जिन मनोवैज्ञानिक साधनोंका व्यवहार किया जाता है, फूरियेने आजसे लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व ही उनकी कल्पना कर ली थी। पर समयसे इतना पूर्व होनेके कारण उसे 'सनकी' और 'पागल' माना गया। परन्तु फूरियेकी विचारधारामें शीघ्र ही अंकुर फूटने लगे। उसके आदर्शके अनुकूल सन् १८४१ में अमरीकामें 'ब्रुक फार्म' की स्थापना हुई, जिसमें थोरो और इमर्सन जैसे दार्शनिकों और हाथर्न जैसे उपन्यासकारोंका सहयोग प्राप्त था। फ्रांसमें आज भी 'समानतरी स्कूल' चलता है। फूरियेके शिष्य फोबेलने किण्डर-गार्टनकी वह मनोहर शिक्षा प्रणाली खोज निकाली, जिसने आज सारे शिक्षा शास्त्रोंपर अपना जादू बिखेर रखा है। उसका पूरा सहकारिता का विचार सहकारिता आन्दोलनमें भलीभाँति पुष्पित और पल्लवित हुआ है। 'उपवन-नगर' की योजनापर फूरियेका स्पष्ट प्रभाव है। सहभागिताका फूरियेका विचार फ्रांसके श्रमसंघवादी समाजवादियोंमें खूब फैला।

फूरियेने फ्लान्स्टीके लिए धन एकत्र करनेकी जिस योजनाकी कल्पना की थी, उसके आधारपर आगे चलकर विभिन्न पूँजीवादी कम्पनियोंका उदय हुआ।

फूरियेके विचारोंमें लोगोंको कुछ उपहासास्पद बातें भी मिलती हैं जैसे वह कहता था कि स्त्रियाँ भी सामुदायिक सम्पत्ति मानी जायँ उन्हें स्वच्छन्द रमणका स्वातन्त्र्य रहे।[2] ऐसे ही फूरियेने कहा है कि अन्य मदों, उपमदोंके निम्न सिरोंपर एक विशेष अंग होता है, जिससे हम वंचित हैं पर वह अंग बड़ा उपयोगी होता है। वह मनुष्यको गिरनेसे बचाता है, मुसीबतमें एक शक्तिशाली साधन है और उसमें आश्चर्यजनक ठोक-पीटक रहता है। उसकी इस कल्पनाका उपहास करनेके लिए लोग कहने लगे कि फ्लान्स्टीके सभी सदस्योंके एक पूँछ रहेगी जिसके सिरेपर एक आँख लगी होगी!

फूरियेकी बातोंमें सम्यक् अंश पर्याप्त था। सहकारी उत्पादनका उसका

[1] जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २६२।
[2] जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २५५

सिद्धान्त, श्रमको स्वेच्छिक बनानेका सिद्धान्त और श्रमिकोंकी स्थितिमें नाना प्रकारके सुधारोंका विचार आगे चलकर कृतकार्य हुआ ही।[1]

यह निर्विवाद है कि आर्थिक विचारधाराके विकासमें फूरियरका स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

थामसन

विलियम थामसन (सन् १७८३–१८३३) आयर्लैण्डका निवासी प्रमुख समाजवादी विचारक था। उसकी प्रमुख रचना 'एन इनक्वायरी इनटु दि प्रिंसिपल्स ऑफ दि डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ वेल्थ मोस्ट कण्ड्यूसिव टु ह्यूमैन हैपीनेस' सन् १८२४ में प्रकाशित हुई। उसके विचार बादमें मार्क्सवादी विचारधाराके आधार बने। उसने रिकार्डोकी अर्थ-व्यवस्था और बेंथमकी उपयोगितावादी धारणाकी समाजवादी व्याख्या की।[2]

थामसनकी मान्यता है कि श्रम ही मूल्यका आधार है। अतः श्रमिक वर्गको ही सारी उत्पत्ति मिलनी चाहिए। पूँजीवादी समाजमें पूँजी और भूमिके दावोंके फलस्वरूप बेचारा श्रमिक इस लाभसे वंचित रह जाता है। उसे केवल उतना ही अंश मिल पाता है, जिसके कारण वह किसी प्रकार कठिनाईसे अपना जीवन धारण कर सके। पूँजीवादी वर्ग शेष उत्पत्ति यह मानकर हड़प लेता है कि यह उसकी विशिष्ट बुद्धि और योग्यताका पुरस्कार है। चूँकि राजनीतिक सत्ता इस वर्गके ही हाथमें रहती है, अतः यह वर्ग श्रमिककी उत्पत्ति अनुचित रूपसे मार बैठता है।[3]

थामसनने इस अन्यायके प्रतिकारके लिए इस बातकी माँग की है कि सामाजिक संस्थाओंका पुनर्गठन होना चाहिए, पर वह उसका कोई उत्तम चित्र नहीं खड़ा कर सका। उसने न तो व्यक्तिगत सम्पत्तिके उन्मूलनकी बात कही और न यही कहा कि पूँजीपतियों और भू-स्वामियोंसे सारी उत्पत्ति लेकर श्रमिक को दे दी जाय।

बेंथमकी भाँति थामसन भी अधिकतम लोगोंके अधिकतम सुखका समर्थक था। इस सिद्धान्तका पूँजीवादसे विरोध था। कारण, एक ओर सम्पन्नता और विलास चरमसीमाकी ओर बढ़ रहा था, दूसरी ओर अभाव और दारिद्र्य। इसके निराकरणका उपाय यही था कि पूँजीपतिको बेजा मुनाफा उठानेसे रोका जाय। थामसन पूर्णांशमें समाजवादी विचारक नहीं है, फिर भी उसने जिन विचारोंका

---

१ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४३१।

२ एरिक रौल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २४६-२४७।

३ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४३१-४३२।

१. प्रतिस्पर्द्धाका विरोध

लुई ब्लाँकी यह मान्यता थी कि प्रतिस्पर्द्धा ही समस्त आर्थिक संकटोंका मूल कारण है। ब्लाँने पूँजीवादी स्वामित्व तथा प्रतिस्पर्द्धाके 'शोषणापूर्ण एवं निर्मम सिद्धान्त' को बुराइयोंकी जड़ माना, जिसने 'प्रत्येक व्यक्तिको अपने सर्वनाशके लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया है, ताकि वह फिर स्वयं दूसरोंको बर्बाद कर सके।' इसका उन्मूलन करके ही सामाजिक न्यायकी स्थापना की जा सकती है।[1]

लुई ब्लाँकी मान्यता थी कि दारिद्र्य, वेश्यावृत्ति, नैतिक अधःपतन, अपराधोंकी वृद्धि, आर्थिक संकट और अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष आदि सभी दोषोंका मूल कारण प्रतिस्पर्द्धा ही है। इसके कारण 'एक ओर सर्वहाराका शोषण होता है, दूसरी ओर दरिद्रता बढ़ती है तथा बुर्जुआका नैतिक अधःपतन और सत्यानाश होता है।'[2] ब्लाँका कहना था कि यदि प्रतिस्पर्द्धाके भयंकर अभिशापसे मुक्त होना है, तो समाजको नये सिरेसे निर्माण करना पड़ेगा और सहयोगके सिद्धान्तपर सामाजिक जीवनका सारा ढाँचा खड़ा करना पड़ेगा। प्रतिस्पर्द्धाके मूलपर ब्लाँने जितना तीव्र प्रहार किया है, उतना शायद ही और किसीने किया हो।

लुई ब्लाँने सामाजिक उद्योगशालाको सहयोगके सिद्धान्तकी आधारशिला बताया है और कहा है कि इसीके द्वारा प्रतिस्पर्द्धाका उन्मूलन किया जा सकता है।

२. सामाजिक उद्योगशाला

लुई ब्लाँ यह मानता था कि सहकारी उत्पादन पद्धति द्वारा हम पूँजीवादके अभिशापसे मुक्त हो सकते हैं। इसके लिए सामाजिक उद्योगशाला खोलनी होगी। इस उद्योगशालामें श्रमिक अपने साधनों द्वारा बड़े पैमानेपर उत्पादन करेंगे। इसमें मध्यवर्ती लोगोंको कोई स्थान नहीं रहेगा। राज्य सरकार इसकी आरम्भिक पूँजीके लिए कुछ कर्ज दे दे, जिसपर वह कुछ ब्याज भी ले सकती है। आरम्भमें सरकार श्रमिकोंको व्यवस्थामें भी कुछ सहायता दे, बादमें वे स्वयं अपने नेतृवृन्दका चुनाव कर लेंगे।

श्रमिक अपनी उद्योगशालामें जिन वस्तुओंका उत्पादन करेंगे, उनके उत्पादनमें श्रमिकोंकी मजदूरी और पूँजीका ब्याज शामिल रहेगा। बाजारमें उनकी बिक्रीसे जो आय होगी, उसमेंसे पञ्चमांश रक्षित कोषमें रखनेके उपरान्त जो कुछ बचेगा, वह तीन समान भागोंमें विभाजित कर दिया जायगा।

---

१. अशोक मेहता : एशियाई समाजवाद : एक अध्ययन, पृष्ठ २४।
२. जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २६६।

(१) मजदूरीके वितरणके निमित्त

(२) वृद्ध और अशक्त श्रमिकोंके सामाजिक बीमाके निमित्त तथा अन्य उद्योगोंके सहायतार्थ और

(३) उद्योगशालामें नये भरती होनेवाले श्रमिकोंकी साधन-पूँजीके निमित्त।[1]

ब्लाँकी यह मान्यता थी कि उद्योगशालाओंका उत्पादन स्वतन्त्र रूपसे पूँजीवादी उत्पादनोंकी प्रतिस्पर्धामें सफलतासे खड़ा हो सकेगा। उसका उत्पादन-व्यय कम होगा, कार्यक्षमता अधिक होगी, अतः यह सरलतासे पूँजीवादी उत्पादनको समाप्त कर प्रतिस्पर्धाकी ही समाप्ति कर डालेगा। ब्लाँका यह विश्वास था कि एक निश्चित निम्नतम वेतनके साथ श्रमका अधिकार, कामकी अच्छी दशाएँ और औद्योगिक स्वायत्तता होनेसे अच्छे कर्मचारी इन सामाजिक उद्योगशालाओंमें आयेंगे और इस प्रकार धीरे धीरे पूँजीपतियोंकी प्रतिस्पर्धा-शक्तिको अन्ततः नष्ट कर देंगे। इस आग्रह और सहमति द्वारा क्रान्ति होगी। ब्लाँने इस बातपर भी जोर दिया कि इन उद्योगशालाओंके द्वारा कृषि-व्यवसायका पुनर्गठन किया जाय। उसका लक्ष्य था कि 'औद्योगिक कार्यको कृषिके साथ परिश्रम-क्रममें आबद्ध' कर दिया जाय।

सामाजिक उद्योगशाला मूलतः उत्पादकोंकी सहकारी समिति है, जिसमें मध्यवर्गोंके लिए कोई स्थान नहीं है। ब्लाँने इसमें न तो ओवेनकी भाँति कल्पनाका पुट मिलाया था और न फूरियेकी भाँति। वह वास्तविकतावादी था। इसीलिए उसकी यह योजना अत्यन्त व्यावहारिक और उत्तम मानी गयी और उसने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की।[2]

राज्यसे आर्थिक सहायता लेने और राज्य द्वारा श्रमिकोंका हित-साधन करनेवाले कानून बनवानेपर ब्लाँने जोर दिया है। अन्य सब बातें उसने श्रमिकों पर ही छोड़ दीं। वह मानता था कि आर्थिक विकास और कल्याणकारी सेवाओंकी योजना बनाना राज्यका काम है। ब्लाँके लिए राज्य-समाजवाद एक अल्पकालीन व्यवस्था थी। वह मानता था कि सामाजिक उद्योगशालाओंको राज्य थोड़ा-सा प्रोत्साहन दे दे फिर तो वे स्वयं अपने पैरोंपर खड़ी हो सकेंगी। उन्हें अधिक प्रोत्साहनकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।[3]

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २६६।

२ अशोक मेहता : प्रजातांत्रिक समाजवाद : एक अध्ययन, पृष्ठ २४-२५।

३ भटनागर और छत्रीरामबाबूर : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २११।

मूल्यांकन

लुई ब्लॉ सहकारी उत्पादनके विचारका जन्मदाता है। समाजवादी विचार-धारामें उसके विचारोंका अपना महत्त्व है। उसकी दो विशेषताएँ मुख्य हैं :

(१) ब्लॉ सर्वहारा-वर्गके समाजवादका सर्वप्रथम प्रतिष्ठापक है। उसके पहलेके कल्पनाशील विचारक पूँजीवादके और पूँजीपतियोंके भी समर्थक रहे थे, केवल सर्वहारा-वर्गके हितोंको दृष्टिमें रखकर उन्होंने कोई योजना प्रस्तुत नहीं की थी। ब्लॉकी सामाजिक उद्योगशालाकी योजना एकमात्र सर्वहारा वर्गके हितको ध्यानमें रखकर प्रस्तुत की गयी थी।

(२) ब्लॉ पहला समाजवादी है, जिसने राज्यके हस्तक्षेप और स्वतन्त्रताके सामञ्जस्यकी बात कही है। वह कहता है कि 'पूर्ण स्वतन्त्रताका अर्थ यह है कि मनुष्य न्यायसम्मत रीतिसे अपनी सारी प्रतिभाओंका पूर्ण विकास कर सके और उनका पूर्णतः सदुपयोग कर सके।'[1]

ब्लॉके समकालीन विचारकोंने यह कहकर उसकी आलोचना की है कि उसकी सामाजिक उद्योगशालाका प्रयोग असफल हो गया, अतः वह अव्यावहारिक है। बात ऐसी नहीं है। यह प्रयोग ही गलत ढगसे हुआ और ब्लॉके सरक्षणमें उसका काम चला ही नहीं। इसमें बेकार मजदूरोंको काम देनेके लिए मिट्टीका काम दिया गया था और इसका सचालक ऐसा व्यक्ति था, जो समाजवाद-विरोधी था।

ब्लॉकी सामाजिक उद्योगशाला आजकी उत्पादक सहकारी समितिके रूपमे विश्वके विभिन्न अचलोंमें सफलता प्राप्त कर रही है, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है?

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ २७१।

दरिद्रतामें ही कटा, वह दरिद्र ही मरा और हम बच्चोंको भी दरिद्र ही छोड़ गया।'[1]

प्रोदोंको इसी कारण विवश होकर १० वर्षकी आयुसे ही जीविकोपार्जनके काममें लगाना पड़ा। पहले उसने एक प्रेसमें प्रूफ-संशोधनका कार्य आरम्भ किया, क्रमशः प्रगति करते करते सन् १८३७ में वह प्रेसका मुद्रक बन गया। बचपनसे ही प्रोदोंमें ज्ञानकी तीव्र पिपासा थी। वह अध्ययनकी ओर प्रवृत्त हुआ। छात्रावस्थामें उसे छात्र-वृत्ति भी मिलती रही। बादमें उसने लेखन-कार्य अपनाया। सन् १८४८ की क्रान्तिके समय वह एक पत्रका सम्पादन कर रहा था और उसके माध्यमसे सामाजिक एवं आर्थिक वैषम्यके निराकरणके लिए अपने स्वतंत्र विचारोंका प्रतिपादन कर रहा था। पर क्रान्तिमें उसने इसलिए भाग नहीं लिया कि वह मानता था कि राज्य-व्यवस्था कैसी भी हो, बुरी ही होती है।

प्रोदोंका परिवार एक कृषक-परिवार था। पिता छोटा सा मद्य-विक्रेता था। अतः निर्धनताकी गोदमें उसे वे सारी कठिनाइयाँ निरन्तर भोगनी पड़ीं, जो साधारण कृषक एवं मध्यवित्त परिवारके लोगोंको झेलनी पड़ती हैं। प्रतिभा तो उसमें थी ही, सामाजिक अन्यायने उसके अंतरमें विद्रोहकी अग्नि प्रज्वलित कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि उसने अत्यन्त तीव्र शब्दोंमें अपने उग्र विचारोंकी अभिव्यक्ति की।[2]

प्रोदों फ्रांसकी विधान निर्मात्री परिषद्का सदस्य भी निर्वाचित हुआ था, जहाँ उसने अपने विनिमय बैंककी योजना प्रस्तुत की थी, परन्तु वह उसके समकालीन व्यक्तियोंको इतनी हास्यास्पद प्रतीत हुई कि २ के विरुद्ध ६९१ मतोंसे ठुकरा दी गयी। सन् १८४९ में प्रोदोंने एक बैंककी स्थापना की, परन्तु शीघ्र ही उसका दिवाला पिट गया। प्रोदोंके जीवनका उत्तरकाल क्रान्तिकारी पत्रकारितामें व्यतीत हुआ। उसे अपने उग्र विचारोंके फलस्वरूप तीन वर्षोंतक जेलकी हवा भी खानी पड़ी। सन् १८५८ में वह बेलजियम चला गया और दो वर्ष बाद स्वदेश लौटा। सन् १८६५ मे उसका देहान्त हो गया।

प्रोदोंने लिखा बहुत है, पर उसकी दो रचनाएँ बहुत प्रख्यात हैं—'व्हाट इज प्रापर्टी ?' (सन् १८४०) और 'फिलासॉफी ऑफ मिजरी' (सन् १८४६)। मार्क्सने इस दूसरी पुस्तकके उत्तरमें एक पुस्तक लिखी थी 'दि मिजरी ऑफ फिलासॉफी' (सन् १८४७)।

प्रमुख आर्थिक विचार

प्रोदोंने दर्शन, नीतिशास्त्र और राजनीतिक सिद्धान्तोंपर भी अपने विचार

---

१ पत्र-व्यवहार, खण्ड २, पृष्ठ २३६।

२ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ३००।

स्वातन्त्र्यवाद • ३

उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भसे ही पूँजीवादके गुण दोष प्रकट होने लगे थे और उनके फलस्वरूप आर्थिक विचारधारा अपना विशिष्ट रूप ग्रहण करने लगी थी। एक ओर शास्त्रीय परम्परा पूँजीवादका समर्थन कर रही थी दूसरी ओर समाजवादी विचारधारा पूँजीवादके दोषोंपर—धनके विषम वितरणपर, वर्ग संघर्षपर, स्पर्धा-द्वेष आदि कुभावनाओंके प्रसारपर, उपनिवेशवाद और साम्राज्य-वादपर, तेजी मन्दी गरीबी-अमीरी और आर्थिक संकटों, युद्धों और संघर्षोंके विस्तारपर तीव्र प्रहार करने लगी थी। व्यक्तिगत सम्पत्ति और तज्जनित अभिशाप के कारण जनता त्रस्त थी और विचारक इस प्रयत्नमें थे कि ऐसी कोई व्यवस्था खोज निकाली जाय, जिससे जनताका त्राण हो सके। ओवन और फूर्ये, थामसन और ब्लाँ जैसे विचारक अपनी कल्पनाएँ लेकर आगे आ रहे थे और समाजको आर्थिक वैषम्यके संकटसे निकालनेके लिए प्रयत्नशील थे।

इस संक्रमण-कालमें ही प्रोदोंका जन्म और विकास हुआ।

प्रोदों

'सम्पत्ति चोरी है'—इस नारेका जन्मदाता पियर जोसेफ प्रोदों (सन् १८०९–१८६५) समाजवादी है भी और नहीं भी। उसका मूल्यका श्रम सिद्धान्त और उस आधारपर किया गया सम्पत्तिका विवेचन और पूँजीवादका कटु आलोचन जहाँ उसे समाजवादी बनाता है, वहाँ समाजवादका उसका आलोचन उसे दूसरे विचारकोंकी श्रेणीमें ला बैठाता है। वस्तुतः वह स्वातन्त्र्यवादी है, अराजकतावादी है। व्यक्तिगत स्वातंत्र्यका वह जबरदस्त समर्थक है और जहाँ स्वातंत्र्यका प्रश्न आता है वहाँ वह पूर्ण स्वातन्त्र्यको ही सर्वोपरि स्थान देता है। अतः उसकी विचारधाराको 'स्वातंत्र्यवाद' ही कहना उपयुक्त होगा।

जीवन-परिचय

फ्रांसके एक गरीब किसानका पुत्र प्रोदों शैशवसे ही दारिद्र्यकी गोदमें पला था। उसका पिता शराब तो बेचता था पर ईमान नहीं बेचता था। मजाल क्या कि कोई मूल्यसे एक कौड़ी भी अधिक लेनेके लिए उसे फुसला सके। दाम बढ़ाकर मुनाफा कमानेको वह बेईमानी मानता था। प्रोदोंने सवाम व अगोस्तको एक पत्रमें लिखा था कि 'इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे प्रिय पिताका सारा जीवन

रिद्रतामें ही कटा, वह दरिद्र ही मरा और हम बच्चोंको भी दरिद्र ही छोड़ गया।'[1]

प्रोदोको इसी कारण विवश होकर १० वर्षकी आयुसे ही जीविकोपार्जनके काममें लगाना पड़ा। पहले उसने एक प्रेसमें प्रूफ-संशोधनका कार्य आरम्भ किया, क्रमशः प्रगति करते करते सन् १८३७ में वह प्रेसका मुद्रक बन गया। बचपनसे ही प्रोदोमें ज्ञानकी तीव्र पिपासा थी। वह अध्ययनकी ओर प्रवृत्त हुआ। छात्रावस्थामें उसे छात्र-वृत्ति भी मिलती रही। बादमें उसने लेखन-कार्य अपनाया। सन् १८४८ की क्रान्तिके समय वह एक पत्रका सम्पादन कर रहा था और उसके माध्यमसे सामाजिक एवं आर्थिक वैषम्यके निराकरणके लिए अपने स्वतंत्र विचारोंका प्रतिपादन कर रहा था। पर क्रान्तिमें उसने इसलिए भाग नहीं लिया कि वह मानता था कि राज्य-व्यवस्था कैसी भी हो, बुरी ही होती है।

प्रोदोंका परिवार एक कृषक-परिवार था। पिता छोटा सा मद्य-विक्रेता था। अतः निर्धनताकी गोदमें उसे वे सारी कठिनाइयाँ निरन्तर भोगनी पड़ीं, जो साधारण कृषक एवं मध्यवित्त परिवारके लोगोंको झेलनी पड़ती हैं। प्रतिभा तो उसमें थी ही, सामाजिक अन्यायने उसके अंतस्‌में विद्रोहकी अग्नि प्रज्वलित कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि उसने अत्यन्त तीव्र शब्दोंमें अपने उग्र विचारोंकी अभिव्यक्ति की।[2]

प्रोदों फ्रासकी विधान निर्मात्री परिषद्‌का सदस्य भी निर्वाचित हुआ था, जहाँ उसने अपने विनिमय बैंककी योजना प्रस्तुत की थी, परन्तु वह उसके समकालीन व्यक्तियोंको इतनी हास्यास्पद प्रतीत हुई कि २ के विरुद्ध ६९१ मतोंसे ठुकरा दी गयी। सन् १८४९ में प्रोदोंने एक बैंककी स्थापना की, परन्तु शीघ्र ही उसका दिवाला पिट गया। प्रोदोंके जीवनका उत्तरकाल क्रान्तिकारी पत्रकारितामें व्यतीत हुआ। उसे अपने उग्र विचारोंके फलस्वरूप तीन वर्षोंतक जेलकी हवा भी खानी पड़ी। सन् १८५८ में वह बेलजियम चला गया और दो वर्ष बाद स्वदेश लौटा। सन् १८६५ में उसका देहान्त हो गया।

प्रोदोंने लिखा बहुत है, पर उसकी दो रचनाएँ बहुत प्रख्यात हैं—'व्हाट इज पावर्टी ?' (सन् १८४०) और 'फिलासॉफी ऑफ मिजरी' (सन् १८४६)। मार्क्सने इस दूसरी पुस्तकके उत्तरमें एक पुस्तक लिखी थी 'दि मिजरी ऑफ फिलासॉफी' (सन् १८४७)।

प्रमुख आर्थिक विचार

प्रोदोंने दर्शन, नीतिशास्त्र और राजनीतिक सिद्धान्तोंपर भी अपने विचार

---

१ पत्र-व्यवहार, खण्ड २, पृष्ठ २३६।

२ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ३००।

व्यक्त किये हैं पर यहाँ हम प्रोदोंके आर्थिक विचारोंकी ही चर्चा करेंगे। उन्हें मुख्यतः चार भागोंमें विभाजित किया जा सकता है :

(१) व्यक्तिगत सम्पत्तिका विरोध,
(२) श्रमका मूल्य-सिद्धान्त,
(३) विनिमय बैंक और
(४) न्याय और पूर्ण स्वातंत्र्य।

१ व्यक्तिगत सम्पत्तिका विरोध

प्रोदों व्यक्तिगत सम्पत्तिका तीव्र विरोधी है। वह कहता है कि सम्पत्ति चोरी है और सम्पत्तिवान् लोग चोर हैं। 'सम्पत्ति क्या है?' अपनी पुस्तकका आरम्भ ही वह इस प्रश्नसे करता है और उत्तर देता है—'सारी व्यक्तिगत सम्पत्ति चोरी है, दूसरेके श्रमका अपहरण एवं शोषण है। जो लोग सम्पत्तिशाली हैं, वे स्वयं बिना श्रम किये दूसरोंकी कमाई हड़प करके ही, दूसरोंके श्रमको चुराकर ही सम्पत्तिशाली बने हैं। उसकी पुस्तकमें आदिसे अन्ततक इसी विचारका पुनः पुनः प्रतिपादन है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति चोरी है।'[1]

प्रोदोंने प्रकृतिवादियोंके और स्मिथके विचारोंका खण्डन करते हुए अपने इस विचारपर बड़ा बल दिया है। प्रोदों कहता है कि यह एक मूलभूत भूल है कि भूमि सीमित है तथा कुछ लोग जो उसके स्वामी बन गये थे, उनके उत्तराधिकारियोंको उसपर पैतृक अधिकार प्राप्त है। इस तर्कमें तो केवल इतना ही बताया गया है कि भू-स्वामी किस प्रकार भूमिके स्वामी बन बैठे। इसमें उनके अधिकारका औचित्य कहाँ सिद्ध होता है? इसके विपरीत होना तो यह चाहिए था कि भूमि जब सीमित थी तो वह मुक्त रहती और प्रत्येक व्यक्तिको उसके उपभोगकी स्वतंत्रता रहती।

प्रोदों इस तर्कको भी गलत मानता है कि भू-स्वामियोंने भूमिपर श्रम करके उसे उपयोगी बनाया, इसलिए उन्हें उसके स्वामी बननेका अधिकार है। वह कहता है कि यदि इसी तर्कको लिया जाय तो आज जो श्रमिक भूमिपर श्रम कर रहा है उसे उसका स्वामी माना जाना चाहिए। पर ऐसा कहाँ माना जाता है?

प्रोदोंकी मान्यता है कि श्रमिकोंको मजदूरी मिलनेपर भी भूमिपर उनका मालिकाना हक माना जाना चाहिए। वह कहता है कि भूमि प्रकृतिकी मुफ्त देन है, इसलिए किसी व्यक्तिको उसपर एकाधिकार नहीं मिलना चाहिए। भूमिपर स्वामित्वकी बात समाप्त कर दी जानी चाहिए।

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ [illegible]।
२ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४१५।

प्रोदों व्यक्तिगत सम्पत्तिका इस सीमातक विरोधी था कि वह सम्पत्तिके सामूहिक स्वामित्वका भी विरोध करता था। वह कहता था कि साम्यवादी भी तो विषमताको प्रोत्साहन देते हैं। व्यक्तिगत सम्पत्तिमें जहाँ सबल व्यक्ति निर्बलका शोषण करते हैं, वहाँ साम्यवादमें निर्बल व्यक्ति सबलका शोषण करते हैं।

प्रोदों चाहता था कि व्यक्तिगत सम्पत्तिके दोषोंका परिहार हो। अनर्जित आय समाप्त कर दी जाय, भाटक, ब्याज और मुनाफेका अन्त कर दिया जाय। सम्पत्तिका दुरुपयोग बन्द कर दिया जाय।[1] पर श्रमसे उपार्जित सम्पत्तिको रखने और उसका स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहार करनेका अधिकार मनुष्यको रहना चाहिए।

२ श्रमका मूल्य-सिद्धान्त

अन्य समाजवादियोंकी भाँति प्रोदोंकी यह मान्यता थी कि श्रम ही एकमात्र उत्पादक है। श्रमके बिना न तो भूमिका ही कोई अर्थ है और न पूँजीका ही। अत यदि कोई सम्पत्ति स्वामी यह माँग करता है कि मेरी सम्पत्तिके कारण जो उत्पादन हुआ है, उसमेंसे मुझे कुछ अंश मिलना चाहिए, तो उसका यह दावा अन्यायपूर्ण है। उसके इस दावेमें यह भ्रामक धारणा अन्तर्निहित है कि पूँजी स्वय ही उत्पादिका है, पर ऐसा तो है नहीं। पूँजीपति तो बिना कुछ लगाये ही प्रतिदान पाता है। यह सब स्पष्ट चोरी है।[2]

प्रोदों मानता है कि व्यक्तिगत सम्पत्तिके ही कारण श्रमिक अपने श्रमका उचित पुरस्कार पानेसे वंचित रहता है। उसे श्रमका पूरा अंश मिलता नहीं। ब्याज, भाटक और मुनाफेके नामसे अन्य लोग उसका अंश झटक ले जाते हैं। श्रमिकको जितना मिलना चाहिए, उतना उसे मिल नहीं पाता। उसे मजूरी देनेके बाद जो बचत रहती है, वह अन्यायपूर्ण है।

प्रोदोंके बचत-मूल्यका सिद्धान्त यह है कि पृथक्-पृथक् रूपमें मनुष्य अपने श्रमसे जितना उत्पादन करते हैं, सामूहिक रूपमें वे उसकी अपेक्षा कहीं अधिक उत्पादन कर लेते हैं। पूँजीपति उन्हें मजूरी देता है पृथक्-पृथक् और लाभ उठाता है उनके सामूहिक उत्पादनका, जो अपेक्षाकृत कहीं अधिक होता है। बीचमें जो बचत रह जाती है, वह अन्यायपूर्ण है। श्रमका पूराका पूरा उत्पादन श्रमिकोंमें ही विभाजित कर देना चाहिए।

आजके अर्थशास्त्रियोंकी दृष्टिमें प्रोदोंका बचत मूल्यका सिद्धान्त उपक्रमीका लाभ है, जो उसे श्रमकी सगठित योजनाके और श्रम-विभाजनके फलस्वरूप प्राप्त होता है। मार्क्सका श्रमका अतिरिक्त मूल्यका सिद्धान्त इससे भिन्न है।

---

१ एरिक रौल ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २४१।

२ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३०१ ३०२।

की 'सामाजिक लेखा' की योजनासे प्रोदोंकी विनिमय बैंककी योजना सर्वथा भिन्न है।[1] सोचनेकी बात है कि प्रोदों जैसे नोटोंके प्रचलनकी बात करता है, क्या वह व्यवहार्य है और यदि वह व्यवहार्य है, तो क्या उसका वह परिणाम निकलेगा, जो प्रोदोंने बताया है? प्रोफेसर रिस्टका कहना है कि सिद्धान्ततः भले ही दोनों प्रकारके नोटोंके पीछे बैंकके सचालकके हस्ताक्षरकी गारण्टी है, पर एकके पीछे धातुगत जमानत है, दूसरेके पीछे नहीं। व्यवहारमें प्रोदोंकी योजनाकी असफलता निश्चित है। प्रोदोंका नोट सर्वमान्य हो नहीं सकता। और यदि यह मान भी लिया जाय कि प्रोदोंका नोट प्रचलनमें आता है, तो भी उससे ब्याजका निराकरण नहीं हो पाता। द्रव्यके लोप कर देनेसे ब्याजका लोप नहीं हो सकेगा। नैतिक दृष्टिसे लोग बँधे हों और वे ब्याज न लें, यह बात दूसरी है।[2]

४ न्याय और पूर्ण स्वातंत्र्य

प्रोदों न्याय और पूर्ण स्वातन्त्र्यका सबसे बड़ा समर्थक था। इसी दृष्टिसे वह राज्यका विरोधी बन बैठा था। उसका कहना था कि 'प्रत्येक राज्य स्वभावतः अधिकारमें, स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप करनेवाला होता है।' वह कहता था कि 'मुझे पूर्ण स्वातन्त्र्य चाहिए—आत्माकी स्वतन्त्रता, प्रेसकी स्वतन्त्रता, श्रमकी स्वतन्त्रता, वाणिज्यकी स्वतन्त्रता, शिक्षणकी स्वतन्त्रता, उत्पादित वस्तुओंके स्वेच्छानुकूल विनियोगकी स्वतन्त्रता—तात्पर्य ऐसी स्वतन्त्रता मेरा लक्ष्य है, जो अनन्त हो, सम्पूर्ण हो, सर्वत्र हो और सदाके लिए हो।'

प्रोदों जिस समाजके निर्माणका स्वप्न देखता था, उसकी आधारशिला स्वातन्त्र्य, समानता और बन्धुत्व था। उसकी धारणा थी कि ऐसे समाजमें प्रत्येक व्यक्तिको न्याय प्राप्त होनेकी सुविधा होनी चाहिए। उसमें मनुष्य स्वेच्छया परस्पर सेवा करें।[3] ऊपरसे उनपर राज्य या किसीका अंकुश न रहे। प्रोदों मानता था कि ऐसे समाजका निर्माण क्रमशः ही सम्भव है। हथेलीपर आम नहीं जम सकता। इसके लिए दो प्रकारके आन्दोलन चलाये जाने चाहिए। एक तो अनर्जित आयकी जन्मदात्री व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त कर दी जाय और दूसरे, प्रत्येक व्यक्तिको अपने श्रमसे उपार्जित सम्पत्ति रखने, मनोनुकूल कार्य करने और सम्पत्तिका विनिमय करनेके अधिकार प्राप्त हों।

प्रोदोंकी स्वातन्त्र्य-भावना उसे शासन मुक्तिकी ओर खींच ले गयी। वह अपने राजनीतिक संगठनके लिए शासन-मुक्तिका समर्थक था। उसने पहलेकी सभी समाजवादी धारणाओंका इस आधारपर विरोध किया कि उनके कारण

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३२२-३२४।
२ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३१८-३२०।
३ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३०६ ३०७।

मनुष्यकी पूर्ण स्वाधीनतामें बाधा पड़ती है। वह कहता था कि साहचर्यमें व्यक्ति-की स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है। साम्यवादमें राज्यकी ओरसे नियंत्रण रहता है, यह भी गलत है। मनुष्यको 'पूर्ण स्वाधीनता' रहनी चाहिए। अपने ही मार्मिक शब्दोंमें प्रोदों कहता है[1]—मैं उस बेचारे श्रमिकके लिए फूट-फूटकर रोता हूँ जिसकी दैनिक रोटी सर्वथा अनिश्चित रहती है और जो क्योंकि यातना-पीड़ित हो रहा है। मैं उसकी हिमायत करता हूँ, पर मैं देखता हूँ कि मैं उसकी सहायता करनेमें असमर्थ हूँ। 'बुर्जुआ' वर्गकी दयनीय स्थितिपर भी मुझे रोना आता है। उसका सर्वनाश मैंने अपनी आँखों देखा है। उसका दिवाला पिट गया है। उसे सर्वहारा-वर्गका विरोध करनेके लिए उकसाया गया है। मेरी व्यक्तिगत प्रवृत्ति बुर्जुआसे सहानुभूति करनेकी है परन्तु उसके विचारोंके प्रति स्वाभाविक विरोधी भाव होनेसे और परिस्थितियोंके कारण मुझे उसका शत्रु बनना पड़ा है।'

ऐसा भावुक प्रोदों सेंट साइमनवादियों, फूर्ये, समाजवादियों, साम्यवादियों—सबको अपनी कसौटीपर कसकर कहता है—इन सबका रास्ता गलत है।

मूल्यांकन

प्रोदों व्यक्तिगत सम्पत्तिका कट्टर विरोधी है पर वह समाजवादी नहीं है। वह साहचर्यवादी भी नहीं है, साम्यवादी भी नहीं है। स्वप्नद्रष्टाओंका उसने विरोध किया है पर उसकी विनिमय बैंककी योजना उसे स्वप्नद्रष्टाओंकी ही कोटिमें ला खड़ा करती है। स्वाधीनताका वह इतना प्रबल समर्थक है कि वह शासन-मुक्ति और अराजकतावाद (Anarchism) की क्रान्तिकारी धारणा तक बढ़ गया और मैक्सस्टर्नर, क्रोपाटकिन और बकुनिन जैसे प्रख्यात अराजकतावादियोंका प्रेरणा-स्रोत बना।

कार्ल मार्क्स प्रोदोंका समकालीन था। सन् १८४४ में पेरिसमें दोनों विचारक विचारोंके आदान प्रदानमें रातों-रात बातें किया करते थे। मार्क्स उसे 'पेटी बुर्जुआ' कहकर पुकारता है और कहता है कि मैंने प्रोदोंकी अरुचि रहनेपर भी उसे हेगेलके द्वंद्वात्मक भौतिकवादसे संक्रमित किया।

कुछ असंगतियोंके बावजूद प्रोदों आर्थिक विचारधाराके विकासमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उसका क्रान्तिकारी स्वरूप उसकी चुभती भाषाके शब्द-शब्दसे प्रकट होता है। व्यक्तिगत सम्पत्तिके विरोधमें उसकी तर्क-प्रणाली आज भी समाजवादी लोगोंका प्रधान अस्त्र है।

● ● ●

---

१ गीड और रिस्ट : वही पृष्ठ २१५।

राष्ट्रवादी विचारधारा

राष्ट्रवादका विकास : १

अर्थशास्त्रकी शास्त्रीय विचारधारा ज्यों ज्यों आगे बढ़ने लगी, त्यों-त्यों उसकी आलोचना-प्रत्यालोचना बढ़ने लगी। कुछ विचारकोंने उसे अनेक अंशोंमें स्वीकार कर लिया। वे उस धाराके प्रवाहम ही बहे। उन्होंने उसे विकसित भी किया। कुछ विचारकोंने उसके कुछ अंशोंको स्वीकार किया और अधिकांशको अस्वीकार कर दिया। ऐसे विचारकोंमेंसे ही कई पृथक् धाराओंका उदय हुआ। राष्ट्रवादी विचारधारा भी उनमेसे एक है। औद्योगिक विकासकी दृष्टिसे राष्ट्रोंकी असमान स्थितिके मूलमसे ही राष्ट्रवादी विचारधाराका जन्म हुआ।

राष्ट्रवादी विचारधारा दो दिशाओंमे प्रवाहित हुई—जर्मनीमे और अमरीका-में। जर्मन विचारधाराके प्रकाशस्तम्भ दो हैं. एक है अदम मुलर (सन् १७७०–१८२९) और दूसरे है फ्रेडरिख लिस्ट (सन् १७८९–१८४८)। अमरीकी

मनुष्यकी पूर्ण स्वाधीनतामें बाधा पड़ती है। वह कहता था कि शासनमें व्यक्ति-की स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। साम्यवादमें राज्यकी ओरसे नियंत्रण रहता है, यह भी गलत है। मनुष्यको 'पूर्ण स्वाधीनता' रहनी चाहिए। बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें प्रोदों कहता है[1]—'मैं उस बेचारे श्रमिकके लिए फूट-फूटकर रोता हूँ जिसकी दैनिक रोटी सदा अनिश्चित रहती है और जो वर्षोंसे यन्त्रणा-पीड़ित हो रहा है। मैं उसकी हिमायत करता हूँ, पर मैं देखता हूँ कि मैं उसकी सहायता करनेमें असमर्थ हूँ। 'बुर्जुआ' वर्गकी दयनीय स्थितिपर भी मुझे रोना आता है। उसका सर्वनाश मैंने अपनी आँखों देखा है। उसका दिमाग फिर गया है। उसे सर्वहारा-वर्गका विरोध करनेके लिए उकसाया गया है। मेरी व्यक्तिगत प्रवृत्ति बुर्जुआसे सहानुभूति करनेकी है, परन्तु उसके विचारोंके प्रति स्वाभाविक विरोधी भाव होनेसे और परिस्थितियोंके कारण मुझे उसका शत्रु बनना पड़ा है।'

ऐसा भावुक प्रोदों सेंट साइमनवादियों, फूर्ये, समाजवादियों, साम्यवादियों—सबको अपनी कसौटीपर कसकर कहता है—इन सभीका रास्ता गलत है।

मूल्यांकन

प्रोदों व्यक्तिगत सम्पत्तिका कट्टर विरोधी है, पर वह समाजवादी नहीं है। वह शासनसंवादी भी नहीं है, साम्यवादी भी नहीं है। स्वत्वहरणकर्ताओंका उसने विरोध किया है पर उसकी विनिमय बैंककी योजना उसे स्वत्वहरणकर्ताओंकी ही कोटिमें ला खड़ा करती है। स्वाधीनताका वह इतना प्रबल समर्थक है कि वह शासन-मुक्ति और अराजकतावाद (Anarchism) की क्रान्तिकारी धारणा तक बढ़ गया और मैक्सस्टर्नर, क्रोपाटकिन और बकुनिन जैसे प्रख्यात अराजकतावादियोंका प्रेरणा-स्रोत बना।

कार्ल मार्क्स प्रोदोंका समकालीन था। सन् १८४४ में पेरिसमें दोनों विचारक विचारोंके आदान-प्रदानमें सारी-सारी रातें बिता देते थे। मार्क्स उसे 'पेटी बुर्जुआ' कहकर पुकारता है और कहता है कि मैंने प्रोदोंकी अरुचि रहनेपर भी उसे हेगेलके द्वन्द्वात्मक भौतिकवादसे संक्रमित किया।

कुछ अर्थशास्त्रियोंके मतानुसार प्रोदों आर्थिक विचारधाराके विकासमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उसका क्रान्तिकारी स्वरूप उसकी चुभती भाषाके शब्द-शब्दसे प्रकट होता है। व्यक्तिगत सम्पत्तिके विरोधमें उसकी तर्क-प्रणाली आज भी समाजवादी लोगोंका प्रधान अस्त्र है।

● ● ●

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २६५।

करते थे। परन्तु राष्ट्रवादी विचारकोंका कहना था कि राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे यह आवश्यक है कि सरकार अपना नियंत्रण रखे। राष्ट्रवादी विनिमयपर कम, उत्पादनपर अधिक बल देते थे। उनका कहना था कि आर्थिक क्षेत्रमें राष्ट्रीय विकास और राष्ट्रीय हितकी ओर सर्वाधिक ध्यान देना चाहिए, विश्व हितकी बात उसके बाद करनी चाहिए। विश्व-हितकी माँगमें राष्ट्रीय हितोंपर कुठाराघात नहीं होने देना चाहिए।

राष्ट्रवादी विचारधाराका विकास यों तो जर्मनी और अमरीकाकी तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितिके कारण ही हुआ, पर उसके विचार आज भी विश्वपर अपना प्रभाव रखते हैं। आज विश्वके प्रायः सभी राष्ट्र सबसे पहले राष्ट्रीय हितकी ओर ध्यान देते हैं, उसके बाद ही विश्व हितकी बात सोचते हैं। ● ● ●

विचारधाराके विचारकोंमें अलेक्जेण्डर हैमिल्टन (सन् १७५७–१८०४), मैथ्यू केरे (सन् १७६०–१८३९), फ्रेडरिक लीस्ट (सन् १७८९–१८४६), डेनियल रेमाण्ड (सन् १७८६–१८४९) हेनरी केरे (सन १७९३–१८७९) जान रे (सन् १७९६–१८७२) आदि। यों लार्ड लॉडरडेल (सन् १७५९–१८३९) ने भी अन्य विषयक विचारोंसे मतभेद प्रकट करते हुए राष्ट्रवादी विचारोंका प्रतिपादन किया था और व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा सामाजिक सम्पत्तिके मध्यकी अन्तरको स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया था।

राष्ट्रवादी (Nationalist) विचारधाराके विचारकोंके भी दो भेद माने जाते हैं। एक तो वे जो अधिक आदर्शवादी, अधिक दार्शनिक और प्रतिक्रियावादी थे। इन्हें रोमानी भी कहा जाता है। मुलर इनमें प्रमुख हैं। दूसरी श्रेणीमें अधिक व्यावहारिक विचारक आते हैं। ये संरक्षणवादी कहे जाते हैं। लिस्ट, हेनरी केरे, नीस्स आदि इनमें प्रमुख हैं।

राष्ट्रवादी विचारधाराके विचारक प्राचीन परम्पराकी अनेक बातोंको स्वीकार करते थे कुछ ही बातोंमें उनका विरोध था। स्मिथ और उनके अनुयायी मानते थे कि उनके सिद्धान्त विश्वव्यापी हैं और जो बात विश्वके लिए हितकर है वह व्यक्तिके लिए भी हितकर होगी ही। लिस्ट आदिका कहना था कि यह मान्यता गलत है। यह आवश्यक नहीं कि जो बात विश्वके लिए हितकर हो वह व्यक्तिके लिए भी हितकर होगी ही। राष्ट्रवादी विचारकोंका कहना था कि विश्व और व्यक्ति, दोनोंके बीचमें आता है—राष्ट्र। राष्ट्रकी इस महत्त्वपूर्ण कड़ीकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उनका कहना था कि आज इंग्लैण्ड जैसे औद्योगिक दृष्टिसे विकसित और सम्पन्न राष्ट्रोंके हित जर्मनी या अमरीका जैसे अविकसित राष्ट्रोंके हितोंसे कैसे मेल खा सकते हैं? आज यदि जर्मनी या अमरीकाको विश्वकी बात सोचनी होगी तो राष्ट्रीय हितकी ओर पहले ध्यान देना पड़ेगा अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्व-हितकी ओर उसके बादमें।

राष्ट्रवादी विचारकोंका कहना था कि प्राचीन परम्परावाले व्यक्तिको राष्ट्रका नागरिक मानकर नहीं चले और उन्होंने अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते समय यह नहीं सोचा कि राष्ट्रकी भी कुछ समस्याएँ हुआ करती हैं जिनकी ओर ध्यान देना परम आवश्यक होता है। राष्ट्रवादियोंने व्यक्तिको अथवा राष्ट्रके हितको अपना लक्ष्य बनाकर अपने सिद्धान्त निकाले। उनका कहना था कि व्यक्ति और राष्ट्रके हितोंमें परस्पर विरोध हो सकता है और ऐसी स्थितिमें राष्ट्रके हितोंको सर्वोपरि स्थान देना चाहिए।

प्राचीन विचारधारावाले यह मानते थे कि पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा और मुक्त व्यापारकी नीतिसे सबका हित होगा। इसी दृष्टिसे वे सरकारी हस्तक्षेपका विरोध

था। मुलरपर रोमानी आन्दोलनके प्रवर्तक फिश्टका और बर्कका प्रभाव विशेष रूपसे था।

स्मिथकी विचारधाराका यूरोपके विभिन्न देशोंमें प्रभाव पड़ रहा था। पर जर्मनी जैसे देश उस समय सामन्तवादी स्थितिमें पड़े थे। स्मिथकी शास्त्रीय विचारधाराने वहाँ उदारवादी विचारोंके प्रस्फुटनकी स्थिति उत्पन्न कर दी थी। इसके विरुद्ध प्रतिक्रियावादी भू-स्वामी उठ खड़े हुए। उनके आन्दोलनके लिए जिस व्यक्तिने अपनी लेखनीके द्वारा सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया, वह था—मिलर। उसने शोषणके कठोर सत्योंको आदर्शोंका ऐसा चोला पहनाया कि रोमानी आन्दोलनको बहुत बड़ा बल मिल गया।[1]

उसने भू-स्वामित्व, अभिजातीयता और रूढ़िवादको उच्च स्थान प्रदान किया, शासित सदा शासित होनेके लिए हैं, इस भावनापर बल दिया और सरकारी हस्तक्षेपका जोरदार समर्थन करके प्रतिक्रियावादियोंके रोमानी आन्दोलनमें जान डाल दी।

प्रमुख आर्थिक विचार

अदम मुलरके आर्थिक विचारोंको मुख्यतः तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है :

(१) राज्य-सिद्धान्त,
(२) सम्पत्ति और द्रव्य तथा
(३) स्मिथकी आलोचना।

१ राज्य-सिद्धान्त

मुलरकी ऐसी मान्यता थी कि राज्यशक्तिका स्थान सबसे ऊपर है। राज्य चिरन्तन है। अतीतमें उसकी जड़ें हैं, अतः उसका सम्मान करना है। भविष्यका चिन्तन करना है। वर्तमानमें वह धाराकी भाँति प्रवाहशील है। उसकी अखण्ड एकरस धारा सदा बहती रहती है।

मुलर अरस्तूकी इस विचारधाराको लेकर चलता है कि राज्यसे पृथक् मनुष्यकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वह कहता है कि प्रत्येक नागरिक अपने नागरिक जीवनमें केन्द्रित है। राज्य उसके चारों ओर—ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर—भरा पड़ा है। अतः राज्य कोई कृत्रिम वस्तु नहीं है, जिसका कि निर्माण नागरिक जीवनके किसी लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए किया गया हो। वह तो स्वयं नागरिक जीवनकी समग्रता है। वह एक बुनियादी मानवीय आवश्यकता नहीं है, अपितु सर्वोपरि मानवीय आवश्यकता है।[2]

---

१ एरिक रौल : वही, पृष्ठ २१९।
२ ग्रे : डेवलपमेण्ट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ २१६।

अदम मुलर १.

राज्यशास्त्रिज्ञ अर्थशास्त्र अदम हेनरिख मुलर (सन् १७७९–१८२९) विस्मृतिके गर्भमें ही पड़ा रहता, यदि नाजियोंने अपने सैद्धान्तिक पूर्वजोंकी खोज न की होती। कोम्नेके बाद जर्मनीकी फासिस्टी विचारधाराके प्रमुख व्याख्याता ओत्मर स्पानने यहाँतक कह डाला कि मुलर तो हमारा सर्वश्रेष्ठ अर्थशास्त्री है। उसका ऐसा कहना स्वाभाविक भी है। कारण मुलरने जिस सफाईसे राज्यकी सर्वोपरिता व्यक्त की है, उसमें फासिस्टवादको अपने पैर जमानेके लिए दृढ़ आधार मिल जाता है। पर अन्य लोगोंकी दृष्टिमें मुलर अर्थशास्त्री था ही नहीं।

बर्लिनमें जन्म पाकर मुलरने गोटिंगेन विश्वविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त की। कुछ वर्षोंतक अध्यापक रहा। रोमानी विचारधाराके नेताओंसे उसकी घनिष्ठता हो गयी। उसने राजनीतिमें भी भाग लिया। मुलरने अपनी साहित्यिक प्रतिभा द्वारा उन भू-स्वामियोंकी प्रतिक्रियावादी राजनीतिको बल प्रदान किया, जो उदार सुधारोंका विरोध कर रहे थे। बादमें एक मित्र गेंजके प्रभावसे मुलरको आस्ट्रियन सरकारकी नौकरी मिल गयी। वहाँ उसने जीवनके अन्ततक कई उच्च पदोंपर कार्य किया।

मुलरकी सर्वप्रथम रचना सन् १८   में फिक्टेकी हैंडेल्सस्टाट नामक पुस्तककी आलोचनापर प्रकाशित हुई। सन् १८ ९ और १८१६ में मुलरकी दो रचनाएँ और प्रकाशित हुईं जिनमें उसके उन व्याख्यानोंका संग्रह है, जो उसने जर्मन-विज्ञान और साहित्यपर दिये थे। इनमें मुलरके प्रमुख आर्थिक विचारोंका संग्रह है।

पूर्वपीठिका

मुलरके विचारोंका अध्ययन करनेमें उसके जीवनका ध्यान रखना आवश्यक है। सन् १८ ५ में वह अपना धार्मिक मत बदलकर रोमन कैथोलिक बन गया, जिसके कारण मुलरको कुछ लोग 'कुख्यात विधर्मी' कहते हैं।[1] मुलरमें साहित्यिक प्रतिभा तो थी ही, वह भावात्मक शैलीमें अपने विचार व्यक्त करनेमें पटु था। राजनीतिक आन्दोलनमें उसकी रचनाओंका भरपूर प्रयोग किया जाता

---

१ ग्रे : डेवलपमेण्ट ऑफ इकोनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ २१७।

२ एरिक रौल : ए हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक थॉट, पृष्ठ २२६।

३ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४००।

धात्विक द्रव्यके सम्बन्धमें मुलरका कहना है कि 'धातुके कारण अन्य देश-वाले उसे स्वीकार करते हैं, अत. उससे अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओंका प्रसार होता है। लोग सोचने लगते हैं कि जहाँ कहीं भी स्वर्णकी माया सुनी जाती है, वह अपना पितृदेश जैसा ही है। इससे राष्ट्र-प्रेम नहीं पनपता। उसके लिए कागजी मुद्राका ही प्रयोग होना चाहिए। यह मुद्रा अपने ही राष्ट्रमें चलती है। इसमें राष्ट्रीय भावनाका प्रसार होता है।' मुलर इसी दृष्टिसे धात्विक मुद्राके बहिष्कारकी बात कहता है।

मुलर उसी वस्तुको मूल्यवान् मानता है, जो राष्ट्रीय हितमें हो। अन्य वस्तुओंका उसके लिये कोई भी मूल्य नहीं है। राज्यको मुलर सबसे बड़ा धन मानता है। कहता है कि राज्य ही मनुष्यकी सबसे महान् आध्यात्मिक पूँजी है।

२. स्मिथकी आलोचना

मुलरने स्मिथके प्रति आदर व्यक्त करते हुए भी उसकी अनेक बातोंकी आलोचना की है। उसके श्रम-विभाजनके सिद्धान्तका उसने विरोध किया है। उसे उसने अधूरा बताया है। वह कहता है कि यदि सच्ची राष्ट्रीय पूँजी न हो, अतीतकी विरासत न हो, तो श्रम-विभाजन मनुष्यको गुलामों और मशीनोंके रूपमें ही परिवर्तित कर देगा।[१]

स्मिथकी विश्ववादिता और निर्हस्तक्षेपकी नीतिकी मुलरने कड़ी टीका की है। वह कहता है कि इससे राष्ट्रके हितोंको धक्का लगता है। मुलरने इस बातपर बड़ा जोर दिया है कि स्मिथका दृष्टिकोण एकाङ्गी रहा है। वह कहता है कि स्मिथकी धारणाओंकी उत्पत्ति ब्रिटेनमें वहाँकी विशिष्ट परिस्थितियोंमें हुई। जिन देशोंकी स्थिति ब्रिटेनसे भिन्न है, वहाँपर स्मिथकी बातें लागू नहीं हो सकतीं। मुलरको स्मिथकी धारणाओंमें सर्वत्र ही 'रूल ब्रिटानिया, रूल दि वेव्स !' (हे ब्रिटेन, तू जल-थल सबपर शासन कर !) कविताकी ध्वनि सुनाई पड़ती है।[२]

मूल्यांकन

मुलरने राज्यकी सर्वोपरि सत्ताका जोरदार समर्थन करते हुए सामन्तवादकी पीठ सहलायी है। सरकारी हस्तक्षेपको उसने राष्ट्र हितके लिए परम आवश्यक माना है और राष्ट्रवादकी आड़में रोमानी विचारधाराको पनपनेका अच्छा अवसर प्रदान किया है। धात्विक मुद्राके बहिष्कारकी उसकी दलील अवगत भले ही लगे, पर उसपर मेटरनिखके नमकका असर था, जिसने आस्ट्रियामें अविनिमय-साध्य नोट चला रखे थे। मुलरने बड़ी सफाईसे उसका समर्थन कर जनताको बरगलानेकी चेष्टा की।

● ● ●

---

१ ग्रे : डेवलपमेण्ट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ २२५।
२ ग्रे : वही, पृष्ठ २२६।

मुक्रकी धारणा है कि राज्यकी मूलधारा सतत प्रवहमान है। अतीत, वर्तमान और भविष्यकी इस समय-शृंखलासे कोई भी मुक्त नहीं है। मुक्रने अफ्लातूनसे सम्मिर्में दास लिया है, जिसका उसे समझा है कि उसका भावी सामन्तवादी पद्धतिमें ही मूर्तिमान् हुआ था।[1]

राज्यके महत्त्वका मुक्र इतना कायल है कि वह युद्धको अच्छा मानता है। कहता है कि युद्धके कारण लोगोंमें राष्ट्रीयताकी भावना पनपती है और राष्ट्रका महत्त्व लोगोंकी समझमें आने लगता है। शान्ति-कालमें सामाजिक पक्षके अत्यन्त कोमल और मनोमुग्ध गुण लुप्त रहते हैं, उस समय नागरिक अपने अपने कामोंमें फँसे रहते हैं राष्ट्रकी बात सोचनेका उन्हें अवसर ही नहीं मिलता। युद्धमें नागरिकोंको राष्ट्रका ध्यान आता है और उन्हें पता चलता है कि मातृभूमिने उन्हें कहाँ लाकर बाँध दिया है। अतः मुक्रके कथनानुसार समय-समयपर युद्धोंका होते रहना अच्छा है। अदम स्मिथकी विश्ववादिता और मुक्त-व्यापारकी नीति राष्ट्रके हितकी दृष्टिसे बहुत खतरनाक है। उसके कारण राज्यके प्रति लोगोंकी आस्था घटती है। सरकारी हस्तक्षेपसे राष्ट्रीयताकी वृद्धि होती है।[2]

२. सम्पत्ति और द्रव्य

मुक्रने सम्पत्तिके ३ भाग किये हैं

(१) शुद्ध व्यक्तिगत सम्पत्ति
(२) सामाजिक सम्पत्ति और
(३) राज्यकीय सम्पत्ति।

मुलर व्यक्तिगत सम्पत्तिका विरोध करता है। कहता है कि व्यक्तिके पास वही सम्पत्ति रहनी चाहिए, जिसके उपभोगमें वह दूसरोंके साथ हाथ बँटानेके लिए सदा प्रस्तुत रहे और आवश्यकता पड़ते ही जिसे वह राज्यको समर्पित कर दे। सभी सम्पत्ति सार्वजनिक सम्पत्ति ही है। सारी व्यक्तिगत सम्पत्ति तो भोगाधिकारमात्र है।[3]

मुलर राज्यके हस्तक्षेपका सरकारी संरक्षणका प्रबल समर्थक है। वह कहता है कि राष्ट्रीय शक्तिके सम्वर्द्धनके लिए गृह-उद्योगोंको संरक्षण देना चाहिए। इस दृष्टिसे आयात-निर्यातपर भी सरकारको कड़ा नियन्त्रण रखना चाहिए। मुलर मानता है कि राज्य ही सारी बातोंका केन्द्र है। अतः सारी सम्पत्ति, सारे उत्पादन सारे उपभोगपर केवल इसी दृष्टिसे विचार करना चाहिए।

---

१ ग्रे : वही पृष्ठ ३३।
२ हने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक थॉट, पृष्ठ ४।
३ ग्रे : इंसाइक्लोपीडिया ऑफ इकॉनामिक्स सोशियल... खण्ड ११०–१११।
४ ग्रे : वही खण्ड १११।

लौटा। सन् १८४१ मे उसकी 'दि नेशनल सिस्टम ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी' नामक प्रसिद्ध रचना प्रकाशित हुई। सन् १८४८ में उसका देहान्त हो गया।

प्रमुख आर्थिक विचार

लिस्टपर जर्मनीकी तत्कालीन शोचनीय आर्थिक स्थितिका प्रभाव तो था ही, अमरीका-प्रवासका भी बड़ा प्रभाव पड़ा। वहाँ उसने संरक्षण-नीतिके फलस्वरूप उगते हुए राष्ट्रकी समृद्धि अपनी आँखों देखी। उसके विचारोंपर इतिहास और अर्थशास्त्रके अध्ययनका प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उसके विचारोंको मुख्यतः दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है :

(१) राष्ट्रीयता और संरक्षण,

(२) उत्पादक शक्तिका सिद्धान्त।

१. राष्ट्रीयता और संरक्षण

अदम स्मिथने विश्वबन्धुत्वकी भावनासे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारपर बल दिया था। उसके मतसे आर्थिक नियम विश्वव्यापी हैं। एकका हित अन्यके हितमें है। व्यक्तिका हित विश्वके हितमें है, विश्वका हित व्यक्तिके हितमें है। सारे विश्वका एक विशाल कारखाना है, जिसे विभिन्न देशोंके श्रमिक मिल्कर चलाते हैं। उनमें किसीका हित परस्पर-विरोधी नहीं है। स्मिथने इसी आधारपर प्रादेशिक श्रम-विभाजनकी भी बात कही थी और उसके लाभोंका वर्णन किया था।

लिस्टने जर्मनीकी तत्कालीन स्थितिसे दुःखित होकर और संरक्षणके कारण अमरीकाकी समृद्धि देखकर अदम स्मिथकी विश्वबन्धुत्वकी धारणाके विरुद्ध सबसे पहले जोरदार आवाज उठायी। उसने कहा कि स्मिथ व्यक्ति और विश्वके बीचकी महत्त्वपूर्ण कड़ी—राष्ट्रको भूल जाता है। उसे इस बातका पता नहीं है कि व्यक्तिकी समृद्धि विश्वकी समृद्धिपर नहीं, अपितु राष्ट्रकी समृद्धिपर निर्भर करती है। लिस्ट कहता है कि स्मिथके अनुयायी इस बातको भूल गये हैं कि उन्होंने जिस विश्वकी कल्पना कर रखी है, वह विश्व कहीं अस्तित्वमें है ही नहीं। वे ऐसा मानकर चलते हैं कि सारे विश्वमें शांति और सामजस्य है। उन्होंने राष्ट्रीयताके भेदोंकी ओर ध्यान ही नहीं दिया है।[1]

लिस्टकी यह मान्यता है कि हमें कल्पना-लोकमें विचरण न करके वास्तविक स्थितिकी ओर ध्यान देना चाहिए। वह अर्थशास्त्रका वास्तववादी और ऐतिहासिक रूप लेकर आगे बढ़ता है।

लिस्ट कहता है कि विश्वके भिन्न-भिन्न राष्ट्र एक-सी आर्थिक स्थितिमें नहीं हैं। कुछ राष्ट्र तो पूर्णतः कृषिप्रधान हैं और कुछ राष्ट्र पूर्णतः उद्योगप्रधान।

---

१ लिस्ट : नेशनल सिस्टम ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी, पृष्ठ १६३।

लिस्ट

जर्मनीकी तत्कालीन आर्थिक स्थितिसे प्रभावित होकर जिस व्यक्तिने जोर शोर से जर्मनीमें राष्ट्रवादका और संरक्षणका नारा बुलन्द किया वह है फ्रेडरिक लिस्ट। उसने देखा कि अनेक प्रान्तोंमें विभाजित समूचे जर्मनीमें ३८ प्रकारकी और प्रशियामें ६७ प्रकारकी चुंगियाँ लागू हैं जब कि इंग्लैण्डका पक्का माल बिना किसी रोक-टोकके, बिना किसी प्रकारके आयात-करके देशमें धड़ल्लेसे चला आता है। इसके फलस्वरूप न तो जर्मनीकी कृषि पनप पा रही है न उद्योग-धंधे। इधर जर्मनीकी यह शोचनीय स्थिति थी उधर अमरीका संरक्षणकी नीतिके फलस्वरूप क्रमशः समृद्ध और उन्नत होता जा रहा था। लिस्टपर इन सब बातोंका प्रभाव पड़ा और राष्ट्र-हितके लिए वह सक्रिय रूपसे कार्यमें संलग्न हुआ।

जीवन-परिचय

फ्रेडरिक लिस्टका जन्म सन् १७८९ में जर्मनीके रिउटलिंगेन स्थानमें हुआ। छोटी ही आयुमें उसने राजकीय नौकरी प्राप्त कर ली और शीघ्र ही उन्नति करते-करते उच्च पद प्राप्त कर लिया। सन् १८१८ में वह टयूबिंगेन विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक नियुक्त हुआ। तभी वह स्वतन्त्र रूपसे अपने विचार व्यक्त करने लगा। फलतः उसे प्राध्यापकी छोड़नी पड़ी। सन् १८१९ में उसने व्यापारियों और उत्पादकोंकी एक यूनियनका संघटन किया और उसके माध्यमसे चुंगी और परराष्ट्र करोंके विरुद्ध आन्दोलन चालू किया। उसने विदेशसे आनेवाले मालपर आयात-कर लगानेकी भी माँग की। पर सरकारने लिस्टकी बातोंपर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। सन् १८२० में वह अपने प्रान्त वर्टेम्बर्गकी धारासभा सदस्य चुन लिया गया पर सरकार-विरोधी भाषणके कारण सरकार उसपर क्रुद्ध हो गयी और फलस्वरूप वह संसद्से निष्कासित ही नहीं किया गया १ मासके लिए जेलमें भी बन्द कर दिया गया। बादमें सरकारने उसे इस आश्वासनपर मुक्त किया कि वह राज्यसे बाहर चला जायगा।

लिस्ट अमरीका चला गया। पेंसिलवेनियामें उसने एक फार्म खरीद लिया। वहाँ उसने पत्रकारिता भी की। अनेक लेख लिखे। सन् १८२१ में उसके लेखोंका एक संग्रह 'दि आउटलाइन्स ऑफ अमेरिकन पोलिटिकल इकॉनॉमी' नामसे प्रकाशित हुआ। सन् १८३२ में लिस्ट अमरीकी राजदूत होकर लिपजिग

सर्वनाश हो रहा है। जर्मन राष्ट्रके विकासके लिए यह परम आवश्यक है कि जर्मन-उद्योगोंको भरपूर संरक्षण मिले और इग्लैण्डके मालपर आयात-कर लगाया जाय।

संरक्षित व्यापारकी नीतिके सम्बन्धमें लिस्टने चार तर्क उपस्थित किये :

(१) संरक्षणकी पद्धति तभी उचित मानी जा सकती है, जब उसका लक्ष्य अपने राष्ट्रको औद्योगिक शिक्षण प्रदान करना हो। इंग्लैण्ड जैसे राष्ट्रोंका औद्योगिक विकास पञ्चम स्तरपर पहुँच गया है। उन्हें ऐसे शिक्षणकी आवश्यकता नहीं है। उनका शिक्षण समाप्त हो चुका है। जिन राष्ट्रोंमें इसके विकासके लिए रुचि या क्षमता नहीं है, उनमें भी संरक्षणकी पद्धति नहीं जारी की जानी चाहिए। जैसे, उष्ण कटिबन्धके प्रदेश।

(२) संरक्षणकी पद्धतिके औचित्यके लिए एक बात और भी आवश्यक है। वह यह कि यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो कि कोई विकसित और सबल राष्ट्र प्रतिस्पर्द्धाके द्वारा कम विकसित राष्ट्रके उद्योगोंको चौपट करनेपर तुला है। कोई शिशु या बालक जिस प्रकार अपने बलसे किसी सशक्त व्यक्तिका सामना नहीं कर पाता, तो उसे संरक्षणकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार जिस राष्ट्रके उद्योग शिशुकालमें हों, उन्हें संरक्षण मिलना चाहिए और विदेशी प्रतिस्पर्द्धासे उनकी रक्षा की जानी चाहिए।

(३) संरक्षणकी पद्धति तभीतक जारी रहनी चाहिए, जबतक राष्ट्रके उद्योग और व्यापार सशक्त न बन जायँ। उसके बाद संरक्षणकी नीति समाप्त कर देनी चाहिए।

(४) कृषिपर कभी भी संरक्षणकी पद्धति लागू नहीं की जानी चाहिए। कारण, इससे गल्ला महँगा हो जायगा और मजूरीकी दर चढ़ जायगी, फलतः उद्योगोंको हानि पहुँचेगी। उद्योगोंके संरक्षणसे कच्चे मालकी माँग बढ़ेगी, जिससे कृषिको तैयार बाजार मिल जायगा। इससे प्रादेशिक श्रम-विभाजन समाप्त हो जायगा, जिसकी समाप्ति ठीक नहीं।[१] लिस्ट मानता है कि प्रकृतिने ऐसा विभाजन कर रखा है कि कृषि उष्णप्रदेशोंमें और उद्योग शीतोष्णप्रदेशोंमें ही पनप सकते हैं।

२. उत्पादक शक्तिका सिद्धान्त

लिस्टने स्मिथके मूल्य सिद्धान्तको अधूरा बताते हुए कहा है कि सम्पत्ति और सम्पत्तिकी उत्पत्ति करनेके कारण भिन्न भिन्न हैं। स्मिथकी यह मान्यता थी कि उपभोग्य पदार्थोंकी मात्रा अथवा विनिमय-मूल्यपर ही राष्ट्रकी सम्पत्ति

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ २८४-२८५।

कुछ राष्ट्र इन दोनोंके बीचमें हैं। इन सभी राष्ट्रोंके हितोंमें भिन्नता है। अतः सबको एक ही डंडेसे हाँकना समीचीन नहीं कहा जा सकता। सबके लिए उनकी स्थिति देखकर ही नीतिका निर्धारण करना उचित होगा।

आर्थिक प्रगतिकी श्रेणियाँ

लिस्टने आर्थिक प्रगतिकी पाँच श्रेणियाँ की हैं :

(१) जङ्गली स्तर, मृगया या मत्स्यसेवन द्वारा जीवन-निर्वाह।

(२) चरागाह स्तर।

(३) कृषि स्तर, एक स्थानपर बसकर कृषिसे निर्वाह।

(४) कृषि और उद्योग स्तर।

(५) कृषि उद्योग और व्यापार स्तर।

लिस्ट कहता है कि मानवकी आर्थिक प्रगतिके ये स्तर उत्तरोत्तर आगे बढ़ते हैं। इनमें मनुष्य ज्यों-ज्यों भौतिक प्रगति करता जाता है त्यों-त्यों वह अगले स्तरकी ओर अग्रसर होता जाता है। न्याय-व्यवस्था इस प्रकारकी होनी चाहिए, जिससे कोई भी राष्ट्र निचले स्तरसे प्रगति करके अगले स्तरकी ओर बढ़ सके।[1]

लिस्ट ऐसा मानता है कि पहले स्तरमें मुक्त-व्यापारको प्रोत्साहन देना ठीक है। इससे जनताकी आवश्यकताओंकी वृद्धि हो सकेगी और वह उच्चस्तरकी ओर, कृषिके विकासकी ओर प्रगति करेगी। वह पक्का माल प्राप्त करनेके लिए कच्चा मालमाल उत्पादन बढ़ायेगी।

उसके बाद जनता सोचने लगेगी कि हम स्वयं ही पक्का माल तैयार करें। तब इस बातकी आवश्यकता होगी कि सरकार उसके संरक्षणके कानून बनाये। यदि उन्हें संरक्षण नहीं दिया जायगा, तो अधिक सम्पन्न और अधिक पूँजीवाले राष्ट्र नये राष्ट्रके उद्योगोंको शैशवावस्थामें ही कुचलकर समाप्त कर देंगे। अतएव खनी और उद्योगोंके उत्पादनको समुचित संरक्षण मिलना चाहिए। यह तबतक जारी रखना चाहिए, जबतक राष्ट्र पूर्णतः समर्थ न हो जाय और प्रतिस्पर्धाकी दौड़में बाधा न लगा सके।

उसके बाद मुक्त-व्यापारकी मुरी छूट दी जा सकती है। जबतक राष्ट्र अपने उद्योगोंमें इतनी उन्नति न कर ले तबतक संरक्षणकी नीति बरती रखनी चाहिए।

लिस्टने जर्मनीकी तत्कालीन स्थितिका विवेचन करते हुए राष्ट्रवाद और संरक्षणकी जोरदार माँग की। उसका कहना था कि इंग्लैण्ड आर्थिक प्रगतिकी पाँचवीं सीढ़ीपर है, जब कि जर्मनी अभी चौथी सीढ़ीपर ही है। इस स्थितिमें इंग्लैण्डके लिए मुक्त-व्यापारकी नीति लाभकर है, पर इस प्रतिस्पर्धामें जर्मनीका

---

[1] हेने : हि॰ ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४१५।

लिस्टने इस बातपर जोर दिया है कि उत्पादक शक्तियोंके विकासकी विधिवत् योजना बनाकर राष्ट्रका औद्योगिक विस्तार करना चाहिए। उसे प्रकृतिपर नहीं छोड़ देना चाहिए। प्रकृतिपर छोड़नेसे उसमें अत्यधिक विलम्ब लग सकता है। लिस्ट इसके लिए यह आवश्यक मानता है कि उत्पादकोंको भरपूर प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। कारण, उत्पादक वर्ग ही ऐसा वर्ग है, जो देशमें सर्वांगीण समृद्धि लानेमें सहायक हो सकता है। वह देशके समस्त साधनोंका राष्ट्र-हितमें उपयोग करके कृषि और उद्योगोंका विस्तार कर सकता है तथा राष्ट्रकी समृद्धिमें योगदान कर सकता है। समाजको नवजीवन प्रदान कर सकता है।[1]

लिस्टकी यह मान्यता थी कि देश जब सरक्षणकी नीति लागू करे, तभी उत्पादक शक्तियोंका अधिकसे अधिक उपयोग हो सकता है और सरक्षणकी नीतिका अवलम्बन तभी किया जायगा, जब कि देश राष्ट्रीयताको अन्तर्राष्ट्रीयतापर महत्त्व प्रदान करे।

मूल्यांकन

लिस्ट मुख्यतः राष्ट्रवादी विचारक है। सरक्षणकी नीतिपर उसने अत्यधिक बल दिया। उसका चुगी विरोधी आन्दोलन तो आगे चलकर सन् १८२८ के बाद सफल हुआ, पर आयातपर नियन्त्रणवाली उसकी माँग पूरी नहीं हो सकी। सन् १८४१ में उसकी एक राष्ट्रकी योजना सफल हुई और 'त्सलफराईन' (एक करके लिए सयुक्त जर्मन राज्यसघ) की स्थापना हुई।

लिस्टने व्यक्ति और विश्वके बीच 'राष्ट्र' नामकी महत्त्वकी कड़ीपर जोर दिया। देशकी समृद्धिके लिए योजना बनानेपर जोर दिया, अर्थशास्त्रको राजनीतिका अग बताया और राष्ट्रीय हितोंको आर्थिक हितोंसे ऊँचा स्थान दिया। उसने आर्थिक समस्याओंकी ओर ध्यान देने और उसमें इतिहासकी भी दृष्टि रखनेपर जोर दिया। इन सब बातोंका आज भी प्रभाव दृष्टिगत होता है। विभिन्न राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय योजनाओंपर बल देते हैं।

लिस्टने स्थिरताके स्थानपर गतिशीलताकी ओर, आजके स्थानपर कल्की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया। इस बातका भी आर्थिक विचारधारापर प्रभाव पड़ा है।

सरक्षणकी नीतिके लिए जलवायुपर जोर देनेकी लिस्टकी दलील असगत है। औद्योगिक विकासके लिए शीतोष्ण प्रदेश ही अनुकूल हैं, कृषिके लिए उष्ण कटिबन्धवाले देश ही अनुकूल हैं—उसकी यह मान्यता विज्ञानने गलत सिद्ध कर दी है। उचित जलवायुके बिना भी दोनों प्रकारके देशोंमें कृषि और उद्योग

---

१ एरिक रौल ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २२६।

निर्भर करती है। यदि देशमें विनिमय मूल्य अधिक होगा तो जनता वस्तुओंका अधिक उपभोग कर सकेगी और वह अधिक सुखी हो सकेगी। लिस्टने इस मतका खण्डन करते हुए कहा कि राष्ट्रकी सम्पत्तिमें अभिवृद्धि करनेके लिए विनिमय-मूल्योंमें वृद्धि ही पर्याप्त नहीं है, उसके लिए उत्पादक शक्तियोंका विकास आवश्यक है भले ही इसके कारण वर्तमान विनिमय-मूल्यका बलिदान कर देना पड़े। वर्तमानकी अपेक्षा भविष्यमें वस्तुओंके उत्पादनमें वृद्धि होना अधिक वांछनीय है।

लिस्टकी यह मान्यता थी कि उत्पादक शक्तियोंका विकास स्वयं सम्पत्ति से अधिक आवश्यक है।[1] उदाहरणस्वरूप यदि तात्कालिक उपयोगिताकी वस्तुएँ जैसे—वस्त्र, चीनी सीमेण्ट आदि और भविष्यमें उपयोगकी वस्तुओं, जैसे—मशीनके पुर्जे बनानेका कारखाने आदिके बीच कुछ चुनाव करना हो तो लिस्ट तात्कालिक उपभोग्य वस्तुओंको छोड़कर भावी उपभोग्य वस्तुओंका उत्पादक शक्तियोंको चुनेगा। तात्कालिक उपभोगकी वस्तुओंसे तत्काल तो कुछ सुख प्राप्त होगा पर उत्पादक-शक्तियोंके कारण तो भविष्यमें उसकी अपेक्षा कहीं अधिक सुख प्राप्त हो सकेगा।

उत्पादक शक्तियोंमें लिस्ट दो शक्तियोंका समावेश करता है :

(१) उद्योग-धन्धोंके विकासका और

(२) नैतिक और सामाजिक सुख-स्वातंत्र्य प्रदान करनेवाली संस्थाओंका।

लिस्टके अनुसार कृषिका परिणाम है—मस्तिष्कका बोदापन शरीरकी विकृति, रूढ़िवाद संस्कृति और स्वतन्त्रताका अभाव। जब कि उद्योग-धन्धोंके विकाससे अत्यधिक सामाजिक शक्तिका स्फुरण होता है जिसके कारण राष्ट्रके सामाजिक एवं नैतिक जीवनमें नये जीवनका संचार होने लगता है। उद्योगोंके कारण राष्ट्रको आर्थिक सुविधाओंका विकास तो होता ही है, इसके अतिरिक्त नागरिकोंके स्वातंत्र्य और नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्योंमें भी अपार वृद्धि होती है।

लिस्ट कहता है कि नैतिक तथा राजनीतिक स्वातंत्र्य, काम करनेका स्वातंत्र्य सोचने और बोलनेका स्वातंत्र्य, प्रेसका स्वातंत्र्य, धर्मका स्वातंत्र्य, न्यायका स्वातंत्र्य प्रजातंत्रीय सरकारकी स्थापनाका स्वातंत्र्य व्यक्तियोंकी उत्पादन-शक्ति पर बड़ा प्रभाव डालता है। उत्पादनके ये साधन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

---

१ हेनी : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४१७।
२ ग्रे : डेवलपमेण्ट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ २३९-२४१।
३ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ २८२।

शास्त्रीय धारा

जान स्टुअर्ट मिल

अदम स्मिथने शास्त्रीय विचारधाराको जन्म दिया। बेंथम, मैल्थस, रिकार्डो आदिने उसे परिपुष्ट किया। जेम्स मिल, मैक्कुल्यस, सीनियर जैसे आंग्ल विचारकोंने, से और बास्त्या जैसे फरासीसी विचारकोंने, राउ, थूने, हर्मन जैसे जर्मन विचारकोंने, कैरे जैसे अमरीकी विचारकोंने शास्त्रीय विचारधाराको विभिन्न दिशाओंमें विकसित किया। इस विचारधाराको विकासकी चरम सीमापर पहुँचानेका श्रेय है जेम्स मिलके पुत्र जान स्टुअर्ट मिलको। उसने पिताकी विरासतको आगे तो बढ़ाया ही, तत्कालीन समाजवादी तथा अन्य विचारधाराओंको भी उसने समझनेकी चेष्टा की। उनसे वह कुछ प्रभावित भी हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यकालमें स्टुअर्ट मिलके साथ शास्त्रीय विचारधारा

एक ओर जहाँ उसकी चरम सीमापर पहुँची, दूसरी ओर उसकी नींवमें घुन भी लगने लगा। उसका विघटन भी आरम्भ हो गया।

जीवन-परिचय

जान स्टुअर्ट मिल (सन् १८ ६–१८७३) प्रसिद्ध पिताका प्रसिद्ध पुत्र था। इंग्लैण्डमें उसका जन्म हुआ। कहते हैं कि तीन वर्षकी आयुमें ही उसने ग्रीक भाषा शुरू कर दी थी और ८ वर्षकी आयुमें लैटिन। १ वर्षकी आयुमें उसने विश्वका इतिहास पढ़ डाला था। ११ वर्षकी आयुमें उसने रोमका इतिहास लिख डाला था। १४ वर्षकी आयुमें उसने अपने समयका सारा अर्थशास्त्र छान डाला था और १ वर्षकी आयुमें उसने सारे फ्रांसीसी साहित्यका ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

जान मिल कुशाग्र बुद्धि था। उसके पिताका तत्कालीन विचारकोंके साथ अच्छा परिचय था। रिकार्डो से और बेंथम दोनोंसे जेम्स मिलकी अच्छी मैत्री थी। रिकार्डोकी रचना प्रकाशित करानेमें जेम्स मिलका बड़ा हाथ था। सन् १८१४ से १८१७ तक कानूनकी अच्छी शिक्षा देनेके लिए जेम्स मिलने अपने पुत्रको बेंथमके साथ कर दिया था। सन् १८२ में उसने स्टुअर्टको फ्रांस भेज दिया। पेरिसमें वे बी सेके साथ वह बहुत दिनों तक रहा। स्टुअर्टपर इन सभी विचारकोंका गहरा प्रभाव पड़ा।

सन् १८२३ में स्टुअर्ट मिल ईस्ट इण्डिया कम्पनीमें नौकर हो गया। सन् १८५८ तक वह कम्पनीमें काम करता रहा। सन् १८२ में उसने श्रीमती टेलर नामक विधवासे विवाह कर लिया। उसके विचारोंका भी उसपर प्रभाव पड़ा। मिलकी रचनाओंमें उसकी पत्नीने पूरा हाथ बँटाया।

सन् १८६५ से १८६८ तक मिल ब्रिटेनकी लोकसभाका स्वतन्त्र सदस्य रहा। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं—कुछ एसेज ऑन पोलिटिकल इकॉनामी (सन् १८२९) सिस्टम ऑफ लॉजिक (सन् १८४३); प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनामी (सन् १८४८) और लिबर्टी (सन् १८५९)।

प्रमुख आर्थिक विचार

मिलपर आदम स्मिथ और शास्त्रीय पद्धतिके अन्य विचारकोंका, पिताका तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनीमें नौकरी करनेके कारण तत्कालीन व्यापारिक

जगत्‌का और समयकी गतिका संयुक्त प्रभाव था। एक ओर औद्योगिक विकास-का अभिशाप मूर्तिमान् हो रहा था, दूसरी ओर भूमिकी समस्या जनवृद्धिके कारण विषम होने लगी थी, उसकी उर्वराशक्तिकी ह्रासमान गति प्रकट होने लगी थी तथा 'मनुष्यको प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए', ऐसी धारणाका विस्तार होने लगा था। इन सब बातों और समाजवादकी विचार-धाराओंका प्रभाव मिलपर पड़ने लगा था। पहले वह शास्त्रीय पद्धतिकी ओर झुका, पर बादमें समाजवादकी ओर।

स्टुअर्ट मिल था तो बड़ा कुशाग्र बुद्धि, उसकी भाषा भी अत्यन्त प्राञ्जल थी, विचारोंको प्रकट करनेकी शैली भी प्रभावकर थी, परन्तु कठिनाई यही थी कि वह इतिहासके मोड़पर खड़ा था। वह ठीकसे निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह किस मार्गका अनुसरण करे। अतीत भी उसकी आँखोंके समक्ष था और भविष्य भी। कभी वह एककी ओर झुकता था, कभी दूसरेकी ओर। वह किंकर्तव्यविमूढ जैसी स्थितिमें था। उसकी रचनाओंमें इस उलझनकी सर्वत्र झाँकी मिलती है।[१]

सच पूछा जाय, तो जान स्टुअर्ट मिल शास्त्रीय विचारधारा और समाजवादी विचारधाराके बीचकी कड़ी है। इसी दृष्टिसे उसके विचारोंका अध्ययन किया जा सकता है। उसके विचारोंको ३ भागोंमें विभाजित कर सकते हैं .

(१) शास्त्रीय पद्धतिकी परिपुष्टि,
(२) शास्त्रीय पद्धतिसे मतभेद और
(३) आदर्शवादी समाजवाद।

शास्त्रीय पद्धतिकी परिपुष्टि

मिलने शास्त्रीय पद्धतिको परिपुष्ट करनेमें सबसे अधिक काम किया है। शास्त्रीय सिद्धान्तोंका उसने विधिवत् परिष्कार किया और उन्हें पूर्णत्वपर पहुँचाया। मिलने निम्नलिखित सात शास्त्रीय सिद्धान्तोंका भलीभाँति विवेचन किया

(१) व्यक्तिगत स्वार्थका सिद्धान्त,
(२) मुक्त-प्रतिस्पर्द्धाका सिद्धान्त,
(३) जनसंख्याका सिद्धान्त,
(४) माँग और पूर्तिका सिद्धान्त,
(५) मजूरीका सिद्धान्त,
(६) भाटक-सिद्धान्त और
(७) अन्तर्राष्ट्रीय विनिमयका सिद्धान्त।

---

१ हेने हिस्ट्री आफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४७२ ४७३।

व्यक्तिगत स्वार्थका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिवाले इस सिद्धान्तपर बड़ा जोर देते थे। उनका कहना था कि व्यक्तिगत स्वार्थकी ही प्रेरणासे मनुष्य श्रम करता है। मिलके समयमें भी ऐसी मान्यता थी कि मनुष्य न्यूनतम त्याग करके अधिकतम स्वार्थ-साधन करना चाहता है। आत्मरक्षणके इस नियमको वे परम स्वाभाविक, प्राकृतिक और विश्वव्यापी मानते थे। वे समझते थे कि अपने भलेमें व्यक्तिका जो भला है समाजका भी भला है।

शास्त्रीय पद्धतिके आलोचक इस सिद्धान्तको गलत मानते थे। उनका कहना था कि इस सिद्धान्तके कारण मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थकी ओर झुकता है और उसका हित समाजके हितसे टकराता है। समाजके कल्याणके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थका बलिदान करके समाजके हितका ध्यान रखे।

मिलका कहना था कि विश्वकी व्यवस्थामें यह अपूर्ण स्थिति ही माननी चाहिए कि मनुष्य जब अपना बलिदान करे, तभी वह दूसरोंको प्रसन्नता प्रदान कर सके। यदि कोई मनुष्य अपना भला चाहता है, तो उसका अर्थ यह नहीं है कि वह दूसरोंकी असफलता ही चाहता है। देखा तो ऐसा जाता है कि जब कोई व्यक्ति अपनी कोई हानि किये बिना दूसरेका कुछ हित करता है तो उसे हार्दिक प्रसन्नता होती है। इस प्रकार यदि एक सीमातक सभी अपने हितकी साधना करें, तो व्यक्ति भी प्रसन्न रह सकता है, समाज भी। जॉ रिस्टर्जोंकी भाँति मिल भी मानता था कि मालिक, मजदूर और व्यापारीके प्रश्नको लेकर हितोंमें संघर्ष होता है परन्तु उसे यह आशा थी कि यदि व्यक्तिवाद और स्वातन्त्र्यका उपयुक्त रीतिसे सामञ्जस्य किया जाय तो ये संघर्ष टाले जा सकते हैं।[1]

मुक्त-प्रतिस्पर्धाका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिवाले विचारक व्यक्तिकी पूर्ण स्वतंत्रताके समर्थक थे। वे यह मानकर चलते थे कि व्यक्ति अपने हितका सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है अतः उसे अपनी इच्छाके अनुकूल सारा कार्य करनेकी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। इसीलिए वे मुक्त-व्यापार, मुक्त प्रतिस्पर्धा और व्यवसाय स्वातंत्र्यका समर्थन करते थे। सरकारी हस्तक्षेपसे व्यक्तिके स्वातंत्र्यमें बाधा पड़ती है, इसलिए वे न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप चाहते थे। मुक्त-प्रतिस्पर्धाके फल स्वरूप वस्तुएँ सस्ती होती हैं और उनके प्रति न्याय होता है। सन् १८५२ के आर्थिक सम्मेलनमें कहा गया है कि औद्योगिक जगत्में प्रतिस्पर्धाका वही गौरव पूर्ण स्थान है जो भौतिक जगत्में तत्त्वोंको प्राप्त है।[2]

समाजवादी और राष्ट्रवादी आलोचक शास्त्रीय पद्धतिकी इस धारणाका विरोध करते हुए कहते थे कि इसके कारण थोड़ेसे व्यक्तियोंके असंख्य व्यक्तियोंके

[1] जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ११०-११२।
[2] जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ११२।

का शोषण करनेका अवसर मिल जाता है। इतना ही नहीं, पूर्ण प्रतिस्पर्द्धाके फलस्वरूप औद्योगिक दृष्टिसे विकसित राष्ट्र अविकसित राष्ट्रोंका शोषण करते हैं। अतः पूर्ण प्रतिस्पर्द्धाका सिद्धान्त गलत है। आवश्यकतानुसार उसपर नियन्त्रण होना वाञ्छनीय है।

मिल व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका पक्षपाती था। उसका कहना था कि 'प्रतिस्पर्द्धापर लगाया जानेवाला प्रत्येक नियन्त्रण दोषपूर्ण है। प्रतिस्पर्द्धाके लिए खुली छूट रहनी चाहिए और वह समाजके लिए हितकर है।'

जनसंख्याका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिवाले जनसंख्याकी वृद्धिको अत्यन्त हानिकर मानते थे और उसके नियमनपर बड़ा जोर देते थे। मैल्थसने जनवृद्धिके दुष्परिणामोंसे मानवताकी रक्षाके लिए इस बातकी आवश्यकतापर सबसे अधिक बल दिया था कि श्रमिकोंको विशेष रूपसे अपनी जनसंख्या मर्यादित करनी चाहिए और उसके लिए आत्मसंयमका मार्ग ग्रहण करना चाहिए।

समाजवादी आलोचक मैल्थसके सिद्धान्तको गलत मानते थे। वे कहते थे कि खाद्यान्नकी उत्पत्ति तेजीसे बढ़ाना सम्भव है। साथ ही मैल्थस जिस तीव्रतासे जनसंख्या-वृद्धिकी बात करता है, उस गतिसे वह बढ़ती नहीं। वे इस बातका भी विरोध करते थे कि श्रमिकोंको आत्मसंयमका उपदेश देना पूँजीपतिको शोषणका एक और अस्त्र दे देना है। नैतिक संयम समाजवादी विचारकोंकी दृष्टिमें अप्राकृतिक भी था।

मिल इस विषयमें मैल्थससे भी दो कदम आगे था। स्वतन्त्रताका अत्यधिक समर्थक होते हुए भी वह इस सम्बन्धमें स्वतन्त्रतापर अंकुश लगानेके लिए भी प्रस्तुत हो जाता है। इस बातके लिए वह सरकारी हस्तक्षेप भी स्वीकार करनेको तैयार है[1] कि लोगोंको केवल तभी विवाह करनेकी अनुमति प्रदान की जाय, जब वे इस बातका प्रमाण उपस्थित करें कि उनकी आय इतनी पर्याप्त है कि वे परिवारका पालन-पोषण सुविधापूर्वक कर सकते हैं। मिल यह भी कहता है कि स्त्रियोंको इस बातकी पूरी छूट रहनी चाहिए कि वे सन्तानोत्पादन करें, चाहे न करें। 'खानेवाले मुँह बढ़ते हैं, तो काम करनेवाले दोहरे हाथ भी तो बढ़ते हैं', इस तर्कको मिल यह कहकर असंगत बताता है कि नये मुँहोंको भोजन तो पुराने मुँहोंकी ही भाँति चाहिए, पर उनके नन्हे हाथोंमें पुराने हाथोंके समान उत्पादन करनेकी क्षमता रहती ही नहीं।

मिल जनसंख्याकी वृद्धिको उतनी ही हानिकर मानता है, जितनी श्रमिकोंमें मद्यपानकी कुटेव। उसकी यह स्पष्ट धारणा है कि जनसंख्या संयमित करनेसे

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३६४।

ही राष्ट्रका कल्याण सम्भव है। वह कहता है कि श्रमिकोंकी मजूरीकी दरमें उस तक कोई सुधार नहीं हो सकता, जबतक कि वे विवाहसे पराङ्मुख न हों और अपनी जनसंख्याको मर्यादित न रखें।[1]

माँग और पूर्तिका सिद्धान्त प्राचीन पद्धतिवाले विचारक माँग और पूर्तिके सिद्धान्तको जिस स्वरूपमें मानते थे, उसे मिल पूर्ण मानता है। उसने इसे इन तीन श्रेणियोंमें विभाजित कर वैज्ञानिक व्याख्याका प्रयत्न किया :

(१) सीमित पूर्तिवाली वस्तुएँ। जैसे, रफायलका चित्र।

(२) उत्पादनमें असीम वृद्धिकी क्षमतावाली वस्तुएँ, पर जिनमें उत्पादन व्यय बढ़ता जाता है। जैसे, कृषिकी उत्पत्ति।

(३) श्रम तथा अन्य व्ययकी सहायतासे असीम मात्रामें पदार्थ वा सकनेवाली वस्तुएँ।

मिलकी मान्यता थी कि इन तीनों श्रेणियोंकी वस्तुओंके मूल्यपर माँग और पूर्तिका प्रभाव पड़ता है। उसने तीसरी श्रेणीकी वस्तुओंका मूल्य-निर्धारणमें सबसे प्रमुख माना है। मूल्य-निर्धारणमें मिलने सीमान्तकी धारणाका प्रवेश किया। वह मानता था कि विनिमय मजूरी ब्याज और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि सभी समस्याओंपर मूल्यका यह सिद्धान्त लागू होता है।

मिलने मूल्यके सिद्धान्तमें विरोधाभास उत्पन्न अनुभव नहीं किया। आगे चलकर आस्ट्रियन विचारकोंने इस धारणाका विशेष रूपसे विकास किया।

मजूरीका सिद्धान्त प्राचीन पद्धतिवालोंकी मान्यता थी कि श्रमिकोंकी माँग और पूर्तिके सिद्धान्तपर ही उनकी मजूरी निर्भर करती है। श्रमिकोंकी कमी होगी तो मजूरी बढ़ जायगी। श्रमिकोंकी संख्या अधिक होगी तो मजूरी गिर जायगी। मजूरी कोषको श्रमिकोंकी संख्यासे विभाजित कर देनेपर जो भजनफल होगा वही मजूरी-दर होगी।

मजूरीके कोष सिद्धान्तका समर्थन करता हुआ मिल कहता है कि मजूरीकी दर बढ़ानेके लिए यह आवश्यक है कि मजूरी-कोष बढ़े और यह मजूरी-कोष तभी बढ़ सकता है जब उत्पादक उसे बढ़ानेकी इच्छा करे। उसका दूसरा उपाय है श्रमिकोंकी संख्या कम कर देना। मिल मानता है कि ये दोनों श्रमिकोंके हाथमें हैं नहीं। श्रमिकोंको अपनी संख्या मर्यादित करनी चाहिए। इसके लिए वह उनके विवाहपर नियन्त्रण करनेपर जोर देता है।

---

१ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४४५।
२ जीद और रिस्त : वही, पृष्ठ ३६४ है ५।

मिल्की धारणा है कि श्रमिकोंके जीवन-धारणके व्ययपर उनकी सामान्य मजूरीकी दर निर्भर करती है। यह जीवन निर्वाहका सिद्धान्त सामान्य रूपसे व्यवहृत होता है और लौह सिद्धान्त अल्पकालके लिए। मिलको लगता था कि इन दोनों सिद्धान्तोंकी छायामें रहते हुए श्रमिकोंकी दयनीय स्थिति सुधरनेवाली नहीं। तो क्या श्रमिक सदाके लिए अपने भाग्यको कोसते ही रहेंगे और इस दुष्ट चक्रसे कभी मुक्त न हो सकेंगे? उसने इसके लिए शास्त्रीय पद्धतिके विरुद्ध श्रम सगठनोंकी, ट्रेड यूनियनोंकी सिफारिश की, ताकि श्रमिक सङ्गठित होकर अपनी आवाज बुलन्द कर सकें,[1] यद्यपि मिलको इस बातका विश्वास नहीं था कि इससे श्रमिकोंकी स्थितिमें वाञ्छनीय सुधार हो ही जायगा। पहले वह 'प्रिंसिपल्स' की पुस्तकमें मजूरी कोषके सिद्धान्तका समर्थन करता रहा, पर बादमें उसने उसके साथ अपना मतभेद व्यक्त किया।

भाटक-सिद्धान्त रिकार्डोके भाटक सिद्धान्तको मिल उपयुक्त मानता था। इस सम्बन्धमें वह रिकार्डोसे भी एक कदम आगे है। वह कहता है कि कृषिके क्षेत्रमें ही नहीं, उद्योग और व्यक्तिगत योग्यताके क्षेत्रमें भी भाटक-सिद्धान्त लागू होना चाहिए।[2] वह कहता है कि वस्तुकी कीमत सीमान्त भूमिकी उत्पादन लागतके बराबर होती है। अतः अधिक उर्वरा भूमियोंको भाटक प्राप्त होता है। कृषिकी ही भाँति उद्योगमें भी सभी व्यवस्थापक एक समान कुशल नहीं हुआ करते। वे जो माल तैयार करते हैं, उसकी कीमत न्यूनतम कुशल व्यवस्थापककी उत्पादन लागतके बराबर होती है। अतः अधिक कुशल व्यवस्थापकोंको भाटक प्राप्त होता है। व्यापारमें अधिक दक्षता और अधिक कुशल व्यापारिक व्यवस्था भाटकका कारण होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय विनिमयका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिके विचारक अभी-तक रिकार्डोके ही तुलनात्मक लागतके अन्तर्राष्ट्रीय विनिमयके सिद्धान्तको मानते आ रहे थे। मिलने उसका समर्थन तो किया ही, उसका परिष्कार भी किया।[3] रिकार्डोकी यह मान्यता थी कि विनिमित वस्तुकी कीमत निर्यात की हुई वस्तुकी उत्पत्तिकी वास्तविक लागत एवं आयात की हुई वस्तुकी उत्पत्तिके और यदि वह वस्तु देशमें ही प्रस्तुत करनी पड़ती, तो देशके देशीय परिव्ययके बीचमें स्थिर होती।

रिकार्डोके इस तुलनात्मक लागत सिद्धान्तकी आलोचना की जाती थी। कहा जाता था कि उसने मूल्यको अधरमें छोड़ दिया है। रिकार्डोने यह नहीं बताया कि वस्तुका मूल्य क्या होगा? मिलने इसमें माँग और पूर्तिका सिद्धान्त

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ३६६।
२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ३६७।
३ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ३६७-३६६।

ही राष्ट्रका कल्याण सम्भव है। वह कहता है कि श्रमिकोंकी मजूरीकी दरमें तबतक कोई सुधार नहीं हो सकता जबतक कि वे विवाहसे पराङ्मुख न हों और अपनी जनसंख्याको मर्यादित न रखें।[1]

माँग और पूर्तिका सिद्धान्त : प्राचीन पद्धतिवाले विचारक माँग और पूर्तिके सिद्धान्तको जिस स्वरूपमें मानते थे, उसे मिल पूर्ण मानता है। उसने इसे इन तीन श्रेणियोंमें विभाजित कर वैज्ञानिक व्याख्याका प्रयत्न किया :

(१) सीमित पूर्तिवाली वस्तुएँ। जैसे, रफाएलनामक चित्रकारके चित्र।

(२) उत्पादनमें असीम वृद्धिकी क्षमतावाली वस्तुएँ, पर जिनमें उत्पादन व्यय बढ़ता जाता है। जैसे कृषिकी उत्पत्ति।

(३) श्रम तथा अन्य व्ययकी सहायतासे असीम मात्रामें बढ़ायी जा सकनेवाली वस्तुएँ।

मिलकी मान्यता थी कि इन तीनों श्रेणियोंकी वस्तुओंके मूल्यपर माँग और पूर्तिका प्रभाव पड़ता है। उसने तीसरी श्रेणीकी वस्तुओंको मूल्य-निर्धारणमें सबसे प्रमुख माना है। मूल्य-निर्धारणमें मिलने सीमान्तकी धारणाका प्रवेश किया। वह मानता था कि विनिमय, मजूरी, ब्याज और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि सभी समस्याओंपर मूल्यका यह सिद्धान्त लागू होता है।

मिलने मूल्यके सिद्धान्तमें विषयगत तत्त्वका अनुभव नहीं किया। आगे चलकर आस्ट्रियन विचारकोंने इस धारणाका विशेष रूपसे विस्तार किया।

मजूरीका सिद्धान्त : प्राचीन पद्धतिवालोंकी मान्यता थी कि श्रमिकोंकी माँग और पूर्तिके सिद्धान्तपर ही उनकी मजूरी निर्भर करती है। श्रमिकोंकी कमी होगी तो मजूरी बढ़ जायगी। श्रमिकोंकी संख्या अधिक होगी, तो मजूरी गिर जायगी। मजूरी-कोषको श्रमिकोंकी संख्यासे विभाजित कर देनेपर जो भजनफल आय, वही मजूरी-दर होगी।

मजूरीके कोष-सिद्धान्तका समर्थन करता हुआ मिल कहता है कि मजूरीकी दर बढ़ानेके लिए यह आवश्यक है कि मजूरी-कोष बढ़े और यह मजूरी-कोष तभी बढ़ सकता है, जब उत्पादक उसे बढ़ानेकी इच्छा करें। उसका दूसरा उपाय है श्रमिकोंकी संख्या कम कर देना। मिल मानता है कि ये दोनों श्रमिकोंके [illegible] हैं नहीं। श्रमिकोंको अपनी संख्या मर्यादित करनी चाहिए। इसके लिए [illegible] विवाहपर नियमन करनेपर भार देता है।

१. [illegible] पृष्ठ ३२२।
वही, पृ० [illegible]

मिलकी धारणा है कि श्रमिकोंके जीवन-धारणके व्ययपर उनकी सामान्य मजूरीकी दर निर्भर करती है। यह जीवन-निर्वाहका सिद्धान्त सामान्य रूपसे व्यवहृत होता है और लौह-सिद्धान्त अल्पकालके लिए। मिलको लगता था कि इन दोनों सिद्धान्तोंकी छायामें रहते हुए श्रमिकोंकी दयनीय स्थिति सुधरनेवाली नहीं। तो क्या श्रमिक सदाके लिए अपने भाग्यको कोसते ही रहेंगे और इस दुष्ट चक्रसे कभी मुक्त न हो सकेंगे? उसने इसके लिए शास्त्रीय पद्धतिके विरुद्ध श्रम सगठनोंकी, ट्रेड यूनियनोंकी सिफारिश की, ताकि श्रमिक सङ्गठित होकर अपनी आवाज बुलन्द कर सकें,[१] यद्यपि मिलको इस बातका विश्वास नहीं था कि इससे श्रमिकोंकी स्थितिमें वाछनीय सुधार हो ही जायगा। पहले वह 'प्रिंसिपल्स' की पुस्तकमें मजूरी-कोपके सिद्धान्तका समर्थन करता रहा, पर बादमें उसने उसके साथ अपना मतभेद व्यक्त किया।

भाटक-सिद्धान्त रिकार्डोके भाटक सिद्धान्तको मिल उपयुक्त मानता था। इस सम्बन्धमें वह रिकार्डोसे भी एक कदम आगे है। वह कहता है कि कृषिके क्षेत्रमें ही नहीं, उद्योग और व्यक्तिगत योग्यताके क्षेत्रमें भी भाटक-सिद्धान्त लागू होना चाहिए।[२] वह कहता है कि वस्तुकी कीमत सीमान्त भूमिकी उत्पादन लागतके बराबर होती है। अतः अधिक उर्वरा भूमियोंको भाटक प्राप्त होता है। कृषिकी ही भाँति उद्योगमें भी सभी व्यवस्थापक एक समान कुशल नहीं हुआ करते। वे जो माल तैयार करते हैं, उनकी कीमत न्यूनतम कुशल व्यवस्थापककी उत्पादन-लागतके बराबर होती है। अतः अधिक कुशल व्यवस्थापकोंको भाटक प्राप्त होता है। व्यापारमें अधिक दक्षता और अधिक कुशल व्यापारिक व्यवस्था भाटकका कारण होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय विनिमयका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिके विचारक अभीतक रिकार्डोके ही तुलनात्मक लागतके अन्तर्राष्ट्रीय विनिमयके सिद्धान्तको मानते आ रहे थे। मिलने उसका समर्थन तो किया ही, उसका परिष्कार भी किया।[३] रिकार्डोकी यह मान्यता थी कि विनिर्मित वस्तुकी कीमत निर्यात की हुई वस्तुकी उत्पत्तिकी वास्तविक लागत एव आयात की हुई वस्तुकी उत्पत्तिके और यदि वह वस्तु देशमें ही प्रस्तुत करनी पड़ती, तो देशके देशीय परिव्ययके बीचमें स्थिर होती।

रिकार्डोके इस तुलनात्मक लागत सिद्धान्तकी आलोचना की जाती थी। कहा जाता था कि उसने मूल्यको अधरमें छोड़ दिया है। रिकार्डोने यह नहीं बताया कि वस्तुका मूल्य क्या होगा? मिलने इसमें माँग और पूर्तिका सिद्धान्त

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३६६।
२ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३६७।
३ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३६७-३६६।

व्यक्तिगत स्वार्थका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिवाले इस सिद्धान्तपर बड़ा जोर देते थे। उनका कहना था कि व्यक्तिगत स्वार्थकी ही प्रेरणासे मनुष्य काम करता है। मिलके समयमें भी ऐसी मान्यता थी कि मनुष्य न्यूनतम त्याग करके अधिकतम स्वार्थ-साधन करना चाहता है। आत्मरक्षणके इस नियमको वे परम स्वाभाविक, प्राकृतिक और विश्वव्यापी मानते थे। वे समझते थे कि अपने स्वार्थमें व्यक्तिका तो भला है समाजका भी भला है।

शास्त्रीय पद्धतिके आलोचक इस सिद्धान्तको गलत मानते थे। उनका कहना था कि इस सिद्धान्तके कारण मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थकी ओर झुकता है और उसका हित समाजके हितसे टकराता है। समाजके कल्याणके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थका बलिदान करके समाजके हितका ध्यान रखे।

मिलका कहना था कि विश्वकी व्यवस्थाकी यह अपूर्ण स्थिति ही माननी चाहिए कि मनुष्य जब अपना बलिदान करे, तभी वह दूसरोंको प्रसन्नता प्रदान कर सके। यदि कोई मनुष्य अपना भला चाहता है, तो उसका अर्थ यह नहीं है कि वह दूसरोंकी अप्रसन्नता ही चाहता है। देखा तो ऐसा जाता है कि जब कोई व्यक्ति अपनी कोई हानि किये बिना दूसरेका कुछ हित करता है तो उसे हार्दिक प्रसन्नता होती है। इस प्रकार यदि एक सीमातक सभी अपने हितकी कामना करें तो व्यक्ति भी प्रसन्न रह सकता है, समाज भी। जो रिकार्डोकी भाँति मिल भी मानता था कि भाटक, मजूरी और ब्याजके प्रश्नको लेकर हितोंमें संघर्ष होता है परन्तु उसे यह आशा थी कि यदि व्यक्तिवाद और स्वातंत्र्यका उपयुक्त रीतिसे सामञ्जस्य किया जाय तो ये संघर्ष टाले जा सकते हैं।

मुक्त-प्रतिस्पर्द्धाका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिवाले विचारक व्यक्तिकी पूर्ण स्वतंत्रताके समर्थक थे। वे यह मानकर चलते थे कि व्यक्ति अपने हितका सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है अतः उसे अपनी इच्छाके अनुकूल सारा काम करनेकी स्वतंत्रता रहनी चाहिए। इसीलिए वे मुक्त-व्यापार मुक्त-प्रतिस्पर्द्धा और व्यवसाय स्वातंत्र्यका समर्थन करते थे। सरकारी हस्तक्षेपसे व्यक्तिके स्वातंत्र्यमें बाधा आती है, इसलिए वे न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप चाहते थे। मुक्त प्रतिस्पर्द्धाके फल स्वरूप वस्तुएँ सस्ती होती हैं और सबके प्रति न्याय होता है। सन् १८५२ के आर्थिक शब्दकोषमें कहा गया है कि औद्योगिक जगत्में प्रतिस्पर्द्धाका वही गौरव पूर्ण स्थान है जो भौतिक जगत्में गुरुत्वाकर्षणको प्राप्त है।

समाजवादी और राष्ट्रवादी आलोचक शास्त्रीय पद्धतिकी इस धारणाका विरोध करते हुए कहते थे कि इसके कारण शोषक व्यक्तियोंको अनैतिक अमिको

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक डॉक्ट्रिन्स, पृष्ठ १६८-१६९।
२ जीद और रिस्ट : वही पृष्ठ १६१

का शोषण करनेका अवसर मिल जाता है। इतना ही नहीं, पूर्ण प्रतिस्पर्द्धाके फलस्वरूप औद्योगिक दृष्टिसे विकसित राष्ट्र अविकसित राष्ट्रोंका शोषण करते हैं। अतः पूर्ण प्रतिस्पर्द्धाका सिद्धान्त गलत है। आवश्यकतानुसार उसपर नियन्त्रण होना वाछनीय है।

मिल व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका पक्षपाती था। उसका कहना था कि 'प्रतिस्पर्द्धापर लगाया जानेवाला प्रत्येक नियन्त्रण दोषपूर्ण है। प्रतिस्पर्द्धाके लिए खुली छूट रहनी चाहिए और वह समाजके लिए हितकर है।'

जनसख्याका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिवाले जनसख्याकी वृद्धिको अत्यन्त हानिकर मानते थे और उसके नियमनपर बड़ा जोर देते थे। मैल्थसने जनवृद्धिके दुष्परिणामोंसे मानवताकी रक्षाके लिए इस बातकी आवश्यकतापर सबसे अधिक बल दिया था कि श्रमिकोंको विशेष रूपसे अपनी जनसख्या मर्यादित करनी चाहिए और उसके लिए आत्मसयमका मार्ग ग्रहण करना चाहिए।

समाजवादी आलोचक मैल्थसके सिद्धान्तको गलत मानते थे। वे कहते थे कि खाद्यान्नकी उत्पत्ति तेजीसे बढ़ाना सम्भव है। साथ ही मैल्थस जिस तीव्रतासे जनसख्या-वृद्धिकी बात करता है, उस गतिसे वह बढ़ती नहीं। वे इस बातका भी विरोध करते थे कि श्रमिकोंको आत्मसयमका उपदेश देना पूँजीपतिको शोषणका एक और अस्त्र दे देना है। नैतिक सयम समाजवादी विचारकोंकी दृष्टिमें अप्राकृतिक भी था।

मिल इस विषयमें मैल्थससे भी दो कदम आगे था। स्वतन्त्रताका अत्यधिक समर्थक होते हुए भी वह इस सम्बन्धमें स्वतन्त्रतापर अकुश लगानेके लिए भी प्रस्तुत हो जाता है। इस बातके लिए वह सरकारी हस्तक्षेप भी स्वीकार करनेको तैयार है[१] कि लोगोंको केवल तभी विवाह करनेकी अनुमति प्रदान की जाय, जब वे इस बातका प्रमाण उपस्थित करें कि उनकी आय इतनी पर्याप्त है कि वे परिवारका पालन-पोषण सुविधापूर्वक कर सकते हैं। मिल यह भी कहता है कि स्त्रियोंको इस बातकी पूरी छूट रहनी चाहिए कि वे सन्तानोत्पादन करें, चाहे न करें। 'खानेवाले मुँह बढ़ते हैं, तो काम करनेवाले दोहरे हाथ भी तो बढ़ते हैं', इस तर्कको मिल यह कहकर असगत बताता है कि नये मुँहोंको भोजन तो पुराने मुँहोंकी ही भाँति चाहिए, पर उनके नन्हे हाथोंमें पुराने हाथोंके समान उत्पादन करनेकी क्षमता रहती ही नहीं।

मिल जनसख्याकी वृद्धिको उतनी ही हानिकर मानता है, जितनी श्रमिकोंमें मद्यपानकी कुटेव। उसकी यह स्पष्ट धारणा है कि जनसख्या सयमित करनेसे

१ जीद और रिस्ट वही पृ० २८४।

एक ओर जहाँ उन्नति चरम सीमापर पहुँची, दूसरी ओर उसकी नींवमें घुन भी लगने लगा। उसका विघटन भी आरम्भ हो गया।

जीवन-परिचय

जान स्टुअर्ट मिल (सन् १८ ६–१८७३) प्रसिद्ध पिताका प्रसिद्ध पुत्र था। इंग्लैण्डमें उसका जन्म हुआ। कहते हैं कि तीन वर्षकी आयुमें ही उसने ग्रीक भाषा शुरू कर दी थी और ८ वर्षकी आयुमें लैटिन। १ वर्षकी आयुमें उसने विश्वका इतिहास पढ़ डाला था। ११ वर्षकी आयुमें उसने रोमका इतिहास लिख डाला था। १४ वर्षकी आयुमें उसने अपने समयका सारा अर्थशास्त्र छान डाला था और १ वर्षकी आयुमें उसने सारे फ्रांसीसी साहित्यका ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

बालक मिल कुशाग्र बुद्धि था। उसके पिताका तत्कालीन विचारकोंके साथ अच्छा परिचय था। रिकार्डो से और बेंथम दोनोंसे जेम्स मिलकी अच्छी मैत्री थी। रिकार्डोकी रचना प्रकाशित करानेमें जेम्स मिलका बड़ा हाथ था। सन् १८१४ से १८१७ तक कानूनकी अच्छी शिक्षा देनेके लिए जेम्स मिलने अपने पुत्रको बेंथमके साथ कर दिया था। सन् १८२ में उसने स्टुअर्टको फ्रांस भेज दिया। पेरिसमें जे० बी० सेके साथ वह बहुत दिनों तक रहा। स्टुअर्टपर इन सभी विचारकोंका गहरा प्रभाव पड़ा।

सन् १८२३ में स्टुअर्ट मिल ईस्ट इण्डिया कम्पनीमें नौकर हो गया। सन् १८५८ तक वह कम्पनीमें काम करता रहा। सन् १८२ में उसने श्रीमती टेलर नामक विधवासे विवाह कर लिया। उसके विचारोंका भी उसपर प्रभाव पड़ा। मिलकी रचनाओंमें उसकी पत्नीने पूरा हाथ बँटाया।

सन् १८६५ से १८६८ तक मिल ब्रिटेनकी लोकसभाका सदस्य रहा। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं—फर्स्ट एसेज ऑन पोलिटिकल इकॉनामी (सन् १८४४); सिस्टम ऑफ लॉजिक (सन् १८४३) प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकानामी (सन् १८४८) और लिबर्टी (सन् १८५९)।

प्रमुख आर्थिक विचार

मिलपर एडम स्मिथ और प्राचीन पद्धतिके अन्य विचारकोंका, पिताका, पत्नीका, ईस्ट इण्डिया कम्पनीमें नौकरी करनेके कारण तत्कालीन व्यापारिक

जगत्‌का और समयकी गतिका संयुक्त प्रभाव था। एक ओर औद्योगिक विकासका अभिशाप मूर्तिमान् हो रहा था, दूसरी ओर भूमिकी समस्या जनवृद्धिके कारण विषम होने लगी थी, उसकी उर्वराशक्तिकी ह्रासमान गति प्रकट होने लगी थी तथा 'मनुष्यको प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए', ऐसी धारणाका विस्तार होने लगा था। इन सब बातों और समाजवादकी विचारधाराओंका प्रभाव मिलपर पड़ने लगा था। पहले वह शास्त्रीय पद्धतिकी ओर झुका, पर बादमें समाजवादकी ओर।

स्टुअर्ट मिल था तो बड़ा कुशाग्र बुद्धि, उसकी भाषा भी अत्यन्त प्राञ्जल थी, विचारोंको प्रकट करनेकी शैली भी प्रभावकर थी, परन्तु कठिनाई यही थी कि वह इतिहासके मोड़पर खड़ा था। वह ठीकसे निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह किस मार्गका अनुसरण करे। अतीत भी उसकी आँखोंके समक्ष था और भविष्य भी। कभी वह एककी ओर झुकता था, कभी दूसरेकी ओर। वह किंकर्तव्यविमूढ़ जैसी स्थितिमें था। उसकी रचनाओंमें इस उलझनकी सर्वत्र झाँकी मिलती है।[1]

सच पूछा जाय, तो जान स्टुअर्ट मिल शास्त्रीय विचारधारा और समाजवादी विचारधाराके बीचकी कड़ी है। इसी दृष्टिसे उसके विचारोंका अध्ययन किया जा सकता है। उसके विचारोंको ३ भागोंमें विभाजित कर सकते हैं :

(१) शास्त्रीय पद्धतिकी परिपुष्टि,
(२) शास्त्रीय पद्धतिसे मतभेद और
(३) आदर्शवादी समाजवाद।

शास्त्रीय पद्धतिकी परिपुष्टि

मिलने शास्त्रीय पद्धतिको परिपुष्ट करनेमें सबसे अधिक काम किया है। शास्त्रीय सिद्धान्तोंका उसने विधिवत् परिष्कार किया और उन्हें पूर्णरूपपर पहुँचाया। मिलने निम्नलिखित सात शास्त्रीय सिद्धान्तोंका भलीभाँति विवेचन किया :

(१) व्यक्तिगत स्वार्थका सिद्धान्त,
(२) मुक्त-प्रतिस्पर्द्धाका सिद्धान्त,
(३) जनसंख्याका सिद्धान्त,
(४) माँग और पूर्तिका सिद्धान्त,
(५) मजूरीका सिद्धान्त,
(६) भाटक-सिद्धान्त और
(७) अन्तर्राष्ट्रीय विनिमयका सिद्धान्त।

---

१ हने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४७२-४७३।

व्यक्तिगत स्वार्थका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिवाले इस सिद्धान्तपर बड़ा जोर देते थे। उनका कहना था कि व्यक्तिगत स्वार्थकी ही प्रेरणासे मनुष्य काम करता है। मिल के समयमें भी ऐसी मान्यता थी कि मनुष्य न्यूनतम त्याग करके अधिकतम स्वार्थ साधन करना चाहता है। अर्थशास्त्रके इस नियमको वे परम स्वाभाविक, प्राकृतिक और विश्वव्यापी मानते थे। वे समझते थे कि अपने मनमें व्यक्ति भले ही मग्न है, समाजका भी भला है।

शास्त्रीय पद्धतिके आलोचक इस सिद्धान्तको गलत मानते हैं। उनका कहना था कि इस सिद्धान्तके कारण मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थकी ओर झुकता है और उसका हित समाजके हितसे टकराता है। समाजके कल्याणके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थका बलिदान करके समाजके हितका ध्यान रखे।

मिलका कहना था कि किसकी व्यवस्थामें यह अपूर्ण स्थिति ही माननी चाहिए कि मनुष्य जब अपना बलिदान करे तभी यह दूसरोंको प्रसन्नता प्रदान कर सके। यदि कोई मनुष्य अपना भला चाहता है तो उसका अर्थ यह नहीं है कि वह दूसरोंकी असफलता ही चाहता है। देखा तो ऐसा जाता है कि जब कोई व्यक्ति अपनी ओर हानि किये बिना दूसरेका कुछ हित करता है तो उसे हार्दिक प्रसन्नता होती है। इस प्रकार यदि एक सीमातक सभी अपने हितकी कामना करें तो व्यक्ति भी प्रसन्न रह सकता है समाज भी। यों रिकार्डोकी भाँति मिल भी मानता था कि मालिक, मजदूरी और भूमिके प्रश्नको लेकर हितोंमें संघर्ष होता है परन्तु उसे यह आशा थी कि यदि व्यक्तिवाद और स्वार्थपरता उपयुक्त रीतिसे सामञ्जस्य किया जाय तो ये संघर्ष मिटाये जा सकते हैं।

मुक्त-प्रतिस्पर्द्धाका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिवाले विचारक व्यक्तिकी पूर्ण स्वतन्त्रताके समर्थक थे। वे यह मानकर चलते थे कि व्यक्ति अपने हितका सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है अतः उसे अपनी इच्छाके अनुकूल सारा काम करनेकी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। इसीलिए वे मुक्त-व्यापार, मुक्त-प्रतिस्पर्द्धा और व्यवसाय स्वातंत्र्यका समर्थन करते थे। सरकारी हस्तक्षेपसे व्यक्तिके स्वातंत्र्यमें बाधा पड़ती है, इसलिए वे न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप चाहते थे। मुक्त-प्रतिस्पर्धाके फल-स्वरूप वस्तुएँ सस्ती होती हैं और सबके प्रति न्याय होता है। सन् १८५२ के मार्शिक ग्रन्थोंमें कहा गया है कि औद्योगिक जगत्में प्रतिस्पर्धाका वही गौरव पूर्ण स्थान है, जो भौतिक जगत्में सूर्यको प्राप्त है।

समाजवादी और राष्ट्रवादी आलोचक शास्त्रीय पद्धतिकी इस धारणाका विरोध करते हुए कहते थे कि इसके कारण थोड़ेसे व्यक्तियोंके असंख्य अभिकों

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ११०-१११।
२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ३३१।

का शोषण करनेका अवसर मिल जाता है। इतना ही नहीं, पूर्ण प्रतिस्पर्द्धाके फलस्वरूप औद्योगिक दृष्टिसे विकसित राष्ट्र अविकसित राष्ट्रोंका शोषण करते हैं। अत पूर्ण प्रतिस्पर्द्धाका सिद्धान्त गलत है। आवश्यकतानुसार उसपर नियन्त्रण होना वाछनीय है।

मिल व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका पक्षपाती था। उसका कहना था कि 'प्रतिस्पर्द्धापर लगाया जानेवाला प्रत्येक नियन्त्रण दोषपूर्ण है। प्रतिस्पर्द्धाके लिए खुली छूट रहनी चाहिए और वह समाजके लिए हितकर है।'

जनसख्याका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिवाले जनसख्याकी वृद्धिको अत्यन्त हानिकर मानते थे और उसके नियमनपर बड़ा जोर देते थे। मैल्थसने जनवृद्धिके दुष्परिणामोंसे मानवताकी रक्षाके लिए इस बातकी आवश्यकतापर सबसे अधिक बल दिया था कि श्रमिकोंको विशेष रूपसे अपनी जनसख्या मर्यादित करनी चाहिए और उसके लिए आत्मसयमका मार्ग ग्रहण करना चाहिए।

समाजवादी आलोचक मैल्थसके सिद्धान्तको गलत मानते थे। वे कहते थे कि खाद्यान्नकी उत्पत्ति तेजीसे बढ़ाना सम्भव है। साथ ही मैल्थस जिस तीव्रतासे जनसख्या-वृद्धिकी बात करता है, उस गतिसे वह बढ़ती नहीं। वे इस बातका भी विरोध करते थे कि श्रमिकोंको आत्मसयमका उपदेश देना पूँजीपतिको शोषणका एक और अस्त्र दे देना है। नैतिक सयम समाजवादी विचारकोंकी दृष्टिमें अप्राकृतिक भी था।

मिल इस विषयमें मैल्थससे भी दो कदम आगे था। स्वतन्त्रताका अत्यधिक समर्थक होते हुए भी वह इस सम्बन्धमें स्वतन्त्रतापर अकुश लगानेके लिए भी प्रस्तुत हो जाता है। इस बातके लिए वह सरकारी हस्तक्षेप भी स्वीकार करनेको तैयार है[1] कि लोगोंको केवल तभी विवाह करनेकी अनुमति प्रदान की जाय, जब वे इस बातका प्रमाण उपस्थित करें कि उनकी आय इतनी पर्याप्त है कि वे परिवारका पालन-पोषण सुविधापूर्वक कर सकते हैं। मिल यह भी कहता है कि स्त्रियोंको इस बातकी पूरी छूट रहनी चाहिए कि वे सन्तानोत्पादन करें, चाहे न करें। 'खानेवाले मुँह बढ़ते हैं, तो काम करनेवाले दो-दो हाथ भी तो बढ़ते हैं', इस तर्कको मिल यह कहकर असगत बताता है कि नये मुँहोंको भोजन तो पुराने मुँहोंकी ही भाँति चाहिए, पर उनके नन्हे हाथोंमें पुराने हाथोंके समान उत्पादन करनेकी क्षमता रहती ही नहीं।

मिल जनसख्याकी वृद्धिको उतनी ही हानिकर मानता है, जितनी श्रमिकोंमें मद्यपानकी कुटेव। उसकी यह स्पष्ट धारणा है कि जनसख्या सयमित करनेसे

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३६४।

मिलकी धारणा है कि श्रमिकोंके जीवन-धारणके व्ययपर उनकी सामान्य मजूरीकी दर निर्भर करती है। यह जीवन निर्वाहका सिद्धान्त सामान्य रूपसे व्यवहृत होता है और लौह-सिद्धान्त अल्पकालके लिए। मिलको लगता था कि इन दोनों सिद्धान्तोंकी छायामें रहते हुए श्रमिकोंकी दयनीय स्थिति सुधरनेवाली नहीं। तो क्या श्रमिक सदाके लिए अपने भाग्यको कोसते ही रहेंगे और इस दुष्ट चक्रसे कभी मुक्त न हो सकेंगे? उसने इसके लिए शास्त्रीय पद्धतिके विरुद्ध श्रम संगठनोंकी, ट्रेड यूनियनोंकी सिफारिश की, ताकि श्रमिक सङ्गठित होकर अपनी आवाज बुलन्द कर सकें,[1] यद्यपि मिलको इस बातका विश्वास नहीं था कि इससे श्रमिकोंकी स्थितिमें वाञ्छनीय सुधार हो ही जायगा। पहले वह 'प्रिंसिपल्स' की पुस्तकमें मजूरी-कोषके सिद्धान्तका समर्थन करता रहा, पर बादमें उसने उसके साथ अपना मतभेद व्यक्त किया।

भाटक-सिद्धान्त रिकार्डोके भाटक सिद्धान्तको मिल उपयुक्त मानता था। इस सम्बन्धमें वह रिकार्डोसे भी एक कदम आगे है। वह कहता है कि कृषिके क्षेत्रमें ही नहीं, उद्योग और व्यक्तिगत योग्यताके क्षेत्रमें भी भाटक-सिद्धान्त लागू होना चाहिए।[2] वह कहता है कि वस्तुकी कीमत सीमान्त भूमिकी उत्पादन लागतके बराबर होती है। अतः अधिक उर्वरा भूमियोंको भाटक प्राप्त होता है। कृषिकी ही भाँति उद्योगमें भी सभी व्यवस्थापक एक समान कुशल नहीं हुआ करते। वे जो माल तैयार करते हैं, उसकी कीमत न्यूनतम कुशल व्यवस्थापककी उत्पादन लागतके बराबर होती है। अतः अधिक कुशल व्यवस्थापकोंको भाटक प्राप्त होता है। व्यापारमें अधिक दक्षता और अधिक कुशल व्यापारिक व्यवस्था भाटकका कारण होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय विनिमयका सिद्धान्त शास्त्रीय पद्धतिके विचारक अभी-तक रिकार्डोके ही तुलनात्मक लागतके अन्तर्राष्ट्रीय विनिमयके सिद्धान्तको मानते आ रहे थे। मिलने उसका समर्थन तो किया ही, उसका परिष्कार भी किया।[3] रिकार्डोकी यह मान्यता थी कि विनिमित वस्तुकी कीमत निर्यात की हुई वस्तुकी उत्पत्तिकी वास्तविक लागत एवं आयात की हुई वस्तुकी उत्पत्तिके और यदि वह वस्तु देशमें ही प्रस्तुत करनी पड़ती, तो देशके देशीय परिव्ययके बीचमें स्थिर होती।

रिकार्डोके इस तुलनात्मक लागत सिद्धान्तकी आलोचना की जाती थी। कहा जाता था कि उसने मूल्यको अधरमें छोड़ दिया है। रिकार्डोने यह नहीं बताया कि वस्तुका मूल्य क्या होगा? मिलने इसमें माँग और पूर्तिका सिद्धान्त

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३६६।
२ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३६७।
३ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३६७-३६६।

जोड़कर यह बतानेकी चेष्टा की कि किसी समय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारके क्षेत्रमें किसी वस्तुका मूल्य क्या होगा। उसका कहना था कि व्यापार की गई वस्तुका मूल्य उत्पादन-लागतके हिसाबसे न माना जाय अपितु विनिमित वस्तुकी मूल्यकी लागतमें माना जाय। मिल्ने वैज्ञानिकताका पुट देकर इस सिद्धान्तको अधिक पुष्ट बनानेका प्रयत्न किया। उसके मतसे जिस देशमें दूसरे देशकी जिस वस्तुकी अधिक माँग होगी उसीके हिसाबसे वस्तुका मूल्य निर्धारित होगा और इस प्रकारके विनिमयसे दोनों ही देश लाभान्वित होंगे।

मिल्ने रिकार्डोके समाजकी स्थिर गतिके निराशावादी दृष्टिकोणका समर्थन तो किया है पर उसने आगे चलकर यह कल्पना की है कि मानव जब मुनाफेकी भागदौड़ बन्द कर देगा तो मानवताका स्वर्णप्रभात होगा।

मिल्ने इस प्रकार शास्त्रीय पद्धतिके सिद्धान्तोंकी परिपुष्टि की और उन्हें अधिक वैज्ञानिक दिशामें ले जानेका प्रयत्न किया। भले ही उसने शराबको नयी बोतलोंमें भरनेकी चेष्टा की परन्तु इतना तो है ही कि उसने अपनी लेखनी द्वारा शास्त्रीय पद्धतिको विकासकी चरम सीमापर पहुँचा देनेका प्रयत्न किया। पर यद्यपि मिल्के साथ ही शास्त्रीय पद्धति पतनकी ओर भी अग्रसर होती है और नया मोड़ लेती है। मिल्ने शास्त्रीय पद्धतिसे कुछ बातोंमें मतभेद ही नहीं प्रकट किया कुछ बातोंमें समाजवादी विचारधाराका समर्थन भी किया। मिल्के जीवनका पहला पक्ष शास्त्रीय पद्धतिका समर्थक है तो बादका परवर्ती पक्ष उससे भिन्न है और समाजवादका कुछ अंशोंमें समर्थक है।

शास्त्रीय पद्धतिसे मतभेद

मिल्ने निम्नलिखित बातोंमें शास्त्रीय पद्धतिका पूर्णतः विरोध तो नहीं किया पर उससे अपना मतभेद व्यक्त किया है :

(१) प्राकृतिक नियम
(२) अर्थशास्त्रका क्षेत्र
(३) मजदूरीका सिद्धान्त
(४) आर्थिक गतिशास्त्र
(५) संरक्षणवाद और
(६) सरकारी हस्तक्षेप।

प्राकृतिक नियम शास्त्रीय पद्धतिके विचारक ऐसा मानते थे कि उनके उत्पादन एवं वितरण दोनोंके ही सिद्धान्त प्राकृतिक नियमोंके अनुकूल हैं और वे चिरस्थायी हैं। मिल्ने इस धारणामें अपना मतभेद प्रकट किया। वह कहता है

---

१ जीद और रिस्ट : वही पृष्ठ ३७०।

कि उत्पादनमें तो प्राकृतिक नियम लागू होते हैं, पर वितरणमें नहीं। उत्पादनमें मानवकी इच्छाके स्थानपर भौतिक सत्त्वका प्राबल्य रहता है। परन्तु वितरणका आधार है समाजकी रूढ़ियाँ, समाजके नियम। वितरण मनुष्यके हाथकी बात है, प्रकृतिके हाथकी नहीं। मिलने वितरणके सिद्धान्तको मानव निर्मित बताकर शास्त्रीय पद्धतिवालोंको करारा घूँसा लगाया।[1]

मिलने आगे चलकर जो समाजवादी कार्यक्रम उपस्थित किया, उसका आधार यह धारणा ही है कि मजूरी, भाटक, मुनाफा आदि वितरणके नियम मानव-निर्मित हैं, उनमें सुधार सम्भव है और अपेक्षित भी है। मिल मानता है कि यह मानकर बैठ जाना अनुचित एवं गलत है कि वितरणके सिद्धान्तोंमें परिवर्तन हो ही नहीं सकता।

अर्थशास्त्रका क्षेत्र अभीतक शास्त्रीय पद्धतिके विचारक ऐसा मानते आये थे कि *अर्थशास्त्र सम्पत्तिका विशुद्ध विज्ञानमात्र है। मानवके कल्याणसे* उसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। वह तो केवल कार्य और कारणका पारस्परिक सम्बन्ध व्यक्त करता है, सत्योंका अन्वेषण करता है। मिलने इस धारणाको अस्वीकार किया। उसने कहा कि अर्थशास्त्र केवल विशुद्ध विज्ञान ही नहीं, कला भी है। उत्पादनके क्षेत्रमें वह विज्ञान है, वितरणके क्षेत्रमें कला। उसने अर्थशास्त्रको सामाजिक प्रगतिका एक साधन माना। उसकी पुस्तकके नाम—'दि प्रिंसिपल्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी विथ सम ऑफ देअर एप्लीकेशन्स टु सोशल फिलासॉफी' से ही मिलकी इस धारणाकी अभिव्यक्ति हो जाती है। मिलने शास्त्रीय पद्धतिकी अर्थशास्त्रकी क्षेत्रविषयक संकुचित परिधिको व्यापक बनाया, जिसका आगे चलकर मार्शलने अधिक विस्तार किया।

मजूरीका सिद्धान्त . मिल शास्त्रीय पद्धतिका ख्यातनामा विचारक माना जाता था। पर आगे चलकर उसके विचारोंमें परिवर्तन हुआ। 'प्रिंसिपल्स' में उसने मजूरी-कोषके सिद्धान्तका समर्थन किया था, पर सन् १८८० में जन लाज और थार्नटन नामक अर्थशास्त्रियोंने मजूरी कोषके सिद्धान्तकी धज्जियाँ उड़ायीं, तो मिल भी उनके विचारोंका समर्थक बन गया। थार्नटनकी 'लेबर' नामक पुस्तक सन् १८६६ में प्रकाशित हुई थी। मिलने 'फोर्टनाइटली' पत्रमें उसकी आलोचना करते हुए शास्त्रीय पद्धतिके साथ अपना मतभेद प्रकट किया और इस बातका समर्थन किया कि 'श्रमिक संघोंको संगठित होकर अपनी मजूरी बढ़ानेका प्रयास करना चाहिए। उनका यह कार्य सर्वथा उचित होगा।'

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ३७१।

आर्थिक गतिशीलता मिलके पूर्ववर्ती शास्त्रीय विचारक ऐसा मानकर चलते थे कि आर्थिक स्थिति ज्योंकी त्यों स्थिर है। उसमें कोई गतिशीलता नहीं है। मिलने अपनी पुस्तकके एक खण्डमें इसी समस्यापर विचार प्रकट किया और बताया कि समाजकी प्रगतिका उत्पादन एवं वितरणपर कैसा क्या प्रभाव पड़ता है तथा आविष्कार, सुरक्षा व्यापारिक क्षमता और योग्यता, संयुक्त प्रबन्ध आदि बातें आर्थिक जगत्में कैसी गतिशीलता उत्पन्न करती हैं और उनके कारण मनुष्यको प्रकृतिपर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेमें किस प्रकार सफलता प्राप्त होती है। मिलका यह अनुमान महत्त्वपूर्ण है।

संरक्षणवाद स्वतंत्रताका समर्थन करते हुए भी मिलने शिशु-उद्योगोंके विकासके लिए संरक्षणको उचित ठहराया है। लिस्टकी भाँति मिल भी इस बात-पर जोर देता है कि जबतक राष्ट्रके शिशु-उद्योग ठीक ढंगसे न पनप जायें, तब-तक उन्हें संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।[1]

सरकारी हस्तक्षेप शास्त्रीय पद्धतिके विचारक समाजकी आर्थिक प्रगति-के लिए न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप चाहते थे। मिल भी इसी नीतिका समर्थक था। वह कहता था कि सामान्य नीति तो यही रहनी चाहिए कि सरकार न्यून-तम हस्तक्षेप करे, परन्तु जहाँ 'अधिकतम व्यक्तियोंके अधिकतम हित' की बात आती हो वहाँ सरकारको हस्तक्षेप करना ही चाहिए। यदि उपभोक्ताओंके अधिकतम हितकी दृष्टिसे सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक प्रतीत हो तो सरकारको ऐसा कदम अवश्य ही उठाना चाहिए। शिक्षा, जमादारकी व्यवस्था, सार्वजनिक निर्माण और श्रमके कष्टोंके निवारण आदिके लिए भी सरकारी हस्तक्षेप वांछ-नीय है। मिलने उपभोक्ताओंके हितमें सरकारी हस्तक्षेपकी जो माँग की है, वह शास्त्रीय पद्धतिवाले विचारकोंको अद्भुत लग सकती है, पर हमें यह न भूलना चाहिए कि मिलपर बेंथमका प्रभाव पर्याप्त था। सरकारी हस्तक्षेपको दोषपूर्ण मानते हुए भी अधिकतम-कल्याणकी दृष्टिसे मिल उसे स्वीकार कर लेता है।

आदर्शवादी समाजवाद

श्रमिकोंकी दयनीय स्थिति मारकसी अनर्जित आय और धनके असमान वितरणने व्यक्तिगत स्वतंत्रताके समर्थक मिलके भावनाशील हृदयको अत्यधिक प्रभावित किया। शास्त्रीय पद्धतिका वह सबसे महान व्याख्याता माना जाता था फिर भी उस पद्धतिकी सीमाएँ मिलको अपने संकुचित दायरेमें आबद्ध रखनेमें असमर्थ रहीं। उसने आत्मकथामें अपने इन विचारोंका प्रतिपादन करते हुए एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया है, जो पूर्णतः साम्यवादी या समाजवादी नहीं है फिर भी

---

[1] जीद और रिस्ट वही पृष्ठ ३५०।

अन्य विचारक : २ :

मिल्के अवसानके अनन्तर शास्त्रीय पद्धतिको भारी धक्का लगा। उसका महत्त्व उत्तरोत्तर गिरता ही गया। इस गिरते हुए खँडहरकी दीवालोंको थोड़ा-बहुत सहारा देनेका श्रेय कैरिन्स (सन् १८२४–१८७५), फासेट (सन् १८३३–१८८४), सिडविक (सन् १८३८–१९००) और निकल्सन (सन् १८५०–१९२७) को है। उसके बाद मार्शलका उदय हुआ, जिसने शास्त्रीय पद्धतिको नव शास्त्रीय पद्धतिके रूपमें परिवर्तित कर दिया।

कैरिन्स

जान इलियट कैरिन्स लन्दनके युनिवर्सिटी कॉलेजमें प्राध्यापक था। उसकी कोई विशिष्ट देन नहीं है। वह मिलका अनुयायी था, पर मजूरी-कोषके सिद्धान्त-का समर्थक था और इस विषयमें मिलसे उसका मतभेद था।

कैरिन्सकी प्रमुख रचना है 'दि कैरेक्टर एण्ड लॉजिकल मेथड ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी' (सन् १८५९)। उसकी स्पर्द्धाहीन दलोंकी धारणा विशेष रूपसे प्रख्यात है, जिसमें वह मानता है कि प्रतिस्पर्द्धाको जो व्यापक क्षेत्र प्रदान किया जाता है, वह वस्तुतः है नहीं। वह केवल उन व्यक्तियोंके बीच होती है, जो सर्वथा मिलती जुलती स्थितिमें होते हैं।[१] कुलीकी मजूरीकी वृद्धिका अध्यापककी मजूरीके स्तरपर क्या प्रभाव पड़नेवाला है? ये दल परस्पर प्रतिस्पर्द्धा नहीं करते। कैरिन्स सीनियरकी भाँति उत्पादन-लागतको विषयगत मानता है। उसका मूल्य सिद्धान्त इसी विषयगत दृष्टिकोणकी अभिव्यक्ति करता है।[२]

फासेट

हेनरी फासेट केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक था। उसकी 'मैनुएल ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी' (सन् १८६३) नामक रचनाने ख्याति तो पर्याप्त अर्जित की, परन्तु उसमें किसी नवीन सिद्धान्तका प्रतिपादन नहीं, मिलका ही सर्वत्र पृष्ठपोषण दृष्टिगोचर होता है।[३]

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३७६।
२ ग्रे डेवलपमेंट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ २६०।
३ हॅने दिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ६८८।

कानून बनानेका अधिकार मिल जाय तो मैं उनकी सचाई जाँचे बिना न रहूँ।"[1] मिलकी इस माँगमें मुख्य करकी कल्पना है, जिसका महत्त्व आज किसीसे छिपा नहीं है।

मूल्यांकन

मिलकी आर्थिक धारणाओंमें यद्यपि कोई नवीनता नहीं है, तथापि आर्थिक विचारधाराके विकासमें उसका योगदान महत्त्वपूर्ण है। उसने उपयोगितावादको प्रतिष्ठा प्रदान की। वितरणको 'प्राकृतिक नियम' से मुक्त किया, अर्थशास्त्रको एक व्यापक बनाया और शास्त्रीय पद्धतिको वैज्ञानिक ढाँचेमें ढालनेका उत्तम प्रयास किया। उसका उस दिशामें विचार सम्पन्न न होता, तो वह पक्का समाजवादी बन गया होता। यह सही है कि उसकी विचारधारामें अनेक असंगतियाँ हैं। कहींपर वह समाजवादका विरोध करता दिखाई पड़ता है, कहींपर उसका समर्थन करता है, कहीं व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका समर्थक दीखता है, तो कहीं सरकारी हस्तक्षेपका समर्थन करता दिखाई पड़ता है, पर इन सब बातोंका कोई विशेष अर्थ नहीं। मिलने शास्त्रीय पद्धतिको नया मोड़ दिया।

मिलकी समाजवादी धारणाएँ आगे चलकर विशेष रूपसे विकसित हुईं। भूमिके राष्ट्रीयकरणका आन्दोलन हो, चाहे भूमिधारी कानूनके निर्माणके लिए चलनेवाला आन्दोलन हो, चाहे फेबियनवाद हो, सबके मूलमें जान स्टुअर्ट मिलकी विचारधारा अपना कार्य करती हुई दिखाई देती है। उसकी रचना 'प्रिंसिपल्स' का महत्त्व इंग्लैण्डपर तबतक छाया रहा, जबतक मार्शलने अपनी रचना आकर उपस्थित नहीं कर दी। • • •

१ जीड और रिस्ट : वही, पृष्ठ १७५-१७७।

इतिहासवादी विचारधारा

पूर्वपीठिका : १ :

आर्थिक जगत्‌में उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें— मध्यभागसे लेकर अन्त-तक इतिहासवादी विचारधाराका प्राबल्य रहा। इस विचारधाराको कामेरलवादकी जननी जर्मन-भूमिमें पनपनेका विशेष अवसर मिला।

शास्त्रीय पद्धतिके विचारक क्रमश संकीर्ण मनोवृत्तिवाले बनते गये। वे अपने ही भावना-जगत्‌में क्रीड़ा करने लगे। इधर दिन-दिन बाह्य जगत्‌में परिवर्तन होते जा रहे थे और आर्थिक समस्याएँ क्रमश. विषम बनती जा रही थीं। शास्त्रीय परम्पराके पास इन सब समस्याओंका कोई उपयुक्त उत्तर था नहीं। वे अपना विश्ववादिताका सिद्धान्त लेकर बैठे थे और उसीका राग अलापते जा रहे थे। उन्होंने रिकार्डो और से आदिकी जो निगमन-प्रणाली पकड़ रखी थी, उससे वे बुरी भाँति चिपटे थे। वैचारिक विकासकी दृष्टिसे अपने विचारोंमें वे कोई

उपयुक्त परिवर्तन कर नहीं रहे थे। सिद्धान्त और व्यवहारमें कोई मेल नहीं बैठ रहा था। इतिहासवादी विचारकोंने इन्हींके विरुद्ध आवाज उठायी। इसका सबसे तीव्र स्वर जर्मनीमें सुनाई पड़ा।

जर्मनीमें इतिहासवादी (Historical) विचारधारा दो पीढ़ियोंमें पनपी। एक पीढ़ी पुरानी थी जिसके प्रमुख विचारक थे—रोशर, हिल्डेब्राण्ड और नीस। नयी पीढ़ीका सबसे प्रमुख विचारक था—श्मोलर। पुरानी पीढ़ीका सर्वाधिक जोर शास्त्रीय पद्धतिकी आलोचनापर रहा और नयी पीढ़ीका जोर इस विचारधाराको वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करनेपर रहा।

सिस्माण्डीने अर्थशास्त्रकी समस्याओंपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेके लिए सबसे पहले ध्यान दिया था। आर्थिक वैषम्य उसके नेत्रोंके समक्ष था और तज्जनित समस्याएँ इतिहासका सिस्माण्डीकी अर्थशास्त्रकी दिशामें खींच ले गयीं। स्वयं मैल्थस भी इतिहास पद्धतिका अनुयायी था। उसके जनसंख्याके सिद्धान्तमें ऐतिहासिक दृष्टि प्रत्यक्ष है। सेण्ट साइमन और उनके अनुयायियोंने भी इतिहासका आश्रय लेकर अपनी आर्थिक धारणाएँ व्यक्त की थीं। राष्ट्रवादी विचारधारा और विशेषतः आर्थिक सिद्धान्तोंकी सापेक्षताका सिद्धान्त जर्मनीरूपी भूमिमें इसी कारण पल्लवित हो सका कि वहाँ राष्ट्रीयताकी भावना विशेष रूपसे विकसित थी। जर्मनीके विचारक ऐसा मानते थे कि आर्थिक सिद्धान्तोंका राष्ट्रके आर्थिक जीवनके साथ सामंजस्य रहना चाहिए, अन्यथा उनसे कोई लाभ नहीं होगा।

इसी भावभूमिमें हेगेलके द्वंद्वात्मक भौतिकवादका जन्म हुआ। उसका न्याय शास्त्रमें तो उपयोग किया ही गया स्टेन (सन् १८१५–१८९) ने अर्थशास्त्रमें भी उसका उपयोग किया और इस सिद्धान्तका आविष्कार कर डाला कि आर्थिक घटनाओंका भी एक ऐतिहासिक क्रम हुआ करता है। यह सोचना गलत है कि वे अकस्मात् ही घटती रहती हैं।[1] मार्क्सने हेगेलके सिद्धान्तको अर्थशास्त्रीय विचारधारामें जो वैज्ञानिक रूप प्रदान किया उससे कौन अपरिचित है !

जर्मन-विचारकोंने इस पूर्वपीठिकाका सदुपयोग कर इतिहासवादकी विचारधाराको पुष्पित और पल्लवित कर अर्थशास्त्रकी विचारधाराके विकासमें महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

अब हम इतिहासवादी विचारधाराके प्रमुख आचार्योंकी चर्चा करते हुए उनके विचारोंपर दृष्टिपात करें।

• • •

---

[1] हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २६०।

रोशर

प्रोफेसर विल्हेल्म रोशर (सन् १८१७–१८९६) जर्मनीकी इतिहासवादी विचारधाराका सर्वप्रथम विचारक है। वह गोटिनगेन और लिपजिगमें प्राध्यापक रहा। उसने शास्त्रीय पद्धतिका विधिवत् अध्ययन किया। सन् १८४३ मे अर्थशास्त्रपर उसकी जो व्याख्यानमाला प्रकाशित हुई, उसमें उसने इन चार तथ्योंपर विशेष जोर दिया[1] :

(१) अर्थशास्त्रका विवेचन न्यायशास्त्र, राजनीति और सभ्यताके इतिहासको दृष्टिमें रखकर ही किया जा सकता है।

(२) जनता मानवोंका वर्तमान समूहमात्र नहीं है। उसकी अर्थव्यवस्थाका अनुसधान करनेके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि तात्कालिक आर्थिक समस्याओंपर ही विचार किया जाय।

(३) चारों ओर बिखरी ऐतिहासिक सामग्रीमेंसे, विभिन्न जनसमूहोंकी भूतकाल और वर्तमान कालकी आर्थिक स्थितियोंमेंसे उनका तुलनात्मक अध्ययन करनेके उपरान्त ही आर्थिक सिद्धान्तोंका निश्चय करना चाहिए।

(४) इतिहासवादी पद्धति किन्हीं आर्थिक सस्थाओंकी निन्दा या प्रशसामे रस नहीं लेगी। कारण, ऐसी आर्थिक सस्थाएँ तो शायद ही कोई हों, जो पूर्णतः अच्छी हों अथवा पूर्णतः बुरी हों।

रोशरने इतिहासवादी पद्धतिका सबसे पहले वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। यद्यपि उसका दृष्टिकोण कुछ सकुचित था, तथापि उसने सम्बद्ध समस्याओंपर व्यावहारिक दृष्टिसे विचार करनेपर विशेष जोर दिया। उसकी यह धारणा थी कि आर्थिक सिद्धान्तोंके निर्माणके लिए तो इतिहासका आश्रय लेना ही चाहिए, उसके आधारपर राजनीतिज्ञ अपनी नीतियोंकी आधारशिला भी स्थापित कर सकते हैं। श्मोलरकी धारणा है कि रोशरने अर्थशास्त्रको सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दीके कामेरलवादसे जोड़नेका प्रयत्न किया।[2]

---

[1] हेने वही, पृष्ठ ५४०।

[2] जीद और रिस्ट ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ३८६।

हिल्डेब्राण्ड

ब्रूनो हिल्डेब्राण्ड (सन् १८१२–१८७८) मारबर्ग, ज्यूरिख, बर्न और जेना में प्राध्यापक था। उसने शास्त्रीय पद्धतिका अधिक व्यापक सैद्धान्तिक विरोध किया। उसकी मान्यता थी कि इतिहासके मार्फत अर्थशास्त्रका नये सिरेसे निर्माण हो सकता है। इतिहासका केवल दृष्टान्त रूपमें ही उपयोग नहीं करना चाहिए, अर्थशास्त्रकी नवरचनाके लिए भी उसका उपयोग करना चाहिए।

'वर्तमान और भविष्यकी अर्थव्यवस्था' (सन् १८४८) में हिल्डेब्राण्डने यह धारणा व्यक्त की है कि भविष्यमें अर्थशास्त्र राष्ट्रीय विकासका विज्ञान बनेगा। उसने विश्वबादितावादका विरोध कर इस बातपर जोर दिया कि प्रत्येक राष्ट्रके आर्थिक विकासके नियम भिन्न-भिन्न होते हैं। उसने आर्थिक विकासके तीन विभाग कर दिये प्राकृतिक अर्थव्यवस्था, द्रव्य-अर्थव्यवस्था और साख-अर्थव्यवस्था। शास्त्रीय पद्धतिके उत्पादन और वितरणके सिद्धान्त उसने प्रायः ज्योंके त्यों स्वीकार कर लिये।[1]

नीस

कार्ल नीस (सन् १८२१–१८९८) भी मारबर्ग, फ्रेबर्ग और हीडेलबर्गमें प्राध्यापक रहा। पुरानी पीढ़ीके इस अन्तिम विचारकने शास्त्रीय पद्धतिकी आलोचना तो की ही, अपने पूर्ववर्ती रोशर और हिल्डेब्राण्डकी भी आलोचना की।

नीसने 'ऐतिहासिक दृष्टिसे अर्थशास्त्र' (सन् १८५३) में इस बातपर जोर दिया है कि आर्थिक विचार समय एवं स्थान दोनोंके प्रति सापेक्ष हैं। उन्हें सार्वभौम मानना गलत है। वह मानता है कि अर्थशास्त्र और कुछ नहीं, केवल किसी देशके आर्थिक विकासका इतिहासमात्र होता है।[2]

नीसकी बातोंकी ओर समकालीन लोगोंने विशेष ध्यान नहीं दिया। सन् १८८३ में नयी पीढ़ीने उस ओर ध्यान दिया। ● ● ●

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ३८०।
२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ३८८।

पुरानी पीढ़ीके इतिहासवादी विचारक मुख्यतः शास्त्रीय पद्धतिकी आलोचनामें संलग्न रहे। वे अपनी पद्धतिको विशिष्ट वैज्ञानिक रूप प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हो सके। उनके सिद्धान्तों और मतोंमें एकरूपता भी नहीं थी। नयी पीढ़ीने और मुख्यतः उसके नेता श्मोलरने इस कार्यको पूर्ण किया। उसने कुछ रचनात्मक सुझाव उपस्थित किये। इस नयी पीढ़ीने पुरानी पीढ़ीके आलोचनात्मक अंशको तो स्वीकार किया, पर राष्ट्रीय विकास सम्बन्धी अर्थव्यवस्थाके उन अंशोंका त्याग कर दिया, जो भ्रामक एवं विवादास्पद थे। इस प्रकार उसने सारे विचारोंको विधिवत् काट छाँटकर उसे वैज्ञानिक जामा पहना दिया। इसके लिए उसने अनेक आँकड़ों और ऐतिहासिक तथ्योंका आश्रय लिया।

नयी पीढ़ीमें श्मोलरके साथ-साथ ब्रेण्टानो, हेल्ड, बूचर और सोम्बार्टके नाम प्रमुख रूपमें आते हैं।

श्मोलर

गुस्टाव श्मोलर (सन् १८३८-१९१७) हल, स्ट्रासबर्ग और बर्लिन विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक रहा। जर्मनीके महानतम अर्थशास्त्रियोंमें उसकी गणना की जाती है। उसकी 'आउटलाइन ऑफ जनरल इकॉनॉमिक थ्योरी' (दो खण्ड, सन् १९००-१९०४) नयी पीढ़ीकी प्रामाणिक रचना मानी जाती है।

सन् १८७२ में जर्मनीमें सामाजिक सुधारके लिए राजनीतिक कार्य करनेवाली Verein fur social politik संस्थाका जन्म हुआ। इस संस्थाने जर्मनीमें एक नये जीवनका संचार किया। इस संस्थाका प्रमुख आन्दोलन शास्त्रीय पद्धतिके विरुद्ध था। इस संस्थाके विकासमें श्मोलरका बड़ा हाथ था।

श्मोलरने निगमन प्रणालीका परित्याग न करके अनुगमन-प्रणालीको भी स्वीकार किया। वह कहता है कि 'निगमन और अनुगमन, दोनों ही प्रणालियाँ विज्ञानके लिए उसी भाँति आवश्यक हैं, जिस प्रकार चलनेके लिए मनुष्यको दोनों टाँगोंकी आवश्यकता होती है।' उसकी धारणा थी कि ऐतिहासिक और सांख्यिकीय निरीक्षणसे अनुगमन और मानवीय प्रकृतिसे निगमन-पद्धतिका आश्रय लेकर विज्ञानका विकास करना उपयुक्त होगा। उसने प्राकृतिक वातावरण, नृवंशशास्त्र और मनोविज्ञान सबकी सहायता लेना आवश्यक माना।[1]

[1] हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ५८७।

प्रमुख आर्थिक विचार

इतिहासवादी विचारधाराके विचार दो भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं :

(१) आलोचनात्मक विचार और
(२) रचनात्मक विचार ।

आलोचनात्मक विचार

इतिहासवादी विचारकोंके आलोचनात्मक विचारोंमें तीन बातें मुख्य हैं

(१) विश्ववादिताके सिद्धान्तका विरोध
(२) संकुचित मनोविज्ञानकी आलोचना और
(३) निगमन प्रणालीका विरोध ।

विश्ववादिताके सिद्धान्तका विरोध प्राचीन पद्धतिके विचारकोंकी ऐसी धारणा थी कि उनके आर्थिक सिद्धान्त सार्वकालीन और विश्वव्यापी हैं और इन सिद्धान्तोंकी आधारशिलापर खड़ा किया गया अर्थशास्त्र भी विश्वव्यापी एवं सार्वभौमिक है ।

इतिहासवादी विचारकोंको यह विश्ववादिता अस्वीकार थी । वे कहते थे कि ये नियम सापेक्ष हैं । राष्ट्र एवं कालके हिसाबसे उनमें परिवर्तन होता है । सब देशोंकी आर्थिक स्थिति एक समान न होनेके कारण जो बात एक स्थानपर लागू होती है, वही बात अन्य स्थानपर भी लागू होगी, ऐसा मान बैठना गलत है । समयकी गतिके अनुकूल इन नियमोंमें परिवर्तन करना होता है तभी ये समाजके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।[1]

इतिहासवादी कहते थे कि मुक्त-व्यापारका प्रश्न हो चाहे अन्य किसी बातका देश-कालकी स्थितिको और इतिहासको ध्यानमें रखना वांछनीय है । आर्थिक नियम भौतिक अथवा रसायनशास्त्रके नियमोंकी भाँति नहीं हैं । इतिहासके विकासके साथ नये-नये तथ्य प्रकाशमें आते रहते हैं उनके अनुकूल परिवर्तन करना आवश्यक होता है । अतः आर्थिक नियम 'शर्तके ही स्वीकार किये जा सकते हैं, बिना शर्त नहीं । स्थितिमें परिवर्तन होनेसे उनमें भी परिवर्तन होता है । इतिहासवादी मानते हैं कि स्मिथ और उसके अनुयायियोंने सबसे महान् घातक यह किया कि उन्होंने अपने सिद्धान्तोंको सार्वकालीन और विश्वव्यापी बनानेकी चेष्टा की ।

---

१ गीड और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डॉक्ट्रिन्स, पृष्ठ ३९९ ।
२ एरिक रौल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३ ।

संकुचित मनोविज्ञान : शास्त्रीय पद्धतिके विचारक मानवको स्वार्थका पुतला मात्र मानते थे। कहते थे कि व्यक्तिगत स्वार्थकी भावना ही आर्थिक प्रगतिकी जननी है।

इतिहासवादी कहते थे कि ऐसा सोचना गलत है कि मनुष्य जो कुछ करता है, उसके मूलमें स्वार्थकी ही एकमात्र प्रेरणा रहती है। ऐसा नहीं है। यह संकुचित मनोविज्ञान है। इसमें मानवकी रुचि, परिवार-प्रेम, जाति-प्रेम, स्वदेश-प्रेम, उदारता, त्याग, यशोलिप्सा, धर्म, आचार-विचार आदिकी सामान्य प्रवृत्तियोंकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। मनुष्यके अनेक कार्य स्वार्थसे प्रेरित न होकर परार्थवादी अनेक प्रवृत्तियोंसे प्रेरित होकर होते हैं। शास्त्रीय पद्धतिवालोंने जिस स्वार्थी एवं 'अर्थपरायण पुरुष' की कल्पना की है, वह कहीं ढूँढनेपर भी न मिलेगा, वह अयथार्थ और मिथ्या है। हिल्डेब्राण्डका कहना है कि शास्त्रीय पद्धतिवालोंने 'आर्थिक इतिहासको केवल 'अहं' का स्वाभाविक इतिहास बना दिया है।'[१]

निगमन-प्रणाली शास्त्रीय पद्धतिवाले विचारक स्मिथ, रिकार्डो आदि निगमन-प्रणालीके आधारपर ही अपना विवेचन करते थे। वे सार्वभौम रूपसे निगमन-प्रणालीका प्रयोग करते थे। इतिहासवादी कहते हैं कि शास्त्रीय पद्धतिवाले ऐसा सोचते थे कि किसी एक मूल सिद्धान्तके आधारपर तर्ककी सामान्य प्रणाली द्वारा सभी आर्थिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया जा सकता है। इतिहासवादी इसे असगत बताते हैं। उनका कहना है कि निगमनके स्थानपर अनुगमन-प्रणाली द्वारा, निरीक्षित तथ्यों और आँकड़ों, ऐतिहासिक निष्कर्षों एवं प्रयोगोंके आधारपर स्थिर किये गये सिद्धान्त ही सच्चे आर्थिक सिद्धान्त हो सकते हैं।[२]

रचनात्मक विचार

शास्त्रीय पद्धतिने अपनी कुछ धारणाएँ निश्चित कर ली थीं। जैसे, व्यक्ति स्वार्थका पुतला है और स्वार्थकी वृत्तिसे प्रेरित होकर वह सारे कार्य करता है। मुक्त-प्रतिस्पर्द्धा और मुक्त-व्यापारमें उसकी इस वृत्तिको भलीभाँति खुल खेलनेका अवसर प्राप्त होता है। यही कारण है कि आर्थिक संस्थाएँ अपने कार्यमें सतत संलग्न रहती हैं और माँग और पूर्तिका चक्र निरन्तर चलता रहता है। प्रतिस्पर्द्धाकी इस कसौटीमें छनकर ही मजूरी, मुनाफा और भाटकका निर्णय होता है।

इस पद्धतिके आधारपर शास्त्रीय पद्धतिके विचारक अपना सारा चिन्तन चलाते रहते थे। इसके अतिरिक्त और कोई भी मार्ग सम्भव है, ऐसा वे प्रायः

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३९६-३९७।
२ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ३९८।

नहीं मानते थे। उनकी सारी चिन्तन प्रणाली इन धारणाओंके भीतर ही इधर-उधर उड़ती रहती थी। आर्थिक जगत्में दिन-प्रतिदिन होनेवाली उथल-पुथलसे उन्हें कुछ लेना देना नहीं था। वे निर्लिप्त भावसे अपनी ही विचारधारामें निमग्न रहते थे।

इतिहासवादी विचारकोंको यह स्थिर गति स्वीकार नहीं थी। वे आँख खोलकर विश्वको देखना, समझना और उसका अध्ययन करना पसन्द करते थे। वे आर्थिक समस्याओंका व्यापक रूपसे निरीक्षण और अन्वेषण करना चाहते थे। इतिहासकी दृष्टिसे, मनोविज्ञानकी दृष्टिसे एवं मानवीय विज्ञान एवं मनोविज्ञानकी दृष्टिसे सारी समस्याओंके निराकरणके लिए वे आतुर थे। उनकी दृष्टिमें अर्थशास्त्र और उसका क्षेत्र सीमित एवं संकुचित न होकर अनन्त व्यापक था। वे अर्थशास्त्रके सिद्धान्तों और उद्देश्योंमें आमूल परिवर्तनके पक्षपाती थे। वे उसे व्यावहारिक और जीवनस्पर्शी बनानेके लिए उत्सुक थे पर नयी पीढ़ीने यह अनुभव किया कि इतनी व्यापक योजना कभी कुशलतासे नहीं हो सकेगी। अतः उन्होंने उसे भविष्यतम व्यवहार कर देनेकी बात सोची।[1]

इतिहासवादियोंकी मान्यता थी कि किसी भी देशकी भौगोलिक स्थिति, उसका प्राकृतिक साधन उसकी धार्मिक परम्परा उसकी राजनीतिक स्थिति, उसका इतिहास आदि अनेक बातें उसके आर्थिक जीवनपर प्रभाव डालती हैं। अतः यह आवश्यक है कि इन सब दृष्टियोंसे अध्ययन किया जाय और राजनीतिक संस्थाओं सभ्यता, संस्कृति कला, ज्ञान, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रोंके अध्ययन द्वारा आर्थिक सिद्धान्तोंकी गवेषणा की जाय। सामाजिक समस्याओंके सर्वांगीण अध्ययन द्वारा ही आर्थिक समस्याओंका अध्ययन हो सकेगा।

इतिहासवादी मानते थे कि आर्थिक सिद्धान्तोंके अध्ययनके साथ साथ किसी भी राष्ट्रकी आर्थिक जीवन-व्यवस्थाका विस्तृत ऐतिहासिक अध्ययन होना चाहिए। आर्थिक जीवनकी गतिशीलताकी ओर पूरा ध्यान देना चाहिए। ऐतिहासिक प्रणालीकी जानकारीके बिना आर्थिक विषयका अध्ययन अधूरा रहेगा। हिल्डेब्राण्डका कहना है कि 'सामाजिक प्राणीके रूपमें मनुष्य सभ्यताका शिशु है और इतिहासकी उपज। उसकी आवश्यकताएँ, उसका बौद्धिक दृष्टिकोण भौतिक पदार्थोंसे उसका सम्बन्ध अन्य मानव प्राणियोंसे उसका सम्बन्ध सदैव ही एक समान नहीं रहता। भूगोल उन्हें प्रभावित करता है इतिहास उनकी धारणाओंमें

---

[1] जीद और रिस्ट वही पृष्ठ ८ ।
[2] जीद और रिस्ट वही पृष्ठ ४ २ ८ ३ ।

संशोधन करता है और शैक्षणिक विकास उसमें आमूल परिवर्तन कर दे सकता है।'[1]

इस प्रकार इतिहासवादी विचारकोंने अपने रचनात्मक सुझावों द्वारा यह बताया कि इतिहासकी आधारशिलापर सारे आर्थिक सिद्धान्तोंका महल खड़ा करना चाहिए और इतिहासकी गतिको दृष्टिमें रखते हुए भूत और वर्तमानकी क्षितिजपर विचार करना चाहिए और आर्थिक समस्याओंका निराकरण करना चाहिए।

जर्मनीके इन इतिहासवादी विचारकोंकी भाँति शास्त्रीय पद्धतिकी जन्मभूमि इंग्लैण्डमें भी इतिहासवादका झण्डा बुलन्द हुआ। आगस्ट कोमटे, रिचार्ड जोन्स, क्लिफ लेजली, इन्ग्राम, बेगहाट, टोइन्बी, ऐशले आदिने इतिहासवादियोंके स्वरमें स्वर मिलाकर शास्त्रीय विचारधाराके प्रति अपना असन्तोष व्यक्त किया।[2]

मूल्यांकन

शास्त्रीय पद्धतिवालोंने आर्थिक विचारधाराके विकासमें जो स्थैर्य ला दिया था, रूढ़ मान्यताओंके सकुचित घेरेमें अपने सारे चिन्तनको अवरुद्ध कर दिया था, उसे इतिहासवादियोंने काट फेंका और विचारधाराका मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने आर्थिक समस्याओंके निराकरणके लिए व्यावहारिक मार्ग दिखाकर अर्थशास्त्रमें नवजीवनका सञ्चार किया।

इतिहासवादी विचारकोंका प्रत्यक्ष प्रभाव भले ही अधिक नहीं दीखता, पर इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दीकी आर्थिक विचारधारापर भीतर ही भीतर गहरा प्रभाव डाला और अर्थशास्त्रका क्षेत्र व्यापक बनाया। भले ही उनके कुछ निष्कर्ष अधूरे थे, उनमें एकांगिकता थी, पर उनका अनुदान महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अर्थशास्त्रको संकीर्णताके कठघरेसे बाहर निकालकर उसमें नये प्राण फूँके।

इसमें सन्देह नहीं कि इतिहासवादी विचारधाराने अर्थशास्त्रको व्यापकत्वकी ओर मोड़नेमें प्रशंसनीय कार्य किया है। ● ● ●

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ४०४।
२ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ५४६–५५२।

विषयगत विचारधारा

सुखवादी विचारधारा १

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें अमेरिकन विचारधाराने एक नया मार्ग पकड़ा। कुछ लोग उसे 'सुखवादी (Hedonistic) विचारधारा' के नामसे पुकारते हैं, जब कि कुछ लोग उसे 'विषयगत (Subjective) विचारधारा' कहते हैं।

इस धाराके विचारक इस आधारको लेकर चलते थे कि मनुष्य सुखके पीछे दौड़ता है और दुःखसे कतराता है। वे विषयको मनुष्यको मनुष्यके हृदयगत या आन्तरिक भावोंसे उसके व्यक्तित्वको प्राधान्य देते थे। उसके मनोविज्ञानपर अधिक जोर देते थे, उसके व्यक्तित्वके बाहर सामाजिक और बाह्य वातावरण पर कम।

... या एक साथ ही यूरोपके कई देशोंमें

पनपी। इसकी दो धाराएँ हो गयीं—एकने गणितपर जोर दिया, दूसरीने मनोविज्ञानपर।[1]

दो धाराएँ

१. गणितीय धारा (Mathematical School)

फ्रास—कूनों (सन् १८०१–१८७७),
वाल्रस (सन् १८३४–१९१०)

जर्मनी—गोसेन (सन् १८१०–१८५८)

इग्लैण्ड—जेवन्स (सन् १८३४–१९१०)

इटली—परेटो (सन् १८८८–१९२३)

स्वीडेन—कैसल (सन् १८६७–१९४५)

२. मनोवैज्ञानिक धारा (Psychological School)

आस्ट्रिया—मेंजर (सन् १८४०–१९२१)
वीजर (सन् १८५१–१९२६)
बम्-बवार्क (सन् १८५१–१९१४)

विषयगत विचारधारा
- गणितीय धारा
  - फ्रास — कूनो, वालरस
  - जर्मनी — गोसेन
  - इग्लैण्ड — जेवन्स
  - इटली — परेटो
  - स्वीडेन — कैसल
- मनोवैज्ञानिक धारा
  - आस्ट्रिया — मेंजर, वीजर, बम् बवार्क
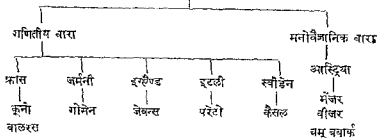
अभीतक चाहे शास्त्रीय पद्धतिवाले रिकार्डोके अनुयायी रहे हों, चाहे समाजवादी, सबका बल बाह्य वातावरणपर विशेष रूपसे रहता था। वस्तुके मूल्यका निश्चय या तो लागत दामसे होता था, अथवा श्रमके घंटोंसे। उसमें इस बातपर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था कि वस्तुके मूल्यके साथ मानवके मनोविज्ञानका, वस्तुकी उपयोगिताका, मानवकी आवश्यकताकी तृप्तिका भी कोई सम्बन्ध है? विषयगत विचारधाराके विचारक इस उपयोगिता और मानवकी इच्छाओंकी सतुष्टिके प्रश्नको लेकर आगे बढ़े। उनका कहना था कि वस्तुका मूल्य वस्तुके

---

[1] जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ४२८—४९२।

आन्तरिक मूल्यपर निर्भर नहीं करता, वह निर्भर करता है इस बातपर कि उप-भोक्तापर उसकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया कैसी होती है। उसे यदि वह वस्तु जँचती है, उसकी दृष्टिमें उसकी कोई उपयोगिता दिखाई पड़ती है, तब तो वह उसके लिए कोई कीमत चुकानेको तैयार होगा, अन्यथा वह उसके कौड़ी कामकी नहीं। उपभोक्ताकी इच्छाकी तीव्रताके साथ वस्तुके मूल्यका निकटतम और घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोई मात्र ऊँट क्यों न हो, पर ग्राहकको ऊँटकी आवश्यकता ही प्रतीत न हो, तो वह उसपर एक कौड़ी भी क्यों खर्च करेगा?

पूर्वपीठिका

विषयगत विचारधाराकी उपयोगिता और मुख्यतः सीमान्त उपयोगिताकी धारणाको विकसित करनेमें फरासीसी विचारक कोण्डिलाक (सन् १७१४–१७८०) और डूपिट, जर्मन विचारक गासेन, अंग्रेज विचारक वरली, लैंगम, ड्रेग (सन् १८२१) लांगफील्ड (सन् १८३३) और जेवन्स आदिका विशेष हाथ रहा है।[1] मनोवैज्ञानिक विचारधाराको ई. एच. वेबर (सन् १७९५–१८७८) के अनुसंधानोंसे बड़ी प्रेरणा मिली। उसने इस बातका विशेष रूपसे पता लगाया कि कुछ भावनाएँ कितनी देरतक तीव्रताके साथ ठहरती हैं। फेचनरने वेबरके सिद्धान्तको और अधिक विकसित किया, जिसके आधारपर बादकी उपयोगिता सिद्धान्तको प्रस्फुटित होनेका अवसर मिला।

शास्त्रीय विचारधाराकी इतिहासवादी आलोचनाने उसकी प्रतिष्ठाको बड़ी ठेस पहुँचायी थी। विषयगत विचारधाराके विचारकोंने उपयोगिता और मनोवैज्ञानिक तत्त्वोंका सहारा कर उसकी पुनः प्रतिष्ठाकी चेष्टा की और अर्थशास्त्रको विशुद्ध विज्ञान बनानेका प्रयत्न किया। निगमन और आगमन-पद्धतियोंको लेकर जर्मनीमें इतिहासवादी विचारकोंसे कोई बीस वर्षतक वाद-विवाद चलता रहा। मार्क्सवादियोंके श्रमके घण्टों द्वारा मूल्यके निर्धारणके तर्कका भी विषयगत विचार-धाराके विचारकोंने तीव्र विरोध किया और उसके प्रत्युत्तरमें सीमान्त उप-योगिताका सिद्धान्त खड़ा किया।

विचारधाराकी विशेषताएँ

विषयगत विचारधारा कुछ अंशोंमें शास्त्रीय विचारधाराका ही पृष्ठपोषण करती है। जैसे अर्थशास्त्र विशुद्ध विज्ञान है, निगमन ही उसकी उपयुक्त पद्धति है और उसका आधार मनोवैज्ञानिक है। आर्थिक स्वातंत्र्य और प्रतिस्पर्धापर भी दोनों ही बल देते हैं।

---

१. हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४८७-४८८।
२. हेने : वही, पृष्ठ ४ १।

परन्तु कुछ बातोंमें उसका मतभेद भी है। जैसे, विषयगत विचारधारावाले कहते हैं कि शास्त्रीय विचारकोंने कारण और परिणामके बीच भ्रम उत्पन्न कर दिया है। उनके माँग और पूर्ति, मूल्य और धनके वितरण आदिके अनेक सिद्धान्त चक्राकार घूमते हैं। विषयगत विचारधारावाले मानते थे कि माँग, पूर्ति और कीमत तीनों ही परस्परावलम्बी हैं और तीनों ही एक ही यन्त्रके पुर्जे हैं। वस्तुकी कीमतके नि रिणमें शास्त्रीय परम्परावाले जहाँ बाह्य कारणोंपर बल देते हैं, वहाँ विषयगत विचारधारावाले कहते हैं कि उपयोगिता ही वह पैमाना है, जिसके आधारपर किसी भी वस्तुकी कीमत तय होती है। वितरणके सिद्धान्तमें भी दोनोंमें भेद है। ●●●

गणितीय विचारधारा : २ :

गणितीय विचारधाराके प्रमुख विचारक हैं—कूर्नो, गोसेन, जेवन्स, परेटो, वालरस और कैसल ।

कूर्नो

फरासीसी विचारक एंटनी आगस्टिन कूर्नो (सन् १८ १–१८७७) ने यद्यपि सन् १८३८ में ही गणितीय विचारधारापर अपनी रचना 'एप्लिकेशन ऑफ मैथमैटिकल प्रिंसिपल्स टु थ्योरी ऑफ वेल्थ' प्रकाशित कर दी थी, पर उसकी ओर किसीने ध्यान ही नहीं दिया, यहाँतक कि कई वर्षोंतक उसकी पुस्तककी एक प्रतितक नहीं बिकी ! जेवन्सने कोई पचास वर्ष बाद उसे खोज निकाला और उसे गणितीय विचारधाराका जन्मदाता ठहराया ।

कूर्नो पहला अर्थशास्त्री था जिसने मूल्य-निर्धारणके लिए गणितीय सूत्रोंका प्रयोग किया और रेखाचित्रों (ग्राफ) के माध्यमसे माँग और पूर्तिको दिखानेकी प्रक्रिया आरम्भ की । उसका मत था कि माँग, पूर्ति और मूल्य तीनों ही एक-दूसरेपर आश्रित हैं । मूल्यके ही अंग हैं—माँग और पूर्ति ।

यों जहाँतक आर्थिक स्वातन्त्र्य और मुक्त-व्यापारकी बात थी, वहाँतक कूर्नो शास्त्रीय परम्पराके आदर्शोंको ही मानता था ।

गोसेन

जर्मन विचारक हर्मेन हेनरिख गोसेन (सन् १८१०–१८५८) के भाग्यने भी कूर्नोकी ही भाँति उसका साथ नहीं दिया । उसने 'डेवलपमेंट ऑफ दि लाज ऑफ एक्सचेंज एमंग मैन' पुस्तक सन् १८५४ में ही प्रकाशित की थी, पर किसीने उसे पूछातक नहीं । उसे लगा कि उसका बीस वर्षोंका श्रम व्यर्थ ही गया । अतः उसने बाजारसे सारी पुस्तकें खरीदकर उन्हें नष्ट कर डाला । संयोगसे उसने ब्रिटिश म्यूजियमको एक प्रति भेंट की थी, वह बची रह गयी । प्रोफेसर एडमसन और जेवन्सने उसके आधारपर गोसेनके विचारोंका अध्ययन कर उसे समुचित ख्याति प्रदान की ।

गोसेनने अपनी पुस्तकका श्रीगणेश ही इस वाक्यसे किया है—'मानव अपने जीवनके आनन्दका उपभोग करना चाहता है और वह अपना लक्ष्य बनाता है कि

---

१ जीद और रिस्ट : वही पृष्ठ [illegible] ।

उसे अधिकतम सुख किस प्रकार प्राप्त हो ?'[1] इसके आधारपर उसने मानवीय आचरणके तीन सिद्धान्त निकाले :

(१) सीमान्त उपयोगिताका सिद्धान्त,

(२) सम-सीमान्त उपयोगिताका सिद्धान्त और

(३) इच्छाओंकी सतुष्टिका सिद्धान्त ।

गोसेनका कहना है कि गणितीय पद्धतिकी सहायताके विना कुछ निष्कर्ष निकालना असम्भव है । अत. वह इस पद्धतिका आश्रय लेनेके लिए विवश है ।

सीमान्त उपयोगिताका सिद्धान्त बताते हुए वह कहता है कि किसी भी वस्तु-के उपभोगसे ज्यों ज्यों मनुष्यकी सतुष्टि होती जाती है, त्यों त्यों उसकी उपयोगिता घटती जाती है । उसकी मात्रा कम होती चलती है ।

सम-सीमान्त उपयोगिताका भी सिद्धान्त गोसेनने निकाला ।

गोसेनने मानवीय इच्छाओंकी सतुष्टिका सिद्धान्त बताते हुए कहा कि माँग-की तुलनामें जिन वस्तुओंकी पूर्ति कम होती है, उन्हींका मूल्य होता है । जिस मात्रामें वस्तुओंसे सतुष्टि प्राप्त होती है, उसी मात्राके अनुसार उनका मूल्य निर्धारित होता है ।

गोसेनने रेखाचित्रोंकी सहायतासे इन सिद्धान्तोंका विश्लेषण किया । आज अर्थशास्त्रके प्रारम्भिक विद्यार्थी भी इन सिद्धान्तोंको जानते हैं, पर गोसेनके युगमें तो इन सिद्धान्तोंका आविष्कार एक महती घटना ही थी । उस समय गोसेनकी ये बातें लोगोंको कल्पना-लोककी प्रतीत होती थीं । बहुत बादमें लोगोंने यह स्वीकार किया कि इनमें यथार्थता है ।

गोसेनने मानवीय आवश्यकताओंमें भेद भी किये थे । अनिवार्य आवश्यक-ताओं, सुविधाओं और विलासिताओंका पारस्परिक अन्तर भी बताया था । उसने यह भी कहा था कि मनुष्योंकी क्रयशक्तिमें अन्तर होता है । स्पष्ट है कि गोसेनने आधुनिक अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तोंमेंसे अनेक सिद्धान्तोंकी पूर्वकल्पना की थी ।[2]

जेवन्स

विलियम स्टेनले जेवन्स (सन् १८३५–१८८२) इंग्लैण्डका प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री, तर्कशास्त्री, अंकशास्त्री था । विषयगत विचारधाराका वह प्रमुख विचारक माना जाता है । यों उसकी गणना गणितीय विचारकोंमें की जाती है, पर वह मनोवैज्ञानिक धाराका भी विचारक माना जा सकता है और उसके सिद्धान्तोंका

---

१ एरिक रौल : ए हिस्ट्री आफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३७८—३७९ ।

२ ह्नेने : हिस्ट्री आफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ५६०—५६३ ।

आस्ट्रियन विचारकोंसे मेल बैठता है। सीमान्त उपयोगिताके सम्प्रदायोंमेंसे यह भी एक है।[1]

जेवन्सका जन्म लिवरपूलमें और शिक्षा-दीक्षा लन्दनमें हुई। सन् १८५४ में उसने सिडनी (आस्ट्रेलिया) की टकसालमें नौकरी कर ली। लौटनेपर पहले वह मानचेस्टरमें और बादमें सन् १८७६ से १८८ तक वह लन्दन विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक रहा। दो वर्ष बाद जलमें डूब जानेसे उसकी आकस्मिक मृत्यु हो गयी।

जेवन्सकी आर्थिक रचनाएँ हैं—ए सीरियस फाल इन दि वैल्यू ऑफ गोल्ड' (सन् १८६३) और 'दि कोल क्वेश्चन' (सन् १८६५)। उसकी बादकी रचनाएँ हैं 'थ्योरी ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी' (सन् १८७२) और दि स्टेट इन रिलेशन टू लेबर' (सन् १८८२)। मृत्युके उपरान्त प्रकाशित उसकी महत्त्वपूर्ण रचना है—'दि इनवेस्टिगेशन्स इन करेन्सी एण्ड फिनान्स' (सन् १८८४)।

प्रमुख आर्थिक विचार

गोसेनकी रचनाके प्रकाशनके कोई १७ वर्ष उपरान्त जेवन्सने ठीक वैसे ही आर्थिक विचार प्रकट किये, जैसे गोसेनने प्रकट किये थे यद्यपि जेवन्सको गोसेनके विचारोंका कोई पता न था।

जेवन्सके प्रमुख आर्थिक विचार दो भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं :

१ उपयोगिताका सिद्धान्त और
२ पूँजीके ब्याजका सिद्धान्त।

उपयोगिताका सिद्धान्त

शास्त्रीय पद्धतिके विचारक जहाँ अभीतक उत्पादन एवं वितरणपर ही सर्वाधिक जोर दिया करते थे वहाँ जेवन्सने सबसे पहले उपभोगको अपना मूल आधार बनाया। उसने उपयोगिताको सर्वाधिक महत्त्व दिया। उसका कहना था कि उपयोगिता ही वह शक्ति है, जो मानवकी किसी इच्छाकी तृप्तिका साधन बनती है। सुख और दुःखकी भावनासे वह अपने इस सिद्धान्तका श्रीगणेश करता है। मानवको वह सुखका पुंज मानता है, जो इस प्रयत्नमें रहता है कि उसे अधिकाधिक सुखकी प्राप्ति किस तरह हो सके। वह कहता है कि उपयोगिता किसी वस्तुका वह गुण है, जो सुख बढ़ाता है और दुःख कम करता है। उसे

---

१ ग्रे : डेवलपमेण्ट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ ३४२।
२ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ५६१।

जेवन्स एक अन्तरिक गुण न मानकर किसी वस्तु और किसी विषयके पारस्परिक सम्बन्धको व्यक्त करनेवाली शक्ति मानता है।[1]

उपयोगिता-ह्रास-नियमका विवेचन करता हुआ जेवन्स सीमान्त उपयोगिता-पर आता है और कहता है कि समग्र उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगितामें अन्तर होता है। सीमान्त उपयोगिताको ही वह किसी वस्तुके मूल्य निर्धारणका आधार मानता है। जेवन्सकी धारणा है कि 'मूल्य एकमात्र उपयोगितापर निर्भर करता है।' इस सम्बन्धमें उसका सूत्र इस प्रकार है[2] :

$$\frac{\phi_1 (अ - स)}{\psi_1 य} = \frac{य}{स} = \frac{\phi_2 स}{\psi_2 (ब - य)}$$

कल्पना कीजिये कि राम और गोपाल दो व्यक्ति आपसमें गेहूँ और चावल-का विनिमय करते हैं। (सी० उ० = सीमान्त उपयोगिता)

$$\frac{(\text{रामको गेहूँकी सी० उ०}) \times (\text{विनिमयके उपरान्त शेष गेहूँकी मात्रा})}{(\text{रामको चावलकी सी० उ०}) \times (\text{विनिमय किये गये चावलकी मात्रा})}$$

$$= \frac{\text{विनिमय किये गये चावलकी मात्रा}}{\text{विनिमय किये गये गेहूँकी मात्रा}}$$

$$= \frac{(\text{गोपालको गेहूँकी सी० उ०}) \times (\text{विनिमय किये गये गेहूँकी मात्रा})}{(\text{गोपालको चावलकी सी० उ०}) \times (\text{विनिमयके उपरान्त शेष चावलकी मात्रा})}$$

जेवन्सने मूल्यके श्रम-सिद्धान्तकी और यों सभी मूल्य-सिद्धान्तोंकी कड़ी आलोचना की। उसका कहना था कि अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ तो किसी भी मूल्य-पर पुन उत्पन्न की ही नहीं जा सकतीं। दूसरे, बाजारू मूल्य प्रायः घटता-बढ़ता रहता है, अतः यह उचित मूल्य होता नहीं। तीसरे, किसी वस्तुके उत्पादनमें व्यय होनेवाले श्रममें और उसकी कीमतमें बहुत कम सम्बन्ध रहता है। जैसे, ईस्टर्न स्टीमशिप, उसमें लागत तो बहुत लगी है, पर यदि उसका उपयोग न किया जा सके, तो उसका क्या मूल्य है ? जेवन्सका मत है कि एक बार जो श्रम लग जाता है, भविष्यमें उसका किसी वस्तुके मूल्यपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसकी उपयोगिताके अनुरूप उसकी कीमत चढ़ती-उतरती रहती है।[3]

सूर्यके धब्बोंका सिद्धान्त

जेवन्सने आर्थिक सकटोंका सूर्यके साथ सम्बन्ध जोड़ा। उसका कहना है कि

---

१ एरिक रौल ए हिस्ट्री आफ इकानॉमिक थॉट, पृष्ठ ३७९।
२ हेने वही, पृष्ठ ५९७।
३ हेने हिस्ट्री ऑफ इकानॉमिक थॉट पृष्ठ ५०३।

आर्थिक संकटोंका और सूर्यपर पड़नेवाले धब्बोंका पारस्परिक सम्बन्ध है। आँकड़ों की सहायता द्वारा उसने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया कि सूर्यकी रश्मियोंका अयनवृत्त क्षेत्रोंमें की जानेवाली कृषिपर तथा इंग्लैण्डमें वस्तुओंकी माँगपर कुप्रभाव पड़ता है। अब इस सिद्धान्तको कोई महत्त्व नहीं दिया जाता।[1]

जेवन्सकी यह भी मान्यता थी कि यद्यपि श्रम-संघ श्रमिकोंकी मजदूरी बढ़ानेमें विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, तथापि श्रमिकोंकी ओरसे कारखाने खुलने चाहिए और उन्हें इसके लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

जेवन्स अर्थशास्त्रमें अंकशास्त्रको बहुत महत्त्व प्रदान करता था। सूचक अंकों का उसे जन्मदाता ही माना जाता है। उपयोगिता सिद्धान्तके विकासमें जेवन्सका नाम चिरस्मरणीय रहेगा। अर्थशास्त्री इस बातको मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं कि जेवन्स ही वह प्रथम विचारक है जिसने उपयोगिता-सिद्धान्तके सम्बन्धमें पहलेसे यत्र-तत्र बिखरी सामग्रीको एकत्र किया और उसका विधिवत् विश्लेषण करके मूल्य, विनिमय एवं वितरणके विशद सिद्धान्तके रूपमें उसका विकास किया।[2]

वालरस

भूमिको प्रकृतिकी सर्वश्रेष्ठ देन बतानेवाले और उसके राष्ट्रीयकरणकी माँग करनेवाले फ्रांसीसी विचारक लियों वालरस (सन् १८३४–१९१०) ने शिक्षा तो इंजीनियरीकी प्राप्त की थी पर बन गया वह अर्थशास्त्री। स्विट्जरलैण्डमें लासानके विश्वविद्यालयमें वह बहुत समयतक प्राध्यापक रहा। इसको कुछ लोग ऋषि मानते हैं।

वालरसकी प्रसिद्ध रचना है 'एलीमेण्ट्स ऑफ प्योर पोलिटिकल इकॉनॉमी'। सन् १८७४ में इस पुस्तकका प्रकाशन हुआ। इसमें गणितीय विश्लेषण अपनी चरम सीमापर पहुँचा। वालरसने जेवन्ससे सर्वथा स्वतंत्र रूपमें किया।

लियोंपर उसके पिता आगस्ट वालरस (सन् १८०१–१८६६) का विशेष प्रभाव था। धनके स्वरूप और मूल्यके मूलपर उसकी एक रचना सन् १८३१ में प्रकाशित हुई। वह पुस्तकमें यह कहता है कि किसी भी वस्तुका न्यूनत्व उसका सीमित होना ही उस वस्तुको मूल्यवान् बनाता है। उत्पादनके साधनोंका मूल्य इसीलिए माना जाता है कि वे सीमित हैं अतः उनकी न्यूनता है। बाजारके समस्त व्यापार इसी कारण चलते हैं कि कुछ वस्तुओंकी

---

१. जिड ऐण्ड रिस्ट : वही, पृष्ठ ४०६।
२. जिड ऐण्ड रिस्ट : वही, पृष्ठ ४१०।

सीमा निश्चित है। माँग उन आवश्यकताओंका समूह है, जो तृप्ति चाहती हैं। पूर्ति उन वस्तुओंका समूह है, जो तृप्ति दे सकती हैं। दोनोंके लिए वस्तुका सीमित होना आवश्यक है।[1]

प्रमुख आर्थिक विचार

लियों वालरसने पिताकी विचारधाराको और अधिक विकसित कर गणितीय पद्धतिको विशिष्टता प्रदान की। यहाँतक कि लोग ऐसा मानने लगे कि गणितीय पद्धतिका जन्मदाता वालरस ही है।

वालरसके विचारोंको दो भागोंमें विभाजित कर सकते हैं :

(१) न्यूनत्वका सिद्धान्त और

(२) भूमिके राष्ट्रीयकरणका सिद्धान्त।

१. न्यूनत्वका सिद्धान्त

जेवन्सने जहाँ 'उपयोगिता' को अपनी विचारधाराका केन्द्रबिन्दु बनाया था, वहाँ वालरसने 'न्यूनत्व' को। वह कहता है कि वस्तुका सीमित होना विषयगत है और न्यूनताके अनुपातसे ही विनिमय-मूल्यका निर्धारण होता है। उसने कई वस्तुओंके मूल्यका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बताया कि उपयोगिताकी तीव्रतापर वस्तुकी माँग रेखा आश्रित रहती है और उसकी अन्तिम इकाईपर उसका मूल्य निर्भर करता है। इस सम्बन्धमें उसका सूत्र जेवन्सके सूत्रसे मिलता-जुलता हुआ ही है।[2]

बाजारमें सतुलन स्थापित करने और मूल्यके सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेमें वालरसकी देन अमूल्य है। उसने अपने सूत्रके अन्तर्गत उन सभी बातोंका समावेश करनेका प्रयत्न किया है, जो बाजारमें माँग और पूर्तिके सम्बन्धमें आपसमें सघर्ष किया करती है।

कल्पना कीजिये कि लन्दनके स्टाक एक्सचेंजकी भाँति सारा समाज एक कमरेमें आकर एकत्र हो गया है। उसमें क्रेता और विक्रेता सभी आकर जुट गये हैं। चारों ओर सब अपनी-अपनी कीमतोंकी आवाज लगा रहे हैं। सबके मध्यमें बैठा है एक व्यापारी, साहसी, उत्पादक या किसान, जो दोहरा काम करता है—एक हाथसे खरीदता है, दूसरेसे बेचता है। उत्पादकोंसे वह वालरसके शब्दोंमें 'उत्पादक सेवाएँ' क्रय करता है—भूस्वामीको भाटक, पूँजीपतिको ब्याज और श्रमिकको मजूरी देता है। उधर वे ही विक्रेता जब क्रेता बन जाते हैं, तो वह उन्हें अपने खेतकी, अपने कारखानेकी उत्पादित सामग्री बेचता है। पहले जो विभिन्न

---

१ ग्रे डेवलपमेण्ट आफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ ३१६।

२ हेने हिस्ट्री आफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ६००–६०२।

रूपमें अपनी सेवाएँ बेचते थे वे ही अब उपभोक्ताके रूपमें उत्पादित सामग्री क्रय करते हैं। इस आदान प्रदानमें, इस क्रय-विक्रयमें माँग और पूर्तिके हिसाबसे मूल्यका निर्धारण होता है। वालरसने इसका उत्तम विवेचन कर मूल्यका सिद्धान्त स्थिर किया है।[1]

विनिमय-मूल्य ज्ञात करनेके लिए वालरस ऐसा मानता था कि बाजारमें पूर्ण प्रतिस्पर्धा है और विनिमय करनेवाले दोनों पक्ष—क्रेता और विक्रेता—अधिकतम लाभ प्राप्त करनेके लिए इच्छुक हैं।

२. भूमिके राष्ट्रीयकरणका सिद्धान्त

वालरस पूर्ण प्रतिस्पर्धाका पक्षपाती है। उसका कहना है कि पूर्ण प्रतिस्पर्धासे प्रत्येक व्यक्तिको अधिकतम संतुष्टिकी प्राप्ति होती है। सन् १८९७ के पेरिसके अपने व्याख्यानोंमें उसने यह धारणा व्यक्त की थी कि सम्पत्ति दो विभागोंमें विभाजित की जानी चाहिए (१) जिसपर व्यक्तिगत स्वामित्व हो और (२) जिसपर सामूहिक स्वामित्व हो। भूमिको वह प्रकृतिकी देन मानता है और इस बातकी माँग करता है कि भूमिपर किसी व्यक्तिका नहीं, अपितु सारे समाजका स्वामित्व होना चाहिए। वालरसके इन विचारोंने हेनरी जार्जको भूमिके राष्ट्रीयकरणका आन्दोलन चलानेमें विशेष प्रेरणा दी।

परेटो

इटालियन विचारक विल्फ्रेडो परेटो (सन् १८४८–१९२३) लासान विश्वविद्यालयमें वालरसका उत्तराधिकारी था। उसने वहाँ विचारकोंकी एक गोष्ठी स्थापित की थी। उसकी प्रमुख रचना है—'द कोर्स ऑफ पोलिटिकल इकॉनॉमी' (सन् १८९६–९७)।

परेटो आरम्भमें गणितज्ञ और इंजीनियर था, बादमें वह अर्थशास्त्री बना। परेटोके नामसे कई सिद्धान्त प्रचलित हैं। आर्थिक दृष्टिसे सुपरिणाम प्राप्त करने के लिए उत्पादनके विभिन्न अंगोंमें एक निश्चित अनुपात आवश्यक है—यह उसका एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है। सम्पत्तिके विषम वितरणके सम्बन्धमें भी परेटोका एक सिद्धान्त है जिसमें आँकड़े देकर बताया गया है कि सम्पत्तिकी मात्रा जितनी ही अधिक होती है सम्पत्तिके स्वामियोंकी संख्या उतनी ही कम होती है।

सन् १९१६ में परेटोने समाज-विज्ञानपर एक पुस्तक लिखी—'ट्रीटाइज ऑफ जनरल सोशियालजी'।

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ५५३-५५४।
२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ५६०।
३ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ६८०-६८१।

प्रमुख आर्थिक विचार

परेटोने मानव धारणाओंके दो विभाग किये हैं—एक तर्कसंगत और दूसरा भावनात्मक। यों वह दोनोंमें सन्तुलनका पक्षपाती है। वह इच्छाओं और उनकी बाधाओंके बीच, अपनी इच्छाओं और दूसरोंकी इच्छाओंके बीच सामंजस्य स्थापित करनेपर जोर देता है। इसके लिए वह राज्यके नियन्त्रणकी बात भी करता है। परेटोके विचारोंसे फासिस्टी आन्दोलनको बड़ी प्रेरणा मिली।

कैसल

स्वीडिश अर्थशास्त्री गुस्ताव कैसल (सन् १८६७–१९४५) भी पहले इंजीनियर था, बादमें अर्थशास्त्री बना। कैसलने वालरसके सिद्धान्तोंका विशेष रूपसे विकास किया और उन्हें वितरण एवं द्रव्यपर भी लागू किया।[1]

कैसलकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'आउटलाइन ऑफ एन एलीमेण्टरी थ्योरी ऑफ प्राइसेज' (सन् १८९९), 'नेचर एण्ड नेसेसिटी ऑफ इण्टरेस्ट' (सन् १९०३) और 'थ्योरी ऑफ सोशल इकॉनॉमी' (सन् १९१८)।

प्रमुख आर्थिक विचार

कैसलके प्रमुख आर्थिक सिद्धान्त तीन हैं :

(१) मूल्य सिद्धान्त,

(२) क्रयशक्ति समता सिद्धान्त और

(३) व्यापार-चक्र सिद्धान्त।

कैसलके मूल्य-सिद्धान्तकी विशेषता यह है कि उसने पुरातन मूल्य सिद्धान्त एवं उपयोगिताके सिद्धान्तोंको समाप्त करनेका सुझाव दिया था। ऊपरसे कुछ भेद प्रतीत होनेपर भी उसका मूल्य सिद्धान्त वालरस और जेवन्सकी ही भाँति था। उसने मूल्य और कीमतमें भेद किया और माँग तथा पूर्तिके कोष्ठक बनाकर अपने सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेकी चेष्टा की।[2]

विदेशी विनिमय दरका पता लगानेके लिए कैसलने क्रयशक्ति समता सिद्धान्त-का प्रतिपादन किया। उसने उसने पुरानी विनिमय दर तथा सूचक अंकोंकी सहायतासे सामान्य दरका पता लगानेका प्रयत्न किया। कुछ असंगतियोंके बावजूद उसका यह सिद्धान्त उत्तम माना जाता है।

कैसलके अनुसार बचत ही कीमतोंके अचानक चढ़ने या गिरनेका कारण

---

१ हेने वही, पृष्ठ ६०२।

२ हेने वही, पृष्ठ ६०३।

होती है, वस्तुओंकी माँगमें कमी-बेशी उसका कारण नहीं। मुद्रा अधिक होनेपर कीमतें बढ़ती हैं, कम होनेपर गिरती हैं।[1]

गणितीय पद्धतिका मूल्यांकन

मार्शल, एजवर्थ, फिशर, हिक्स, एलेन, सामुएलसन आदि अनेक आधुनिक अर्थशास्त्री किसी मात्रामें गणितीय पद्धतिसे प्रभावित हैं।

अर्थशास्त्रकी गणितीय शाखाने विनिमयपर अपना विशेष जोर दिया है और उसीपर वह सारी अर्थव्यवस्था केन्द्रित मानती है। वह मानती है कि प्रत्येक विनिमय 'क = ख' के रूपमें प्रदर्शित किया जा सकता है। उनके सारे विवेचनमें इस प्रकार आदिसे अन्ततक गणितका आश्रय लिया गया है।

गणितीय पद्धतिने अर्थशास्त्रीय विश्लेषणको शुद्ध विज्ञानकी ओर बढ़ानेमें सहायता प्रदान की है। पर सभी मूल्यवादी गणितीय पद्धतिका समर्थन नहीं करते। आस्ट्रियाके विचारक मनोविज्ञानपर बड़ा जोर देते हैं। उनकी धारणा है कि प्रत्येक स्थानपर गणित लगानेका कोई अर्थ नहीं। • • •

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री आफ इकोनामिक डाक्ट्रिन्स, पृ० ५८१।

२ जीद और रिस्ट : वही, पृ० ५११।

मनोवैज्ञानिक विचारधारा : ३ :

मनोवैज्ञानिक विचारधारावाले अर्थशास्त्रियोंकी यह मान्यता थी कि मानवके आर्थिक कार्यकलापका मूल कारण मनोवैज्ञानिक होता है। मानवके मनोविज्ञान, उसकी आन्तरिक भावनाओंको वे अपने अध्ययनका केन्द्रबिन्दु मानकर चलते थे और उसी दृष्टिसे सारी समस्याओंका अध्ययन किया करते थे। उनके नामसे ऐसा कोई भ्रम नहीं होना चाहिए कि वे मनोविज्ञान या उसके किसी सिद्धान्तके आधारपर चलते थे। सुखवादी होनेके साथ-साथ वे गणितीय विचारधारासे भिन्न मत रखते थे, इसीसे उन्हें ऐसा नाम दिया गया था।

विचारधाराकी विशेषताएँ

यों इस विचारधारामें निगमन-प्रणालीका आश्रय, अर्थशास्त्रको विज्ञानका रूप देनेकी प्रवृत्ति, पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा एवं स्वातन्त्र्यपर अत्यधिक बल एवं मानवके कार्योंके मूलमें व्यक्तिगत स्वार्थकी भावना आदिकी बातें शास्त्रीय पद्धतिके अनुकूल ही थीं, पर कुछ बातें भिन्न भी थीं। जैसे—बाह्य विषयोंके स्थानपर आन्तरिक विषयोंको महत्त्व देना, आर्थिक और नैसर्गिक वस्तुओंमें वस्तुओंका विभाजन करना, वस्तुओंके मूल्यमें उपयोगिताको विशेष महत्त्व देना, उपयोगको अध्ययन-का विशेष क्षेत्र बनाना आदि। 'सीमान्त उपयोगिता' को अन्तिम रूप देना इस विचारधाराकी विशिष्टता है।

प्रमुख विचारक

मनोवैज्ञानिक विचारधाराके विचारकोंमें ३ व्यक्ति प्रमुख हैं—मेंजर, वीजर और बम बवार्क। आस्ट्रियामें यह धारा विशेष रूपसे प्रवाहित हुई। इनके पूर्व-वर्तियोंमें जेवन्स और लियों वाल्रसकी और अनुयायियोंमें विशेष रूपसे सैक्सकी गणना की जा सकती है।

मेंजर

कार्ल मेंजर (सन् १८४०–१९२१) मनोवैज्ञानिक विचारधाराका जन्म-दाता माना जाता है। आस्ट्रियाके गैलीशियामें उसका जन्म हुआ। प्राग, वियना और क्रैकोमें उसका शिक्षण हुआ। सन् १८७३ में वह वियनामें प्राध्या-पक नियुक्त हुआ। आस्ट्रियाके राजकुमार रुडोल्फका कुछ समयतक शिक्षक रहा। पुन प्राध्यापकी करने लगा और सन् १९०३ तक वियना विश्वविद्यालयमें

गया। सन् १९ में वह आस्ट्रियाकी संसद्के उच्च सदनका आजीवन सदस्य बना लिया गया।

मेंजरकी सबसे प्रमुख रचना है—'फाउण्डेशन ऑफ इकॉनॉमिक थ्योरी' (सन् १८७१)। मेंजरकी शिष्यमण्डलीने इसी रचनाके आधारपर अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है। निगमन और आगमन-प्रणालियोंके प्रश्नको लेकर श्मोलरके साथ मेंजरका दीर्घकालीन विवाद चलता रहा। मेंजरके कारण वियनामें अर्थशास्त्रकी शास्त्रीय धाराका विशेष रूपसे अध्ययन एवं अनुशीलन होता रहा।

प्रमुख आर्थिक विचार

मेंजरके प्रमुख आर्थिक विचारोंको तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है

(१) मूल्य-सिद्धान्त,

(२) द्रव्य-सिद्धान्त और

(३) अध्ययनकी प्रणाली।

१ मूल्य-सिद्धान्त

कारण और परिणामको मेंजर अपने विवेचनका केन्द्रबिन्दु मानकर चलता है। मानवकी इच्छाएँ ही उसके सारे कार्यकलापोंका कारण हैं। मानवीय आवश्यकताएँ ही मूल वस्तु हैं। आवश्यकताओंकी तृप्तिमें ही वस्तुओंकी उपयोगिता है। आवश्यकताकी तीव्रता एवं वस्तुकी पूर्तिमें कमीके अनुरूप ही मूल्यका निर्धारण होता है। मेंजरकी धारणा थी कि उपयोगिता ही मूल्यका वास्तविक आधार है उत्पादन-लागत नहीं। दिनभर श्रम करके समुद्रमें सबेरे कड़ी श्रम और वह यों ही पड़ी रहे तो उसका क्या मूल्य! परन्तु यदि हीरा अचानक ही हाथ लग जाय, तो उसका अत्यधिक मूल्य हो सकता है। श्रमकी मात्राको अथवा पूँजीके विनियोगको मूल्यका निर्धारक मानना गलत है। उसकी उपयोगिता कितनी है इसी दृष्टिसे मूल्यका निर्धारण होता है।

वस्तुओंको मेंजरने दो भागोंमें विभाजित किया : (१) आर्थिक वस्तुएँ और (२) नैसर्गिक वस्तुएँ। जिनकी पूर्ति सीमित है वे आर्थिक वस्तुएँ हैं जिनकी असीमित है वे नैसर्गिक। पर किसी वस्तुको सदाके लिए किसी एक भागमें विभाजित नहीं किया जा सकता। कभी आर्थिक वस्तु नैसर्गिक बन सकती है और कभी नैसर्गिक वस्तु आर्थिक।

उपभोक्ताके दृष्टिकोणके आधारपर भी मेंजरने आर्थिक वस्तुओंको तीन श्रेणियोंमें बाँटा है—प्रथम श्रेणीमें वे वस्तुएँ हैं जिनसे आवश्यकताकी पूर्ति प्रत्यक्ष होती है। जैसे रोटी। द्वितीय श्रेणीमें वस्तुओंके उत्पादन या

आवश्यकताकी पूर्ति नहीं होती, पर वे उसका कारण बनती हैं। जैसे, रोटीके लिए आटा। तृतीय श्रेणीमें वे वस्तुएँ आती हैं, जिनके द्वारा द्वितीय श्रेणीकी वस्तुएँ तैयार होती हैं। जैसे, गेहूँ। गेहूँका मूल्य इसी कारण है कि उससे आटा बनता है और आटेसे रोटी, जो कि मानवके जीवन-धारणके लिए अनिवार्य है।[1]

मेंजरकी दृष्टिमें किसी पदार्थके लिए ४ शर्तें अनिवार्य हैं .

(१) उस पदार्थके लिए मानवीय आवश्यकता हो।

(२) आवश्यकताकी तृप्तिके लिए उस पदार्थमें आवश्यक गुण हों।

(३) मनुष्यको इस कारण सम्बन्धका ज्ञान हो।

(४) आवश्यकताकी तृप्तिके लिए उस पदार्थको प्रयोगमें लानेवाली शक्ति हो।

इसी आधारपर मेंजरने अपने मूल्य सिद्धान्तके सारे ढाँचेको खड़ा किया है।[2]

२ द्रव्य-सिद्धान्त

मेंजरने द्रव्य सिद्धान्तके सम्बन्धमें जो विचार प्रकट किये हैं, वे मुख्यतः आस्ट्रियाकी तत्कालीन स्थितिकी दृष्टिसे हैं। द्रव्यपर उसने सर्वप्रथम आन्तरिक दृष्टिकोणसे विवेचन किया है, पर मर्यादित होनेके कारण उसका विशेष उपयोग नहीं है। शुद्ध द्रव्यके सिद्धान्तके सम्बन्धमें उसने सन् १८९२ में 'स्वर्ण' पर एक लम्बा लेख लिखा था, जो आधुनिक विचारकोंके लिए सिद्धान्त-निर्धारणमें बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है।[3]

३ अध्ययनकी प्रणाली

शास्त्रीय विचारधाराके अध्ययनके लिए निगमन-प्रणालीका आश्रय लिया जाय या अनुगमन प्रणालीका, इसपर मेंजरने लम्बा वाद-विवाद चलाया था। उसने स्वयं मुख्यतः निगमन प्रणालीका आश्रय लिया, पर उसके लिए वह इस बातपर जोर देता है कि आर्थिक पद्धति वैयक्तिक बुनियादपर खड़ी होनी चाहिए। वह कहता है कि किसी समाजके आर्थिक तत्त्व किसी सामाजिक शक्तिकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं होते, प्रत्युत वे आर्थिक कार्योंमें संलग्न मनुष्योंके व्यवहारका परिणाममात्र होते हैं। उन्हें विधिवत् समझनेके लिए यह आवश्यक है कि उसके सभी तत्त्वोंका और व्यक्तियोंके आचरणका भरपूर विश्लेषण किया जाय।[4]

---

१ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ६०६।
२ ग्रे • डेवलपमेण्ट ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन, पृष्ठ ३६५।
३ एरिक रौल ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ३८६।
४ एरिक रौल वही, पृष्ठ ३८५ ३८६।

वीजर

फ्रेडरिक फान वीजर (सन् १८५१–१९२६) वियना विश्वविद्यालयमें मेंजर का उत्तराधिकारी था। वह उसका जामाता भी था। उसकी दो रचनाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं—'नेचुरल वैल्यू' (सन् १८८९) और 'थ्योरी ऑफ सोशल इकॉनॉमिक्स' (सन् १९१४)।

प्रमुख आर्थिक विचार

वीजरने अपना सारा ध्यान मेंजरके सिद्धान्तोंके विश्लेषण और उनके विविध परिष्कार और प्रसारणमें ही केन्द्रित किया। उपयोगिताके सिद्धान्तका उसने विशेष रूपसे विकास किया। वीजरने कहा कि सीमान्त उपयोगितापर ही सभी पदार्थोंका मूल्य निर्भर करता है।

वीजरने मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे मूल्य सिद्धान्तका विवेचन किया। उसका कहना है कि हमारा मुख्य उद्देश्य है अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति। मूल्य हमारी मानसिक रुचिका ही एक स्वरूप है। मूल्यका केन्द्र उपभोगमें है। पर जब आवश्यकताओंकी वस्तुओंमें न्यूनता आती हो तो हमें अपना ध्यान उस ओर से हटाकर उत्पादन वस्तुओंकी ओर भी ले जाना पड़ता है। यह 'मूल्यारोपण' लागतका तत्त्व बन जाता है। प्रथम क्रमवाली वस्तुओंका मूल्य प्राकृत या प्राथमिक मूल्य रहता है, उत्तरोत्तर क्रमवाली वस्तुओंका मूल्य गौण मूल्य होता है। साहसी अपने कार्यमें लागत और दाम दोनोंको सम-सीमान्त रखनेका प्रयत्न करता है। वीजरका यह मूल्यारोपणका सिद्धान्त उसका विशिष्ट सिद्धान्त माना जाता है।[1]

वीजरने मूल्यमें लागतको अप्रत्यक्ष रूपसे ही सही स्थान देकर मनोवैज्ञानिक विचारधाराको विकसित करनेमें विशेष कार्य किया है।

बम बावर्क

यूजेन फान बम बावर्क (सन् १८५१–१९१४) भी वियना विश्वविद्यालयका प्राध्यापक था। इस विचारक-त्रयीमें यह सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं सबसे अधिक विश्लेषक एवं स्वतन्त्र बुद्धिवाला है।

बम बावर्ककी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'कैपिटल एण्ड इण्टरेस्ट' (सन् १८८४) 'ग्राउण्डवर्क्स ऑफ दि थ्योरी ऑफ कमोडिटी वैल्यू' (सन् १८८६) और 'पाजिटिव थ्योरी ऑफ कैपिटल' (सन् १८८८)।

प्रमुख आर्थिक विचार

बम बावर्कके प्रमुख आर्थिक विचार दो भागोंमें विभाजित कर सकते हैं :

---

1. हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डॉक्ट्रिन्स, पृष्ठ ३८४।

(१) सीमान्त युग्मोंका मूल्य-सिद्धान्त और
(२) व्याजका विषयगत सिद्धान्त ।

१ सीमान्त युग्मोंका मूल्य-सिद्धान्त

बम बवार्कने मेंजरके मूल्य सिद्धान्तपर विषयगत दृष्टिसे विचार तो किया, पर सीमान्त युग्मोंका अन्वेषण उसकी नयी शोध है।[1]

वह कहता है कि कल्पना कीजिये कि एक स्थानपर एक ही विक्रेता है, एक ही ग्राहक। यहाँपर ग्राहक सोचेगा कि विक्रीके पदार्थका जो उचित मूल्य है, उससे अधिक न दूँ। उधर विक्रेता सोचेगा कि पदार्थका मेरे निकट जितना मूल्य है, उससे कम न लूँ। इन दोनों सीमाओंके बीचमें उस पदार्थकी कीमत निश्चित होगी। इनमें जिस पक्षमें सौदेबाजीकी योग्यता अधिक होगी, वही लाभमें रहेगा।

अब ग्राहकोंकी एकपक्षीय प्रतिस्पर्द्धाकी कल्पना कीजिये। यहाँ क्रेता अनेक हैं, विक्रेता एक है। सब अपना-अपना दाम लगा रहे हैं। जो व्यक्ति सबसे अधिक दाम देनेको तैयार होगा, जिसे उस वस्तुकी विषयगत उपयोगिता सबसे अधिक लगेगी, उसके दाममें और उससे कम देनेवाले ग्राहकके दामके आसपास उस वस्तुका मूल्य निश्चित हो जायगा।

इसी प्रकारके बाजारकी कल्पना करके बम बवार्क यह निष्कर्ष निकालता है कि व्यावहारिक बाजारमें जहाँ एक ओर उपभोक्ताओंमें और दूसरी ओर उत्पादकोंमें प्रतिस्पर्द्धा चलती है, वहाँ सीमान्त युग्मोंकी सहायतासे वस्तुका मूल्य निश्चित होगा। एक सीमान्त युग्म वस्तुके मूल्यकी उच्चतम सीमा निश्चित कर देगा, दूसरा न्यूनतम। उसीके आधारपर मूल्यका निर्धारण हो सकेगा।

२ व्याजका विषयगत सिद्धान्त

बम बवार्कने 'पॉजिटिव थ्योरी ऑफ कैपिटल' में व्याजके विषयगत सिद्धान्तका प्रतिपादन किया, जिसके उसने तीन मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक कारण दिये हैं :

(१) मनुष्य यह सोचता है कि उसका भविष्य उसके वर्तमानकी अपेक्षा उज्ज्वल है। अतः आज उसे धनकी जो सीमान्त उपयोगिता है, वह कल नहीं रहेगी। आजका उपभोग यदि कम करके वह भविष्यके लिए बचाता है, तो उसके इस बचे हुए धनपर उसे व्याज मिलना उचित है, अन्यथा उसमें बचतकी प्रेरणा नहीं रहेगी।

(२) मनुष्य वर्तमान आवश्यकताओंकी तीव्रताका अनुभव तो करता है,

---

१ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ६१६-६१७।

भावी आवश्यकताओंका नहीं। ब्याजका प्रलोभन न रहे, तो वह वर्तमान आवश्यकताओंमें कमी करना क्यों स्वीकार करेगा ?

(३) आजका उत्पादन वैज्ञानिक और चक्राकार हो गया है और उसके फलस्वरूप आजकी उत्पादन-लागत कम कम हो जायगी। समयके अनुसार वस्तुएँ खराब और नष्ट भी होती हैं। अतः मनुष्य वर्तमानमें उपभोग करना अच्छा मानता है। उससे विरत करनेके लिए ब्याजका प्रलोभन आवश्यक है।[1]

इन तीन आधारोंपर बम बावर्क ब्याजका औचित्य सिद्ध करता है और उसे अनर्जित आयके क्षेत्रसे हटाना चाहता है।

बम बावर्कके ये दोनों सिद्धान्त आजके अर्थशास्त्रियोंको स्वीकार नहीं हैं, फिर भी विचारधाराके विकासमें तो इनका महत्त्व है ही।

विचारधाराका प्रभाव

मनोवैज्ञानिक और गणितीय विचारधाराओंने आर्थिक विचारधाराके विकासमें अच्छा योगदान किया है, इस बातको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

मनोवैज्ञानिक विचारधाराने समकालीन विचारकोंपर विशेष प्रभाव डाला। फिलिप्पोविच और एमिल सैक्सने इस शाखाको विकसित करनेमें सहायता की। प्रथम विश्वयुद्धके उपरान्त वियनाके यह विचारधारा समाप्त होकर यत्र-तत्र बिखर गयी। लुडविग फान मीसेज और हायकने इंग्लैण्डमें इसका प्रचार किया।

विकस्टीड प्रभृति जैसे ब्रिटिश और क्लार्क पैटन फेटर जैसे अमरीकी विचारकोंपर उसका प्रभाव विशेष रूपसे परिलक्षित होता है।

मार्शल और उसके नवशास्त्रीय सिद्धान्तपर भी इस विचारधाराका स्पष्ट प्रभाव है। ● ● ●

---

१ [illegible], पृष्ठ ३२८, ३३१।

समाजवादी विचारधारा : २

राज्य-समाजवाद

अर्थशास्त्रकी शास्त्रीय विचारधाराने जिन अनेक प्रतिक्रियाओंको जन्म उनमें समाजवादी प्रतिक्रियाका विशेष स्थान है। समाजवादकी धाराका उदय पहले ही हो चुका था, पर वैज्ञानिक समाजवादका विकास मार्क्स और अनुयायियोंने किया। इस धाराके विकसित होनेमें राज्य-समाजवादी विचारधाराका भी एक विशिष्ट स्थान है। कल्पनाशील मस्तिष्ककी उड़ानसे आगे बढ़कर समाजवाद जब वैज्ञानिकताकी ओर अग्रसर हुआ, तो जर्मनीमें प्रिंस बिस्मार्ककी छत्र-छायामें उसने जो स्वरूप ग्रहण किया, उसे 'राज्य-समाजवाद' (State Socialism) कहते हैं।

एक ओर मार्क्स और एंजिल्की क्रान्तिकारी विचारधारा पनप रही थी, दूसरी ओर 'कुर्सीपर बैठकर समाजवादकी उड़ान भरनेवाले' राडबर्टस और

लासाल जैसे अर्थशास्त्री राज्य-समाजवादके सक्रिय अग्रदूत रहे थे। इन अर्थशास्त्रियोंके नामके साथ 'समाजवाद' शब्द जोड़ना युक्तिसंगत तो नहीं है, पर इन्होंने भी समाजवादकी वकालत की है, इसलिए इन्हें भी इसी विचारधाराके अन्तर्गत स्थान दिया जाता है। ये लोग न तो व्यक्तिगत सम्पत्तिके निर्मूलनके पक्षमें थे और न अनर्जित आयकी समाप्तिके। इनका नारा यह था कि राज्य ही वह उपयुक्त माध्यम है, जिसके द्वारा आर्थिक वैषम्य एवं आर्थिक संघर्षोंका निवारण किया जा सकता है।[1] अतः राज्यके हाथमें नियंत्रणकी सत्ता देकर तथा आर्थिक व्यवस्थामें शान्तिपूर्वक सुधार करके आर्थिक संघर्षोंसे मुक्त हुआ जा सकता है। राज्य इस प्रकारके कानून बनाये जिनसे दरिद्र-वर्गकी स्थितिमें समुचित सुधार हो सके। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें यह विचारधारा जर्मनीमें विशेष रूपसे पुष्पित-पल्लवित हुई।

यों राज्य-समाजवादकी विचारधाराने संगठित आर्थिक या राजनीतिक आन्दोलनका रूप कभी नहीं लिया, उस समय उसका विस्तृत विकास भी नहीं हुआ, पर आगे चलकर उसके मूल सिद्धान्त व्यापक बने और आज भी कल्याण-कारी राज्योंमें वे विभिन्न रूपोंमें पलते-पनपते रहते हैं।

राज्य-समाजवादी विचारकोंमें दो बातें मुख्य रूपसे लक्षित होती हैं: (१) मुक्त-व्यापार एवं अहस्तक्षेपकी शास्त्रीय नीतिका विरोध और (२) नैतिक आधारपर समाजवादका समर्थन। ये लोग ऐसा मानते थे कि मुक्त व्यापार और खुली प्रतिस्पर्धाके कारण श्रमिकोंके प्रति अन्याय होता है। अतः श्रमिकोंके प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार होना चाहिए और ऐसा व्यवहार पूँजीपति करते नहीं यद्यपि उन्हें ऐसा करना चाहिए। अतः राज्यको सरकारी हस्तक्षेप द्वारा इस कार्यको पूरा करना चाहिए। ये व्यक्तिगत सम्पत्ति, ब्याज, मुनाफा, भाटक आदिको समाप्त करनेके पक्षमें तो नहीं थे पर उनका कम करना चाहते थे। ये व्यक्तिवाद और स्वातन्त्र्यवादको अनर्थोंका कारण मानते थे और ऐसा कहते थे कि राज्यके नियमन द्वारा इनपर अंकुश लगाया जा सकता है। इस व्यवस्थाको ये राष्ट्रीय सीमाके अन्तर्गत रखनेके ही पक्षमें थे।

पूर्वपीठिका

राज्य-समाजवादी विचारधारापर शास्त्रीय विचारधाराके दोषोंकी आलोचना करनेवाले कई विचारकोंका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैसे सिसमाण्डी, लिस्ट, जान स्टुअर्ट मिल, सेंट साइमनवादी मोरो [illegible] आदि।

---

1. हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक थॉट, पृष्ठ ४७८।

लिस्ट और मिल आदिने अहस्तक्षेपकी नीति और सरकारी हस्तक्षेपपर जो ज़ोर दिया था, उससे राज्य-समाजवादियोंको प्रत्यक्ष रूपसे भले ही प्रेरणा न मिली हो, परोक्ष रूपसे तो मिली ही। उधर सेंट साइमनवादियों आदिने नैतिक दृष्टिसे समाजवादपर जो बल दिया था, उसका भी इन विचारकोंपर प्रभाव पड़ा।[1] इसके अतिरिक्त इतिहासवादकी विचारधारा भी इन्हें प्रभावित कर रही थी।

जर्मनीकी तत्कालीन स्थिति भी इस विचारधाराके उदयका कारण बनी। सन् १८४८ के बाद वहाँ श्रमिकोंकी संख्यामें वृद्धि हो जानेके कारण उनकी समस्याएँ विषम बनने लगीं और उनका निराकरण आवश्यक प्रतीत होने लगा। समाजवादकी ओर लोग आशाभरी दृष्टिसे देखने लगे थे। अतः समाजवादके नामपर इस धाराको पनपनेमें विशेष सुविधा हुई, यद्यपि बिस्मार्क पर्देके पीछे अपना तंत्र चला रहा था। जर्मनीके प्रतिक्रियावादी लोग और उनके साथ रूढ़िवादी विचारक मिल-जुलकर इस विचारधाराके विकासमें संलग्न हुए।

राडबर्टस और लासालने आरम्भमें इस विचारधाराको विकसित किया। बादमें वेगनर, श्मोलर, शाफल, बूचर आदिने आइसेनाख काँग्रेस (सन् १८७२) में इसे परिपुष्ट कर व्यवस्थित रूप दिया। मजेकी बात यह है कि जिन लोगोंने इस विचारधाराको जन्म दिया, उन्हींने आगे चलकर इसे अस्वीकार कर इसका मजाक उड़ाया।

राडबर्टस

जान कार्ल राडबर्टस (सन् १८०५–१८७५) को वेगनरने 'समाजवादका रिकार्डो' कहकर पुकारा है। उसकी देन है भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण। मार्क्सके उपरान्त सम्भवतः राडबर्टस ही वह व्यक्ति है, जिसका समाजवादी विचारधारा-पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है।

राडबर्टसके पिता न्यायके प्राध्यापक थे। वे चाहते थे कि पुत्र भी उनकी भाँति न्यायका शिक्षक बने। गोटिनगेन और बर्लिनमें शिक्षा ग्रहण कर उसने वकालत पास की और वकालत शुरू भी कर दी, पर उसमें उसका जी नहीं लगा। वह यूरोपकी यात्रापर निकल गया। सन् १८३४ में उसने एक बड़ी जमींदारी खरीद ली और उसीके निरीक्षणमें उसने अपना जीवन शान्तिपूर्वक बिताया। सन् १८४८ में वह प्रशाकी लोकसभाका सदस्य चुना गया। वह मंत्री भी नियुक्त किया गया था, पर सहयोगियोंसे पटरी न बैठनेके कारण उसने दो सप्ताहमें ही त्यागपत्र दे दिया।

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ४१०–४१६।

राडबर्टसने श्रमधाराका अच्छा अध्ययन किया था। उसके विचार व्यापक एवं तर्कपूर्ण थे। पूँजीवादके दोषोंका उसने विशद रूपसे सांगोपांग वर्णन किया है। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं—हमारी आर्थिक स्थिति (सन् १८४२) सामाजिक पत्र (सन् १८५०–१८५१); सामान्य श्रम-दिवस (सन् १८७१) और सामाजिक प्रश्नपर प्रकाश (सन् १८७५)।

राडबर्टसके विचारोंका जर्मनीके विचारकोंपर तो प्रभाव पड़ा ही, अमेरिकाके विचारक भी उससे कम प्रभावित नहीं हुए।[1]

प्रमुख आर्थिक विचार

रिकार्डोने जिस प्रकार एडम स्मिथ तथा अन्य शास्त्रीय पद्धतिके विचारकोंके विचारको विधिवत् सम्पादन कर उन्हें व्यवस्थित रूप प्रदान करनेकी चेष्टा की थी, वही काम श्रमण समाजवादियोंके लिए राडबर्टसने किया।

राडबर्टसने पूँजीवादी समाजका विश्लेषण विशेष रूपसे किया और उससे यह सिद्ध किया कि पूँजीवादी व्यवस्था समाजका अशान्तिका कारण है। अतः उसकी समाप्ति होनी चाहिए। उसके अन्तके लिए उसने राज्य-समाजवादका शान्तिपूर्ण साधन प्रस्तुत किया।

राडबर्टसके आर्थिक विचारोंको दो श्रेणियोंमें विभाजित कर सकते हैं

(१) पूँजीवादका विश्लेषण और

(२) समस्याका निराकरण।

१ पूँजीवादका विश्लेषण

राडबर्टसने इन ४ सिद्धान्तोंके आधारपर पूँजीवादका विश्लेषण किया

(१) श्रम सिद्धान्त

(२) मजदूरीका लौह-सिद्धान्त,

(३) मारक-सिद्धान्त और

(४) आर्थिक संकटका सिद्धान्त।

श्रम-सिद्धान्त राडबर्टस यह मानता है कि श्रमके ही द्वारा वस्तुओंकी रचना होती है। किसी भी वस्तुके सृजनके लिए श्रमकी आवश्यकता पड़ती है। इस श्रमके दो भाग हैं—एक बौद्धिक और दूसरा शारीरिक। बौद्धिक श्रमसे कोई मजदूर नहीं आती। यह मूल्यवान् तो है परन्तु यह प्राकृतिक है और प्रकृतिसे मुफ्तमें होकर लगता है। शारीरिक श्रम शरीरके द्वारा अथवा पूँजी और यंत्रके द्वारा वस्तुओंका सृजन करता है।

---

[1] हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४५।

राडबर्टस श्रमको वस्तुका उत्पादक मानता है, मार्क्सकी भाँति वस्तुके मूल्यका निर्णायक नहीं मानता।[1]

मजूरीका लौह-सिद्धान्त : मजूरीके शास्त्रीय सिद्धान्तका विवेचन करते हुए राडबर्टस कहता है कि मजूरी जीवन-निर्वाहके स्तरसे ऊपर न उठेगी, इसका अर्थ यह है कि जबतक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था चालू रहेगी, तबतक श्रमिकोंकी आर्थिक स्थितिमें कोई सुधार होनेकी आशा नहीं है। किन्तु ऐसा तो ठीक नहीं है। श्रम ही जब सभी वस्तुओंके उत्पादनका कारण है, तो उसके लाभसे श्रमिक क्या सदैव ही वंचित बने रहें? मजूरीका लौह-सिद्धान्त यदि श्रमिकोंको सदाके लिए जीवन स्तरपर ही निर्वाह करनेके लिए विवश करता है और पूँजीवादी व्यवस्थामें उसके लिए कोई समाधान नहीं है, तो इस पूँजीवादी व्यवस्थाका ही अन्त कर देना चाहिए।

भाटक-सिद्धान्त : राडबर्टसने राष्ट्रीय आयके दो साधन माने हैं . मजूरी और भाटक—भूमिका और पूँजीका। श्रमिक अपने निर्वाहसे अतिरिक्त जितना पैदा करता है, वह अतिरिक्त आय भाटक है। पूँजीके कारण, व्यक्तिगत सम्पत्तिके कारण पूँजीपति लोग श्रमिकके अधिक उत्पादनका लाभ उठाकर उसे उसके अंशसे वंचित करते हैं। श्रमिककी साधनहीनताके कारण पूँजीपतिको उसका शोषण करनेमें सुभीता रहता है। अतः शोषणके इस साधनकी समाप्ति वाछनीय है।

आर्थिक संकटका सिद्धान्त . राडबर्टस मानता है कि राष्ट्रीय आयमें मजूरीका अंश दिन-प्रतिदिन घटता जाता है, उत्पादन बढ़ता जाता है, श्रमिकोंकी क्रय-शक्तिका ह्रास होता चलता है, जिसका प्रत्यक्ष परिणाम यही है कि आर्थिक संकट उत्पन्न होते हैं। एक ओर अति उत्पादन होता है, दूसरी ओर क्रय शक्तिका अभाव। अत. आर्थिक संकट चारों ओर घिरे रहते हैं।[2] पूँजीवादके इस अन्तर्विरोधको दूर करनेके लिए पूँजीवादका उन्मूलन आवश्यक है।

शास्त्रीय पद्धतिके विचारक ऐसा मानते थे कि प्राकृतिक नियमोंका पालन होता रहे, सबको आर्थिक स्वतंत्रता रहे और मुक्त प्रतिस्पर्द्धा चालू रहे, तो समाजकी सभी समस्याओंका स्वत. निराकरण हो जायगा, माँग और पूर्तिका संतुलन हो जायगा, साधनोंके अनुसार उत्पादन हो सकेगा और विभिन्न उत्पादक-वर्गोंमें उत्पत्तिके फलका न्यायपूर्ण रीतिसे वितरण हो सकेगा।

राडबर्टसने इन धारणाओंको गलत बताते हुए कहा कि अनुभवने यह बात सिद्ध कर दी है कि ये मान्यताएँ गलत हैं। जिस वर्गकी विनिमय शक्ति दुर्बल है,

१ हेने हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४८०-४८१।

२ हेने वही, पृष्ठ ४८२।

वहाँ उतने अधिक शोषणका विस्तार बनता है। मुक्त-प्रतिस्पर्धाका भ्रम यही है कि लूट और शोषणके लिए साधन-सम्पन्न व्यक्तिको खुली छूट मिल जाती है। माँग और पूर्तिका संतुलन होता नहीं। वस्तुओंका उत्पादन समाजकी आवश्यकताके अनुसार न होकर वास्तविक माँगके अनुकूल होता है। उसका परिणाम यही होता है कि जिनके पास पैसे हैं, उनके उपभोगकी वस्तुएँ तो तैयार हो जाती हैं, पर जिनके पास पैसोंका अभाव होता है, वे बेचारे आवश्यक वस्तुओंके अभावमें बिलखते रहते हैं। उत्पादक लोग साधनोंका सर्वोत्तम उपयोग नहीं करते। वितरण तो असमान और वैषम्यपूर्ण रहता ही है।'[1]

२. समस्याका निराकरण

टाउनरकी दृष्टिसे इस आर्थिक वैषम्य एवं शोषणके निराकरणका मार्ग है भूमि और पूँजीका राष्ट्रीयकरण। पर वह ऐसा मानता है कि इस स्थितिमें आनेमें कोई ५ वर्ष लगेंगे। इस सम्बन्धमें उसने प्रगतिके तीन स्तर बताये हैं

(१) बर्बर स्तर : इस स्थितिमें मनुष्य मनुष्यको गुलाम बनाकर रखता है और उसका भरपूर शोषण करता है।

(२) वर्तमान स्तर : इस स्थितिमें श्रमिक पहलेकी भाँति गुलाम या बनकर नहीं रहता पर उसका शोषण फिर भी जारी रहता है। भूस्वामी और पूँजीपति उसके उत्पादनमें हिस्सा लिया करते हैं। वे अनर्जित आय माँगते हैं।

(३) भावी स्तर : इस स्थितिमें भूमि और पूँजीके राष्ट्रीयकरण द्वारा शोषणकी पूर्ण समाप्ति हो जायगी।

रास्किन नागरिकवादी विचारधाराका समर्थक था। अतः वह यह आशा रखता है कि मानव भावी स्तरतक पहुँचनेमें पाँच शताब्दियाँ ले लेगा। तबतक इस दिशामें प्रगति होती रहनी चाहिए। क्योंकि सामाजिक माँग और पूर्तिके सन्तुलनका प्रश्न है, टाउनरका सुझाव है कि सामाजिक आवश्यकताके अनुसार वस्तुका उत्पादन होना चाहिए। वस्तुके मूल्यपर उसका आधार रखना गलत है। वह मानता है कि इस बातका पता लगानेमें कठिनाई आ सकती है कि मनुष्यको भिन्न भिन्न वस्तुओंकी किस-किस मात्रामें आवश्यकता है। तदनुकूल ही उत्पादन होना चाहिए।

टाउनर भी व्यक्तिगत सम्पत्ति और अनर्जित आयका विरोधी है, पर वह कहता है कि उनका राष्ट्रीयकरण करना अभी समीचीन नहीं। इसके लिए

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ८२१, ८२२।
२ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ७८८।

राज्यको हस्तक्षेपकी नीति काममें लानी चाहिए और ऐसे कानून बनाने चाहिए, जिनके द्वारा श्रमिकोंके कामके घण्टे कम हों, वस्तुओंकी कीमतें श्रमके आधारपर निश्चित कर दी जायें और उनमें समयानुकूल परिवर्तन होता रहे, श्रमिकोंका वेतन भी निश्चित कर दिया जाय और ऐसी व्यवस्था कर दी जाय, जिससे श्रमिकोंको उत्पादनका अधिकसे अधिक लाभ प्राप्त हो सके। उत्पादनकी वृद्धिके साथ-साथ श्रमिकोंके लाभांशमें भी वृद्धि होती रहनी चाहिए। इसके लिए राडबर्टसने मजूरी-कूपनोंकी भी सिफारिश की है, जिनके विनिमयमें श्रमिकोंको उनकी आवश्यकताकी सभी वस्तुएँ सहज ही उपलब्ध हो सकें।[1]

राज्यके न्यायमें राडबर्टसको असीम श्रद्धा है और वह मानता है कि राज्यके हस्तक्षेपसे समाजवादकी स्थापना सम्भव है। वह नहीं चाहता कि श्रमिक इसके लिए राजनीतिक आन्दोलन करें।

लासाल

फर्डिनैण्ड लासाल (सन् १८२५–१८६४) 'जर्मन समाजवादका लुई ब्लाँ' कहलाता है। ब्रेसलॉ और बर्लिनमें उसने शिक्षा प्राप्त की। वहीं विलक्षण प्रतिभाके फलस्वरूप उसे 'आश्चर्यजनक बालक' की उपाधि मिली।

कार्ल मार्क्ससे प्रभावित होकर लासालने सन् १८४८ की क्रान्तिमें योगदान किया। उसके बाद वह अध्ययनमें प्रवृत्त हुआ। सन् १८६२ में वह प्रत्यक्ष राजनीतिमें कूद पड़ा। श्रमिकोंका वह एक विश्वस्त नेता बन गया। सन् १८६३ में लिपजिगमें उसने जर्मन श्रमिक संघकी स्थापना की, जिसने आगे चलकर जर्मनीकी लोकतान्त्रिक समाजवादी पार्टीको जन्म दिया।

लासाल प्रतिभाशाली और ओजस्वी वक्ता था, पर ३९ वर्षकी आयुमें जब वह अपनी कीर्तिके शिखरकी ओर अग्रसर हो रहा था, तभी प्रेयसीके लिए द्वन्द्व-युद्धमें उसका बलिदान हो गया।

लासालपर राडबर्टस, लुई ब्लाँ और मार्क्स—इन तीन विचारकोंका अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। उसे इन तीनोंका सम्मिश्रण कहना अनुचित न होगा। उसने अनेक भाषण किये, अनेक प्रचार-पुस्तिकाएँ लिखीं और राडबर्टस, एंजिल्स और मार्क्ससे विस्तृत पत्र व्यवहार किया। उसकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है—'दि सिस्टम ऑफ एक्वायर्ड राइट्स' (सन् १८६१)। इस रचनामें उसने व्यक्तिगत सम्पत्तिके सम्बन्धमें अपने क्रान्तिकारी विचारोंका प्रतिपादन किया है।

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४३०।

उसके समकालीन लोगोंका कहना है कि १६वीं शताब्दीके उपरान्त इतना प्रामाणिक विवेचन और किसीने नहीं किया।

प्रमुख आर्थिक विचार

राडबर्टसकी भाँति लसालके आर्थिक विचारोंको मुख्यतः दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है

(१) पूँजीवादका विरोध और

(२) समस्याका निराकरण।

१ पूँजीवादका विरोध

लसालने दो आधारोंपर पूँजीवादका विरोध किया है। एक तो है मजदूरीका जीवन-निर्वाह सिद्धान्त जिसे उसने 'लौह-नियम' की संज्ञा दी।[1] दूसरा उत्पादनके अनुमानका सिद्धान्त।

लसालने उत्पादनके अनुमान-सिद्धान्तका विवेचन करते हुए बताया कि पूँजीवादी उत्पादन मुख्यतः अनुमानके आधारपर परिचालित होता है। यह आवश्यक नहीं कि यह अनुमान ठीक ही हो। प्रायः ही यह अनुमान गलत होता है। इसके गलत होनेका परिणाम यह होता है कि अति-उत्पादन हो जाता है, माल पड़ा रहता है, खरीदनेवाले मिलते नहीं मन्दी आती है बेकारी आती है। युद्ध दुर्भिक्ष आर्थिक संकट—सभी इसकी शृंखलामें बँधे चले आते हैं।

२. समस्याका निराकरण

लसाल इस भयंकर समस्याके निराकरणके लिए राज्यके हस्तक्षेपकी बात करता है। उसका कहना था कि पूँजीवादसे जो संकट उत्पन्न होते हैं उनका नियंत्रण राज्यके हस्तक्षेप द्वारा हो सकता है। वह मानता था कि कोई सौ वर्षोंके भीतर राज्यके नियंत्रण द्वारा पूँजीवादका क्रमशः उन्मूलन हो सकता है। वह लुई ब्लाँकी भाँति राज्यकी सहायता द्वारा सहकारी उत्पादक संघोंकी कल्पना करता है और यह विश्वास करता है कि इस पद्धतिसे समस्याका निराकरण सम्भव है।

राडबर्टसने राज्य द्वारा समाजवादकी कल्पना की है और लसालने भी। पर दोनोंके दृष्टिकोणमें आकाश-पातालका अन्तर है। दोनों ही व्यक्ति राज्यको सर्वशक्तिमान् बनानेके पक्षमें हैं और उसमें असीम श्रद्धा व्यक्त करते हैं, परन्तु दोनोंकी राज्यकी धारणामें अन्तर है।

राडबर्टसने जिस राज्यके हाथमें सारी सत्ता देने और हस्तक्षेप करनेका अधिकार देनेकी बात कही है, वह राज्य पूँजीपतियोंका पक्षपाती नहीं, श्रमिकों

---

[1] जीड और रिस्ट : वही पृष्ठ ४१७-४१६।
[2] जीड और रिस्ट : वही पृष्ठ ४१८।

का पक्षपाती होगा। वह श्रमिकोंका ही हितचिन्तन करेगा। उन्हींकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए सचेष्ट होगा। पूँजीपति लोग कृपापूर्वक ऐसी व्यवस्था कर देंगे, ऐसा लासाल नहीं मानता। वह कहता है कि इसके लिए श्रमिकोंका जोरदार संघटन करना पड़ेगा। बुर्जुआ लोग ऐसा मानते हैं कि राज्यका कर्तव्य केवल व्यक्तिगत सम्पत्ति और स्वातन्त्र्यकी रक्षा करना है, पर इतना ही राज्यका सच्चा कर्तव्य नहीं।[1] लासाल मानता है कि राज्यका सच्चा कर्तव्य यह है कि वह सारी जनताके कल्याणके लिए समुचित व्यवस्था करे, जिससे केवल सशक्त ही नहीं, अपितु सभी नागरिक सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकें और अपनी सर्वांगीण उन्नति कर सकें। इस आदर्श व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए प्रारम्भिक शर्त यह है कि राज्य गरीबोंके हितकी ओर विशेष रूपसे ध्यान देते हुए आगे बढ़े। इसके लिए यदि अमीरोंके हितका बलिदान भी करना पड़े, तो भी बुरा नहीं। क्रमशः दोनोंमें साम्यकी स्थापना हो जायगी।

लासालने श्रमिकोंके समर्थनमें जो विचार व्यक्त किये, वे मुख्यतः मार्क्सके ही विचार थे। यों उसके विचारोंपर हेगेल और फिख्टके दार्शनिक विचारोंका भी प्रभाव था। फिख्टने कहा था कि 'राज्यका कर्तव्य नागरिकोंकी सम्पत्तिकी रक्षा करना मात्र नहीं है। उसका यह भी कर्तव्य है कि प्रत्येक नागरिकको जीविकोपार्जनका उपयुक्त साधन भी मिले। जबतक सबकी सामान्य आवश्यकताओंकी पूर्ति न हो जाय, तबतक किसीको विलासकी कोई वस्तु रखनेकी अनुमति न दी जाय। ऐसा नहीं होना चाहिए कि कोई व्यक्ति तो अपना मकान सजा रहा है और किसीके पास रहनेके लिए मकान भी नहीं है। फिख्टके ऐसे विचारोंसे लासालको राज्य-समाजवादकी भारी प्रेरणा मिली।[2] लुई ब्लॉकी भाँति लासाल भी सामाजिक प्रगतिके लिए राज्यको उत्तरदायी मानता था।

राज्य-समाजवादका विकास

जर्मनीमें पहलेसे ही राष्ट्रीयताकी भावना पनप रही थी, इधर राडबर्टस और लासाल सामाजिक प्रगतिका जिम्मा राज्यके ही मत्थे दे रहे थे, उधर बिस्मार्कने सन् १८६६ में अपनी सत्ताका नये सिरेसे संघटन किया और सुधारपूर्ण नीति लागू कर दी। श्रमिकोंकी समस्या तीव्र होती जा रही थी, लोकतान्त्रिक समाजवादका स्वर ऊँचा उठता जा रहा था। लोग शान्तिपूर्ण ढंगसे समस्याके निराकरणकी बात सोचने लगे थे। ऐसी स्थितिमें जर्मनीमें राज्य-समाजवादको विकसित होनेका अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। सन् १८७२ में आइसेनाखमें अर्थशास्त्रियों, शासकों,

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४३६।
२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४३६-४३७।

राजनीतिज्ञों और प्राध्यापकोंमें आदिम जो सम्मेलन हुआ, उसमें राज्य-समाजवाद ने विधिवत् जन्म ग्रहण किया। श्मोलर, वागनर, ब्रूनर, वेगनर आदि विचारकों ने इस आन्दोलनका नेतृत्व किया। वेगनर इस सम्मेलनका प्रमुख वक्ता था।

इस सम्मेलनमें राज्य-समाजवादके आदर्शों और सिद्धान्तोंकी विस्तारसे चर्चा की गयी। इसमें कहा गया कि राज्य मानवताके शिक्षणके लिए नैतिक संस्था है। किसी भी राष्ट्रके नागरिक परस्पर आर्थिक सम्बन्धोंमें ही एक-दूसरेसे बँधे नहीं हैं, अपितु एक भाषा, एक संस्कृति एवं एक राजनीतिक संविधानने उन्हें आपसमें बाँध रखा है। राज्य राष्ट्रके एकत्वका नैतिक प्रतीक है और उसका यह कर्तव्य है कि वह समाजके दरिद्र अंगके विकासकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दे।[1]

पूर्वी डाइल्न सन् १८५६ में यह अवधान उठायी थी कि 'कुछ ऐसी महत्त्व-पूर्ण बातें हैं जो व्यक्तियोंकी सामर्थ्यके बाहर हैं। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि उनसे समुचित लाभ नहीं होता। दूसरे उनमें प्रत्येक व्यक्तिका सहयोग अपेक्षित है, उसकी संयुक्त सहभागिता ही काम नहीं चलता। ऐसे कामोंको पूरा करनेके लिए सबसे उपयुक्त पात्र—राज्य ही हो सकता है।

उस समय इस फ्रांसीसी विचारकके ये शब्द अरण्यरोदन ही बनकर रह गये थे पर आगे चलकर स्टुअर्ट मिलकी रचना 'लिबर्टी' के फ्रांसीसी अनुवादकी प्रस्तावनामें इन्हें उद्धृत किया गया और वेगनरने इसी आशयके विचार व्यक्त करते हुए कहा कि राज्यके कार्य समय-समयपर परिवर्तित होते रहे हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ, व्यक्तिगत दाक्षिण्य एवं राज्य—तीनों मिल-जुलकर विभिन्न कार्योंको आपसमें विभाजित कर उन्हें करते रहे हैं। अतः राज्यके कर्तव्योंका निर्धारण होना उचित है। मानव-कल्याण और सभ्यताके विकासकी दृष्टिसे आवश्यक अनेक कार्य राज्यके हाथमें होने चाहिए।

राज्य-समाजवादी व्यक्तिवाद और अहस्तक्षेप-नीतिके विरुद्ध तर्क उपस्थित करते हुए कहते हैं कि व्यक्तिगत रूपसे अनुमान करके उत्पादन करानेसे संकट उत्पन्न होते हैं और सामाजिक दारिद्र्यकी वृद्धि होती है। सामाजिक हितकी दृष्टिसे प्रतिस्पर्धाके कारण होनेवाली अनिश्चितता और असुविधा रोकी जानी चाहिए। श्रमिकोंकी विनिमय क्षमता दुर्बल एवं क्षीण होती है। उसे व्यक्तिगत लोगों पर छोड़ना भ्रमपूर्ण है। राज्यको जन हितकी दृष्टिसे आर्थिक समस्याओंको अपने हाथमें लेकर श्रमिकोंकी शोषणसे रक्षा करनी चाहिए।

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४४ ।
२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४४ ... ।

विचारधाराकी विशेषताएँ

राज्य समाजवादी नैतिकताके दृष्टिकोणसे सरकारी हस्तक्षेपके समर्थक थे। उनका समाजवाद शुद्ध समाजवाद नहीं था। उसकी प्रमुख विशेषताएँ ये थीं :

(१) व्यक्तिवाद एवं स्वातन्त्र्यवादका विरोध।

(२) राष्ट्र-हितकी दृष्टिसे सरकारी हस्तक्षेपका समर्थन।

(३) भाटक, व्याज, मुनाफाकी अनर्जित आयकी सहमति।

(४) व्यक्तिगत सम्पत्तिकी सहमति।

(५) श्रमिकों और दरिद्रोंके लिए हितकारी कानूनोंपर जोर।

(६) समाजकी आर्थिक समस्याओंके शान्तिपूर्वक निराकरणपर जोर।

राज्य समाजवादी परिवहनपर सरकारी नियंत्रण चाहते थे। रेलें, नहरों और सड़कोंके राष्ट्रीयकरण, जलकल, गैस और विद्युत् व्यवस्थाके नागरीकरण और बैंकोंपर सरकारी नियन्त्रणके पक्षपाती थे। व्यक्तिगत सम्पत्ति और अनर्जित आयकी समाप्तिपर उनका जोर न रहनेसे उन्हें समाजवादी कहना ठीक नहीं। उनकी समाजवादी कल्पनाका मूल उद्देश्य था, सरकारी माध्यमसे शान्तिमय उपायों द्वारा जन हितके ऐसे कार्य करना, जिनसे राष्ट्रकी समृद्धि हो और श्रमिकों तथा दरिद्रों-की आर्थिक स्थितिमें सुधार हो। उनमें सामाजिक उदारता भी थी, संशोधित पुरातनवाद भी था, प्रगतिशील लोकतन्त्र भी था और अवसरवादी समाजवाद भी।

विचारधाराका प्रभाव

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें राज्य-समाजवादी विचारधाराका प्रभाव विशेष रूपसे दृष्टिगोचर होने लगा। सन् १८७२ में होनेवाले सम्मेलनके बाद उसका विस्तार प्रमुख रूपसे हुआ। बिस्मार्कने श्रमिकोंके लिए बीमारी, अपंगता और वृद्धावस्थाके लिए बीमेकी योजना करके श्रमिकोंमें लोकप्रियता प्राप्त कर ली और जर्मनीमें मार्क्सवादी विचारधाराको पल्लवित होनेसे रोक दिया।

फ्रांस और इंग्लैण्डमें भी यह विचारधारा क्रमशः विस्तृत होने लगी। आज तो विश्वके अनेक अंचलोंमें कल्याणकारी राज्यकी अनेक योजनाएँ चालू हैं, जिनपर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे राज्य समाजवादी विचारधाराका प्रभाव है। प्रोफेसर रिस्टका यह कहना ठीक ही है कि 'उन्नीसवीं शताब्दीका श्रीगणेश प्रत्येक प्रकारकी शासन-सत्ताके प्रतिकूल भावना लेकर हुआ, पर उसकी समाप्ति हुई राज्यके अधिकतम हस्तक्षेपकी वकालतसे। लोगोंकी यह माँग सर्वत्र सुनाई पड़ने लगी कि चाहे आर्थिक संगठन हो, चाहे सामाजिक, सबमें राज्यका अधिकाधिक हस्तक्षेप वाञ्छनीय है।'[१]

● ● ●

---

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४१०।

समाजवादी विचारधारा

आरम्भिक विचारक

स्वातंत्र्यवादी

मार्क्सवादी

सहयोगी समाजवादी

राज्य समाजवादी

अन्य समाजवादी

ईसाई समाजवादी
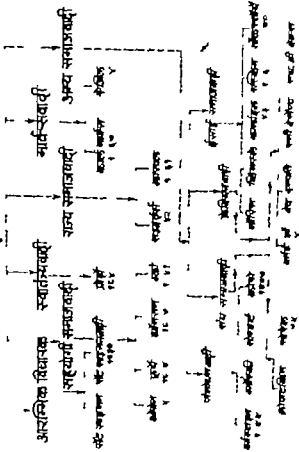
मार्क्सवाद

'दुनियाके मजदूरो, एक हो !' इस नारेके जन्मदाता कार्ल मार्क्सने और उसके अभिन्न साथी एञ्जिल्सने समाजवादकी जिस विशिष्ट वैज्ञानिक धाराको जन्म दिया, उसका नाम है 'मार्क्सवाद' (Marxism)—साम्यवाद।

उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यकालमें जर्मनीके इस निर्वासित यहूदीने सर्वहारा-वर्गके शोषण और उत्पीड़नके विरुद्ध जो तीव्र संवेदना प्रकट की, वह आज भी विश्वके विभिन्न अंचलोंमें सुनाई पड़ रही है। सामाजिक वैषम्यके निराकरणके लिए मार्क्सने जो आन्दोलन खड़ा किया, वह अपने युगमें तो जनताको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाला था ही, आज भी अनेक व्यक्ति उसकी ओर बुरी तरह आकृष्ट हैं। जर्मनीमें कोट्स्की और रोज़ा लक्सेमबर्गने तथा रूसमें लेनिन और स्तालिनने मार्क्सके विचारोंको अपने ढंगपर विकसित किया।

मार्क्सवादमें जिन समाजवादी विचारोंका प्रतिपादन है, उनमें दर्शन, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र—सभीका सम्मिश्रण है। पूँजीवादको जितना गहरा धक्का मार्क्सवादने लगाया, उतना अभीतक और किसी वादने नहीं लगाया था। श्रमिकोंको उसमें अपने त्राणका एकमात्र मार्ग दृष्टिगत हुआ और वे अपनी पूरी शक्तिसे उस ओर झुके। साम्यवादियोंपर तो उसकी छाप है ही, गैर साम्यवादियोंपर भी उसका प्रभाव कम नहीं पड़ा।

यों मार्क्सने कोई सर्वथा नवीन आर्थिक सिद्धान्त नहीं निकाला, उसने अपने पूर्ववर्ती विचारकोंके विचारोंमें ही अपनी सारी सामग्री एकत्र की। उसकी विशेषता यही है कि उसने इन सभी विचारोंको पचाकर उन्हें इस रूपमें गूँथा कि उसकी विचारधाराके कारण पूँजीवादका वैषम्य अपने नग्न रूपमें प्रकट हो गया और उसकी नग्नताका मूर्तिमान् होना ही उसके विनाशका कारण बन गया।

मार्क्सवादका जन्मदाता है मार्क्स और उसका अभिन्न साथी—एञ्जिल।

मार्क्स

पश्चिमी जर्मनीके राइनलैण्डके वेलफालिया क्षेत्रमें स्थित ट्रीर नामक नगरमें ५ मई सन् १८१८ को एक यहूदी परिवारमें कार्ल मार्क्सका जन्म हुआ। कार्लका दादा यहूदियोंका पुरोहित था, पिता वकील। पिताने सन् १८२४ में यहूदी-धर्म छोड़ ईसाई-धर्म स्वीकार कर लिया। सन् १८३५ में कार्लने

ट्रीर कॉलेजकी पढ़ाई समाप्त कर बोन और बर्लिनमें न्याय, दर्शन और इतिहासकी उच्च शिक्षा प्राप्त की। सन् १८४१ में उसने जेनासे डॉक्टरेट की उपाधि ग्रहण की। मार्क्सके निबन्धका विषय था—'डेमाक्रिटीज और एपीक्युरीय सामाजिक दर्शनके भेद'।
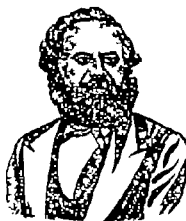
शिक्षण-कालमें मार्क्सने हेगल (सन् १७७०–१८३१) के दार्शनिक विचारोंका गम्भीर अध्ययन किया और उससे अत्यधिक प्रभावित भी हुआ, यद्यपि उसका घोर आदर्शवाद मार्क्सको पसन्द नहीं था। हेगेलके उसके विचारोंमें जो उग्रता उत्पन्न हुई, उसके कारण उसे लगा कि अध्यापकीय जीवन उसके लिए कठिन है। अतः वह पत्रकारिताकी ओर झुका। सन् १८४२ में मार्क्सको 'राइनिश जाइटुंग' नामक दैनिक पत्रकी सम्पादकी मिल गयी। अक्टूबर '४२ में जब मार्क्स सम्पादक बना, उस पत्रकी ग्राहक संख्या ८८५ थी। जनवरी '४३ तक वह ३२०० तक पहुँच गयी। मार्क्सके सरकार-विरोधी उग्र लेखोंने सरकारको आतंकित कर दिया। उसने पत्रको बन्द करनेकी माँग की। पत्र-स्वामी लोग पत्रको नरम बनानेपर जोर देने लगे। फलतः १७ मार्चको मार्क्सने इस्तीफा दे दिया।

जून '४३ में जेनी फान वेस्टफालेन नामक कुलीन परिवारकी कन्याके साथ मार्क्सका विवाह हुआ, जो आयुमें मार्क्ससे ४ वर्ष बड़ी थी। जर्मनीमें टिकना अब मार्क्सके लिए कठिन था। अतः वह पत्नीके साथ पेरिस चला गया और सन् '४५ तक वहाँ रहा। वहाँ उसने 'जर्मन-फ्रेंच वर्षपत्र' का सम्पादन किया। पर वहाँ भी उसे टिकने नहीं दिया गया। फ्रांस सरकारने भी मार्क्सको निष्कासित कर दिया। तब ब्रुसेल्स जाकर उसने शरण ली। वहाँसे सन् १८४८ की क्रान्तिमें योगदान करनेके बाद जर्मनी पहुँचा, वहाँसे पुनः निर्वासित किया गया। अन्तमें हारकर सन् १८४९ में उसने लन्दनमें जाकर शरण ली और वहीं उसने जीवनके शेष वर्ष बिताये। १४ मार्च सन् १८८३ को उसकी मृत्यु हुई।

प्रो० जोडका कहना है कि यह मामूली ही बात है कि एक आदरणीय

बुर्जुआ-परिवारमें जन्म लेकर और जर्मनीके राजवंशकी कन्यासे विवाह करके मार्क्सको एक युद्धरत समाजवादीका जीवन बिताना पड़ा ।'[1]

शिक्षणके उपरान्तका मार्क्सका जीवन अत्यन्त संघर्षमय रहा । सम्पन्नताकी गोदमें खेलनेवाली उसकी पत्नी जेनी अत्यन्त कुशल, प्रेमिल एवं कर्तव्यपरायण गृहिणी थी । गरीबी और कष्टके थपेड़े प्रसन्नतापूर्वक झेलना उसका स्वभाव बन गया था । पतिके साथ दारिद्र्यका जीवन बितानेमें उसे रत्तीभर संकोच न होता । पलभरके लिए भी उसके मनमें यह विचार न आता कि वह राजवंशकी है और उसका भाई प्रशियाके राजाका राज्यमंत्री रहा है । जेनीका सौंदर्य मार्क्सके लिए आनन्द और गौरवकी वस्तु था । दोनों बड़े प्रेम और आनन्दसे संकटोंको झेलते हुए जीवन-यात्रा पूरी करते थे ।

गरीबोंके इस मसीहाका जीवन कितना कष्टपूर्ण रहा था, उसके दो-एक चित्रोंमें उसका दर्शन हो सकेगा ।

जेनी अपनी डायरीमें लिखती है : 'सन् १८५२ के ईस्टरमें हमारी छोटी सी बेटी फ्रांजिस्का फेफड़ेकी सूजनसे जबरदस्त बीमार पड़ गयी । तीन दिनोंतक बेचारी बच्ची मृत्युसे लड़ते हुए अपार यंत्रणा सहती रही । उसका छोटा-सा निष्प्राण शरीर हमारे पीछेवाले छोटेसे कमरेमें रखा था, जब कि हम सब सामनेवाले कमरेमें चले गये । रात आयी, तो हमने धरतीपर अपना बिस्तर बिछाया । बची हुई तीनों बेटियाँ हमारे साथ लेटी थीं और हम उस फरिश्ते जैसी बेचारी छोटी सी बच्चीके लिए रो रहे थे, जो दूसरे कमरेमें ठंडी और निर्जीव पड़ी थी । मैं पड़ोसी फरासीसी शरणार्थीके पास गयी, जो कुछ समय पहले हमारे घर आया था । उसने बड़े सौहार्द्र और सहानुभूतिके साथ बर्ताव किया और दो पौण्ड दिये । इस पैसेसे हमने शवाधानीका दाम चुकाया, जिसमें मेरी बच्ची शान्तिपूर्वक विश्राम करेगी । पैदा होनेपर उसे हिंडोला नहीं मिला और अन्तिम छोटी-सी सन्दूकची भी उसे बहुत दिनोंतक प्राप्त नहीं हो सकी । हमारे लिए वह भीषण घड़ी थी, जब कि छोटी-सी शवाधानी अपने अन्तिम विश्राम-स्थानपर ले जायी गयी ।'[2]

२० जनवरी सन् १८५७ को मार्क्सने एंजिल्सको लिखा : 'मुझे कुछ समझमें नहीं आता कि इसके बाद क्या करूँ ? वस्तुतः मेरी स्थिति उससे कहीं खराब है, जैसी कि आजसे पाँच वर्ष पहले थी ।'[3]

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ४५२ ।
२ राहुल सांकृत्यायन : कार्ल मार्क्स, १९५३, पृष्ठ १८= ।
३ राहुल : वही, पृष्ठ २०० ।

मैंने तुम्हें उत्तर क्यों नहीं दिया ? इसीलिए कि मैं सतत कब्रके आसपास मँडरा रहा था और अपनेमें काम करनेकी क्षमतावाले समयके एक-एक मिनटको मैं अपनी इस पुस्तकको समाप्त करनेमें लगानेके लिए विवश था। इसके लिए मैंने अपने स्वास्थ्य, अपने आनन्द और अपने परिवारको बलिदान कर दिया। '''यदि अपनी पुस्तकको कमसे कम पाण्डुलिपिके रूपमें बिना पूरा किये मैं मर जाता, तो मैं अपनेको अव्यावहारिक मानता।'[1]

एंजिल

मार्क्सके अभिन्न साथी और मार्क्सके परिवारके 'जनरल' फ्रेडरिक एंजिल्सका जन्म जर्मनीके बर्मेन नगरमें २८ नवम्बर सन् १८२० को एक समृद्ध परिवारमें हुआ। पिता धनी कारखानेदार थे। विचारों, भावों और पारस्परिक स्नेहमें मार्क्स और एंजिल सहोदर भाइयों जैसे थे। एंजिलको व्यापारमें रुचि नहीं थी, दर्शन और अर्थशास्त्र उसके प्रिय विषय थे। मार्क्सके सम्पर्कमें आनेके बाद दोनोंमें जो घनिष्ठता बढ़ी, वह कभी नहीं छूटी। मार्क्सको आर्थिक सहायता देनेके उद्देश्यसे एंजिल व्यापारके अरुचिकर कार्यमें लगा रहा। सन् १८७० में वह व्यापार छोड़कर मार्क्सके साथ रहने लगा। एंजिल्सकी स्वतन्त्र पुस्तकें केवल दो हैं—'समाजवाद : काल्पनिक और वैज्ञानिक' और 'ओरिजिन ऑफ दि फैमिली' (सन् १८८४)। सन् १८९५ में एंजिल्सकी मृत्यु हो गयी।

पूर्वपीठिका

मार्क्सकी विचारधारापर तत्कालीन युगकी स्थितिका तो प्रभाव था ही, शिक्षा-कालमें हेगेलके दर्शन और उसकी क्रिया, प्रतिक्रिया एवं समन्वयकी प्रक्रियाने मार्क्सको अत्यधिक प्रभावित किया। शास्त्रीय परम्पराके विचारकोंका, मुख्यतः रिकार्डोके भाटक सिद्धान्त और मूल्य-सिद्धान्तका मार्क्सपर गहरा प्रभाव था। भौतिकवादपर १८वीं शतीके फरासीसी विचारकों, विशेषतः लुडविग फायरबेक आदिका भी उसपर विशेष प्रभाव पड़ा था। फ्रांस, जर्मनी और इग्लैण्डके समाजवादी विचारकोंने भी मार्क्सपर अपनी छाप छोड़ी थी। मार्क्स व्यावहारिकताका अधिक पक्षपाती था, काल्पनिकताका कम। इन समाजवादी विचारकोंकी विचारधाराको उसने अपने ढंगका मोड़ दिया।

मार्क्सका जन्म उस युगमें हुआ, जिस समय पूँजीवाद अपने बीभत्स रूपमें प्रकट हो रहा था। उसका अभिशाप जनताको त्रस्त कर रहा था। धर्म और

---

१ राहुल वही, पृष्ठ २५२-२५३।

भगवान्के प्रति जनताकी आस्था घट रही थी और भौतिकवादका महत्त्व बढ़ता जा रहा था ।

ऐसे वातावरणमें मार्क्सने पूँजीवादी पद्धतिका वैज्ञानिक विश्लेषण कर सर्व-हारा-वर्गका एक व्यापक आन्दोलन तैयार कर दिया । जर्मन दर्शन, फरासीसी भौतिकवाद और आंग्ल शास्त्रीय विचारधाराका सर्वोत्तम ईंट, पत्थर और चूना चुनकर मार्क्सने वैज्ञानिक समाजवाद या द्वन्द्वात्मक भौतिकवादका महल खड़ा कर दिया ।

मार्क्सके आर्थिक विचारोंको विशिष्ट स्वरूप देनेवाले ५ विचारक विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं : चार्ल्स हाल, विलियम थामसन, टामस हाजस्किन फ्रांसिस ब्रे और जान ग्रे ।

हाल (सन् १७४५–१८२५) ने 'यूरोपीय राज्योंकी जनतापर सभ्यताके प्रभाव' शीर्षक अपनी रचनामें इस तथ्यका विशद स्पष्टीकरण किया था कि आधुनिक सभ्यता स्वत्वप्राप्त-वर्गके लिए भले ही आनन्ददायक हो अधिकांश साधन हीन व्यक्तियोंके लिए यह भयंकर अभिशाप है । इसके कारण समाजमें सम्पत्ति-के 'धन' और 'ऋण' की भाँति दो विरोधी वर्ग उत्पन्न हो गये हैं, जो परस्पर विध्वंसक भी हैं ।[1]

थामसन (सन् १७८५–१८) को मेंगर 'वैज्ञानिक समाजवादका परम यशस्वी प्रतिष्ठापक' कहता है । उसकी 'धनके वितरणके सिद्धान्तकी खोज' (सन् १८२४) में इस बातपर बड़ा जोर दिया गया है कि पूँजीपतिका मुनाफा व्याजका समाप्त होना चाहिए । उसके लिए वह ओवनकी भाँति सहकारितापर बल देता है ।

हाजस्किन (सन् १७८७–१८६९) ने 'लेबर डिफेण्डेड अगेन्स्ट दि क्लेम्स आफ कैपिटल' (सन् १८२५) नामक रचनामें पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्थाकी कटु आलोचना करते हुए श्रमकी महत्तापर बल दिया है । वह कहता है कि पूँजी श्रमकी ही चोरी है । उत्पादनका एकमात्र कारण श्रम है । श्रमसे बंजर खेत हरे भरे मनोरम भू-खण्ड बन जाते हैं और सागरकी लहरोंपर भी श्रमका उत्पादन हो सकता है । वह पूँजीकी अनुत्पादकता बताते हुए ब्याज, मुनाफा और लगानका अनौचित्य सिद्ध करता है । वह कहता है कि पूँजीपति नामक मध्यवर्ती पुरुष ही श्रम एवं श्रमजनित वस्तुके मध्यमें महान् बाधा है ।

---

[1] चार्ल्स हाल : इफेक्ट्स ऑफ सिविलिजेशन पृ० ४५ ।

ब्रेने 'लेबर्स राग एण्ड लेबर्स रेमेडीज' और 'दि एज ऑफ माइट एण्ड दि एज ऑफ राइट' (सन् १८३९) में विनिमयकी अनुचित बुराइयोंपर विशेष रूपसे प्रकाश डाला। वह श्रमके समयको ही मूल्यका उचित मापदण्ड मानता है। श्रमिक अपना अत्यधिक समय पूँजीपतिको देता है और पूँजीपति विनिमयमें बहुत कम देता है, जो सर्वथा अनुचित है। वह मानता है कि 'सारी पूँजी श्रमिकोंकी मांसपेशियों और हड्डियोंसे खींचकर जुटायी जाती है। कई पीढ़ियोंसे चलती आनेवाली विषम विनिमयकी जालसाजी और दास-पद्धतिके द्वारा इस पूँजीका सञ्चय होता है।'

जान ग्रे (सन् १७९९–१८५०) ने 'ए लेक्चर ऑन ह्यूमन हैपीनेस' (सन् १८२५) में तत्कालीन समाज-व्यवस्थाकी तीव्र आलोचना की। उसका कहना था कि जो लोग उत्पादन करते हैं, उन्हें उसका बहुत कम फल मिलता है, अनुत्पादक लोग मौज उड़ाते हैं। वे श्रमिकोंका श्रम क्रय करते हैं एक भावपर, विक्रय करते हैं दूसरेपर। वह मानता है कि सारे सामाजिक दोषोंका मूल कारण है—भाटक, ब्याज और मुनाफेके रूपमें शोषण।[१]

मार्क्सवादी दर्शन

इस पूर्वपीठिकाके आधारपर मार्क्सके विचारोंका विश्लेषण करना अच्छा होगा। मार्क्सका दर्शन है—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। इसमें विश्वकी प्रकृति एवं उसके अन्तर्गत मानवका स्थान क्या है, इसका विवेचन किया गया है।

मार्क्स यह मानकर चलता है कि प्रकृत्या विश्व भौतिक है। भौतिक कारणोंसे ही कोई भी वस्तु अस्तित्वमें आती है। भौतिक कारणोंसे ही, भौतिक नियमोंके अनुसार ही उसका उद्भव एवं विकास होता है। सारी चेतन सत्ता, मानसिक अथवा आध्यात्मिक सत्ता इस जड़ प्रकृतिकी ही उपज है। उसका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी है विश्व एवं उसके नियम, प्रकृति एवं उसके सिद्धान्त ऐसे हैं, जिनका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वे अज्ञेय नहीं हैं।

मार्क्सवादी दर्शनके मूल सिद्धान्त इस प्रकार हैं

(१) सारी सृष्टिका बीज एक ही तत्त्व है।

(२) वह एक तत्त्व परमात्मा या चेतन-तत्त्व नहीं, बल्कि जड़ प्रकृति ही है।

(३) जड़मेंसे ही चैतन्य उत्पन्न होता है। मनुष्य अथवा जन्तु जैसे चेतन-मय दिखनेवाले पदार्थ भी प्रकृतिके ही आविष्कार हैं।

---

१ एरिक रोल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २४७–२४६।

(४) छोटेसे छोटे अणुओंसे लेकर बड़ेसे बड़ा प्राणी और अत्यन्त बुद्धिमान् मनुष्यतक सभी प्राणी प्रकृतिके पुतले हैं। वे उसीमेंसे पैदा होते हैं, उसीमें बढ़ते और उसीमें नष्ट हो जाते हैं।

(५) इन चेतन पदार्थोंके जन्म, मरण या जीवनके सम्बन्धमें पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, हिंसा-अहिंसा आदिकी कल्पनाएँ व्यर्थ हैं।

(६) ऐसी सृष्टिमें जीवनका विकास होते-होते मानव-जाति उत्पन्न हुई। आज यही सबसे अधिक विकसित प्राणी-सृष्टि है।

(७) इस मानव-जातिका एक इतिहास है और उसके अनुकूल यह बात निश्चित है कि भविष्यमें क्या होगा।

(८) इस भावीको टाला नहीं जा सकता।

(९) बुद्धिमान् मनुष्यका ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे यथाशीघ्र यह भावी सिद्ध हो जाय।

(१०) इतिहासके विवेचनसे यह स्पष्ट है कि भविष्यमें जो युग आनेवाला है उसमें पूँजीवाद समाप्त हो जायगा, व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं रहेगी, भूमिहीन श्रमिकोंका उदय होगा और सारी सत्ता उन्हींके हाथमें होगी।

(११) श्रमिकोंके स्वामित्वके इस युगको आनेसे रोका नहीं जा सकता। उसे रोकनेका प्रयत्न उसी तरह व्यर्थ है, जैसे गंगाकी बाढ़को हथेलीसे रोकनेका प्रयत्न।

(१२) इस युगकी स्थापनाके उपरान्त सारे संसारमें शान्ति और समताकी स्थापना हो जायगी। विषमता, वर्गभेद, मुनाफाखोरी—सब मिट जायगी। सब मनुष्य एक-से माने जायँगे। आदर्श अपरिग्रहताकी स्थिति उत्पन्न होगी। साम्यवादकी स्थापना होगी।

(१३) इस साम्यवादके लिए सशस्त्र क्रान्ति करनी होगी। इसके लिए हिंसा-अहिंसा, नीति-अनीतिका प्रश्न छोड़कर श्रमिकोंका संगठन करना होगा और जैसे भी हो अपने लक्ष्यकी पूर्ति करनी होगी।

ऐतिहासिक भौतिकवाद

मार्क्सने 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' का विस्तृत विश्लेषण करते हुए इस बातपर सबसे अधिक बल दिया है कि इतिहासका सृजन भौतिकवादसे ही होता है।

एंजिल्स कहता है कि सन् १८४५ के बसन्तमें मैं जब ब्रुसेल्स गया तो मार्क्सने ऐतिहासिक भौतिकवादके मूल विचार मेरे समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा कि 'प्रत्येक ऐतिहासिक युगमें आर्थिक उत्पादन और उसका आवश्यक अनुगामी सामाजिक ढाँचा उस युगके राजनीतिक और बौद्धिक इतिहासका आधार होता है और इसीलिए सारा इतिहास वर्ग-संघर्षोंका इतिहास रहा है—उन सामाजिक

विकासकी भिन्न भिन्न मंजिलोंमें शोषितों और शोषकोंके बीच, शासितों और शासक वर्गोंके बीचका संघर्ष। ये संघर्ष अब ऐसे स्थानपर पहुँच गये हैं, जहाँपर शोषित और उत्पीड़ित वर्ग—सर्वहारा, शोषक और उत्पीड़क वर्ग—बुर्ज्वाजी (पूँजीपति) से अपनेको तबतक मुक्त नहीं कर सकता, जबतक कि साथ ही सारे समाजको सदाके लिए शोषण और उत्पीड़नसे मुक्त नहीं कर देता'।[1]

मार्क्सने प्रगतिकी चार मंजिलें, चार स्थितियाँ बतायी हैं :

(१) बर्बर साम्यवाद,

(२) दास-समाज,

(३) सामन्तवादी समाज और

(४) वर्तमान पूँजीवादी समाज।

प्रथम स्थिति आरम्भिक थी। उत्पादन एवं वितरण व्यक्तिगत रूपमें न होकर सामाजिक रूपमें होता था। उस युगमें उत्पादनके प्रकार भी कम कुशल थे। द्वितीय स्थितिमें थोड़ेसे भू-स्वामी लोग दासोंके द्वारा कृषि कराने लगे। उत्पादनके प्रकार कुछ सुधरे। तृतीय स्थितिमें उत्पादनके प्रकार अधिक कुशल बने। इस समय दास नहीं थे, अर्द्धदास थे। चतुर्थ स्थितिमें वणिक् और श्रमिक, ऐसे दो वर्ग हैं और उत्पादनके प्रकारोंमें अत्यधिक कुशलता आ गयी है। इन सभी स्थितियोंमें वर्ग-संघर्ष, कहीं स्वतन्त्र मानव और दासके बीच संघर्ष, कहीं अभिजात-वर्ग और साधारण प्रजाके बीच संघर्ष, कहीं सामन्त और अर्द्धदासके बीच संघर्ष, कहीं मालिक और मजदूरके बीच संघर्ष, यों शोषक और शोषितके बीच सदासे संघर्ष होता चला आया है। यह युद्ध अनवरत जारी है। इस सम्बन्धमें क्रिया, प्रतिक्रिया और समन्वयकी प्रक्रिया सतत चलती रही है। आजके पूँजीवादी समाजका भी इसी कारण विनाश निश्चित है।

मार्क्सकी धारणा है कि आज जो दयनीय स्थिति है, वह स्थायी रहनेवाली नहीं। इतिहास बताता है कि शीघ्र ही इसकी प्रतिक्रिया अनिवार्य है। भावी क्रान्ति न तो शासक वर्ग करेगा, न कल्पनाशील आदर्शवादियोंके अनुसार जनता स्वयं आत्मप्रेरणासे करेगी, वरन वह करेगा आजका सर्वहारा वर्ग, आजका श्रमिक-वर्ग। 'विजय या मृत्यु! रक्त क्रान्ति या कुछ नहीं!' यही सर्वहारा-वर्गका नारा होगा। इस क्रान्तिके उपरान्त वर्ग संघर्षका अन्त हो जायगा और उत्पादन एवं वितरण, दोनों ही समाजके हाथमें आ जायँगे। शोषक-वर्ग समाप्त हो जायगा। शोषणका कहीं नाम भी नहीं रहेगा। भावी समाजमें 'बुर्जुआजी' की समाप्ति हो

१ राहुल - कार्ल मार्क्स, पृष्ठ ६०।

श्रमिकों और 'प्रोलितारियत' का राज्य होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता और योग्यताके अनुकूल कार्य करेगा और उसकी आवश्यकताके अनुरूप सब कुछ उसे प्राप्त होगा।

प्रमुख आर्थिक विचार

मार्क्सवादके प्रमुख आर्थिक विचारोंको दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है :

(१) पूँजीवादी व्यवस्थाका अध्ययन और
(२) मार्क्सवादी समाज।

१ पूँजीवादी व्यवस्थाका अध्ययन

मार्क्सवादी अर्थव्यवस्थामें पूँजी और पूँजीवादका अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। उसमें पूँजीवादकी विशेषताएँ, मूल्यका श्रम-सिद्धान्त, श्रमका बचत-सिद्धान्त और पूँजीवादके विनाशके कारण आदि सभी बातें आ जाती हैं। मार्क्स यह मानता है कि पूँजीवादी समाजमें संघर्ष किस ढंगसे प्रस्फुटित एवं विकसित होता है उसके फलस्वरूप पूँजीवाद स्वयं विनाशकी ओर अग्रसर होगा और तब समाजवाद उसका स्थान ग्रहण करेगा।

पूँजीवादकी विशेषताएँ

समाजवादके अपवादरूपकी सारिणीमें अशोक महताने मार्क्सवादका अध्ययन करते हुए कहा है कि उसके दो भाग हैं (१) विचारका ऐतिहासिक स्वरूप और (२) पूँजीवादकी गतिका सिद्धान्त। इस गतिके सिद्धान्तकी तीन शाखाएँ हैं

(१) श्रमका मूल्य-सिद्धान्त
(२) एकाधिकार और
(३) संकट।

इन तीनोंकी भी पृथक् पृथक् शाखाएँ हैं

श्रमका मूल्य-सिद्धान्त

अतिरिक्त श्रम और शोषण | आदिरूपमें पूँजीका अपसंचय | पूँजीकी संघटनात्मक रचना

आदिरूपमें पूँजीका अपसंचय:

श्रमिकोंका अपहरण होना | पेशेवरोंकी सेना

समाजके दो वर्ग

मार्क्स यह मानकर चलता है कि आजके पूँजीवादी समाजमे मुख्यतः दो वर्ग हैं—एक पूँजीपति, दूसरा श्रमिक, एक बुर्जुआजी, दूसरा प्रोलिटारियेट। इनमें एक वर्गके हाथमें सारी पूँजी है और दूसरा वर्ग पूँजीसे सर्वथा वञ्चित है। श्रमिकको यह मानकर चलना पड़ता है कि मेरे पास श्रम ही वह वस्तु है, जिसका विक्रय किया जा सकता है। वह विवश होकर श्रम बेचता है, पर उसे उस श्रमका पूरा मूल्य नहीं मिलता।

समाजमें इन दो वर्गोंके अतिरिक्त कुछ अन्य वर्ग भी हैं। जैसे, भू-स्वामी, कृषि खेतिहर, जमींदार, सरकारी स्वामी आदि, पर इनका अस्तित्व नगण्य-सा है। क्रमशः ये भी मिटते जा रहे हैं और अन्ततः पूँजीपति और श्रमिक, इन दो वर्गोंमें ही मिलते जा रहे हैं। इन दोनों वर्गोंमें सघर्ष जारी है।

मार्क्सकी धारणा है कि पूँजीवादमें मुख्यत बड़े पैमानेपर उत्पादन होता है। बड़े-बड़े कारखानोंमें हजारों श्रमिकोंके द्वारा वृहद् उत्पादन किया जाता है। यों छोटे-छोटे कुटीर-उद्योग भी चलते हैं, पर अधिकतर उत्पादन बड़े पैमानेपर होता है, जिसमें आधुनिकतम मशीनों और भारी सख्यामें मजदूरोंका उपयोग किया जाता है।

और यह उत्पादन समाजकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर नहीं किया जाता, वह किया जाता है लाभकी दृष्टिसे। पूँजीपतिके उत्पादनका एकमात्र लक्ष्य

रहता है अधिकाधिक मुनाफा कमाना। प्रारम्भमें वस्तुके उत्पादनका लक्ष्य रहता था उसका उपयोगितागत मूल्य, अब उसका लक्ष्य रहता है विनिमयगत मूल्य।

पूँजीका सामान्य सूत्र

मार्क्सने पूँजीका एक सामान्य सूत्र निकाला है[1]

['मा' = माल, 'मु' = मुद्रा]

'मा—मु—मा' यह सूत्र मालोंके साधारण परिचलनका प्रतिनिधित्व करता है। इसमें मुद्रा परिचलनके साधनका मध्यस्थका काम करती है। उसका मौलिक सार = मा—मा'। विनिमय-मूल्य हस्तान्तरित हो जाता है और उपयोग मूल्य हस्तगत कर लिया जाता है।

'मु—मा—मु' यह सूत्र परिचलनके उस रूपका प्रतिनिधित्व करता है जिसमें मुद्रा अपनेको पूँजीमें बदल डालती है। बेचनेके लिए खरीदनेकी क्रियामें, यानी 'मु—मा—मु' को 'मु—मु' में भी परिणत किया जा सकता है, क्योंकि अप्रत्यक्ष रूपमें यह मुद्राके साथ मुद्राका ही विनिमय है।

'मा—मु—मा' इसमें मुद्रा केवल पूरी क्रियाके दोहराये जानेपर ही अपने प्रस्थान बिन्दुपर लौट सकती है। यह केवल तभी हो सकता है जब नये मालोंकी बिक्री की जाय। इसलिए मुद्राका लौटना यहाँ खुद क्रियासे स्वतन्त्र है। दूसरी ओर 'मु—मा—मु' में मुद्राका लौटना शुरूसे ही स्वयं क्रियाकी प्रकृति द्वारा निर्धारित होता है। यदि मुद्रा लौटती नहीं तो क्रिया अपूर्ण रहती है।

'मा—मु—मा' : इसका अन्तिम लक्ष्य उपभोग मूल्य होता है। 'मु—मा—मु' का अन्तिम लक्ष्य खुद विनिमय मूल्य होता है।

मार्क्स मानता है कि पूँजीवादसे पूर्व उपभोग-मूल्यकी दृष्टिसे सारा श्रम होता था, पूँजीवादी युगमें विनिमय मूल्यकी दृष्टिसे होता है। उसमें पूँजीका उपयोग श्रमका शोषण करके अधिकाधिक पैसा बटोरनेके लिए होता है।

मार्क्सकी निश्चित धारणा है कि पूँजीवादी पद्धति श्रमके शोषणपर आधृत है। श्रमिक केवल जीनेके लिए स्वतंत्र है परन्तु बाजारके अप्रत्यक्ष विनिमयके सिद्धान्त द्वारा उसका शोषण किया जाता है।

श्रमका मूल्य-सिद्धान्त

मार्क्सके अनुसार उत्पादनका एकमात्र सृजनात्मक तत्त्व है—श्रम। पूँजी और श्रमिकके बीच सामंजस्य स्थापित करके ही उत्पादन सम्भव है। केवल श्रममें ही यह क्षमता है कि वह लागतसे अधिककी वस्तुका उत्पादन कर सकता है। श्रमकी लागत और श्रम द्वारा किये गये उत्पादनके मूल्यके बीच मूलभूत अन्तर होता

[1] कैपिटल मार्क्सकी पूँजी ११२३, पृ० १०. ...

है। श्रमकी कीमत श्रमिकको अपनेको जीवित और सक्षम रखनेके लिए दी जानेवाली मजूरी होती है, जब कि श्रम द्वारा किये गये उत्पादनकी कीमत उसमें लगायी गयी श्रम शक्तिका मूल्य या अर्घ होता है। श्रमिकको मिलनेवाली उसके श्रमकी कीमत और उसने जो श्रम किया है, उसकी कीमत पृथक् की जा सकती है। 'वस्तुस्थिति यह है कि मजूरी पानेवाला श्रमिक अपना श्रम पूँजीपतिके हाथ बेचता है और पूँजीपति उस श्रम-शक्तिको बेचता है, जो उस वस्तुमें निहित है।'[१] पूँजीपति जहाँ वस्तुकी, जिसमें श्रमिककी श्रम शक्ति लगी रहती है, कीमत पाता है, वहाँ वह श्रमिकको केवल उसके जीवन निर्वाहभरकी कीमत चुकाता है। यह अन्तर मूल्यके श्रम सिद्धान्तको जन्म देता है।[२]

अतिरिक्त मूल्य

श्रम क्रिया और अतिरिक्त मूल्य पैदा करनेकी क्रिया समझाता हुआ मार्क्स कहता है कि पूँजीवादी आधारपर जो श्रम क्रिया चलती है, उसमें दो विशेषताएँ होती हैं (१) मजदूर पूँजीपतिके नियन्त्रणमें काम करता है, (२) पैदावार पूँजीपतिकी सम्पत्ति होती है, क्योंकि श्रम क्रिया अब दो ऐसी वस्तुओंके बीच चलनेवाली क्रिया बन जाती है, जिन्हें पूँजीपतिने खरीद रखा है। वे वस्तुएँ हैं श्रम शक्ति और उत्पादनके साधन।

परन्तु पूँजीपति उपयोग-मूल्यका उत्पादन खुद उपयोग-मूल्यके लिए नहीं करता, वह केवल विनिमय मूल्यके भण्डारके रूपमें और खास तौरपर अतिरिक्त मूल्यके भण्डारके रूपमें उसका उत्पादन करता है। इस स्थितिमें—जहाँ मालमें उपयोग मूल्य और विनिमय मूल्यकी एकता थी—श्रमने उत्पादन-क्रिया और मूल्य पैदा करनेकी क्रियाकी एकता हो जाती है।

श्रमिकको उसकी मजूरीके लिए ६ घण्टे श्रम करना आवश्यक हो और वह १० घण्टे श्रम करे, तो ४ घण्टेका श्रम 'अतिरिक्त मूल्य' पैदा करेगा।

मूल्य पैदा करनेवाली क्रियाके रूपमें श्रम-क्रिया जिस बिन्दुपर श्रम-शक्तिके पहलेसे अदा किये गये मूल्यका एक साधारण सममूल्य पैदा कर देती है, उस बिन्दुसे आगे जब यह क्रिया चलायी जाती है, तब वह तुरन्त ही 'अतिरिक्त मूल्य' पैदा करनेकी क्रिया बन जाती है।[३]

शोषणकी प्रक्रिया

मार्क्स कहता है कि 'पूँजीवादी उत्पादन केवल अतिरिक्त मूल्यके लिए किया जाता है। पूँजीपतिकी जिस उत्पादनमें सचमुच दिलचस्पी है, वह पार्थिव वस्तु

१ जान स्ट्रेची दि नेचर आफ दि कैपिटलिस्ट क्राइसिस, पृष्ठ १७९।
२ अशोक मेहता डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ ६३।
३ एंजिल मार्क्सकी 'पूँजी', पृष्ठ १००–१०२।

नहीं, अपितु मालूम उसी हुए पूँजीके मूल्यसे 'अतिरिक्त मूल्य' है।' यह अतिरिक्त मूल्य शोषणका प्रतीक है। पूँजीपति उत्तम यंत्र और पद्धतिका उपयोग करके श्रमिककी कार्यक्षमता बढ़ाकर, उसपर अधिक भार लादकर, उसकी मजदूरीको पहले जैसी रखकर अथवा और भी घटाकर यह मजदूरी और अपनी उपलब्धिके बीचके अन्तरको अर्थात् अपने लाभको अधिकाधिक बढ़ाना चाहता है। यह शोषणकी प्रक्रिया है। इस प्रकार श्रमिकपर दोहरा भार पड़ता है। पूँजी-संचय शोषणकी प्रक्रियाका दूसरा पहलू मात्र है। आदिरूपमें पूँजी संचयके मार्क्सने दो उपाय बताये हैं : (१) किसानको उसकी भूमिसे उखाड़ देना और (२) बेकारोंकी एक सेना सदा खड़ी रखना।

पूँजीवादी प्रणालीके एक अन्य दोषकी ओर भी मार्क्सने ध्यान आकृष्ट किया है। यह है श्रमिक और उसके कामका बीच पृथक्करण। क्रोचे कहता है कि यह दुःखकी बात है कि मार्क्सकी विचारधाराके इस पहलूकी चर्चा शायद ही थोड़ेसे मार्क्सवादी कभी करते हों। मार्क्सने इसे श्रमका स्पष्ट विलगाव कहा है। श्रमिक अपनेसे ही विलग हो जाता है। पूँजीवादी प्रणाली व्यक्तिको स्वयंसे, व्यक्तियोंको भूमि और प्रकृतिसे और व्यक्तिको व्यक्तिसे दूर कर देती है।[२]

स्थिर और अस्थिर पूँजी

मार्क्सने पूँजीके दो भेद किये हैं—स्थिर और अस्थिर। उसका कहना है कि श्रम-क्रिया श्रमकी विषयवस्तुमें नया मूल्य तो जोड़ती है, परन्तु साथ ही यह श्रमकी विषयवस्तुके मूल्यको उत्पादनमें स्थानान्तरित कर देती है और इस प्रकार यह मदद नया मूल्य जोड़कर उसे सुरक्षित रखती है। यह दोहरा परिणाम इस प्रकार प्राप्त होता है : श्रमका विशिष्टतया उपयोगी गुणात्मक स्वरूप एक उपयोग-मूल्यको दूसरे उपयोग-मूल्यमें बदल देता है और इस प्रकार मूल्यको सुरक्षित रखता है किन्तु श्रमका मूल्य पैदा करनेवाला, अमूर्त ढंगसे सामान्य एवं परिमाणात्मक स्वरूप नया मूल्य जोड़ देता है।

जो पूँजी श्रमके औजारोंमें—मशीन, मकान, कारखाना आदि माल तैयार करनेके साधनोंमें—लगायी जाती है, उत्पादन-क्रियाके दौरानमें उसके मूल्यमें कोई परिवर्तन नहीं होता। उसे हम 'स्थिर पूँजी' कहते हैं।

पूँजीका जो भाग श्रम-शक्तिमें लगाया जाता है उसका मूल्य उत्पादनकी क्रियाके दौरानमें अवश्य बदल जाता है। यह एक तो खुद अपना मूल्य पैदा

---

१ मार्क्स : कैपिटल, खण्ड १, पृष्ठ १४।
२ मदीक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ ६६।

करता है और दूसरे, अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है। पूँजीके इस भागको हम 'अस्थिर पूँजी' कहते हैं।

इस हालतमें स्थिर पूँजी ("स्थि") सदा स्थिर रहती है और अस्थिर पूँजी ("अस्थि") सदा अस्थिर रहती है।[1]

अतिरिक्त मूल्यकी दर

स्थिर और अस्थिर पूँजी तथा अतिरिक्त मूल्य (अमू) के आधारपर मार्क्सने अतिरिक्त मूल्यकी दरका सूत्र निकाला है[2]

पू = ५०० पौण्ड = ४१० स्थि + ९० अस्थि।

श्रम क्रियाके अन्तम हमे मिलते हैं—४१० स्थि + ९० अस्थि + ९० अमू।

४१० स्थि = मालके ३१२ + सहायक सामग्रीके ४४ + मशीनोंकी घिसाईके ५४ पौण्ड।

मान लीजिये कि सभी मशीनोंका मूल्य १०५४ पौण्ड है। यदि यह पूरा मूल्य हिसाबमें शामिल किया जाय, तो हमारे समीकरणके दोनों तरफ "स्थि" १४१० के बराबर हो जायगा, लेकिन अतिरिक्त मूल्य पहलेकी तरह ९० ही रहेगा।

"स्थि" का मूल्य चूँकि पैदावारमें केवल पुन प्रकट होता है, इसलिए हमे जो पैदावार मिलती है, उसका मूल्य उस मूल्यसे भिन्न होता है, जो श्रम क्रियाके दौरानमें पैदा हो गया है। अतः यह मूल्य, जो श्रम-क्रियाके दौरानमें नया पैदा हुआ है, वह स्थि + अस्थि + अमूके बराबर नहीं होता, बल्कि केवल अस्थि + अमूके बराबर होता है। इसलिए अतिरिक्त मूल्य पैदा करनेकी क्रियाके लिए 'स्थि' की मात्राका कोई महत्त्व नहीं होता, अर्थात् स्थि = ०।

व्यापारिक हिसाब-किताबमे व्यावहारिक ढगसे यही किया जाता है। जैसे, इसका हिसाब लगाते समय कि किसी देशको उसके उद्योग-धधोंसे कितना मुनाफा होता है, बाहरसे आये हुए कच्चे मालका मूल्य दोनों तरफ घटा दिया जाता है।

अतएव अतिरिक्त मूल्यकी दर "अमू अस्थि" होती है। ऊपरके उदाहरणमे अतिरिक्त मूल्यकी दर है—

९० ९० = १००%

सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य

मार्क्सने अतिरिक्त मूल्यके दो भाग किये हैं—निरपेक्ष और सापेक्ष।

---

१ ऐंजिल मार्क्सकी 'पूँजी', पृष्ठ २०३–२०५।
२ ऐंजिल मार्क्सकी 'पूँजी', पृष्ठ २०६।

मार्क्स कहता है कि वह श्रम-काल, जिसमें श्रमिक अपनी श्रम-शक्तिके मूल्यका पुनरुत्पादन करता है, 'आवश्यक श्रम' कहलाता है। इसके आगेका श्रम-काल, जिसमें पूँजीपतिके लिए अतिरिक्त मूल्य पैदा होने लगता है, 'अतिरिक्त श्रम' कहलाता है। आवश्यक श्रम और अतिरिक्त श्रमका जोड़ कामके दिनके बराबर होता है।[1]

आवश्यक श्रम-काल पहलेसे निश्चित रहता है। अतिरिक्त श्रम घट-बढ़ सकता है। कामके दिनको लम्बा करके जो अतिरिक्त मूल्य पैदा होता है, वह 'निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य' कहलाता है। जो अतिरिक्त मूल्य आवश्यक श्रम-कालको कम करके पैदा किया जाता है वह सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य कहलाता है।

मालोंका मूल्य श्रमकी उत्पादकताके प्रतिलोम अनुपातमें घटता-बढ़ता है। श्रम शक्तिका मूल्य भी श्रमकी उत्पादकताके प्रतिलोम अनुपातमें घटता-बढ़ता है, क्योंकि वह मालोंके दामपर निर्भर करता है। इसके विपरीत, सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य श्रमकी उत्पादकताके अनुलोम अनुपातमें घटता बढ़ता है।

मालोंके निरपेक्ष मूल्यमें पूँजीपतिकी कोई दिलचस्पी नहीं होती। उसकी दिलचस्पी केवल उनमें निहित अतिरिक्त मूल्यमें होती है। अतिरिक्त मूल्य प्राप्त होनेके लिए यह भी आवश्यक है कि जो मूल्य पेशगी लगाया गया था वह वापस मिल जाय। चूँकि उत्पादक शक्ति बढ़ानेकी क्रिया मालोंके मूल्यको गिरा देती है और साथ ही मालोंमें निहित अतिरिक्त मूल्यको बढ़ा देती है इसलिए यह बात स्पष्ट है कि पूँजीपति जिसे केवल विनिमय-मूल्यके ही उत्पादनकी चिन्ता होती है लगातार मालोंके विनिमय-मूल्यको घटानेकी कोशिश क्यों किया करता है।

मार्क्सका कहना है कि अन्तिम रूपसे स्थिर पूँजी और अस्थिर पूँजीके बीचका अनुपात ही पूँजीकी संघटनात्मक रचनाको निश्चित करता है। लाभकी दरमें अतिरिक्त मूल्यकी दर छुपी हुई है। अतिरिक्त मूल्य (या शोषण) की दर ऊँची न हो तो लाभकी दर गिरेगी। लाभकी दरका अतिरिक्त मूल्यकी दरसे क्या सम्बन्ध है? पूरी पूँजीके साथ अस्थिर पूँजीका जो अनुपात है, उसे अतिरिक्त मूल्यसे गुणा किया जाय तो वही लाभकी दर होगी :

$$\text{लाभ} = \text{अतिरिक्त मूल्य} \times \frac{\text{अस्थिर पूँजी}}{\text{कुल पूँजी}}$$

जब पूरी पूँजीके साथ अस्थिर पूँजीका अनुपात अधिक होगा तो लाभकी दर ऊँची होगी।

---

[1] देखिए मार्क्सकी 'पूँजी' पृष्ठ १ ६०९ ।
[2] देखिए मार्क्सकी 'पूँजी' पृष्ठ ११६०९ ।

अशोक मेहताका कहना है कि यहाँ हम उस स्थानपर पहुँच जाते हैं, जिसे मार्क्सके आलोचकोंने मार्क्सवादी विचारमें 'भारी असंगति' कहा है। शोषणके नियमका तकाजा है कि यदि पर्याप्त अतिरिक्त मूल्य प्राप्त करना है, तो उत्तरोत्तर मानव श्रम अधिक और स्थिर पूँजी कम होनी चाहिए, जब कि पूँजीके संघ-टनात्मक विकासके नियमका तकाजा है कि पूँजीवादी विस्तार तभी सम्भव है, जब स्थायी रूपसे अस्थिर पूँजी घट रही हो और स्थिर पूँजी बढ़ रही हो। ये दो नियम एक असन्तुलन उत्पन्न कर देते हैं। इसके समाधानके लिए मार्क्सने 'कैपिटल' का तीसरा खण्ड लिखा, जिसमें उसने यह घोषित किया कि लाभकी घटती हुई दर और लाभकी बढ़ती हुई रकम पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाकी विशेषताएँ हैं। जबतक यह दोमुहाँ नियम काम कर रहा है, तभीतक पूँजीवाद संकटको टालनेमें समर्थ है।[1]

पूँजीवादके विनाशके कारण

मार्क्सकी मान्यता है कि पूँजीका संचयन और आर्थिक संकट ही पूँजीवादके विनाशके प्रधान कारण हैं।

मार्क्सकी धारणा है कि पूँजीवादका मूल आधार है पूँजीका संचयन, ठीक वैसे ही जैसे कोई अर्थपिपासु कंजूस करता है। पूँजीपतिको लगता है कि यदि पूँजीका संचय नहीं करूँगा, तो समाजमें मेरी प्रतिष्ठा नहीं रहेगी और दूसरे, उसके अभावमें मैं वह पूँजी भी खो बैठूँगा, जो अभी मेरे पास है। मार्क्स शास्त्रीय विचारकोंके इस तथ्यको अस्वीकार करता है कि पूँजीके संचयमें कष्ट उठाना पड़ता है, जिसके पुरस्कारार्थ पूँजीपतिको ब्याज मिलना उचित है।[2]

संचयनका अभिशाप

पूँजी-संचयनका अर्थ यह है कि उत्तरोत्तर अधिक पूँजी कम लोगोंके हाथमें एकत्र होती जाती है। ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनियोंमें स्वामित्व अनेक व्यक्तियोंमें बिखरा रह सकता है, तथापि उसका नियंत्रण थोड़ेसे हाथोंमें रहता है। यह नियंत्रणका सकेन्द्रण है। आप एक मिलपर नियंत्रण रख सकते हैं, पर यह आवश्यक नहीं कि सारे 'शेयर' आपके ही हों। इसके साथ ही आती है अपूर्ण प्रतियोगिता। एकाधिकार रखनेवाला व्यक्ति खरीदका मूल्य या बिक्रीका मूल्य अपनी मुट्ठीमें रखकर बाजारको प्रभावित करनेमें समर्थ होता है। उत्पादनके साधनोंका एकाधिकार पूँजीपतियोंके हाथमें होना श्रमको उसकी पूर्तिकी स्थिति-स्थापकताके गुणसे वंचित कर देता है। वे तथा दूसरे तथ्य अपूर्ण प्रतियोगिताकी

---

१ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ १००-१०२।

२ एरिक रोल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २८२।

सामग्री और 'मोव्हिवारिव' का राज्य होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता और योग्यताके अनुकूल कार्य करेगा और उसकी आवश्यकताके अनुसार सब कुछ उसे प्राप्त होगा।

प्रमुख आर्थिक विचार

मार्क्सवादके प्रमुख आर्थिक विचारोंको दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है

(१) पूँजीवादी व्यवस्थाका अध्ययन और
(२) मार्क्सवादी समाज।

१ पूँजीवादी व्यवस्थाका अध्ययन

मार्क्सवादी अर्थव्यवस्थामें पूँजी और पूँजीवादका अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। उसमें पूँजीवादकी विशेषताएँ, मूल्यका श्रम-सिद्धान्त, श्रमका बचत-सिद्धान्त और पूँजीवादके विनाशके कारण आदि सभी बातें आ जाती हैं। मार्क्स ऐसा मानता है कि पूँजीवादी समाजमें संघर्ष किस ढंगसे प्रस्फुटित एवं विकसित होता है उसके फलस्वरूप पूँजीवाद स्वयं विनाशकी ओर अग्रसर होगा और तब समाजवाद उसका स्थान ग्रहण करेगा।

पूँजीवादकी विशेषताएँ

समाजवादके अवधारणकी सारिणीमें अशोक मेहताने मार्क्सवादका भाग चना मक बताते हुए कहा है कि उसके दो भाग हैं (१) विचारका ऐतिहासि स्वरूप और (२) पूँजीवादकी गतिका सिद्धान्त। इस गतिके सिद्धान्तकी ३ धाराएँ हैं

(१) श्रमका मूल्य-सिद्धान्त
(२) एकाधिकार और
(३) संकट।

इन तीनोंकी भी पृथक् पृथक् धाराएँ हैं:

- श्रमका मूल्य-सिद्धान्त
  - अतिरिक्त श्रम और शोषण
  - आदिकालमें पूँजीका अपसंचय
    - श्रमिकोंका असहाय होना
    - बेकारोंकी सेना
  - पूँजी संघटनात्मक रच

- एकाधिकार
  - पूँजीका सकेन्द्रण
  - नियन्त्रणका सकेन्द्रण
  - अपूर्ण प्रतियोगिता
  - आर्थिक जीवनमें राज्यका प्रवेश
    - राजनीति अर्थशास्त्रकी दासी
    - राज्य आर्थिक प्रभुताके यन्त्रके रूपमें
    - आर्थिक विकास और राजनीतिक व्यवस्थाओंमें अन्तर
      - संकट
        - आवश्यकसे अधिक उत्पादन और कम उपभोग
        - लाभका ह्रासोन्मुख अनुपात
        - असाध्य मंदी
          - व्यवस्थाको ठप कर देनेवाला संकट

समाजके दो वर्ग

मार्क्स यह मानकर चलता है कि आजके पूँजीवादी समाजमें मुख्यतः दो वर्ग हैं—एक पूँजीपति, दूसरा श्रमिक, एक बुर्जुआजी, दूसरा प्रोलितारित। इनमें एक वर्गके हाथमें सारी पूँजी है और दूसरा वर्ग पूँजीसे सर्वथा वंचित है। श्रमिकको यह मानकर चलना पड़ता है कि मेरे पास श्रम ही वह वस्तु है, जिसका विक्रय किया जा सकता है। वह विवश होकर श्रम बेचता है, पर उसे उस श्रमका पूरा मूल्य नहीं मिलता।

समाजमें इन दो वर्गोंके अतिरिक्त कुछ अन्य वर्ग भी हैं। जैसे, भू-स्वामी, कृषि-खेतिहर, जमींदार, सहकारी स्वामी आदि, पर इनका अस्तित्व नगण्य-सा है। क्रमशः ये भी मिटते जा रहे हैं और अन्ततः पूँजीपति और श्रमिक, इन दो वर्गोंमें ही मिलते जा रहे हैं। इन दोनों वर्गोंमें संघर्ष जारी है।

मार्क्सकी धारणा है कि पूँजीवादमें मुख्यतः बड़े पैमानेपर उत्पादन होता है। बड़े बड़े कारखानोंमें हजारों श्रमिकोंके द्वारा वृहद् उत्पादन किया जाता है। यों छोटे-छोटे कुटीर-उद्योग भी चलते हैं, पर अधिकतर उत्पादन बड़े पैमानेपर होता है, जिसमें आधुनिकतम मशीनों और मशीनों सख्यामें मजदूरोंका उपयोग किया जाता है।

और यह उत्पादन समाजकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर नहीं किया जाता, वह किया जाता है लाभकी दृष्टिसे। पूँजीपतिके उत्पादनका एकमात्र लक्ष्य

रहता है अधिकाधिक मुनाफा कमाना। प्रारम्भमें वस्तुके उत्पादनका प्रश्न रहता था उसका उपयोगितागत मूल्य, बादमें उसका प्रश्न रहता है विनिमयगत मूल्य।

पूँजीका सामान्य सूत्र

मार्क्सने पूँजीका एक सामान्य सूत्र निकाला है[1]

[मा = माल, 'मु' = मुद्रा]

'मा—मु—मा' : यह सूत्र मालोंके साधारण परिचलनका प्रतिनिधित्व करता है। इसमें मुद्रा परिचलनके साधनका मध्यस्थका काम करती है। उसका मौलिक सार = 'मा—मा'। विनिमय-मूल्य इस्तान्तरित हो जाता है और उपयोग मूल्य हस्तगत कर लिया जाता है।

'मु—मा—मु' यह सूत्र परिचलनके उस रूपका प्रतिनिधित्व करता है जिसमें मुद्रा अपनेको पूँजीमें परिणत करती है। देखनेके लिए करीग्नेकी क्रियाको मानो 'मु—मा—मु' को 'मु—मु' में भी परिणत किया जा सकता है क्योंकि अप्रत्यक्ष रूपमें यह मुद्राके साथ मुद्राका ही विनिमय है।

'मा—मु—मा' : इसमें मुद्रा केवल पूरी क्रियाके बाहरमें जानेपर ही श्रम मस्थान किन्तुपर और सकती है। यह करम तभी हो सकता है जब नये मालोंको बिकी की जाय। इसलिए मुद्राका लौटना यहाँ दूर स्थितियाँ स्वतंत्र है। दूसरी ओर, 'मु—मा—मु' में मुद्राका लौटना शुरूसे ही स्वयं क्रियाकी प्रणाली द्वारा निर्धारित होता है। यदि मुद्रा लौटती नहीं तो क्रिया अपूर्ण रहती है।

'मा—मु—मा' इसका अन्तिम लक्ष्य उपयोग-मूल्य होता है। 'मु—मा—मु' का अन्तिम लक्ष्य मुद्रा विनिमय मूल्य होता है।

मार्क्स मानता है कि पूँजीवादसे पूर्व उपयोग-मूल्यकी दृष्टिसे सारा श्रम होता था पूँजीवादी युगमें विनिमय-मूल्यकी दृष्टिसे होता है। उसमें पूँजीका उपयोग श्रमका शोषण करके अधिकाधिक पैसा कमानेके लिए होता है।

मार्क्सकी निश्चित धारणा है कि पूँजीवादी पद्धति श्रमके शोषणपर आश्रित है। श्रमिक केवल कहनेके लिए स्वतंत्र है परन्तु बाजारके अमूल्यता विनिमयके सिद्धान्त द्वारा उसका शोषण किया जाता है।

श्रमका मूल्य-सिद्धान्त

मार्क्सके अनुसार उत्पादनका एकमात्र सक्रियात्मक तत्त्व है—श्रम। पूँजी और भूमिके साथ सामञ्जस्य स्थापित करके ही उत्पादन सम्भव है। केवल श्रममें ही यह क्षमता है कि वह लागतसे अधिककी बलतक उत्पादन कर सकता है। श्रमकी लागत और श्रम द्वारा किये गये उत्पादनके मूल्यके बीच मूल्यगत अन्तर होता

१ कैपिटल मार्क्सकी पूँजी ११४७, खण्ड १, पृष्ठ १८–२१।

है। श्रमकी कीमत श्रमिकको अपनेको जीवित और सक्षम रखनेके लिए दी जानेवाली मजूरी होती है, जब कि श्रम द्वारा किये गये उत्पादनकी कीमत उसमे लगायी गयी श्रम शक्तिका मूल्य या अर्थ होता है। श्रमिकको मिलनेवाली उसके श्रमकी कीमत और उसने जो श्रम किया है, उसकी कीमत पृथक् की जा सकती है। 'वस्तुस्थिति यह है कि मजूरी पानेवाला श्रमिक अपना श्रम पूँजीपतिके हाथ बेचता है और पूँजीपति उस श्रम-शक्तिको बेचता है, जो उस वस्तुमें निहित है।'[1] पूँजीपति जहाँ वस्तुकी, जिसमें श्रमिककी श्रम शक्ति लगी रहती है, कीमत पाता है, वहाँ वह श्रमिकको केवल उसके जीवन निर्वाहभरकी कीमत चुकाता है। यह अन्तर मूल्यके श्रम सिद्धान्तको जन्म देता है।[2]

अतिरिक्त मूल्य

श्रम क्रिया और अतिरिक्त मूल्य पैदा करनेकी क्रिया समझाता हुआ मार्क्स कहता है कि पूँजीवादी आधारपर जो श्रम क्रिया चलती है, उसने दो विशेषताएँ होती हैं: (१) मजदूर पूँजीपतिके नियन्त्रण में काम करता है, (२) पैदावार पूँजीपतिकी सम्पत्ति होती है, क्योंकि श्रम क्रिया अब दो ऐसी वस्तुओंके बीच चलनेवाली क्रिया बन जाती है, जिन्हें पूँजीपतिने खरीद रखा है। वे वस्तुएँ हैं: श्रम-शक्ति और उत्पादनके साधन।

परन्तु पूँजीपति उपयोग मूल्यका उत्पादन खुद उपयोग-मूल्यके लिए नहीं करता, वह केवल विनिमय मूल्यके भंडारके रूपमें और खास तौरपर अतिरिक्त मूल्यके भंडारके रूपमें उसका उत्पादन करता है। इस स्थितिमें—जहाँ मालमें उपयोग मूल्य और विनिमय मूल्यकी एकता थी—श्रमन उत्पादन-क्रिया और मूल्य पैदा करनेकी क्रियाकी एकता हो जाती है।

श्रमिकको उसकी मजूरीके लिए ६ घण्टे श्रम करना आवश्यक हो और वह १० घण्टे श्रम करे, तो ४ घण्टेका श्रम 'अतिरिक्त मूल्य' पैदा करेगा।

मूल्य पैदा करनेवाली क्रियाके रूपमें श्रम-क्रिया जिस बिन्दुपर श्रम-शक्तिके पहलेसे अदा किये गये मूल्यका एक साधारण सममूल्य पैदा कर देती है, उस बिन्दुसे आगे जब यह क्रिया चलायी जाती है, तब वह तुरन्त ही **'अतिरिक्त मूल्य'** पैदा करनेकी क्रिया बन जाती है।[3]

शोषणकी प्रक्रिया

मार्क्स कहता है कि 'पूँजीवादी उत्पादन केवल अतिरिक्त मूल्यके लिए किया जाता है। पूँजीपतिकी जिस उत्पादनमें सचमुच दिलचस्पी है, वह पार्थिव वस्तु

१ जान स्ट्रेची दि नेचर आफ दि कैपिटलिस्ट क्राइसिस, पृष्ठ १७९।
२ अशोक मेहता डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ ६३।
३ ऐंजिल मार्क्सकी 'पूँजी', पृष्ठ १००–१०२।

नहीं, अर्थात् मालमें लगी हुई पूँजीके मूल्यसे 'अतिरिक्त मूल्य' है।[1] यह अतिरिक्त मूल्य शोषणका प्रतीक है। पूँजीपति उत्तम यंत्र और पद्धतिका उपयोग करके श्रमिककी कार्यक्षमता बढ़ाकर उसके ऊपर अधिक भार लादकर, उसकी मजूरी-को पहले जैसी रखकर अथवा और भी घटाकर यह मजूरी और अपनी उपलब्धिके बीचका अन्तर को अर्थात् अपने लाभको अधिकाधिक बढ़ाना चाहता है। यह शोषणकी प्रक्रिया है। इस प्रकार श्रमिकपर दोहरा भार पड़ता है। पूँजी-संचय शोषणकी प्रक्रियाका दूसरा पहलू मात्र है। आदिरूपमें पूँजी संचयके मार्क्सने दो उपाय बताये हैं: (१) किसानको उसकी भूमिसे उखाड़ देना और (२) बेकारों की एक सेना सदा खड़ी रखना।

पूँजीवादी प्रणालीके एक अन्य दोषकी ओर भी मार्क्सने ध्यान आकृष्ट किया है। वह है श्रमिक और उसके श्रमके बीच पृथक्करण। अशोक मेहताका कहना है कि यह दुःखकी बात है कि मार्क्सकी विचारधाराके इस पहलूकी चर्चा शायद ही कोई मार्क्सवादी कभी करते हों। मार्क्सने इसे श्रमका स्व-विच्छेदन कहा है। श्रमिक अपनेसे ही विलग हो जाता है। पूँजीवादी प्रणाली व्यक्तिको स्वयंसे, व्यक्तियोंको भूमि और प्रकृतिसे और व्यक्तिको व्यक्तिसे दूर कर देती है।[2]

स्थिर और अस्थिर पूँजी

मार्क्सने पूँजीके दो भेद किये हैं—स्थिर और अस्थिर। उसका कहना है कि श्रम-क्रिया श्रमकी विषयवस्तुमें नया मूल्य तो जोड़ती है परन्तु साथ ही वह श्रमकी विषयवस्तुके मूल्यको उत्पादनमें स्थानान्तरित कर देती है और इस प्रकार वह मूल्य नया मूल्य जोड़कर उसे सुरक्षित रखती है। यह दोहरा परिणाम इस प्रकार प्राप्त होता है: श्रमका विशिष्टतया उपयोगी गुणात्मक स्वरूप एक उपयोग-मूल्यको दूसरे उपयोग-मूल्यमें बदल देता है और इस प्रकार मूल्यको सुरक्षित रखता है; किन्तु श्रमका मूल्य पैदा करनेवाला, अमूर्त सामान्य एवं परिमाणात्मक स्वरूप नया मूल्य जोड़ देता है।

जो पूँजी श्रमके औजारोंमें—मशीन मकान कारखाना आदि माल तैयार करनेके साधनोंमें—लगायी जाती है उत्पादन क्रियाके दौरानमें उसके मूल्यमें कोई परिवर्तन नहीं होता। उसे हम 'स्थिर पूँजी' कहते हैं।

पूँजीका जो भाग श्रम शक्तिमें लगाया जाता है, उसका मूल्य उत्पादनकी क्रियाके दौरानमें बराबर बदल जाता है। यह एक तो खुद अपना मूल्य पैदा

१ मार्क्स : कैपिटल खण्ड १, पृष्ठ ५४।
२ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म पृष्ठ ४९।

करता है और दूसरे, अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है। पूँजीके इस भागको हम 'अस्थिर पूँजी' कहते हैं।

हर हालतमें स्थिर पूँजी ("स्थि") सदा स्थिर रहती है और अस्थिर पूँजी ("अस्थि") सदा अस्थिर रहती है।[1]

अतिरिक्त मूल्यकी दर

स्थिर और अस्थिर पूँजी तथा अतिरिक्त मूल्य (अमू) के आधारपर मार्क्सने अतिरिक्त मूल्यकी दरका सूत्र निकाला है[2]।

पू = ५०० पौण्ड = ४१० स्थि + ९० अस्थि।

श्रम क्रियाके अन्तमें हमें मिलते हैं—४१० स्थि + ९० अस्थि + ९० अमू।

४१० स्थि = मालके ३१२ + सहायक सामग्रीके ४४ + मशीनोंकी घिसाईके ५४ पौण्ड।

मान लीजिये कि सभी मशीनोंका मूल्य १०५४ पौण्ड है। यदि यह पूरा मूल्य हिसाबमें शामिल किया जाय, तो हमारे समीकरणके दोनों तरफ "स्थि" १४१० के बराबर हो जायगा, लेकिन अतिरिक्त मूल्य पहलेकी तरह ९० ही रहेगा।

"स्थि" का मूल्य चूँकि पैदावारमें केवल पुन प्रकट होता है, इसलिए हमें जो पैदावार मिलती है, उसका मूल्य उस मूल्यसे भिन्न होता है, जो श्रम-क्रियाके दौरानमें पैदा हो गया है। अतः यह मूल्य, जो श्रम-क्रियाके दौरानमें नया पैदा हुआ है, वह स्थि + अस्थि + अमूके बराबर नहीं होता, बल्कि केवल अस्थि + अमूके बराबर होता है। इसलिए अतिरिक्त मूल्य पैदा करनेकी क्रियाके लिए 'स्थि' की मात्राका कोई महत्त्व नहीं होता, अर्थात् स्थि = ०।

व्यापारिक हिसाब-किताबमें व्यावहारिक ढंगसे यही किया जाता है। जैसे, इसका हिसाब लगाते समय कि किसी देशको उसके उद्योग-धंधोंमें कितना मुनाफा होता है, बाहरसे आये हुए कच्चे मालका मूल्य दोनों तरफ घटा दिया जाता है।

अतएव अतिरिक्त मूल्यकी दर "अमू : अस्थि" होती है। ऊपरके उदाहरणमें अतिरिक्त मूल्यकी दर है—

९० ९० = १००%

सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य

मार्क्सने अतिरिक्त मूल्यके दो भाग किये हैं—निरपेक्ष और सापेक्ष।

---

१ एँजिल मार्क्सकी 'पूँजी', पृष्ठ २०३-२०५।
२ एँजिल मार्क्सकी 'पूँजी', पृष्ठ २०६।

अशोक मेहताका कहना है कि यहाँ हम उस स्थानपर पहुँच जाते हैं, जिसे मार्क्सके आलोचकोंने मार्क्सवादी विचारमें 'भारी असंगति' कहा है। शोषणके नियमका तकाजा है कि यदि पर्याप्त अतिरिक्त मूल्य प्राप्त करना है, तो उत्तरोत्तर मानव श्रम अधिक और स्थिर पूँजी कम होनी चाहिए, जब कि पूँजीके संघटनात्मक विकासके नियमका तकाजा है कि पूँजीवादी विस्तार तभी सम्भव है, जब स्थायी रूपसे अस्थिर पूँजी घट रही हो और स्थिर पूँजी बढ़ रही हो। ये दो नियम एक असन्तुलन उत्पन्न कर देते हैं। इसके समाधानके लिए मार्क्सने 'कैपिटल' का तीसरा खण्ड लिखा, जिसमें उसने यह घोषित किया कि लाभकी घटती हुई दर और लाभकी बढ़ती हुई रकम पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाकी विशेषताएँ हैं। जबतक यह दोमुँहा नियम काम कर रहा है, तभीतक पूँजीवाद संकटको टालनेमें समर्थ है।[1]

पूँजीवादके विनाशके कारण

मार्क्सकी मान्यता है कि पूँजीका संचयन और आर्थिक संकट ही पूँजीवादके विनाशके प्रधान कारण हैं।

मार्क्सकी धारणा है कि पूँजीवादका मूल आधार है पूँजीका संचयन, ठीक वैसे ही जैसे कोई अर्थपिपासु कंजूस करता है। पूँजीपतिको लगता है कि यदि पूँजीका संचय नहीं करूँगा, तो समाजमें मेरी प्रतिष्ठा नहीं रहेगी और दूसरे, उसके अभावमें मैं वह पूँजी भी खो बैठूँगा, जो अभी मेरे पास है। मार्क्स शास्त्रीय विचारकोंके इस तथ्यको अस्वीकार करता है कि पूँजीके संचयमें कष्ट उठाना पड़ता है, जिसके पुरस्कारार्थ पूँजीपतिको ब्याज मिलना उचित है।[2]

संचयनका अभिशाप

पूँजी-संचयनका अर्थ यह है कि उत्तरोत्तर अधिक पूँजी कम लोगोंके हाथमें एकत्र होती जाती है। ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनियोंमें स्वामित्व अनेक व्यक्तियोंमें बिखरा रह सकता है, तथापि उसका नियन्त्रण थोड़ेसे हाथोंमें रहता है। यह नियन्त्रणका संकेन्द्रण है। आप एक मिलपर नियन्त्रण रख सकते हैं, पर यह आवश्यक नहीं कि सारे 'शेयर' आपके ही हों। इसके साथ ही आती है अपूर्ण प्रतियोगिता। एकाधिकार रखनेवाला व्यक्ति खरीदका मूल्य या बिक्रीका मूल्य अपनी मुट्ठीमें रखकर बाजारको प्रभावित करनेमें समर्थ होता है। उत्पादनके साधनोंका एकाधिकार पूँजीपतियोंके हाथमें होना श्रमको उसकी पूर्तिकी स्थिति-स्थापकताके गुणसे वंचित कर देता है। ये तथा दूसरे तथ्य अपूर्ण प्रतियोगिताकी

---

१ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ १००–१०२।
२ एरिक रौल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २८२।

सकता करते हैं। पूँजीवादी व्यवस्थामें उपक्रमीकी ओरसे एकाधिकार स्थापित करने, उसमें वृद्धि करने और इस प्रकार प्रतियोगिताके अपूर्ण प्रतियोगिता बनानेके लिए सतत एवं अरोध्य प्रयास होते हैं।[1]

पूँजीके संचयनके दुष्चक्रमें व्यवस्थाद्वारा अधिक उत्पादन और कम उपभोग, क्रमशः ह्रासोन्मुख अनुपात, असाध्य मन्दी और मन्दता जारी व्यवस्थाको ठप कर देनेवाला संकट भी जुड़ा हुआ है। मार्क्स कहता है कि एक ओर सम्पत्तिका संचयन होता है, उसीके साथ-साथ दूसरी ओर विपत्तिका संचयन होता है। पूँजीवादके विकासमें ही उसके विनाशके चिह्न छिपे रहते हैं। एक ओर श्रमिकोंको मद्दाकर बड़े पैमानेपर उत्पादन किया जाता है, दूसरी ओर छोटे पैमानेके उद्योगोंका नाश करके बेकारोंकी संख्या बढ़ायी जाती है। जिन श्रमिकोंके श्रमसे पूँजीपति पूँजीका संचयन करता है वे श्रमिक ही उसकी कब्र खोदते हैं। एक ओर श्रमिकोंकी माँग बढ़ती है उनकी मजदूरी बढ़ती है। मजदूरी बढ़ती है तो पूँजीपतियोंका अतिरिक्त श्रम घटता है। श्रमको बनाये रखनेको वह श्रमिक घटाता है मजदूरी घटाता है, मशीनोंसे अच्छी मशीनें लगाता है श्रमकी तीव्रता बढ़ाता है, इससे श्रमिकोंकी बेकारी बढ़ती है, उनकी क्रयशक्ति घटती है अति-उत्पादन होता है, मन्दी आती है। आर्थिक संकट बढ़ते हैं गरीबी बढ़ती है असन्तोष बढ़ता है। मार्क्सकी मान्यता है कि ये सारे संकट पूँजीवादको ले डूबेंगे। मार्क्सकी दृष्टिमें इन संकटोंका अनिवार्य परिणाम है—क्रान्ति।

यंत्रका भयंकर अभिशाप

यंत्रोंके द्वारा शोषण किस प्रकार बढ़ता है इसका वर्णन करते हुए मार्क्स कहता है कि मशीनें जिस शक्तिसे चलती हैं वह शक्ति चूँकि खुद मशीनोंमें ही मौजूद होती है, इसलिए मांसपेशियोंकी शक्तिका मूल्य गिर जाता है। स्त्रियों और बच्चोंके श्रमसे काम लेनेका चलन बढ़ जाता है। पुरुषकी श्रम-शक्तिका मूल्य घट जाता है। श्रम परिवारको जीवित रखनेके लिए एक व्यक्तिके बजाय चार व्यक्तियोंको पूँजीके वास्ते न केवल श्रम करना पड़ता है, बल्कि अतिरिक्त श्रम भी करना पड़ता है। इस प्रकार शोषणकी सामग्री बढ़नेके साथ-साथ शोषणकी मात्रा भी बढ़ जाती है। अल्पवयस्क लड़के-लड़कियाँ या बच्चे खरीदे जाते हैं। मजदूर अपनी पत्नी और बच्चोंको बेचने लगता है। वह दासोंका व्यापारी बन जाता है। मजदूरोंका शारीरिक पतन होने लगता है—उनके बच्चोंकी मृत्यु-संख्या बढ़ जाती है। उनका नैतिक पतन होता है। श्रमके दिनका समय बढ़ाके पूँजी बिना बढ़ाये ही पहलेसे अधिक मात्रामें श्रमका अपशोषण होने लगता है। श्रमकी

[1] जार्जेन मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ १८-१९।
[2] इरिक रौल : वही, पृष्ठ २८-२५२।

तीव्रता बढानेके प्रयत्न आरम्भ होते हैं। मशीनोंकी प्रणालीमें मशीन सचमुच मजदूरका स्थान छीन लेती है।[1]

विकासमें विनाश

मार्क्स कहता है कि मशीनोंका पहला परिणाम यह होता है कि अतिरिक्त मूल्यमें तथा उत्पादनकी उस राशिमें वृद्धि हो जाती है, जिसमें यह अतिरिक्त मूल्य निहित होता है और जिसके सहारे पूँजीपति वर्ग तथा उसके लगुवे-भगुवे जिन्दा रहते हैं। विलासकी वस्तुओंका उत्पादन बढ़ता है। सचारके साधन भी बढ़ते हैं। इन सबके फलस्वरूप घरेलू दासोंकी सख्या बढ़ती है। मशीनें सहकारिता और हस्त निर्माणका अन्त कर देती हैं। कुछ विशेष मौसमोंमें काम बढ़नेके कारण घरेलू उद्योग और हस्त-निर्माणमें एक तरफ जहाँ लम्बे समयतक बहुतसे श्रमिक बेकार बैठे रहते हैं, वहाँ दूसरी तरफ कामका मौसम आनेपर उनसे अत्यधिक श्रम कराया जाता है। फैक्टरी कानूनोंका यह प्रभाव होता है कि उनसे पूँजीके केन्द्रीकरणमें तेजी आ जाती है। फैक्टरी-उत्पादन सारे समाजमें फैल जाता है। पूँजीवादी उत्पादनके अन्तर्निहित विरोध तेज हो जाते हैं। पुराने 'समाजका ध्वस्त पलटनेवाले तत्त्व और नये समाजका निर्माण करनेवाले तत्त्व परिपक्व होते जाते हैं। खेतीमें मशीनें और भी भयानक रूपमें मजदूरोंकी रोजी छीनती है। किसानका स्थान मजूरीपर काम करनेवाला मजदूर ले लेता है। देहातका घरेलू हस्त-निर्माण नष्ट कर दिया जाता है। शहर और देहातका विरोध उग्र हो उठता है। देहाती मजदूरोंमें बिखराव और कमजोरी आ जाती है, जब कि शहरी मजदूरोंका केन्द्रीकरण हो जाता है। चुनांचे खेतिहर मजदूरोंकी मजूरी गिरते-गिरते एक अल्पतम स्तरपर पहुँच जाती है। साथ ही धरतीकी लूट होती है। उत्पादनकी पूँजीवादी प्रणालीकी पराकाष्ठा यह होती है कि वह हर प्रकारके धनके मूल स्रोतोंकी—भूमिकी और मजदूरकी—जड़ खोदने लगती है।[2]

मार्क्सकी मान्यता है कि पूँजी सचयनसे, यन्त्रोंकी वृद्धि और तीव्रतासे एक ओर सम्पत्तिका अम्बार लगने लगता है, दूसरी ओर दरिद्रता बढने लगती है। बेकारी बढ़ती है। 'श्रमिकोंकी रिजर्व सेना' तैयार होने लगती है। अत आर्थिक सकट आते हैं। दैन्य, अत्याचार, दासता, पतन और शोषणमें वृद्धि होती है। एकाधिकारका अन्तिम परिणाम यह होगा कि पूँजीवादी खोलका विस्फोट होगा, पूँजीवादी व्यवस्थाकी अन्तिम घड़ी आ जायगी और दूसरोंको सम्पत्तिहीन बनानेवाले स्वय सम्पत्तिहीन बन जायेंगे। लुटेरोंको ही लूट लिया जायगा। पूँजीका सचयन स्वय ही उसके विनाशका कारण बनेगा।

---

१ ऐंजिल मार्क्सकी 'पूँजी', पृष्ठ १३३–१३६।
२ ऐंजिल मार्क्सकी 'पूँजी', पृष्ठ १४१–१४५।

(१) मार्क्सका उदय ठीक उस अवसरपर हुआ, जब फैक्टरीके दोषोंके कारण श्रमिकोंमें असन्तोष तीव्र गतिसे बढ़ रहा था। इंग्लैण्डमें श्रमिक संघटित हो रहे थे, फ्रांसमें सन् १८४८ की क्रान्ति हो चुकी थी और जर्मनीमें स्थिति अत्यन्त असहनीय हो रही थी।

(२) उस समयकी तीव्र माँग थी कि 'करो या मरो'। पुराना ढाँचा तोड़नेको लोग उत्सुक थे। मार्क्सने सबके समक्ष क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत कर दिये।

(३) मार्क्सने अपने विचारोंको 'वैज्ञानिक' लबादा पहना दिया, जिससे अनुयायियोंको प्रोत्साहन मिला, आलोचकोंको सोचनेकी सामग्री। 'वैज्ञानिक' शब्दसे समाजवादियोंको एक नया दाँव मिला।

(४) मार्क्सने कई आकर्षक नारे दिये, जो खूब प्रचलित हो पड़े।

(५) मार्क्सने समाजवादका वह सब्ज बाग दिखाया कि लोग उसकी ओर मुँह बाकर दौड़े।[1]

मार्क्सवादी अपनी विचारधारामें निम्न विशेषताओंका दावा करते हैं :

(१) मार्क्सवादमें 'वैज्ञानिक' समाजवाद है।

(२) इसमें न्याय और भ्रातृत्वकी ओर पूरा ध्यान दिया गया है।

(३) श्रमिक-वर्गके लिए यह धर्मग्रन्थ है।

(४) इसका वर्ग-संघर्षका सिद्धान्त क्रान्तिकारी है।[2]

मार्क्सके अनुयायी मार्क्सको अपना मसीहा मानते हैं। उनके लेखे वह अत्यन्त मेधावी और मौलिक क्रान्तिकारी है, पर उसके आलोचक कहते हैं कि मार्क्सने शास्त्रीय परम्परामें ही नयी कलम लगायी।[3] उसका कोई नया अनुदान नहीं है। एरिक रौलका कहना है कि शास्त्रीय परम्परासे उसका इतना ही पार्थक्य है कि वह उसे अपूर्ण मानता है और उसी आधारपर उसने तर्कसंगत निष्कर्ष निकाले।[4]

मार्क्सका मूल्यांकन

मार्क्सके प्रशंसकोंकी और आलोचकोंकी कमी नहीं है। उसने जिस विचारधाराका प्रतिपादन किया, उसमें मौलिकता भले ही कम हो, इतना तो निश्चित है कि उसने अपने गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन द्वारा सारे विचारोंको ऐसी कड़ीमें पिरोया कि विश्वपर उसका महान् प्रभाव पड़ा। यह सत्य है कि पूँजी-

१ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४६४-४६५।

२ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ४६७-४७४।

३ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४६६।

४ एरिक रौल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २६८।

वादके अभिशापसे संत्रस्त मानव-समाज उस समय ऐसे किसी समाधानके लिए व्यग्र एवं आतुर था, पर मार्क्सकी विचारधारा क्यों प्रख्यात हो गयी, इसका कारण है। और वह यही कि उसने गरीबोंकी भावनाको तीव्रतासे अनुभूति की और उसे उग्रतम भाषामें व्यक्त करके उस क्रान्तिकारी स्वरूप प्रदान किया।

मार्क्सके सिद्धान्तोंमें अनेक असंगतियाँ हैं, उसके विचारोंमें अनेक दोष हैं, फिर भी इतना तो है ही कि उसने सर्वहारा वर्गकी छटपटाहट तीव्रतम रूपमें व्यक्त हुई है।

मार्क्स भौतिकवादी है, वर्ग-संघर्षका समर्थक है, हिंसाके बलपर समाजके शोषण और अन्यायको समाप्ति करना चाहता है, केन्द्रीकरणका पक्षपाती है, वैयक्तिक सत्ता पर अस्वीकार करता है प्रेम सद्भाव, करुणा, सदाचार, नैतिकता आदिको वह कोई महत्त्व नहीं देता, विकेन्द्रीकरण उसकी दृष्टिसे गलत है—उसकी ये सारी बातें विवादास्पद हैं। इनमें संकीर्णता है, एकपक्षीयता है और मानवको भ्रामक मार्गपर ले जानेकी प्रवृत्ति है। रूस जैसे मार्क्सवादके पथपर चलने वाले देशोंमें जो भयंकर तानाशाही चलती है, सामाजिक न्याय और समताका किस प्रकार गला घोंट जाता है, यह किससे छिपा है!

फिर भी आर्थिक विचारधारामें मार्क्सका अनुदान नगण्य नहीं। शोषण और अन्यायका पर्दाफाश करनेमें पूँजीवादकी जड़ खोदनेमें और सर्वहारा-वर्गको जाग्रत करनेमें मार्क्सने अभूतपूर्व काम किया है। विश्वके विभिन्न अंचलोंमें मार्क्सके विचारोंका भारी प्रभाव पड़ा है। रूसमें लेनिनने पूँजीवादको उखाड़ फेंका। चीनमें माओ त्से तुंगने मार्क्सका सिद्धान्त अपनाया। फ्रांसमें, जर्मनीमें इंग्लैण्डमें, विश्वके अन्य अनेक देशोंमें मार्क्सवादी विचारधाराका पर्याप्त प्रभाव है। यह बात दूसरी है कि उसके कुपरिणाम देखकर बहुतसे व्यक्ति जिन्होंने तीव्रतासे उसे ग्रहण किया था, अब तीव्रतासे उसका परित्याग कर रहे हैं। ● ● ●

अन्य समाजवादी विचारधाराएँ : ३ :

यूरोपमें इधर एक ओर वैज्ञानिक समाजवादका विकास हो रहा था, दूसरी ओर मार्क्सवादसे मतभेद रखनेवाली कुछ अन्य समाजवादी विचारधाराएँ पनप रही थीं। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें इस प्रकारकी ये चार विचारधाराएँ विकसित हुईं :

१. संशोधनवादी विचारधारा (Reformism),
२. संघ समाजवादी विचारधारा (Syndacalism),
३. फेबियनवादी विचारधारा (Fabianism) और
४. ईसाई समाजवादी विचारधारा (Christian Socialism)

संशोधनवादी विचारधारा

जर्मन विचारक एडवर्ड बर्नस्टाइन (सन् १८५०–१९३२) के नेतृत्वमें संशोधनवादी विचारधाराका विकास हुआ। वह आरम्भिक जीवनमें क्रान्तिकारी रहा। एंजिल्सका यह मित्र जर्मनीसे निर्वासित कर दिया गया था। इसने मार्क्सवादका विरोध किया और सन् १८८८ से १९०० तक वह इंग्लैण्डमें निर्वासित जीवन बिताता रहा। उसने 'एवोल्यूशनरी सोशलिज्म' नामक रचना सन् १८९९ में लिखी।

सन् १९०० में बर्नस्टाइन जर्मनी लौट गया। वहाँ उसने जर्मनीकी सोशल डेमोक्रेटिक पार्टीके संगठनमें विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य किया। तबसे लेकर १४ साल-तक उसके और रूढ़िवादी मार्क्सवादके महन्त कार्ल कोटस्कीके बीच मार्क्सवाद-पर खूब वाद-विवाद चलता रहा।

यों तो बर्नस्टाइनके पहले बवेरिया-निवासी वान वोल्मरने इस बातकी आवश्यकतापर जोर दिया था कि मार्क्सके कुछ मूलभूत विचारोंमें संशोधन करनेकी आवश्यकता है, पर इस कामको पूरा किया बर्नस्टाइनने।

बर्नस्टाइनका अपने गुरु मार्क्ससे अनेक प्रश्नोंपर मतभेद था। उसका झुकाव व्यावहारिक मार्गकी ओर, समस्याओंके शान्तिपूर्ण समाधानकी ओर था। राज्यके प्रति उसकी प्रवृत्ति अनुकूलतापूर्ण थी और वह प्रशासनिक सुधारों-में विश्वास करता था। उसका मार्ग वस्तुतः नैतिकताका मार्ग था। बर्नस्टाइनने मार्क्सके आर्थिक सिद्धान्तमें सुधार किया, जिसके फलस्वरूप राजनीतिक

व्याख्याओंमें भी संशोधन हुए और श्रमिक-आन्दोलनकी कार्यनीतिमें परिवर्तन किये गये।[1]

बर्नस्टाइनका सुधारवादी उदार दृष्टिकोण उन लोगोंके दृष्टिकोणके सर्वथा विपरीत था जो विध्वंसात्मक परिवर्तन अथवा चमत्कारिक क्रान्तिमें विश्वास करते थे।

संशोधनवादी विचारधाराके अन्य प्रमुख विचारक थे—तुगन फ्रौंसकी, जन थाय धाम्पार और बेडेटो क्रोचे।

मार्क्सवादकी आलोचना

संशोधनवादियोंको मार्क्सका मूल्यका श्रम सिद्धान्त, अतिरिक्त मूल्यका सिद्धान्त और इतिहासकी भौतिकवादी व्याख्या अस्वीकार थी। पूँजीवादके तत्काल विनाशकी मार्क्सकी सम्भावनाको भी वे गलत मानते थे।

संशोधनवादियोंका कहना था कि मूल्यका श्रम सिद्धान्त स्वयं मार्क्सने बहुत बादमें खोज निकाला। पहले सोचा होता तो कम्युनिस्ट घोषणापत्रमें उसकी चर्चा की ही जाती। पर ऐसा है नहीं। यह सिद्धान्त भ्रामक है। संशोधनवादी सीमान्त उपयोगिताके अथवा मूल्यके माँग और पूर्तिके सिद्धान्तकी ओर झुके हुए थे।

इसी प्रकार वे अतिरिक्त मूल्यके सिद्धान्तके औचित्यको भी नहीं मानते थे। बर्नस्टाइनका कहना था कि अतिरिक्त मूल्यकी धारणा सही भी हो सकती है, गलत भी; पर उससे अतिरिक्त श्रमके अनुमानपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतिरिक्त श्रम तो हम रोज ही देखते हैं। हाथ कंगनको आरसी क्या![2]

भौतिकवादकी ऐतिहासिक व्याख्या भी संशोधनवादियोंको अस्वीकार है। वे कहते हैं कि इतिहासकी वास्तविक गतिकी व्याख्या करनेमें मार्क्सकी व्याख्या असफल सिद्ध होती है। यह कहना गलत है कि इतिहासपर केवल आर्थिक कारणों-का ही प्रभाव पड़ता है। नैतिकता, शिक्षा, राजनीति एवं सामाजिक स्थितियाँ भी देशोंके उत्थान-पतनकी प्रगतिको प्रभावित किया करती हैं। इन सबका परस्पर प्रभाव पड़ता रहता है। मार्क्सका दृष्टिकोण एकांगी और गलत है।[3]

संशोधनवादी विचारकोंने मार्क्सकी इस धारणाको भी स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया कि पूँजीवादका विनाश होनेमें अब कोई विलम्ब नहीं है। मार्क्स समझता था कि भारी आर्थिक संकट दुःख आ रहे हैं और वे संकट श्रमिकोंको सामूहिक रूपसे सक्रिय बना देंगे। जनता भी कठिनाइयोंसे संत्रस्त

---

१ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ १०-११।
२ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ४७७।
३ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४८ ।

होकर मैदानमें उतरनेको तैयार हो जायगी। अन्ततः श्रमिक विजय प्राप्त कर लेंगे। पूँजीवादी व्यवस्थाके विध्वंसका यह अवसर उस समय आयेगा, जब पूँजीवादरूपी जर्जर अण्डेमें समाजवादरूपी बच्चा तैयार हो जायगा। वह महान् परिवर्तनका क्षण होगा, जब मार्क्सके शब्दोंमें 'दूसरोंको सम्पत्तिहीन करनेवाले स्वयं सम्पत्तिसे हाथ धो बैठेंगे।' समाज निरन्तर विकसित होगा, सामाजिक शक्तियाँ उत्तरोत्तर सशक्त एवं परिपक्व होंगी और अन्ततः एक दिन जब यह संकट चरम सीमापर पहुँच जायगा, तब एक महान् विप्लवके द्वारा समाज छलाँग मारकर नयी व्यवस्थामें पहुँच जायगा।—मार्क्सकी आँखोंके सामने क्रान्तिका यही चित्र था।

मार्क्सका यह टाइम-टेबुल गलत हो गया, तो जर्मनीके सोशल डेमोक्रेटोंने उसमें संशोधन करना शुरू कर दिया।[1] उन्होंने कहा कि मार्क्सने पूँजीके संचयनकी जो पद्धति बतायी थी, वह पूरी नहीं पड़ी। उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें बड़े उद्योगोंकी अपेक्षा छोटे उद्योग ही अधिक मात्रामें विकसित हुए। संयुक्त पूँजीवाली ज्वाइंट स्टाक कम्पनियोंने भारी संख्यामें लोगोंको सम्पत्तिमें भागीदार बनाया। सहकारिताने श्रमिकको छोटा-मोटा पूँजीपति बना दिया। ले-देकर यह हुआ कि मध्यम-वर्गके बीचसे ही छोटे उपक्रमी, भू-स्वामी और छोटे उद्योगपति उत्पन्न हो गये। श्रमिकोंका जीवन स्तर ऊँचा उठा। इन सब बातोंके फलस्वरूप जो आर्थिक संकट आनेवाले थे, वे टल गये। इस प्रकार मार्क्सकी भविष्यवाणी गलत सिद्ध हुई कि पूँजीवादका विध्वंस होनेमें अब रत्तीभरकी देर नहीं है। अब लोग आर्थिक संकटोंको भूकम्प जैसा तीव्र नहीं मानते कि उनके आते ही तहलका मच जायगा। वे अब उनके लेखे समुद्रकी लहरोंकी भाँति होते हैं, जिनके उतार-चढ़ावकी, जिनके ज्वार भाटेकी पहलेसे कल्पना की जा सकती है।[2]

मार्क्स जहाँ यह मानता था कि संघर्ष पूँजीपतियों और श्रमिकोंके बीचमें है, वहाँ संशोधनवादी मानते थे कि संघर्षकी नोकझोंक तो कई जगहोंपर होती रहती है। जैसे, बड़े और छोटे पूँजीपतिके बीच, एक उद्योग और दूसरे उद्योगके बीच, कुशल और अकुशल श्रमिकके बीच।

नीति और पद्धति

संशोधनवादी विचारकोंकी धारणा थी कि मार्क्सवाद जिस क्रान्तिका इतना डंका पीटता है, वह क्रान्ति तो असम्भव है, पर श्रमिकोंका आन्दोलन तो चलना ही चाहिए। शान्तिपूर्ण एवं वैध उपायोंसे श्रमिकोंको अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके प्रयत्नमें जुटना चाहिए। पूँजीवादके अभिशापोंकी तीव्र प्रतिक्रिया हो रही है और

१ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ ३३।

२ जीद और रिस्ट : वही पृष्ठ ४८०।

तदनुकूल कानून बनाये जा रहे हैं। श्रमिक-आन्दोलनको इस बातकी चेष्टा करनी चाहिए कि यह क्रम और अधिक तीव्रतासे सम्पन्न हो।

संशोधनवादियोंने जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टीके माध्यमसे अपना यह आन्दोलन चलाया। उन्होंने हिंसाकी निन्दा करते हुए वैधानिक मार्गसे जनताको अधिकाधिक लोकतंत्र एवं आर्थिक सुधार लानेका प्रयत्न किया। वे लोकतंत्रात्मक पद्धतिसे समाजको विकसित करनेमें और समाजवाद लानेमें विश्वास करते थे। वे विधान द्वारा भूमि-सुधार करनेके पक्षपाती थे जिससे कृषक भूस्वामी बन सकें, उद्योगोंपर जनताका सहकारी स्वामित्व स्थापित हो सके और राजनीतिक दृष्टिसे जागरूक श्रमिक-वर्ग नागरिक शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले सके।

बर्नस्टाइन आदि संशोधनवादियोंके प्रयत्नका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी का श्रमिक आन्दोलन दो पक्षोंमें विभाजित हो गया। एक पक्ष मार्क्सवादी था, जो क्रान्ति द्वारा समाजवादकी स्थापनाके लिए प्रयत्नशील रहा, अपर पक्ष मार्क्स विरोधी था जो लोकतंत्रात्मक एवं शान्तिपूर्ण वैध मार्ग द्वारा समाजवादकी स्थापना करना चाहता था।

संशोधनवादियोंने अत्यन्त ही वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत युक्तियाँ देकर मार्क्सवादका खण्डन किया। बर्नस्टाइन इस कार्यके लिए सबसे अधिक प्रख्यात है। कोटस्की उसके तर्कोंका निरन्तर १४ वर्षोंतक उत्तर देता रहा, पर उसकी दलीलें कमजोर थीं। वह कहता था कि बर्नस्टाइन आदि 'मुक्त द्वारको और अधिक मुक्त करना चाहते हैं' और 'मार्क्सका यह पर्यवेक्षण तो सही था कि घटनाएँ किस दिशामें मोड़ ले रही हैं, उसने गलती यही की कि वह घटनाओंकी गतिका ठीकसे निश्चय नहीं कर सका।'

संघ-समाजवादी विचारधारा

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें फ्रांसमें संघ-समाजवादी विचारधाराका विकास हुआ। श्रमिकोंका संघवादका यह आन्दोलन मार्क्सकी अपेक्षा प्रूधोंके स्वातंत्र्यवाद और अराजकतावादसे अधिक प्रभावित था।[1]

अराजकता तो फ्रांसकी परम्परा-सी ही रही है। बकुनिन, रेक्लस, जीन ग्रेव जैसे प्रमुख अराजकतावादियोंने अराजकतावादी विचारधाराको पुष्पित-पल्लवित किया। बकुनिनसे प्रत्यक्ष भेंट न होनेपर भी रूसी राजकुमार क्रोपाटकिन बकुनिनका उत्तराधिकारी माना जाता है।

---

१ चीड और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४४५-४८ ।

२ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ ११ ।

३ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक थॉट, पृष्ठ ४२० ।

४ चीड और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ २११ ।

क्रोपाटकिन

प्रसिद्ध अराजकतावादी पीटर अलेक्सेविच क्रोपाटकिनका जन्म रूसके एक सरदार परिवारमें हुआ। अपने गुरु बकुनिनकी भाँति उसका आरम्भिक जीवन सेनामें बीता। भूगोल और प्राकृतिक विज्ञानमें उसकी विशेष रुचि थी। पहले वह डारविनके सिद्धान्तोंका पुजारी था। उसने कई ग्रन्थ लिखे। सन् १८७१ में उसपर हेगेलके विचारोंका प्रभाव पड़ा।

"जाओ, जनतामें बिखर जाओ, उसके भीतर जाकर रहो, उसे शिक्षित बनाओ और उसका विश्वास प्राप्त करो"—इस नारेसे क्रोपाटकिन इतना प्रभावित हुआ कि एक शामको भोजनके उपरान्त वह शीतमहलसे बाहर निकला, उसने अपने रेशमी कपड़े उतार फेंके, मोटे सूती कपड़े और किसानोंके-से जूते पहन लिये और चल दिया गरीब मजदूरोंके मुहल्लेकी ओर। वह उनके बीच बसकर उन्हें शिक्षित करनेमें लगा था कि अचानक एक दिन भूगोल सोसाइटीके दफ्तरसे लेख पढ़कर बाहर निकलते ही वह राजद्रोहके अपराधमें गिरफ्तार कर लिया गया। वह सेंट पीटर और सेंट पालके किलेमें बन्द रखा गया। सन् १८७६ में वह भागकर इंग्लैण्ड पहुँचा। सन् १८८४ में लियोन्सके अराजक विद्रोहमें शामिल होनेके सन्देहमें वह फिर पकड़कर क्लेयरवाक्समें ३ सालतक कैद रखा गया। बादमें वह इंग्लैण्डमें तबतक रहा, जबतक रूसमें बोल्शेविक क्रान्ति नहीं हो गयी। उसके उपरान्त वह अपने देश लौटा।

हाँ, था वह अपने ढंगका कैदी, जिसे रूसमें जेलमें रहते समय सेंट पीटर्सबर्गकी भूगोल सोसाइटीके पुस्तकालयका और फ्रांसमें अर्नेस्ट रेनन और पेरिसकी विज्ञान अकादमीके पुस्तकालयोंका भरपूर उपयोग करनेकी सुविधा प्राप्त थी।

प्रमुख रचनाएँ

क्रोपाटकिन रूसकी क्रान्तिके जन्मदाताओंमेंसे था। वह विश्वके सर्वश्रेष्ठ विचारकोंमें तो अपना स्थान रखता ही है, व्यावहारिक क्रान्तिकारियोंमें भी वह अग्रगण्य रहा। उसकी कितनी ही महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं, जिनसे आज भी लोगो-

को प्रेरणा मिलती है। उनमें प्रमुख हैं—पैरोल्स दॉ रिवोल्ट (सन् १८८४), इन रशन एण्ड फ्रेंच प्रिजन्स (सन् १८८७), ला कांक्वेट डू पेन (सन् १८८८) दि स्टेट, इट्स पार्ट इन हिस्ट्री (सन् १८९८) फील्ड्स, फैक्टरीज एण्ड वर्क शाप्स (सन् १८९९) मेमायर ऑफ ए रेवाल्यूशनिस्ट (सन् १९०), म्यूचु अल एड (सन् १९ २)।

प्रमुख आर्थिक विचार

क्रोपाटकिनने समाजकी स्थितिका गहरा अध्ययन किया था। आर्थिक वैषम्य और रोटीके सवालपर विचार करते हुए वह कहता है :

हमारा सभ्य समाज बलवान् है, फिर अधिकांश लोग गरीब क्यों हैं ? जन साधारणके लिए यही अस्वस्थ यंत्रणाएँ क्यों ? जब चारों ओर पूर्वजोंकी कमाई हुई सम्पत्तिके ढेर लगे हुए हैं और जब उत्पत्तिके इतने जबरदस्त साधन मौजूद हैं कि कुछ घण्टे रोज मेहनत करनेसे ही सबको निश्चित रूपसे सुख-सुविधा प्राप्त हो सकती है, तो फिर अच्छीसे अच्छी मजूरी पानेवाले श्रमजीवीको भी कलकी चिन्ता क्यों बनी रहती है ?

समाजवादी कहते हैं कि यह दारिद्र्य और चिन्ता इस कारण है कि उत्पत्तिके सब साधन—जमीन, खानें सड़कें, मशीनें खाने पीनेकी चीजें मकान शिक्षा और ज्ञान—थोड़ेसे आदमियोंने हड़प कर लिये हैं। इसकी बड़ी लम्बी दास्तान है। वह लूट देश निर्वासन लड़ाई, अज्ञान और अत्याचारकी घटनाओंसे परिपूर्ण है। दूसरा कारण यह भी है कि प्राचीन स्वत्वोंकी दुहाई देकर ये थोड़ेसे लोग मानवीय परिश्रमके दो-तृतीयांश फलपर कब्जा जमाये बैठे हैं। तीसरा कारण यह है कि इन मुट्ठीभर लोगोंने सर्वसाधारणकी ऐसी दुर्दशा कर दी है कि उन बेचारोंके पास एक महीने क्या, एक सप्ताहके गुजारेका सामान भी नहीं रहता इसलिए ये लोग उन्हें काम भी इसी शर्तपर दे सकते हैं कि जिससे आयका बड़ा हिस्सा इन्हींको मिले। चौथा कारण यह है कि ये थोड़ेसे लोग बाकी लोगोंको उनकी आवश्यकताके पदार्थ भी नहीं बनाने देते और उन्हें ऐसी चीजें तैयार करनेको विवश करते हैं, जो उनके जीवनके लिए जरूरी न हों बल्कि जिनसे एकाधिकारधारियोंको अधिकसे अधिक लाभ हो।

एकाधिकारकी मौलिक बुराईसे पैदा हुए परिणाम सारे सामाजिक जीवनमें व्याप्त हो जाते हैं। जब उत्पत्तिके साधन मनुष्योंका सम्मिलित परिश्रम है तो पैदावार भी उनकी संयुक्त सम्पत्ति ही होनी चाहिए। व्यक्तिगत अधिकार न न्याय्य है न उपयोगी। सब वस्तुएँ सबकी हैं। सब चीजें सब मनुष्योंके लिए हैं, क्योंकि सभीको उनकी जरूरत है, सभीने उन्हें बनानेमें अपनी शक्तिभर परिश्रम किया है। किसीको भी किसी भी चीजको अपने कब्जेमें करके यह कहनेका

अधिकार नहीं है कि "यह मेरी है, तुम्हें इससे काम लेना हो, तो तुम्हें अपनी पैदावारपर मुझे कर चुकाना होगा।" सारा धन सबका है। सुख पानेका सबको हक है और वह सबको मिलना चाहिए।[१]

निःसम्पत्तीकरण : क्यों और क्या ?

क्रोपाटकिन कहता है :

सबके सुखका उपाय है—निःसम्पत्तीकरण। विपुल धन, नगर, भवन, गोचर भूमि, खेतीकी जमीन, कारखाने, जल और स्थल-मार्ग तथा शिक्षा—व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहें और एकाधिकारप्राप्त लोग इनका स्वेच्छापूर्वक उपयोग न कर सकें।

राथ्स चाइल्डके बारेमें कहा जाता है कि जब उसने सन् १८४८ की क्रान्तिके कारण अपनी धन-दौलतको खतरेमें देखा, तो उसे एक चाल सूझी। उसने कहा : "मैं मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता हूँ कि मेरी सम्पत्ति दूसरोंको गरीब बनाकर इकट्ठी हुई है। यदि कल ही मैं उसे यूरोपके करोड़ों निवासियोंमें बाँट दूँ, तो हरएकके हिस्सेमें तीन रुपयोंसे अधिक नहीं आयेंगे। ठीक है, अब जो कोई मुझसे माँगने आयेगा, उसीको तीन रुपया दे दूँगा।" यह घोषणा करके वह पूँजीपति सदाकी भाँति चुपचाप बाजारमें घूमने निकल पड़ा। तीन-चार राहगीरोंने अपना-अपना हिस्सा माँगा। उसने उलाहनेको हँसीके साथ रुपये दे दिये। उसकी युक्ति चल निकली और उस सेठका धन सेठके ही घरमें बना रहा।

ठीक यही दलील मध्यम श्रेणीके चट लोग देते हैं। वे कहा करते हैं : "अच्छा, आप तो निःसम्पत्तीकरण चाहते हैं न ? यानी, यह कि लोगोंके लबादे छीनकर एक जगह ढेर लगा दिया जाय और फिर हरएक आदमी अपनी मर्जीसे उठा ले जाय और अच्छे बुरेके लिए लड़ता रहे ?"

परन्तु ऐसे मजाक जितने असगत होते हैं, उतने ही शरारतभरे भी होते हैं। हम नहीं चाहते कि लबादोंका नया बँटवारा किया जाय, वैसे सरदीमें ठिठुरनेवालोंका तो उसमें फायदा ही है। हम धनिकोंकी दौलत भी नहीं बाँट देना चाहते हैं। पर हम ऐसी व्यवस्था अवश्य कर देना चाहते हैं कि जिससे संसारमें जन्म लेनेवाले प्रत्येक मनुष्यको कमसे कम ये सुविधाएँ तो प्राप्त हो ही जायँ—पहली यह कि वह कोई उपयोगी धधा सीखकर उसमें प्रवीण हो सके और दूसरी यह कि वह बिना किसी मालिककी आज्ञाके और बिना किसी भू स्वामीको अपनी कमाईका अधिकाश भाग अर्पण

---

१ क्रोपाटकिन रोटीका सवाल, पृष्ठ ५–१६।

जिसे स्वतंत्रतापूर्वक अपना रोजगार कर सके। यही बात उस सम्पत्तिकी, जो धनवानोंके कब्जेमें है और जो वह सम्मिलित उत्पादनके संगठनमें काम आयगी।[1]

धनवानोंको दौलत आती कहाँसे है? इस दौलतकी शुरुआत गरीबोंकी गरीबी से ही होती है। चाहे वर्तमान समयको लीजिये चाहे मध्ययुगको, इसकी दरिद्रता भूस्वामीके वैभवकी जननी रही है। धनवान् होनेका रहस्य केवल यह है कि भूखों और दरिद्रोंको इकट्ठा करके उन्हें दो आने रोजकी मजदूरीपर रख लो और कमा लो उनके द्वारा तीन रुपया रोज। इस तरह जब धन इकट्ठा हो जाय तो राज्यकी सहायतासे और अच्छा सट्टा करके पूँजी बढ़ा लो। जबतक मनुष्यके पेट भूखोंको मूल चूकनेके काममें न लगाये जायँ तबतक लाखों धनकी दौलत जमा नहीं हो सकती।[2] छोटी बड़ी किसी भी तरहकी दौलतका मूल ढूँढिये, चाहे ही उस धनकी उत्पत्ति व्यापारसे हुई हो, चाहे ही उद्योग-धन्धे या भूमिसे हुई हो, सबमें आप यही देखेंगे कि धनवानोंका धन दरिद्रोंकी निर्धनतासे पैदा होता है।

निःसम्पत्तीकरणसे हम किसीसे उसका कोट नहीं छीनना चाहते पर हम यह अवश्य चाहते हैं कि जिन चीजोंके न होनेसे मजदूर अपना रक्त-शोषण करनेवालोंके शिकार आसानीसे बन जाते हैं वे चीजें उन्हें अवश्य मिल जायँ। किसीको किसी चीजकी कमी न रहे और एक भी मनुष्यको अपनी और अपने बाल-बच्चोंकी आजीविका मात्रके लिए अपना बाहुबल बेचना न पड़े। निःसम्पत्तीकरणसे हमारा यही अर्थ है।

कानूनकी व्यर्थता

क्रोपाटकिनके मतसे मानव-जातिपर शासन करनेवाले कानून इन तीन श्रेणियोंमें आते हैं—सम्पत्तिकी रक्षाके कानून, सरकारकी रक्षाके कानून और व्यक्तिकी रक्षाके कानून। यदि हम तीनोंका पृथक्-पृथक् विश्लेषण करें तो हम देखेंगे कि वे पूर्णतः व्यर्थ हैं और इतना ही नहीं हानिकर भी हैं।

संघ-समाजवाद

संघ-समाजवादी लोग किसी भी प्रकारकी सत्तामें विश्वास नहीं करते थे। सत्ताको सरकारको वे अत्याचारका निरंकुश प्रतीक मानते थे। उनकी धारणा थी कि सत्ताका पूर्णतः मूलोच्छेदन होना चाहिए। वे व्यक्तिगत सम्पत्तिको समाप्त करना चाहते थे और व्यक्तिके पूर्ण स्वातंत्र्यपर सर्वाधिक बल देते थे। वे मानते

१ क्रोपाटकिन : रोटीका सवाल पृष्ठ ११–१२।
२ क्रोपाटकिन : रोटीका सवाल पृष्ठ १२–१३।
३ क्रोपाटकिन : मेमायर्स आफ ए रेवल्यूशनिस्ट

थे कि समाजका विकास स्वतः स्वाभाविक रीतिसे होता है, पर राज्यकी स्थापना कृत्रिम रूपसे होती है और वह वर्गहितोंकी ओर सतत ध्यान रखता है। अतः ये लोग इस पक्षके थे कि मुक्तरूपसे सब लोग मिलें और आर्थिक मालके उत्पादन एवं वितरणका विवरण प्रस्तुत करें। अराजकतावादी समाजमें सब लोग प्रेम, सद्भाव एवं पारस्परिक सहायताकी दृष्टिसे आपसमें अपना संघटन करेंगे। एक संघ उत्पादकोंका होगा, जो कृषि, उद्योग, शिल्प आदिका उत्पादन करेगा। दूसरा संघ खाद्य पदार्थ, मकान, स्वास्थ्य, सफाई, विद्युत् आदिकी व्यवस्था करेगा। दोनों संघ परस्पर विचार विनिमय करके सारी समस्याओंका निराकरण करेंगे। इस समाजका संघटन क्रान्तिके उपरान्त होगा। इसमें पूँजीपति-वर्ग और राज्य सत्ताकी समाप्ति करके नये सिरेसे समाजका नवसंघटन होगा।[1]

विचारधाराकी विशेषताएँ

अराजकताकी यह विचारधारा संघ-समाजवादका मूल आधार थी। राज्य-सत्ता और व्यक्तिगत सम्पत्तिके विरोध तथा व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यकी नींवपर खड़ी इस विचारधाराका उद्भव फ्रासमें उस समय हुआ, जब फ्रासके उद्योग अत्यन्त निर्बल स्थितिमें थे और आत्मावलम्बन श्रमिकोंके लिए अनिवार्य हो उठा था। क्रान्तिका इतिहास उसे क्रान्तिके लिए उकसा रहा था, वर्गहीन समाजका मार्क्स-वादका नारा उसे उस दिशामें ले जा रहा था, पर नैतिकता उसका सम्बल थी। राज्यकी समाप्ति उसे अभीष्ट थी, पर व्यक्ति स्वातन्त्र्यकी बलि देकर नहीं। अवसर-वादी राजनीतिज्ञोंने कितने ही श्रमिक आन्दोलनोंके प्रति विश्वासघात किया था, अतः सब-समाजवादी इस विषयमें राजनीतिज्ञोंसे बहुत चौकन्ने थे और अपने ही पैरोंपर खड़े होनेके पक्षपाती थे।

नीति और पद्धति

पूँजीवादके भयंकर अभिशापसे त्रस्त संघ-समाजवादी लोग राज्यको तिरस्कारकी वस्तु मानते थे, उसे उत्पीड़न करनेवाला यन्त्र कहते थे, राजनीतिक दलोंको वर्ण-संकर बताते थे। उनकी मान्यता थी कि राजनीतिक दलोंमें सभी प्रकारके लोग रहते हैं। उनकी एकता केवल विचार एवं सिद्धान्तकी ऊपरी एकता होती है, भीतरी नहीं। पर श्रमिक संघ वर्ग-संघटन होता है, अतः वह बुनियादी एकता-का आधार होता है। स्वेच्छामूलक साहचर्यपर आधृत राजनीतिक दल नाजुक संगठन होता है, जब कि श्रमिक संघका निर्माण आवश्यकताके आधारपर होता है और उसके लिए आन्तरिक बाध्यता होती है। संघ समाजवादी विचारकों-की धारणा थी कि वर्ग-संघर्षपर आधृत क्रान्तिकारी श्रमिक-आन्दोलन वर्गगत

---

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ६१०–६३६।

आधारपर ही पनपना या रहना है। यह न तो सुधारों और चुनावोंसे प्राप्त किया जा सकता है, न तीव्र और पानीके रास्तेसे। उसका एकमात्र मार्ग होगा—अर्थात् श्रम-संगठनों द्वारा मुनिमर्नोंका संगठन और एकमात्र लक्ष्य होगा—आम हड़ताल। उन्होंने सबसे पहले आम हड़तालकी बात सोची, जो देशको सब या पंगु बना देती है। यह आघात इतना तीव्र एवं सर्वव्यापी होगा कि श्रमिकों के शत्रु अस्त्र डालकर विवश उठते हैं— हम पराजित हो गये। संघ-समाजवादी मानते हैं कि विचूर्णित एवं पराजित शत्रु छिन्न-भिन्न हो जायेंगे और इस अवस्थामें एवं प्रशासनपर श्रमिकोंका नियंत्रण हो जायगा और राजनीतिज्ञोंको ठोकर मारकर निकाल दिया जायगा।[1]

वामपक्षी संशोधनवाद

संघ-समाजवादी विचारधाराका सबसे प्रमुख विचारक है जार्ज सोरेल (सन् १८४७–१९२२)। यह कहता है कि संघ-समाजवाद 'वामपक्षी संशोधनवाद' है। उसका दावा था कि वह मार्क्सवादको वर्तमान पद्धतिसे अनावश्यक तत्त्वोंसे शुद्ध करके उसके सारतत्त्व वर्ग-संघर्षको ज्योंका त्यों रखता है। सोरेलने संघ समाजवादको वैचारिक ही नहीं प्रत्यक्ष कार्रवाईका, व्यावहारिक दर्शन बना दिया। श्रमिकोंमें स्वतःस्फूर्ति लानेके लिए उसने उत्साहको सर्वोपरि आधार बनाकर आम हड़तालसे उसका सम्बन्ध जोड़ दिया। इस विचारधाराके दो विचारक और भी प्रख्यात हैं—फर्डिनेण्ड पोलेनटियर (सन् १८६७–१९०१) और गुस्ताव हार्वे (सन् १८७१–१९२२)।

संघ-समाजवादी विचारधाराने राज्य-समाजवादका और विकासक पद्धतिसे समाजवाद लानेके प्रयत्नका तीव्र विरोध करते हुए संघर्षपर सबसे अधिक बल दिया। सर्वहारा-वर्गमें ही आन्दोलनको सीमित करनेकी उसकी प्रवृत्ति, वर्ग संघर्ष और हिंसाकी पद्धति क्रान्तिमें विश्वास और राज्य सत्ताका विरोध यहाँ मार्क्सवादसे मिलता जुलता है वहाँ उसका नैतिकतापर जोर, सामूहिकताके स्थानपर व्यक्तिवादका समर्थन राजनीतिक कार्रवाइका और किसी भी प्रकार की सत्ताका तीव्र विरोध और लक्ष्य-पूर्तिके लिए आम हड़तालका अस्त्र उसे मार्क्सवादसे पृथक् कर देता है। इसी दृष्टिसे प्रोफेसर जीदने संघ-समाजवादको 'नव-मार्क्सवाद' की संज्ञा दी है।

संघ-समाजवादने श्रमिक संघोंके आन्दोलनको अत्यधिक प्रभावित किया है। अन्य समाजवादी आन्दोलनपर भी उसका प्रभाव पड़ा है। फ्रांसमें तो यह

---

१ मतोष मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ ६६।
२ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ४८०–४८४।

विचारधारा पल्लवित हुई ही, स्पेन, इटली और अमरीकापर भी इसका प्रभाव दृष्टिगत होता है।

फेबियनवादी विचारधारा

फेबियनवादकी विचारधाराका विकास इग्लैण्डमें हुआ। गाडविन और हाल, थामसन और ओवेनके इग्लैण्डने उनके बाद सत्तर सालके इतिहासमें समाजवादकी एक भी योजना प्रस्तुत नहीं की। केवल जान स्टुअर्ट मिलपर तो उसकी थोड़ीसी छाप पड़ी, पर यों इग्लैण्ड इस विचारधारासे निर्लिप्त सा ही रहा। मार्क्सकी 'डास कैपिटा' की रचना भी इग्लैण्डमें हुई। उसके कारण विश्वके विभिन्न अंचलोंमें समाजवादी विचार फैलने और विकसित होने लगे, सक्रिय होने लगे, पर इग्लैण्ड-पर उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। सन् १८८१ में वहाँ सबसे पहले हिंडमनने 'सोशल डेमोक्रेटिक फेडरेशन' की स्थापना की। उसीके बाद सन् १८८३ में फेबियन समाजवादी विचारधाराका उदय हुआ।[1]

फेबियन समाजवाद उग्र नहीं, नम्र था। फेबियन कछुआ मार्क्सवादी खरगोशको पछाड़ देनेकी आशा करता है। यह विचारधारा ऐतिहासिकसे अधिक विश्लेषणात्मक है। इसके संस्थापकोंमें हैं—जार्ज बर्नार्ड शा, वेब-दम्पति, ग्राहम वैलेस, ऐनी बेसेण्ट, एच० जी० वेल्स जैसे महान् बुद्धिवादी लोग। रैमजे मैकडानेल्ड, पैथिक लारेन्स, केर हार्डी, जी० डी० एच० कोल जैसे प्रख्यात व्यक्ति भी फेबियनवादके उन्नायकोंमें रहे हैं। यह संस्था सदासे अ-राजनीतिक और मुख्यत: बुद्धिवादी रही है। मध्यम वर्गके लोग पुस्तकों और पत्रिकाओं द्वारा समाजवादका प्रचार करते रहे हैं।

नीति और पद्धति

फेबियनवादकी नीति नरम रही है, पद्धति सीधी-सादी, शान्तिपूर्ण और वैधानिक। ये विचारक लोक-शिक्षणके पक्षपाती हैं। इस विचारधाराका अपना कोई व्यापक दर्शन या विश्लेषण नहीं। इसके संस्थापकोंने आर्थिक जीवनपर लागू होनेवाला एक ढाँचा स्वीकार किया। शेष बातोंपर सब सदस्य स्वतन्त्र हैं। मूलत: यह बौद्धिक संगठनमात्र है। ब्रिटेनके मजदूर दल और स्वतन्त्र मजदूर दलपर इस विचारधाराका भारी प्रभाव पड़ा है।

फेबियनवादी मानते हैं कि राजनीतिक लोकतन्त्रके विकासके द्वारा पूँजीवादकी स्वत: समाप्ति हो जायगी। वे प्रत्यक्ष संघर्ष पसन्द नहीं करते। उनकी मान्यता है कि यदि लोक शिक्षणका कार्य विधिवत् जारी रहे और वैधानिक रीतिसे प्रयत्न चलता रहे, तो धीरे-धीरे समाजवाद आ ही जायगा।

---

[1] जोद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ६०३।

अर्थ-सिद्धान्त

जिस प्रकार मार्क्सवाद रिकार्डोके मूल्य सिद्धान्तपर विकसित हुआ है, उसी प्रकार फेबियनवादका अर्थ-सिद्धान्त रिकार्डोके भाटक-सिद्धान्तपर विकसित हुआ है। प्रोफेसर रिस्टने उसे 'रिकार्डोके सिद्धान्तका नवीनतम अवतार' कहा है।[1] जान स्टुअर्ट मिल और हेनरी जार्जने जिस प्रकार भाटकको अनुचित बताते हुए राज्यसे यह माँग की कि वह उसे करके रूपमें जब्त कर ले, उसी प्रकार फेबियनवादी कहते हैं कि भाटक भूमिके मामलेमें ही नहीं, यह व्यवस्था जीवनके अन्य क्षेत्रोंपर भी—ब्याजपर भी, मजदूरीपर भी लागू होनी चाहिए। भाटक जिस प्रकार भूमिपर अतिरिक्त आय है, उसी प्रकार ब्याज सीमान्त पूँजीपर अतिरिक्त आय है और मजदूरी सीमान्त मजदूरकी काम-कुशलतापर अधिक कुशल मजदूरकी योग्यताकी अतिरिक्त आय है। व्यक्तिको अच्छे वातावरणमें विकसित होनेका अवसर मिला, यह व्यक्तिगत सम्पत्तिका अप्रत्यक्ष परिणाम है। अतः शासनको भूमि, पूँजी और योग्यतासे होनेवाली सभी अतिरिक्त आयोंका अपहरण कर सरकारी कोषमें संचित कर लेना चाहिए। ऐसा करते रहनेसे अन्तमें व्यक्तिगत सम्पत्तिपर सामूहिक स्वामित्व हो जायगा।

फेबियनवादकी धारणा है कि एकाधिकार रखनेवाले पूँजी-समूहोंपर राज्य अपना नियंत्रण करके उनके लाभको राष्ट्रकी वस्तु बना दे।

फेबियनवादकी विशेषताएँ

फेबियनवादकी प्रमुख विशेषताएँ ये हैं :

अनेक बातोंमें यह विचारधारा मार्क्सवादकी विरोधी है। जैसे—

(१) भौतिकवादके स्थानपर इसका आधार नैतिक है।

(२) यह वर्ग-संघर्षका विरोध करती है।

(३) मार्क्सवादकी पूँजीके केन्द्रीकरण और संकटकी धारणाके प्रतिकूल यह मानती है कि अनेक वैधानिक मार्गोंसे समाजवादकी ओर प्रगति हो रही है और पूँजीवादपर नियंत्रण बढ़ रहा है।

(४) इसके समाजवादके मुख्य आधार हैं :

१ सार्वजनिक उपयोगिताके कार्योंके लिए म्युनिसिपलिटीमें उत्तरोत्तर वृद्धि

२ राज्यके व्यापार व्यवसायका विस्तार,

३ व्यक्तिगत पूँजीपतियोंपर नियंत्रण

४ श्रमिकोंके हित रक्षाके लिए कानून

५ व्यक्तिगत उत्तराधिकार स्थानपर राज्य द्वारा कर और बढ़ना, आदि।

---

१ ग्रे और किंग : वही, पृष्ठ ६६

२ ग्रे और किंग : वही, पृष्ठ ४

वेबका कहना है कि 'आज प्रायः सारा व्यापार सरकार या म्युनिसिपैल्टी आदि सार्वजनिक संस्थाओंके हाथमें आ गया है और मध्यस्थकी, उपक्रमी या पूँजीपतिकी समाप्ति हो गयी है। यों बिना संघर्षके ही समाजवाद पनपता जा रहा है। जो उसके शिकार हैं, उनकी भी उसमें स्वीकृति रहती है।'[1]

(५) फेबियनवादियोंका कहना है कि हमारी विचारधारा आंग्ल मस्तिष्ककी उपज है एवं मार्क्सके क्रान्तिकारी मार्गसे विकासवादी मार्गकी उन्नायिका है।

(६) फेबियनवादका मार्ग है—श्रम-कानून, सहकारिता और श्रम-संघोंका विकास तथा उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण। मार्क्स इन साधनोंको प्रगतिका चिह्न मानता था। उसकी दृष्टिमें यह समाजवाद नहीं है। फेबियनवादी कहते हैं कि हमारा यह मार्ग ही समाजवाद है।

(७) फेबियनवादने शास्त्रीय पद्धतिके 'उपयोगिता' के सिद्धान्तपर अपना समाजवादका महल खड़ा किया। उसे मार्क्सका केवल सर्वहारा-वर्गका एकांगी अर्थ सिद्धान्त अस्वीकार है।

(८) फेबियनवाद लोकतन्त्रका परिष्कृत रूप है।

एडम बी० उलामका कहना है कि 'बहुत अंशोंतक फेबियन आन्दोलनने ब्रिटिश समाजवादके सामान्य एवं गवेषणाके अधिकारी वर्गका काम किया। अच्छा हो या बुरा, इसने राष्ट्रके अधिकतर लोगोंको सहमत किया कि समाजवाद लोकतन्त्रका परिष्कृत एवं तर्कसंगत रूप है।'[2] प्रोफेसर कोल अपनी आत्मकथामें लिखते हैं। 'सबके लिए समान अवसर और सबके लिए रहन-सहनके बुनियादी स्तरके आश्वासनने मुझे समाजवादकी ओर आकृष्ट किया। इसके अतिरिक्त लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रताका एक विश्वास मेरे मस्तिष्कमें क्रमशः विकसित हुआ। मेरे लिए इसका अर्थ यह रहा कि समाजकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि मतभेद सहन ही न किया जाय, अपितु उसे प्रश्रय भी दिया जाय।'[3]

ईसाई समाजवादी विचारधारा

समाजवादी विचारधाराके विकासमें ईसाइयोंका भी विशेष स्थान है। मार्क्सके भौतिकवादी समाजवादको ये लोग गलत मानते थे। उसके स्थानपर ये नैतिक, धार्मिक और भावनात्मक विचारोंपर बल देते थे। इनकी धारणा थी कि ईसाई-धर्मके सिद्धान्त यदि समाजमें व्यवहृत होने लगें, तो पूँजीवादकी

१ जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ६०८।

२ उलाम : फिलासॉफिकल फाउण्डेशन्स ऑफ इंग्लिश सोशलिज्म, पृष्ठ ७७।

३ जी० डी० एच० कोल : फेबियन सोशलिज्म, पृष्ठ ३१-३३।

समस्याओंका निराकरण हो सकता है। ये लोग पूँजीवादका पूर्णतः विनाश तो नहीं चाहते थे, उसके संशोधनके विशेष इच्छुक थे। आरम्भिक विचारकोंका कोई सिद्धान्त स्पष्ट नहीं था। उत्पादकोंके सहकारी संगठनकी ओर उनका विशेष झुकाव था, श्रमिक वर्गोंके क्रान्तिकारी संगठनकी ओर नहीं।

इंग्लैण्डमें फ्रेडरिक मारिस और चार्ल्स किंग्सलेने, आस्ट्रियामें कार्ल ल्यूजरने और फ्रांसमें फ्रेडरिक ले प्ले और चार्ल्स जीडने इन विचारोंको विशेष प्रोत्साहन दिया। अमरिका, स्विट्जरलैण्ड आदिमें भी इस विचारधाराका विकास हुआ।

इंग्लैण्डमें सन् १८ में श्रमिकोंके हितार्थ एक संस्था खुली और 'क्रिश्चियन सोशलिस्ट' नामक एक पत्र निकला। किंग्सले और मारिसन, जो श्रमिकोंमें इतिहास और दर्शनके प्राध्यापक थे, इस विचारधाराको विशेष बल दिया। किंग्सले उत्तम वक्ता था और उसने एक समाजवादी उपन्यास 'एल्टन लोक' भी लिखा था। एक दिन लन्दनमें उसने एक धर्मोपदेशमें कहा : 'ऐसी कोई भी समाज-व्यवस्था धर्म और प्रभु ईसाके स्वभाव सत्यात्मक विरुद्ध है, जिसमें सम्पत्ति थोड़ेसे लोगोंके हाथमें केन्द्रित रहती है और जिसके कारण किसान उस भूमिसे वंचित होते हैं जो उनके बाप-दादे शताब्दियोंसे जोतते आ रहे हैं।' इस धर्मोपदेशकी बड़ी आलोचना हुई। यों ही मारिसने यह घोषणा कर रखी थी कि हर ईसाईको समाजवादी होना ही चाहिए। पर उसके समाजवादका अर्थ था—सहयोग, मात्र गैर-समाजवादका अर्थ था—प्रतिस्पर्धा।[1]

इन विचारकोंने धर्मके मूल तत्त्वोंका आधार लेकर समाजवादी विचारधाराका विकास किया। इनमें तीव्रता तो नहीं है, पर धर्मकी भावना ओतप्रोत रहनेसे इनकी विचारधारा जनसाधारणके निकट बड़ी सरलतासे पहुँच गयी।

प्रो० जीडने कार्लाइल, रस्किन और तोल्स्तोय जैसे महान् विचारकोंकी भी गणना इन्हीं समाजवादियोंमें की है। उनकी विचारधाराकी महत्ता किसीसे छिपी नहीं है।

कार्लाइल

आर्थिक विचारधारापर रस्किन और तोल्स्तोयकी अपेक्षा कार्लाइलका प्रभाव अधिक है। उसकी रचनाओंमें 'फ्रेंच रिवोल्यूशन' (सन् १८३७) और 'हीरोज एण्ड हीरो वर्शिप' विशेष रूपसे प्रख्यात हैं।

---

1 जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ५१५।
2 जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ५४१।

अर्थशास्त्रकी शास्त्रीय विचारधाराकी तीव्रतम आलोचना करनेवाला कार्लाइल राजनीतिक अर्थशास्त्रको 'दु खद विज्ञान' कहकर पुकारता था। वह शास्त्रीय विचारधारावालेके 'अर्थशास्त्रीय मानव' (Economic man) का खूब मजाक उड़ाता था और उनके 'आदर्श राज्य' को 'पुलिस सहित अराजकता' (Anarchy plus the police man) कहा करता था। मुक्त व्यापारकी नीतिकी वह तीव्र शब्दोंमें भर्त्सना करता था।

कार्लाइल कहता है : राजनीतिक अर्थशास्त्र कष्टोंका गम्भीर कृष्णसागर है। वह हमसे सहानुभूति प्रकट करता हुआ कहता है कि मनुष्य इसमें कुछ नहीं कर सकता। उसे चुपचाप बैठकर 'समय और सर्वसाधारण नियम' देखते रहना चाहिए। उसके बाद हमें आत्महत्या कर लेनेकी सलाह न देकर चुपचाप हमसे विदा ले लेता है।[1]

कार्लाइल आलस्य और बेकारीकी कटु आलोचना करता हुआ कहता है कि आजके समाजमें हर आदमीको काम करनेकी जरूरत नहीं है और कुछ आदमी निकम्मे ही पड़े रहते है। यह कैसी बात है कि चौपायोंको वह सब उपलब्ध है, जिसके लिए दो हाथवाले तरस रहे हैं और तुम कहते हो कि यह असम्भव है।[2]

'तब किया क्या जाय ?' इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कार्लाइल कहता है : क्षमा करिये, यदि मैं कहूँ कि तुमसे कुछ होनेवाला नहीं है। तुम जरा अपने भीतर देखो और आत्माको खोजो। उसके बिना कुछ नहीं किया जा सकता। आत्माको खोजनेके बाद असख्य बातें की जा सकती हैं। इसलिए सबसे पहले आत्माको खोजो।[3]

कार्लाइलकी धारणा है कि समाजका सुधार करनेकी अनिवार्य शर्त है—व्यक्तिका सुधार।

रस्किन

जान रस्किनका जन्म ८ फरवरी १८१९ को लदनमें हुआ। मध्यम श्रेणीके सुशिक्षित परिवारमें। माता-पिता दोनों धर्मात्म। माँ बचपनसे ही बाइबिलका अमृत अपने दूधके साथ उसे पिलाती रही। रस्किनपर उसका आजीवन असर बना रहा। उसकी आरम्भिक शिक्षा दीक्षा स्कूलमें नहीं हुई, माँके द्वारा घरपर ही हुई। सन् १८३७ में वह आक्सफोर्डमें भरती हुआ। वहाँसे सन् १८४१ में वह स्नातक बना।

---

१ कार्लाइल चार्टिज्म।
२ कार्लाइल : पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट, अध्याय ३।
३ कार्लाइल पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट, पुस्तक १, भाग ४।

रस्किन बचपनसे ही था भावुक और कला-प्रेमी। १७ वर्षकी आयुमें एक रूपसी-सी महिलासे उसका प्रेम हुआ, पर उस महिलाने एक अमीरसे विवाह कर लिया,

जिसके कारण रस्किनको बड़ी निराशा हुई। सन् १८४८ में उसने कुमारी ग्रेसे विवाह किया। पर वह फैशनपरस्तोंकी चमक निकली, रस्किन एकांत-सेवनका। सन् १८५४ में तलाकसे इस विवाहका दुःखद अन्त हुआ।

सन् १८७ से १८७८ तक रस्किन आक्सफोर्डमें प्रोफेसर रहा। सन् १८८४ में उस विश्वविद्यालयने होम कार्यके लिए पशुओंकी चीरफाड़को अपनी स्वीकृति दी इसके विरोधमें रस्किनने त्यागपत्र दे दिया। उसका कहना था कि यह कार्य अमानुषिक है।

रस्किनको विरासतमें अच्छी सम्पत्ति मिली थी पर उसने उसे मुक्तहस्त होकर गरीबोंको लुटा दिया। विश्वविद्यालय छोड़नेके बाद पुस्तकोंकी रायल्टीकी ही एकमात्र उसकी आमदनी रह गयी थी। सन् १८७१ में माँके देहान्तपर वह लन्दन छोड़कर कोनिस्टनके देहातमें जा बसा और पुष्पोद्यानोंकी अपनी कल्पना साकार करने लगा। जनवरी १   में उसका देहान्त हो गया।

प्रमुख रचनाएँ

रस्किनने अनेक पुस्तकें लिखीं। कला, कविता, अर्थशास्त्र और राजनीति-विज्ञान उसके प्रिय विषय थे। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं—दि पोइट्री ऑफ आर्कीटेक्चर (सन् १८३७) माडर्न पेंटर्स (सन् १८४३–१८६) दि किंग ऑफ दि गोल्डन रिवर (सन् १८५१), दि पोलिटिकल इकॉनॉमी ऑफ आर्ट (सन् १८५७) अनटू दिस लास्ट (सन् १८६) मुनेरा पल्वेरिस (सन् १८६२-६३) सिसेम एण्ड लिलीज (सन् १८६५) दि क्राउन ऑफ दि वाइल्ड ओलिव (सन १८६६) फोर्स क्लैविजेरा (सन् १८७१–१८८४) प्रासरपिना (सन् १८७ –१८८६) दि आर्ट ऑफ इंग्लैण्ड (सन् १८८३), दि प्लेजर्स आफ इंग्लैण्ड (सन् १८८४-८५) प्रेटेरिटा (सन् १८८५) आदि।

रस्किनकी 'अनटू दिस लास्ट' का महात्मा गांधीपर बड़ा आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा है उसने 'सर्वोदय' के विकासमें अभूतपूर्व कार्य किया है।

प्रमुख आर्थिक विचार

कलाके पुजारी रस्किनने जीवनकी समस्याओंपर अत्यन्त गम्भीरतासे विचार किया है। वह शाश्वत मूल्योंपर ही सबसे अधिक बल देता है।

शिक्षाकी व्याख्या करते हुए रस्किन कहता है, 'मेरे पास रोज ही ऐसे अनेक पत्र आते हैं, जिनमें माता पिता इस बातपर जोर देते हैं कि हमारा बेटा ऐसी शिक्षा प्राप्त करे, जिससे वह कोई 'ऊँचा पद' पा सके, शानदार कोट पहन सके, गौरवके साथ किसी भी बड़े आदमीसे मिलनेकी घण्टी बजा सके और अपने घरपर भी वैसी ही घण्टी लगा सके। पर इन माता पिताओंके मस्तिष्कमें यही कल्पना ही नहीं आती कि ऐसी शिक्षा भी हो सकती है, जिसमें मनुष्य अपने जीवनमें वास्तविक प्रगति करता है।'[1] जीवनमें सच्ची प्रगति तो उसकी ही मानी जायगी, जिसका हृदय दिन दिन कोमल होता चलता है, जिसका रक्त दिन-दिन गरम होता चलता है, जिसका मस्तिष्क दिन दिन प्रखर होता चलता है और जिसकी आत्मा दिन दिन स्थायी शान्तिकी ओर अग्रसर होती चलती है।'

करुणाका विस्मरण

हमने करुणा भुला दी है, यह बताते हुए रस्किन सन् १८६८ के 'डेली टेलीग्राफ' पत्रकी एक 'कटिंग' का हवाला देता है। कहता है—'ह्वाइट हार्स टेवर्न, चर्च गेट, स्पाइटलफील्ड्समें एक जाँच हुई कि ५८ वर्षीय माइकेल कालिन्सकी मृत्यु कैसे हुई। दुखिया मेरी कालिन्सने बताया कि वह अपने बेटेके साथ कोक्स-कोर्टमें रहती है। मृत व्यक्ति पुराने बूट खरीद लाता था और तीनों मिलकर उन्हें नया बनाकर बेच देते थे, जिससे थोड़ी सी आमदनी होती थी। उसीसे वे किसी तरह रोटी, चाय पाते थे और कमरेका भाड़ा (२ शिलिंग सप्ताह) चुका पाते थे। गत सप्ताहांत मृत व्यक्ति अपनी बेंचपरसे उठा और बुरी तरह काँपने लगा। उसने बूट फेंक दिये और कहा 'मेरे न रहनेपर,इन्हें कोई दूसरा बनायेगा। मुझसे अब काम नहीं होता।' घरमें आग नहीं थी। वह बोला, 'मुझे तापनेको मिले, तो मुझे कुछ आराम होगा।' दो जोड़ी बूट लेकर मेरी दूकानपर बेचने गयी। बदलेमें उसे केवल १४ पेंस मिले। दूकानदारने कहा 'हम भी तो मुनाफा कमाना है।' वह थोड़ा कोयला, चाय और रोटी खरीद लायी। उसका बेटा सारी रात बैठकर जूते गाँठता रहा, जिससे कुछ पैसा मिल सके। पर शनिवारको सबेरे बूढ़ा चल बसा। इस परिवारको कभी भी खानेको भरपेट नहीं मिला।

'तुम लोग श्रमालय (Work house) में क्यों नहीं गये ?'

'हम अपने ही घरमें रहना चाहते थे। अपने घरकी सुविधाओंसे वञ्चित नहीं होना चाहते थे।'

'क्या सुविधाएँ हैं तुम्हें घरपर ?'—कोनेमें जरा-सा भूसा और एक टूटी खिड़की देखकर एक जूरीने पूछा।

१ रस्किन : सिसेम एण्ड लिलीज, पृष्ठ ८।
२ वही, पृष्ठ ४५।

गवाह रो पड़ी। बोली : 'एक छोटी-सी दुकान और कुछ छोटी-मोटी चीजें और। मृत व्यक्ति कहता था कि हम अभावालयमें कभी न जायँगे। गर्मियोंमें हम कभी-कभी एक सप्ताहमें १ शिलिंग मुनाफा कर लेते। उसमेंसे अगले सप्ताहके लिए कुछ बचा लेते। पर सर्दियोंमें हमारी स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है।'

मृतकके पुत्र कोर्नेलियस कोलिन्सन अपनी गवाहीमें बताया कि मैं सन् १८४७ से पिताके काममें हाथ बँटाता हूँ। रातमें हम इतनी देरतक काम करते रहे कि हम अपनी दृष्टि-शक्ति खो बैठे। हमारी हालत दिन दिन बिगड़ती गयी। पिछले सप्ताह हमारे पास मोमबत्ती खरीदनेको तो पैसे भी नहीं थे।[1]

मृतकके पास न बिस्तर था, न खानेको। चिकित्साकी भी उसे कोई व्यवस्था न मिल सकी।

फिर भी ये लोग सरकारी अभावालयमें नहीं गये। अमीरोंको वहाँ सुविधा रहती है, पर गरीबोंको नहीं। ये वहाँ जानेके बजाय बाहर मर जाना पसन्द करते हैं। सरकार उन्हें जो सहायता देती है, वह इतनी अपमानजनक लगती है कि वे उसे लेना पसन्द नहीं करते।

इसलिए मेरा (रस्किनका) कहना है कि हमने करुणा त्याग दी है। किसी भी सभ्य देशके अखबारोंमें ऐसा हृदयविदारक विवरण छपना असम्भव होता।

जिनके श्रमसे जिनकी मेहनतसे जिनकी शक्तिसे जिनके यौवनसे, जिनकी मृत्युसे तुम जीवित रहते हो, नाना प्रकारके सुख भोगते हो उन्हें तुम कभी धन्यवादतक नहीं देते। तुम उन्हीं लोगोंका अपमान करते हो, उन्हींकी उपेक्षा करते हो, उन्हींको भूल जाते हो, जो तुम्हारी सारी सम्पत्ति, सारे मनोरंजन, सारी प्रतिष्ठाके मूल कारण हैं। पुलिसमैन, मल्लाह, साधारण मजदूर आदि तुम्हारे लिए कितना करते हैं, पर तुम प्रशंसाके दो बोल भी उन्हें नहीं देते। कितने कृतघ्न हो तुम!'

राष्ट्र-निर्माणका कार्यक्रम

रस्किनने 'फार्स क्लेविगेरा' में राष्ट्र-निर्माणका यह कार्यक्रम दिया है :

१ हर आदमीके लिए शारीरिक श्रम करना अनिवार्य हो। हमें सेंट पालका यह वचन स्मरण रखना चाहिए कि 'जो काम न करे वह भोजन न करे।

बाप दादोंकी कमाईपर गुलछर्रे उड़ाना उससे दूसरोंकी मेहनत खरीदना और आलसियोंकी तरह पड़े रहना वाहियात तो है ही अनैतिक भी है। श्रमके बदलेमें श्रम ही करना उचित है। मृत श्रमपर जीवित रहना वाहियात और परस्पर विरोधी है। सब लोग तथा मजदूर श्रम करें। हवा पानी जैसी प्राकृतिक

१ रस्किन : वही पृष्ठ १३।

मशीनों द्वारा चालित यंत्रोंके सिवा अन्य सभी प्रकारके यंत्रोंका बहिष्कार होना चाहिए। श्रम कलात्मक भी होना चाहिए।

२. हर आदमीके लिए काम रहे। न कोई आलसी रहे, न कोई बेकार। आजके समाजमें बहुत लोग श्रम करते रहते हैं और कुछ लोग काहिलोंकी तरह पड़े रहते हैं। यह विषमता मिटनी चाहिए।

३ श्रमकी मजूरीका आधार माँग और पूर्तिकी कमी बेशी न रहे। उसके कारण शारीरिक श्रम क्रय-विक्रयकी वस्तु बन जाता है। मजूरी न्यायानुकूल मिलनी चाहिए। आदमी कोई भी काम करे—मजदूरका, सैनिकका, व्यापारीका—पर करे वह सामाजिक हितकी दृष्टिसे। मुनाफा कमाना उसका लक्ष्य न हो। वह यदि अच्छे ढंगसे अपना काम करता है, तो उसे उसका समुचित पुरस्कार मिलना चाहिए। मुनाफाके साध्य और श्रमके साधन रहनेपर ऐसा सम्भव नहीं है।

४ सम्पत्तिके प्राकृतिक साधनों—भूमि, खान और प्रपात—का और यातायातके साधनोंका राष्ट्रीयकरण होना चाहिए।

५. सेनाओंके क्रमानुकूल सामाजिक शासन-तन्त्र लागू हो। उसके प्रति कोई भी असन्तोषका भाव न रखे। सब उसका आदर करें।

६ शिक्षणको सर्वोच्च स्थान दिया जाय। शिक्षणका अर्थ केवल पढ़ना-लिखना नहीं है। शिक्षामें इन सद्गुणोंके अधिकतम विकासका प्रयत्न किया जाय—महानताकी भावना, सौंदर्यका प्रेम, अधिकारीके लिए आदर और आत्मत्यागकी उत्कट लालसा।

छलना द्वारा सम्पत्तिका संचय

रस्किनका कहना है कि पुराने जमानेमें लोग डरा-धमकाकर पैसा वसूल करते थे, आज छलना द्वारा करते हैं। पूँजीपति छलना द्वारा ही पूँजी एकत्र करता है। लोगोंके मनमें यह झूठा भ्रम भी जड़ जमाकर बैठा है कि गरीबोंके पैसेका पूँजीपतियोंके यहाँ इकट्ठा हो जाना कोई बुरी बात नहीं। कारण, वह चाहे जिसके हाथमें हो, खर्च होगा ही और फिर वह गरीबोंके हाथमें पहुँच जायगा। डाकू और बदमाशोंकी तरफसे भी यही बात कही जा सकती है। यह तर्क सर्वथा असंगत है।

यदि मैं अपने दरवाजेपर काँटेदार फाटक लगा लूँ और वहाँसे निकलनेवाले हर यात्रीसे एक शिलिंग वसूल करूँ, तो जनता शीघ्र ही वहाँसे निकलना बन्द कर देगी, भले ही मैं कितनी ही दलीलें देता रहूँ कि 'जनताके लिए वह बहुत सुविधाजनक है और मैं जनताके पैसेको उसी तरह खर्च करूँगा, जिस तरह वह खर्च करती !' पर इसके बजाय यदि मैं लोगोंको किसी प्रकार अपने घरके भीतर बुलाऊँ और अपने यहाँ पड़े पत्थर, पुराने लोहे अथवा ऐसे ही किसी व्यर्थके

पत्थरका मारनेको कुल्हाड़ी दूँ तो मुझे धन्यवाद दिया जायगा कि मैं लोक-कल्याणका काम कर रहा हूँ और व्यापारिक समृद्धिमें योगदान करता हूँ। यह समस्या जो इंग्लैण्डके गरीबोंके लिए—सारे संसारके गरीबोंके लिए—इतनी महत्त्वपूर्ण है, सम्पत्ति शास्त्रके किसी ग्रन्थमें स्पष्टतः नहीं की जाती।'[1]

पैसा सारे अनर्थोंकी जड़

रस्किन मानता है कि जब किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्रका ध्येय पैसा जुटाना हो जाता है तो पैसा गलत तरीकेसे जुटाया भी जाता है और गलत तरीकेसे खर्च भी किया जाता है। उसका उपार्जन और भोग—दोनों ही हानिकर होते हैं। वह सारे अनर्थोंकी जड़ बनता है।[2]

पैसा जीवनका ध्येय बनाना मूर्खता है। यह पापपूर्ण भी है। सोनेका अम्बार लगानेसे क्या फायदा होनेवाला है!'[3]

तोल्सतोय

'बुराईके साथ सहयोग मत करो'—इस सिद्धान्तके प्रतिपादक काउण्ट लेव तोल्स्तोयका जन्म रूसके यास्नाया पोल्याना नामक छोटे गाँवमें २८ अगस्त १८२८ को हुआ। शाही परिवार। २ वर्षकी आयुमें माँ मर गयी, ९ वर्षकी आयुमें पिता।

प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा समाप्त कर तोल्स्तोयने सन् १८४१ में कज़ानके विश्वविद्यालयमें प्रवेश किया। पढ़ाईमें मन नहीं लगा। तब वह गाँव लौट गया और अमीरीके जीवनमें डूब गया। सेनामें काम करनेवाला उसका बड़ा भाई निकोलस अगस्त १८५१ में छुट्टीपर घर आया। उसने देखा कि तोल्स्तोयका जीवन भोग-विलासमें बरबाद हो रहा है। तब उसे अपने साथ काकेशस ले गया। वहाँ सैनिक शिक्षण लेनेके बाद वह सेनाके तोपखानेमें काम करने लगा। क्रीमियाका युद्ध छिड़नेपर वह सिवास्तोपोलके किलेमें अफसर बनाकर भेजा गया।

---

१ रस्किन : दि क्राउन ऑफ वाइल्ड ऑलिव, भूमिका १४ १६-१८।
२ रस्किन : वही, पृष्ठ १९९, २००।
३ रस्किन : वही, पृष्ठ १०७ १०२।

हजारों आदमियोंको आँखोंके सामने मरते देख भावुक तोल्सतोयपर युद्धका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। सन् १८५५ में सिवास्टोपोलके पतनपर रूसी सेना तितर-बितर हो गयी। उसके बाद तोल्सतोयने सेनासे सदाके लिए विदाई ले ली।

उसके बाद तोल्सतोयने विदेश-यात्रा की। पेरिसमें एक व्यक्तिको उसने गिलोटिनमें कटते देखा, जिसका उसपर बहुत भारी प्रभाव पड़ा। फिर वह गाँवपर अपनी जमींदारीकी देखभाल करने लगा। सन् १८६२ में उसने विवाह किया।

बचपनसे ही तोल्सतोयमें साहित्यिक प्रतिभा चमकने लगी थी। सबसे पहले उसने 'एक जमींदारका सवेरा' लिखा। युद्धके भयंकर अनुभवोंपर उसने 'वार एण्ड पीस' (युद्ध और शांति) नामक उपन्यास लिखा। बादमें उसने 'एना कोरनिन' नामक विश्वविख्यात उपन्यास लिखा।

रूसमें जारकी निरंकुशताके कारण इतिहासने नयी करवट ली। सन् १८८१ में जार अलेक्जेण्डर द्वितीयकी हत्या कर दी गयी। तोल्सतोयको लगा कि जारकी हत्या करके लोगोंने प्रभु ईसाके उपदेशोंको पैरोंतले रौंदा है। नये जार अलेक्जेंडर तृतीय भी हत्यारोंका वध करके उसीकी पुनरावृत्ति कर रहे हैं। तोल्सतोयने उनसे प्रार्थना की कि वे अपराधियोंको क्षमा कर 'अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्' का आचरण करें। पर उनके पत्रका कोई उत्तर न मिला। अपराधी फाँसीपर लटका दिये गये!

तभी तोल्सतोयने मास्को जाकर अगल-बगलमें गरीबी और अमीरीका प्रत्यक्ष दर्शन किया। उसने देखा कि एक ओर मजदूर काममें पिसे जा रहे हैं, दूसरी ओर अमीर लोग गरीब किसानोंकी कमाईपर गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और उनपर मनमाने अत्याचार कर रहे हैं। उसने मास्कोके दरिद्रतम मुहल्लेकी जनगणनाका काम अपने हाथमें लेकर दरिद्रोंकी दयनीय स्थितिका अध्ययन किया। इस तीव्र अनुभूतिको उसने अपनी 'ह्वाट इज टू बी डन'' (क्या करें?) पुस्तकमें व्यक्त किया। काका कालेलकरने ठीक ही कहा है कि 'यह बहुत ही खराब पुस्तक है। यह हमें जाग्रत करती है, अस्वस्थ करती है, धर्मभीरु बनाती है। यह पुस्तक पढ़नेके बाद भोग-विलास तथा आनन्दोल्लासमें पश्चात्तापका कड़वा फफक पड़ जाता है। अपना जीवन सुधारनेपर ही यह मनोव्यथा कुछ कम होती है। और जो इन्सानियतका ही गला घोंट दिया जाय, तब तो कोई बात ही नहीं।'[1]

तोल्सतोयने समाजकी दयनीय स्थितिपर गम्भीरतासे विचार करना आरम्भ

---

१ काका कालेलकर 'क्या करें'' की गुजराती भूमिका।

कर दिया। वह इस निष्कर्षपर पहुँचा कि समाजकी तमाम बुराइयोंका मूल कारण है—पैसा। पैसेके दबाव सरकारें दूसरोंपर शासन कर सकता है। सामाजिक बुराइयोंके निराकरणके लिए मनुष्यको आत्मविश्लेषण करना चाहिए, अपने विलासमय जीवनपर पश्चात्ताप करना चाहिए तथा उसे सरल और परिश्रमी जीवन-पद्धति अपनानी चाहिए।

तोल्स्तोयने अपने विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेका संकल्प किया। दरिद्रनारायणसे एकाकार होनेके लिए वह गरीबोंके साथ लकड़ी काटने लगा, पानी खींचने लगा, अपना जूता खुद तैयार करने लगा, पीठपर बोझ लादकर पदयात्रा करने लगा और अपने श्रमकी कमाई दीनोंमें वितरित करने लगा।

तोल्स्तोयकी साहित्य-सेवा चालू रही। उसने अनेक छोटी छोटी कहानियाँ और पुस्तकें लिखीं, जो युग-युगतक जनताको प्रेरणा देती रहेंगी। दिन-दिन उसका प्रभाव बढ़ने लगा। तोल्स्तोयकी खरी बातें न सरकारको रुचीं, न धर्माध्यक्षोंको। पादरियोंने धर्मके मूल तत्त्वको समझानेवाले इस मनीषीको धर्मच्युत कर दिया। पर इससे तोल्स्तोयके आदर्शमें कोई कमी नहीं आयी।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें तोल्स्तोयके मनमें वानप्रस्थ-जीवन बितानेकी तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हुई। १ नवम्बर १९१ को वह घरसे निकल पड़ा। १ दिन बाद विश्वके इस महान् विचारकका आस्तापोवो नामके एक छोटेसे स्टेशनपर सर्दी लग जानेके कारण देहान्त हो गया।

प्रमुख रचनाएँ

तोल्स्तोयकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'वार एण्ड पीस', 'एना कोरेनिना' 'व्हाट शल दू वी डन ?' 'दि किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू' 'रिजरेक्शन', 'दि स्लेवरी ऑफ अवर टाइम्स', 'सोशल ईविल्स एण्ड देयर रेमेडी'।

प्रमुख आर्थिक विचार

तोल्स्तोयने व्यापक अध्ययन करके देखा कि पश्चिमी अर्थशास्त्रकी धारणाएँ गलत हैं। जमानेकी गुलामीके कारणोंका उसने विस्तृत विवेचन किया और वह इस निष्कर्षपर पहुँचा कि रुपया सारे अनर्थोंकी जड़ है। सरकारका निर्मूलन होना चाहिए और मनुष्यको आत्म-विश्लेषण करके सन्मार्गपर चलना चाहिए। दरिद्रता और अन्याय-अत्याचारको मिटानेका एक ही उपाय है। और वह है—अपना सारा काम अपने हाथसे करना और दूसरेके श्रमसे लाभ न उठाना।

गुलामी और उसके कारण

तोल्स्तोय कहता है :

किसान और मजदूर अपने जीवनकी आवश्यकताओंको पूरी करनेके लिए और अपने बाल-बच्चोंको पालनेके लिए अपनी मेहनतसे जो कुछ पैदा

करते है, उससे वे सब लोग फायदा उठाते है, जो हाथसे बिलकुल श्रम नहीं करते और दूसरोंके पैदा किये हुए धनपर गुलछर्रे उड़ाते है। इन निकम्मे लोगोंने किसानों और मजदूरोंको गुलाम बना रखा है। इस गुलामीसे छुटकारा पानेके लिए ४ बातें जरूरी हैं :

(१) जमीनपर किसानोंका स्वतंत्र अधिकार रहे। कोई उसमें हस्तक्षेप न करे, ताकि किसान लोग स्वतन्त्रतासे रहकर अपना जीवन-यापन कर सकें।

(२) किसान लोग जमीनपर अधिकार न तो हिंसासे पा सकते है, न हड़तालसे और न ससदीय मार्गसे। उसके लिए एक ही उपाय है कि पाप, बुराई या अन्यायके साथ लेशमात्र भी सहयोग न किया जाय। इसके लिए किसान लोग न तो सेनामें भरती हों, न जमींदारोंके लिए उनका खेत जोतें बोयें और न उनसे लगानपर खेत लें।

(३) किसान यह समझ लें कि जस तरह सूर्यका प्रकाश और हवा किसी एक मनुष्यकी सम्पत्ति नहीं, सबकी समान सम्पत्ति है, उसी प्रकार जमीन भी किसी एक आदमीकी सम्पत्ति नहीं होनी चाहिए। वह सबकी समान सम्पत्ति होनी चाहिए। इस सिद्धान्तको मानकर चलनेसे ही जमीनका ठीक ढगसे बँटवारा हो सकेगा।

(४) इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए, सरकार, सरकारी कर्मचारी अथवा जमींदार—किसीके प्रति भी उद्दण्डताका व्यवहार न किया जाय। इन लोगोंको मारकाट, उपद्रव और हिंसासे नहीं जीता जा सकता। उसका उपाय है—सत्याग्रह, असहयोग और अहिंसा।

मनुष्य स्वय अपना उद्धारक है। वह यदि अपने विश्वासपर दृढ है, वह यदि किसी भी बुराई, अत्याचार या अन्यायमें शरीक होनेके लिए तैयार नहीं है, तो किसी भी मनुष्यकी यह शक्ति नहीं कि वह उससे उसकी मर्जीके खिलाफ कोई काम करा सके। यह दृढता और सत्य तथा न्यायके लिए आग्रह जब किसानों और मजदूरोंमें आ जायगा, तो उनका उद्धार होनेमें तनिक भी देर नहीं लगेगी।'[१]

भूमि, कर और आवश्यकताएँ

इस युगकी गुलामीके प्रधान कारण तीन हैं : (१) जमीनका अभाव या आवश्यकता, (२) लगान और कर और (३) बढी हुई आवश्यकताएँ और कामनाएँ। हमारे मजदूर और किसान भाई हमेशा किसी न-किसी शक्लमें उन लोगोंके गुलाम बने रहेंगे, जिनके पास जमीन है, जो रुपयेवाले हैं, कल-कारखानोंके मालिक हैं और जिनके कब्जेमें वे सब चीजें हैं, जिनसे मजदूरों और किसानोंकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं।

१ जनार्दन भट्ट तॉल्सतॉयके सिद्धान्त, पृष्ठ २१–५३।

कानूनकी खुराफात

हमारे जमानेकी गुलामी जमीन, जायदाद और करसम्बन्धी तीन प्रकारके कानूनोंका परिणाम है।

कानून है कि अगर किसीके पास रुपया है तो वह चाहे जितनी जमीन खरीदकर अपने कब्जेमें रख सकता है; उसे बेच सकता है, पुश्त-दर-पुश्त उसे काममें ला सकता है। कानून है कि हर मनुष्यको 'कर' देना पड़ेगा फिर उसे उसके लिए कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े। कानून है कि मनुष्य चाहे जितनी जायदाद अपने कब्जेमें रख सकता है, फिर वह जायदाद कैसे ही गलत तरीकेसे क्यों न हासिल की गयी हो। इन्हीं कानूनोंकी बदौलत मजदूरों और किसानोंकी गुलामी दुनियामें फैली है।

गुलामीका कारण है—कानून। गुलामी इसलिए है कि दुनियामें कुछ ऐसे लोग हैं जो अपने स्वार्थके लिए कानून बनाते हैं। जबतक कानून बनानेका हक कुछ थोड़े-से लोगोंके हाथमें रहेगा, तबतक संसारसे गुलामी मिट नहीं सकती।

सरकार : साधन-सम्पन्न डाकू

कानून न्यायके आधारपर या सर्वसम्मतिसे नहीं बनाये जाते। कुछ जबरदस्त लोग जिनके हाथोंमें राज्यकी कुछ शक्ति होती है, अपनी इच्छाके अनुसार लोगोंको दबानेके लिए कानून बनाते हैं।

डाकुओं-लुटेरों और सरकारमें केवल यही फर्क है कि लुटेरोंके कब्जेमें रेल-तार आदि नहीं होते। सरकार रेल, तार आदि वैज्ञानिक आविष्कारोंकी सहायताके सहारे अपने कामको जल्दी जारी रखती है। रेल, तार, अखबार, डाकखाना, सेना आदिकी बदौलत सरकार जनताको अच्छी तरह गुलाम बनाकर मनमाना अत्याचार कर सकती है।

गुलामीको मिटानेके लिए सरकारको मिटाना जरूरी है। पर सरकारको *मिटानेका केवल एक उपाय है। और वह यह कि लोग सरकारके कामोंमें न तो सहयोग करें और न उससे कोई वास्ता रखें।*

अमेरिकाके प्रसिद्ध लेखक थोरोने लिखा है कि जो सरकार अन्याय करती हो जो अत्याचारका साथ देती हो उसकी आज्ञाओंका पालन करना या उसके साथ सहयोग करना अपराध ही नहीं बड़ा भारी पाप भी है। मैंने (थोरोने) अमेरिकाकी सरकारको कर देना इसलिए बन्द कर दिया कि मैं उस सरकारकी कोई भी सहायता नहीं करना चाहता जो हब्शियोंकी गुलामीको कानूनन जायज मान रही है। क्या यही बर्ताव संसारकी हर सरकारके साथ नहीं होना चाहिए! कभी

१ ब्लार्टन मद : टॉलस्टॉयके सिद्धान्त, पृष्ठ ५४ १ १।

सरकार तो एक न एक प्रकारका अत्याचार और अन्याय अपनी प्रजाके साथ करती है। इसलिए कोई भी सच्चा आदमी, जो अपने भाइयोंकी सेवा करना चाहता है और जिसे सरकारकी सच्ची स्थिति मालूम हो गयी है, सरकारके साथ कभी भी सहयोग नहीं कर सकता।

सरकार तमाम बुराइयोंकी जड़ है। उससे मनुष्यको भयंकरसे भयंकर हानियाँ उठानी पड़ रही हैं। इसलिए सरकारको उठा देना चाहिए।

प्रजाके दो वर्ग गरीब और अमीर

प्रत्येक मनुष्य मानता है कि एक ही परम पिताके पुत्र होनेकी हैसियतसे हम सब भाई-भाई हैं। हम सबके अधिकार समान होने चाहिए। संसारके सुख भोगने और विकासके साधन और अवसर सबको एक समान मिलने चाहिए। फिर भी मनुष्य देखता है कि कुल मनुष्य-जाति दो भागोंमें विभाजित है—एक ओर हैं वे मनुष्य, जो 'मजदूर' कहलाते हैं, जो हाथसे काम करते हैं, हमारे लिए अन्न पैदा करते हैं, जो हृदयवेधक कष्टों और अत्याचारोंके शिकार बन रहे हैं, खानेभरको भी नहीं पाते। दूसरी ओर हैं वे मनुष्य, जो आलसी और निकम्मे हैं, जो गरीब किसानों और मजदूरोंके पैदा किये हुए धनपर गुलछर्रे उड़ाते हैं, दूसरोंका धन चूसकर अपनी कोठियाँ खड़ी करते हैं और गरीबोंपर, कमजोरोंपर अत्याचार करना अपना स्वाभाविक अधिकार मानते हैं।

किसान अनाज पैदा करता है, पर आप भूखा रहता है। जुलाहा कपड़ा बुनता है, पर आप सर्दीमें ठिठुरता है। राज और मजदूर दूसरोंके महल खड़े करते हैं, पर उन्हें खुद टूटे-फूटे झोपड़ोंमें रहना ही नसीब है। उधर जो हाथसे काम नहीं करता, वह रुपयेके जोरसे इन गरीबोंकी कमाईका भोग करता है। किसान और मजदूर राजाओं और अमीरोंके लिए भोग विलासकी सामग्री तैयार करते हैं, सरकारी कर्मचारियोंको मोटी तनखाह देते हैं, जमींदारों और महाजनोंके थैले भरते हैं, पर आप रह जाते हैं—कोरेके कोरे।[1]

कितने बड़े आश्चर्यकी बात है कि जो व्यक्ति अन्न पैदा करता है, कपड़ा बुनता है, नगरकी सफाई करता है, अपने करके रुपयेसे स्कूल कॉलेज खोलता है, वह हमारे समाजमें नीचसे नीच माना जाता है! किन्तु ऊँची जातिवालेको, चाहे वह कितना ही निकम्मा और दुश्चरित्र क्यों न हो, हम बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं।[2]

---

१ जनार्दन भट्ट : तॉलस्तॉयके सिद्धान्त, पृष्ठ १०५–१६०।
२ वही, पृष्ठ १६०-१६१।

युद्ध और शान्ति

युद्धका पहला कारण यह है कि धन या सम्पत्तिका बँटवारा सब लोगोंमें समान रूपसे नहीं है। मनुष्य जातिका एक भाग दूसरे भागको मनमाना लूट रहा है। दूसरा कारण यह है कि समाजमें सरकारकी ओरसे कुछ लोग युद्धके लिए और दूसरोंको मारने-काटनेके लिए सिखा-पढ़ाकर तैयार रखे जाते हैं। तीसरा कारण यह है कि लोगोंको झूठे धर्मकी शिक्षा दी जाती है। इसलिए यह कहना गलत है कि युद्धका कारण यह या वह बादशाह जार, कैसर, मंत्री या राजनीतिक नेता है। युद्धके असली कारण हम हैं, क्योंकि हमीं सम्पत्तिके अनुचित बँटवारेमें एक दूसरेकी लूटपाटमें शरीक होते हैं। हमीं सेनामें भरती होकर मार-काटका काम जारी रखते हैं और हमीं झूठे धार्मिक उपदेशोंके अनुसार आचरण करते हैं।

जो लोग संसारमें शांति स्थापित करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे सम्पत्तिके अनुचित बँटवारेमें भाग न लें, किसानों और मजदूरोंपर होनेवाले अत्याचारोंमें शरीक न हों, सेनामें भरती होनेसे इनकार करें और उन झूठे धार्मिक उपदेशोंका तिरस्कार करें, जिनके द्वारा युद्ध होनेमें सहायता मिलती है।

तुम ज्यों ही बुराई और अन्यायके साथ सहयोग करना बन्द कर दोगे, त्यों ही सब सरकारें और उनके कर्मचारी उसी तरह लुप्त हो जायँगे, जिस तरहसे सूर्यके प्रकाशमें उल्लू लुप्त हो जाते हैं। तभी संसारमें मानव-प्रेम और भ्रातृभावका साम्राज्य दृढ़ताके साथ स्थापित होगा।

बुराइयोंका मूल कारण : रुपया

मैं देखता हूँ कि दूसरोंकी मेहनतसे लाभ उठानेका ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि जो मनुष्य जितना अधिक चालाक है और उसके द्वारा अथवा उसके उन पूर्वजोंके द्वारा कि जिनसे विरासतमें उसे जायदाद मिली है, जितने ही अधिक छल-प्रपंच रचे जायँ उतना ही अधिक वह दूसरोंके श्रमका उपभोग करके लाभ उठा सकता है और उसी परिमाणमें वह खुद मेहनत करनेसे बच जाता है।

मजदूरोंकी मेहनतका फल उनके हाथसे निकलकर रोज-रोज अधिकाधिक परिमाणमें मेहनत न करनेवाले लोगोंके हाथमें चला जा रहा है।

मैं एक आदमीकी पीठपर सवार हो गया हूँ और उसे अशक्त तथा निर्बल बनाकर मजबूर करता हूँ कि वह मुझे आगे ले चले। मैं उसके कन्धोंपर बराबर सवार हूँ फिर भी मैं अपनेको तथा दूसरोंको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इस आदमीकी दुरवस्थापर मैं बहुत दुःखी हूँ और इसका दुःख दूर करनेमें मैं भरसक कुछ उठा न रखूँगा, किन्तु इसकी पीठपरसे मैं उतरूँगा नहीं।[1]

---

१ जनार्दन भट्ट : टॉल्सटॉयके सिद्धान्त, पृष्ठ १२३-२४।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि रुपयेमें अथवा रुपयेके मूल्यमें और उसके इकट्ठा करनेमें ही दोष है, बुराई है और मैंने समझा कि मैंने जो बुराइयाँ देखी हैं, उनका मूल कारण यह रुपया ही है।

तब मेरे मनमें प्रश्न उठा—यह रुपया है क्या ?

कहा जाता है कि रुपया परिश्रमका पारितोषिक है।

अर्थशास्त्र कहता है कि पैसेमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो अन्याययुक्त और दोषपूर्ण हो। सामाजिक जीवनका यह एक स्वाभाविक परिणाम है। एक तो विनिमयकी सुगमताके लिए, दूसरे, चीजोंका मूल्य निश्चित करनेवाले साधनके रूपमें, तीसरे, संचयके लिए और चौथे, लेन देनके लिए अनिवार्य रूपसे रुपया आवश्यक है।

यदि मेरी जेबमें मेरी आवश्यकतामें अधिक तीन रूबल पड़े हों, तो किसी भी सभ्य नगरमें जाकर जरा सा इशारा करते ही ऐसे सैकड़ों आदमी मुझे मिल जायँगे, जो उन तीन रूबलोंके बदलेमें मैं चाहूँ जैसा भद्देसे भद्दा, महाघृणित और अपमानजनक कृत्य करनेको तैयार हो जायँगे। पर कहा जाता है कि इस विचित्र स्थितिका कारण रुपया नहीं। विभिन्न जातियोंके आर्थिक जीवनकी विषम अवस्थामें इसका कारण मिलेगा।[1]

एक आदमीका दूसरे आदमीपर शासनाधिकार हो, यह बात रुपयेसे पैदा नहीं होती। बल्कि इसका कारण यह है कि काम करनेवालेको अपनी मेहनतका पूरा प्रतिफल नहीं मिलता। पूँजी, सूद, किराया, मजदूरी और धनकी उत्पत्ति तथा खपतकी जो बड़ी ही टेढ़ी और गूढ़ व्यवस्था है, उसमें इसका कारण समाया हुआ है।

सीधी भाषामें कहा जा सकता है कि पैसा बिना-पैसेवालोंको अपनी उँगलीपर नचा सकता है, किन्तु अर्थशास्त्र कहता है कि यह भ्रम है। वह कहता है कि इसका कारण उत्पत्तिके साधनों—भूमि, सञ्चित श्रम (पूँजी) और श्रमके विभागमें तथा उनसे होनेवाले विभिन्न योगोंमें ही है और उन्हींकी वजहसे मजदूरोंपर जुल्म होता है।

यहाँ इसपर विचार ही नहीं किया गया कि परिस्थितिपर पैसेका कैसा और कितना प्रभाव पड़ता है। उत्पत्तिके साधनोंका विभाग भी कृत्रिम और वास्तविकतासे असम्बद्ध है।

यदि अन्य कानूनी विज्ञानोंकी तरह अर्थशास्त्रका भी यह उद्देश्य न होता कि समाजमें होनेवाले अन्याय अत्याचारका समर्थन किया जाय, तो अर्थशास्त्र

---

[1] टॉल्सटॉय : क्या करें ? प्रथम भाग, पृष्ठ १३८-१४८।

यह देखे बिना न रहता कि द्रव्यका वितरण, कुछ लोगोंको भूमि और पूँजीसे वंचित कर देना और कुछ लोगोंका दूसरोंको अपना गुलाम बना लेना—ये सब विचित्र बातें पैसेकी ही वजहसे होती हैं और पैसेके ही द्वारा कुछ लोग दूसरे लोगोंकी मेहनतका उपभोग करते हैं—उन्हें गुलाम बनाते हैं।[1]

धन एक नये प्रकारकी गुलामी है। प्राचीन और इस नवीन गुलामीमें भेद सिर्फ इतना ही है कि यह अव्यक्त लगता है। इस गुलामीमें गुलामके साथके सब मानवीय सम्बन्ध छूट जाते हैं।

रुपया गुलामीका नया और भयंकर स्वरूप है और पुरानी व्यक्तिगत दासताकी भाँति यह गुलाम और मालिक दोनोंको पतित और भ्रष्ट बना देता है। इतना ही क्यों, यह उससे अधिक बुरा है क्योंकि गुलामीमें दास और स्वामीके बीच मानव-सम्बन्धकी स्निग्धता रहती है, रुपया उसे भी एकदम ही नष्ट कर देता है।[2]

तब हम करें क्या ?

मैंने देखा कि मनुष्योंके दुःख और पतनका कारण यही है कि कुछ लोग दूसरे लोगोंको गुलाम बनाकर रखते हैं। अतः मैं इस सीधे और सरल निर्णयपर पहुँचा कि यदि मुझे दूसरोंकी मदद करना अभीष्ट है तो जिन दुःखोंको मैं दूर करनेका विचार करता हूँ, उससे पहले मुझे उन दुःखोंकी उत्पत्तिका कारण नहीं बनना चाहिए, अर्थात् दूसरे मनुष्योंको गुलाम बनानेमें मुझे भाग नहीं लेना चाहिए।

मनुष्योंको गुलाम बनानेकी मुझे जो आवश्यकता प्रतीत होती है, वह इसलिए कि बचपनसे ही स्वयं अपने हाथसे काम न करनेकी और दूसरोंके श्रमपर जीवित रहनेकी मुझे आदत पड़ गयी है। मैं ऐसे समाजमें रहता हूँ, जहाँ लोग दूसरोंको अपनी गुलामी करानेके अभ्यस्त ही नहीं हैं, बल्कि अनेक प्रकारके चतुरतापूर्ण और कुतर्कयुक्त वाक्छलसे दासताको न्याय्य और उचित भी सिद्ध करते हैं।

मैं इस सीधे सरल परिणामपर पहुँचा हूँ कि लोगोंको दुःख और पापमें न डालना हो तो दूसरोंकी मजदूरीका हमसे हो सके जितना कम प्रयोग करना चाहिए और स्वयं अपने ही हाथों यथासम्भव अधिकसे अधिक काम करना चाहिए। या इसतरह घूम-फिरकर मैं उसी अनिवार्य निर्णयपर पहुँचा कि जिसको चीनके एक महात्माने आजसे ५ वर्ष पूर्व इस प्रकार व्यक्त किया था—

---

१ टॉल्सटॉय : क्या करें ? प्रथम भाग पृष्ठ १४८-१५२।
२ टॉल्सटॉय : क्या करें ? प्रथम भाग पृष्ठ २४७-२५२।

'यदि संसारमें कोई एक आलसी मनुष्य है, तो अवश्य ही दूसरा कोई भूखा मरता होगा।'

जिसे अपने पड़ोसियोंको दुःखी देखकर सचमुच ही दुःख होता है, उसके लिए इस रोगको दूर करनेका और अपने जीवनको नीतिमय बनानेका एक ही सीधा और सरल उपाय है। और यह उपाय वही है, जो 'हम क्या करें?' प्रश्न किये जानेपर जान वेपटिस्टने बताया था और ईसाने भी जिसका समर्थन किया था :

एकसे अधिक कोट अपने पास नहीं रखना और न अपने पास पैसा रखना। अर्थात् दूसरे मनुष्यके श्रमसे लाभ नहीं उठाना।

दूसरोंके श्रमसे लाभ न उठानेके लिए यह आवश्यक है कि हम अपना काम अपने हाथसे करें।

इस संसारमें फैले दुःख-दारिद्र्य और अनाचारको दूर करनेका एकमात्र सरल और अचूक साधन यही है।[1]

● ●

---

[1] तोल्सतोय : क्या करें? द्वितीय भाग, पृष्ठ १—६।

भाटक-सिद्धान्तका विकास

रिकार्डोका मत

रिकार्डोने सबसे पहले भूमिके भाटक सिद्धान्तका वैज्ञानिक अनुसन्धान किया और यह कहा कि भाटक भूमिसे होनेवाली उपजका वह अंश है जो कि भू-स्वामीको भूमिकी मौलिक एवं अविनाशी शक्तियोंके उपयोगके लिए दिया जाता है।

रिकार्डो यह मानकर चलता है कि विभिन्न भूमिखण्डोंकी उर्वरा-शक्तिमें भिन्नता होती है और भूमिमें उत्पादन-ह्रास नियम लागू होता है। पूर्ण प्रतिस्पर्धाके कारण सीमान्तके अतिरिक्त अन्य भूमिखण्डोंपर भाटककी प्राप्ति होती है।

रिकार्डोने भाटकको अनर्जित आय बताया और कहा कि भाटककी प्राप्तिके लिए भू-स्वामीको कुछ भी नहीं करना पड़ता।

अन्य आलोचक

रिकार्डोके भाटक सिद्धान्तने परवर्ती विचारकोंको सोचनेकी पर्याप्त सामग्री

प्रदान की। फलत. उसपर उन्नीसवीं शताब्दीमें खूब ही आलोचना हुई। विभिन्न आलोचकोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे आलोचना की और भाटक-सिद्धान्तका विकास किया।

रिचर्ड जोन्स

रिचर्ड जोन्स (सन् १७९०-१८५५) ने अपनी 'एसे ऑन दि डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ वेल्थ एण्ड ऑन दि सोर्सेज ऑफ टैक्सेशन' (सन् १८३१) में रिकार्डोके सिद्धान्तकी तीव्र आलोचना की। उसका कहना था कि अनेक स्थानोंपर तथा अनेक अवसरोंपर रिकार्डोका भाटक-सिद्धान्त लागू नहीं होता। भाटकपर प्रथा, रीति रिवाज और परम्पराका भी प्रभाव पड़ता है। इस कारण प्रतिस्पर्द्धापर नियन्त्रण लगता है। अत. वास्तविकताकी कसौटीपर रिकार्डोका सिद्धान्त सही नहीं उतरता। वह उत्पादन ह्रास नियमको भी स्वीकार नहीं करता। उसकी धारणा है कि उत्पादनकी कलामें सुधार होनेके कारण अब यह बात सत्य नहीं ठहरती।[1]

रौजर्स

प्रोफेसर जेम्स ई० थोरोल्ड रौजर्स (सन् १८२३-१८९०) ने अपनी रचना 'दि इकॉनॉमिक इण्टरप्रिटेशन ऑफ हिस्ट्री' (सन् १८८८) की भूमिकामें रिकार्डोके सिद्धान्तकी कटु आलोचना की है और भूमिकी स्थितिपर बड़ा जोर दिया है। उसका यह भी कहना है कि इतिहासने यह बात असत्य सिद्ध कर दी है कि मनुष्य पहले अधिक उपजाऊ भूमि जोतता है, फिर उससे कम उपजाऊ। वह कहता है कि 'अपने ऐतिहासिक अध्ययनसे मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जिन बहुतसी बातोंको स्वाभाविक या प्राकृतिक मानते हैं, उनमें अधिकाश कृत्रिम हैं, और जिन्हें वे सिद्धान्त कहकर पुकारते हैं, वे प्राय. उतावलीमें, बिना भलीभाँति सोचे हुए गलत निष्कर्ष होते हैं और जिसे वे अतर्क्य सत्य मानते हैं, वह अत्यन्त मिथ्या निकलता है।'[2]

रौजर्सने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर एण्ड प्राइसेज ऑफ इंग्लैण्ड' में कहा है कि रिकार्डोकी यह धारणा गलत है कि श्रम और पूँजीकी पूर्ण गतिशीलता रहती है। ऐसा कहीं नहीं होता। वस्तुत जमींदार और किसानका सम्बन्ध अत्यन्त कठोर होता है। जमींदार निस्सदेह बिना किसी आर्थिक कारणके भाटकमें वृद्धि कर सकते हैं और किसानोंको विवश होकर उसे स्वीकार किये बिना चारा नहीं। रिकार्डोने पूर्ण प्रतिस्पर्द्धाकी बात कहकर इस कठोर सत्यकी उपेक्षा कर दी है।

---

१ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ २९८, ५२९।

२ हेने वही, पृष्ठ ५३४-५३५।

भूमिके मूल्यमें भारी वृद्धि

क्रमशः भाटकके सिद्धान्तका विकास होने लगा। पहले यह माना जाता था कि प्रकृतिकी सभी निःशुल्क देन, चाहे वह मिट्टी, पानी या प्रकाशके रूपमें हो, 'भूमि' कहलाती है। बादमें कुछ लोग यह भी कहने लगे कि भूमिमें उत्पादनके सभी मानवीय साधन सम्मिलित किये जाने चाहिए। नस्सू एन. सीनियर, एफ. ए. वाकर जैसे विचारक कहने लगे कि भाटकका सिद्धान्त भूमिके अतिरिक्त श्रम और पूँजी जैसे उत्पादनके अन्य साधनोंपर भी लागू होना चाहिए। जे. बी. क्लार्कने पूँजीपर और विक्स्टीडने श्रमपर भाटकके सिद्धान्तको लागू करनेपर जोर दिया।

भूमिकी उर्वरता भाटकका कारण है अथवा उसकी दुर्लभता, यह प्रश्न पहलेसे चलता आ रहा था और क्रमशः विचारक इस बातपर एकमत होने लगे थे कि प्रकारान्तरसे दोनों ही बातें भाटकका कारण हैं। अतः दोनोंको ही भाटकका कारण मानना उचित होगा।

इधर भूमिकी दुर्लभताके कारण भूमिके मूल्यमें अत्यधिक वृद्धि होने लगी थी। इंग्लैण्ड, अमरीका, जर्मनी, फ्रांस आदि देशोंमें बड़े-बड़े शहरोंकी संख्या तेजीसे बढ़ रही थी। जनता भारी संख्यामें शहरोंमें एकत्र होने लगी थी। उसका परिणाम यह होने लगा कि शहरोंके निकटकी भूमिका मूल्य आसमान छूने लगा। इसका एकाध उदाहरण ही स्थितिकी विषमताका ज्ञान प्राप्त करानेके लिए पर्याप्त होगा।[1]

शिकागो नगरमें एक-चौथाई एकड़का एक भूमिखण्ड सन् १८३० में बीस डालरमें खरीदा गया। सन् १८३६ में वह पचीस हजार डालरमें बेचा गया और सन् १८९४ में जब अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी हुई तो उसका मूल्य आँका गया साढ़े बारह लाख डालर।

लन्दनका हाइड पार्क सन् १६५२ में नगरपालिकाने १७ हजार पौण्डमें खरीदा था। सन् १९   में उसका मूल्य आँका गया ८   लाख पौण्ड।

पेरिसमें होटल ड्यूक एक भूमिखण्डका मूल्य सन् १७७५ में १ फ्रांक ४ सेण्ट वर्गमीटर था। सन् १९   में उसका मूल्य आँका गया १   फ्रांक वर्गमीटर।

भूमिके मूल्यमें इस आकाशचुम्बी वृद्धिके कारण एक ओर होती है सम्पन्नता की चरम सीमा, दूसरी ओर होती है दरिद्रताकी चरम सीमा। यह भयंकर स्थिति

---

[1] जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ५७१-५७२।

देखकर हेनरी जार्ज (सन् १८३९-९७) बुरी तरह रो पड़ा। दस वर्ष लगा दिये उसने इसका हल खोजनेमें।[1]

जार्ज कहता है : कल्पना कीजिये कि सभ्यताके विकासके साथ एक छोटासा ग्राम दस सालमें एक बड़े नगरके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। वहाँ घुड़बग्घीके स्थानपर रेल आ जाती है, मोमबत्तीकी जगह बिजली। आधुनिकतम मशीनें वहाँ लग जाती हैं, जिनसे श्रमकी शक्तिमें अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। अब किसी लक्ष्मीभक्त व्यापारीसे पूछिये कि 'क्या इन दस वर्षोंमें ब्याजकी दरमें वृद्धि होगी ?'

वह कहेगा . 'नहीं।'

'साधारण श्रमिककी मजूरी बढ़ेगी ?'

'नहीं। वह उलटे घट सकती है।'

'तब किस वस्तुका मूल्य बढ़ेगा ?'

'मूल्य बढ़ेगा भूमिके भाटकका। जाओ, वहाँ एक भूमिखण्ड ले लो।'

जार्ज कहता है 'अब आप उस व्यापारीकी बात मान लें', तो आपको कुछ नहीं करना पड़ेगा। आप मौजसे पड़े रहिये, सिगार फूँकिये, आकाशमें उड़िये, समुद्रमें गोते लगाइये, रत्तीभर हाथ डुलाये बिना, समाजकी सम्पत्तिमें एक कौड़ीकी भी वृद्धि किये बिना, आप दस वर्षके भीतर समृद्धिशाली बन जायँगे। नये नगरमें आपका महल खड़ा होगा और उसके सार्वजनिक स्थानोंमें होगा एक भिक्षागार।[2]

भाटकका विरोध

इस अनर्जित आय भाटकके अनौचित्यकी भावना विचारकोंको बुरी भाँति खटकने लगी। इसके विरोधमें उन्होंने भूमिके राष्ट्रीयकरणका, उसपर कर लगानेका आन्दोलन चलाया। इस दिशामें हर्बर्ट स्पेंसर, जान स्टुअर्ट मिल, वालेस, हेनरी जार्ज, वालरस आदिके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

भाटकके विरोधकी भावनाका सूत्रपात अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें ही हो चुका था। सन् १७७५ में थामस स्पेन्स नामक न्यू कासल्के एक अध्यापकने यह आवाज उठायी थी कि जनतासे जो भी भूमिखण्ड अनैतिक रूपसे छीन लिये गये हैं, वे उसे वापस कर देने चाहिए। सन् १७८१ में ओग्ल्वी नामक एबरडीन विश्वविद्यालयके प्राध्यापकने यह माँग प्रस्तुत की थी कि भाटककी सारी आय कर लगाकर जब्त कर लेनी चाहिए। सन् १७९७ में टाम पेनने इसी प्रकारके विचार प्रकट किये थे।[3] पर, इन विचारोंका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

१ हेनरी जार्ज प्रोग्रेस एण्ड पावर्टी, १९५६, पुस्तककी कहानी, पृष्ठ ७-८।
२ हेनरी जार्ज प्रोग्रेस एण्ड पावर्टी, पृष्ठ २९४।
३ जीद और रिस्ट ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ५८४-५८५।

स्पेन्सर

हर्बर्ट स्पेन्सरने 'सोशल स्टैटिक्स' (सन् १८५) में समाजके उद्भवकी चर्चा करते हुए यह दावा किया है कि राज्य यदि भूमिपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेगा तो वह सम्यताके सर्वोच्च हितकी दृष्टिसे काम करेगा। ऐसा करना नैतिक नियमके अनुकूल होगा।[1]

स्पेन्सर इस तर्कको अमान्य मानता है कि भू-स्वामियोंने चूँकि पहले भूमिपर अपना अधिकार कर लिया, अतः वे भाटक प्राप्त करनेके अधिकारी हैं। वह कहता है कि भूमि सभी मानवोंके लिए विशेष महत्त्वकी वस्तु है। अतः उसपर किसीका व्यक्तिगत स्वामित्व रहना नैतिक दृष्टिसे भी गलत है, आर्थिक दृष्टिसे भी।[2]

स्पेन्सरने भूमिके समाजीकरणका आन्दोलन चलाया। उसके अनुयायियोंकी संख्या पर्याप्त थी। उसके विचारोंने टॉल्स्टॉय जैसे महान् विचारकको भी प्रभावित किया था।

स्टुअर्ट मिल

जान स्टुअर्ट मिल भाटकको अनुचित मानता था। उसकी दृष्टिसे भाटक दो कारणोंसे अन्यायपूर्ण है :

(१) वह बिना श्रमके प्राप्त होता है और

(२) रिकार्डोकी यह धारणा सत्य सिद्ध हुई है कि सम्यताके विकासके साथ साथ भाटकमें तो वृद्धि होती है पर मुनाफा घटता है और मजदूरी ज्योंकी त्यों बनी रहती है। भू-स्वामीका हित उत्पादक एवं श्रमिकके हितोंके विरुद्ध पड़ता है। अतः भूमिपर होनेवाली 'सारी अनर्जित आय' कर लगाकर समाप्त कर देनी चाहिए। उसका कहना है कि बिना काम किये बिना कोई खतरा उठाये भू-स्वामियोंको सम्यताके विकासके साथ-साथ जो 'अनर्जित आय' प्राप्त होती है, उसे पानेका उन्हें अधिकार ही क्या है ![3]

मिलने सन् १८७ में इस अनर्जित आयको कर लगाकर समाप्त करनेके लिए 'भूमि सुधार संघ' की स्थापना की और इसके माध्यमसे अपना आन्दोलन चलाया। पर मिलका कहना था कि भू-स्वामियोंकी वर्तमान भूमिका बाजार-दरसे मूल्यांकन करके उसपर होनेवाली अतिरिक्त आय उसका भाटक जब्त कर लेना चाहिए। वह भूमिके सम्पूर्ण समाजीकरणके पक्षमें नहीं था।

---

१ जीद और रिस्ट वही पृ ५८८।
२ हेनरी जार्ज प्रोग्रेस एण्ड पावर्टी पृ ३८८-३९ ३९४।
३ हेनरी जार्ज वही पृ ४११।
४ जीद और रिस्ट वही पृ ५८७।

मिलके भूमि-सुधार संघमें थोरोल्ड रौजर्स, जान मोरले, हेनरी फासेट, कैरन्स और रसेल वालेस जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति भी सम्मिलित थे। इस आन्दोलनने इग्लैण्डकी फेबियन सोसाइटीपर अपना अच्छा प्रभाव डाला था।

वालेस

एल्फ्रेड रसेल वालेसने सन् १८८२ में भूमिके समाजीकरणका आन्दोलन चलाया। उसकी पुस्तक 'लैण्ड नेशनलाइजेशन . इट्स नेसेसिटी एण्ड इट्स एम्स' में इस बातपर जोर दिया गया है कि श्रमिकको यदि भूमि-सेवाकी स्वतन्त्रता उपलब्ध होगी, तो पूँजीपतिपर उसकी निर्भरता तो समाप्त होगी ही, दरिद्रता एव अभावों-की समस्याका भी निराकरण हो जायगा। अतः प्रत्येक श्रमिकको यह अधिकार रहना चाहिए कि भूमिकी सेवाके लिए भूमि प्राप्त कर वह उसपर खेती कर सके। भूमिके समाजीकरणके उपरान्त प्रत्येक व्यक्तिको जीवनमें कमसे कम एक बार १ से लेकर ५ एकड़तकका भूमिखण्ड चुनकर उसपर कृषि करनेका अवसर प्राप्त होना ही चाहिए।[1]

हेनरी जार्ज

'प्रोग्रेस एण्ड पावर्टी' (सन् १८७९) के करुणार्द्र लेखक हेनरी जार्जने अमे-रिकामें भूमिके समाजीकरणका आन्दोलन चलाया। उसकी धारणा थी कि भूमिका मूल्य अत्यधिक बढ रहा है, जिसके फलस्वरूप एक ओर थोड़ेसे व्यक्ति सम्पन्नसे सम्पन्न होते जा रहे है और असख्य व्यक्ति दरिद्रसे दरिद्र होते जा रहे हैं। इधर सम्पन्नता अपनी चरम सीमा-पर पहुँच रही है, उधर उसीके बगलमें विपन्नता अपनी चरम सीमापर जा रही है। जार्जकी मान्यता थी कि रिकार्डो और मिलकी भविष्यवाणियाँ सार्थक हो रही हैं।

जार्जने दस वर्षतक, सन् १८६९ से १८७९ तक, सम्पन्नता और विपन्नताकी समस्याका गहन अध्ययन किया और इसपर गम्भीर चिन्तनके उपरान्त अपनी अमर रचना 'प्रोग्रेस एण्ड पावर्टी'

[1] जीद और रिस्ट : वही, पृष्ठ ६०१।

लिखी, जिसमें उसने समस्याका निदान यही बताया कि इस अनर्जित आयकी समाप्तिके लिए एक-कर-प्रणाली द्वारा भाटककी कमी कर ली जाय।

हेनरी जार्ज कहता है कि 'समस्याके निदानका एक ही उपाय है। सम्पत्तिकी वृद्धिके साथ-साथ दारिद्र्यकी भी वृद्धि हो रही है। उत्पादन-क्षमता बढ़ रही है पर मजदूरी घट रही है। उसका कारण यही है कि भूमिपर, जो कि सारी सम्पत्तिका कारण है और सारे श्रमका क्षेत्र है, व्यक्तियोंका एकाधिकार है। यदि हम यह चाहते हैं कि दरिद्रताका अन्त हो और श्रमिकको उसके श्रमकी भरपूर मजदूरी प्राप्त हो सके, तो उसका एकमात्र उपाय यही है कि भूमिपर व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त कर भूमि सार्वजनिक सम्पत्ति बना दी जाय। सम्पत्तिके असम और विषम वितरणको दूर करनेका एक यही उपाय है कि भूमिका समाजीकरण कर दिया जाय।'[1]

जार्जका कहना था कि 'भूमिका व्यक्तिगत स्वामित्व न्यायकी कसौटीपर कभी भी खरा नहीं उतर सकता। मनुष्यको जिस प्रकार हवामें साँस लेनेका जन्मजात अधिकार है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको भूमिके उपभोग करनेका समान अधिकार है। मनुष्यका अस्तित्व ही इस बातकी घोषणा करता है। हम ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकते कि कुछ व्यक्तियोंको इस पृथ्वीपर जीवित रहनेका अधिकार है और कुछको ऐसा अधिकार है ही नहीं।'[2]

सन् १८८ के आसपास इंग्लैण्ड, अमेरिका और आस्ट्रेलियामें मिल और हेनरी जार्जके विचारोंको मूर्तरूप देनेके लिए कई संस्थाओंकी स्थापना की गयी।

हेनरी जार्जके भूमिसम्बन्धी विचारोंका विनोबाके भूदान-आन्दोलनपर भी प्रभाव पड़ा है, इस बातको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

वालरस

फ्रांसीसी विचारक लियों वालरस (सन् १८३४–१९१०) ने भी भूमिके समाजीकरणपर बड़ा जोर दिया और कहा कि प्राकृतिक नियमके अनुसार भूमिपर राज्यका ही स्वामित्व होना चाहिए। यह प्रकृतिकी स्वतंत्र देन है। उसपर किसी भी व्यक्तिका व्यक्तिगत मालकियत होनी ही नहीं चाहिए।

फेबियन समाजवादी विचारधाराने भी व्यक्तिगत सम्पत्तिकी समाप्ति एवं भूमिके समाजीकरणकी भावनाको बल दिया है और भाटक-सिद्धान्तके विकासमें हाथ बँटाया है।[3]

● ● ●

---

१ हेनरी जार्ज : प्रोग्रेस एण्ड पावर्टी, पृष्ठ ३३८।
२ हेनरी जार्ज : वही, पृष्ठ ३३८।
३ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ५८१।

उन्नीसवीं शताब्दी

एक सिंहावलोकन

अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें स्मिथने जिस शास्त्रीय पद्धतिको जन्म दिया, बेंथमके उपयोगितावाद, मैल्थसके जनसंख्याके सिद्धान्त एवं रिकार्डोके भाटक-सिद्धान्तसे जो परिपुष्ट हुई, वह आगे चलकर अत्यन्त विकसित हो गयी।

लाडरडेल, रे और सिसमाण्डीने सबसे पहले इस विचारधाराकी आलोचना की। लाडरडेल और रेने स्मिथके सम्पत्तिसम्बन्धी विचारोंको भ्रामक बताया। रे और सिसमाण्डीने स्मिथके मुक्त व्यापारके विचारोंको अग्राह्य ठहराया। सिसमाण्डीकी आलोचना समाजवादी ढंगकी है। इन आलोचकोंने शास्त्रीय पद्धतिका मार्ग प्रशस्त करनेमें प्रकारान्तरसे योगदान ही किया।

शास्त्रीय पद्धति क्रमशः विकासकी ओर अग्रसर होने लगी। उसने आगे चलकर चार धाराएँ ग्रहण कीं। जेम्स मिल, मैक्कुलख और सीनियरने आंग्ल

विचारधाराको, से और बास्तियाने फ्रांसीसी विचारधाराको राउ, मूले और हर्मेनने जर्मन विचारधाराको तथा केरेने अमरीकी विचारधाराको परिपुष्ट किया।

सिसमाण्डीकी आलोचनाने जो पृष्ठभूमि तैयार की थी, उसे सेण्ट साइमनने और अधिक विकसित किया। साइमनके अनुयायियोंने तो उसके आधारपर समाजवादी विचारधाराको जन्म ही दे डाला। इस विचारधाराने ओवेन फूर्ये, थामसन और ब्लांकी कल्पनाओंके सहारे सहयोगी समाजवादको आगे बढ़ाया। प्रोदोंने स्वार्थसवादकी नींव डाली, अराजकतावाद मञ्च पर आया और इस प्रकार समाजवादी विचारधाराको पुष्पित-पल्लवित करनेमें योगदान किया।

आगे आयी मुलर और लिस्टकी राष्ट्रवादी विचारधारा, जिसने राष्ट्रकी भावनापर अत्यधिक बल देकर संरक्षणवादके सिद्धान्तको महत्त्वशाली सिद्धान्त बना डाला।

अबतक प्राचीन विचारधारा विभिन्न शाखाओंमें अङ्कुरित होकर विश्वके विभिन्न अंचलोंमें नाना प्रकारसे विकसित हो रही थी। जान स्टुअर्ट मिलने उसे नया मोड़ दिया। उसने उसे उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर पहुँचाया तो अवश्य, पर वहींसे उसके पतनका मार्ग भी प्रशस्त कर दिया। केरिन्स फासेट, सिजविक और निकल्सनने हाथ रोपकर प्राचीन पद्धतिके धँसते हुए भवनको थामनेकी चेष्टा की परन्तु उन बेचारोंके निकम्मे हाथ अपने उद्देश्यमें सफलता प्राप्त करनेमें असमर्थ रहे।

इसी समय दो पीढ़ियोंमें अर्थशास्त्रकी एक नयी विचारधाराका उदय हुआ। रोशर, हिल्डेब्राण्ड और नीस पुरानी पीढ़ीके सदस्य थे श्मोलर नयी पीढ़ीके। इन विचारकोंने इतिहासवादी विचारधाराको पुष्पित-पल्लवित किया।

अर्थशास्त्र अब समुचित रूपसे परिपुष्ट होने लगा था। सुखवादी विचारकोंने उसके विषयगत स्वरूपपर जोर दिया। उसकी दो शाखाएँ फूटीं। कूर्नो, गोसेन जेवन्स, वालरस परेटो और फिशरने गणितीय शाखाका विकास किया। मेंगर वीजर और बामबावर्कने मनोवैज्ञानिक शाखाका। एक शाखावालोंने बीजगणित और रेखागणितके सहारे आर्थिक बातोंको स्पष्ट करनेपर जोर दिया। दूसरी शाखावाले कहते थे कि मनुष्य केवल 'आर्थिक पुरुष' नहीं है, उसमें भावनाएँ हैं विचार हैं संवेदनाएँ हैं और उनसे प्रेरित होकर ही वह विभिन्न कर्म करता है।

विषयगत विचारधाराने प्राचीन पद्धतिके लड़खड़ाते पैर थामनेका कुछ श्रम किया परन्तु समाजवादी विचारधारा तीव्रतासे विकसित होने लगी। राडबर्टस और लासालने राज्य-समाजवादकी रागिनी छेड़ी। उन्होंने आत्मकृतिके समाजवादको आगे बढ़ाया। मार्क्स और एंजिल्सने वैज्ञानिक समाजवादको पुष्ट रूप दिया सर्वहारा-वर्गको जाग्रत किया और रक्त और हिंसाके माध्यमसे क्रान्तिकी

रणभेरी फूँकी। मनोवनवादी, सववादी, फेबियनवादी और ईसाई समाजवादी विचारधाराएँ भी इसके साथ-साथ पनपीं। क्रोपाटकिन और तोल्सतोय जैसे विचारकोंने सरकारको उखाड़ फेंकने और दरिद्रनारायणसे एकाकार होनेके लिए श्रमाधारित जीवन बितानेपर जोर दिया। हिंसात्मक मार्ग द्वारा क्रान्ति करनेका भी अनेक विचारकों द्वारा तीव्र विरोध किया गया। रस्किन और तोल्सतोयने सर्वोदय-विचारधाराका प्रतिपादन किया।

इस बीच रिकार्डोके भाटक-सिद्धान्तका विशेष रूपसे विकास हुआ और इस अनर्जित आयकी समाप्ति तथा भूमिके समाजीकरणके लिए स्पेंसर, मिल और हेनरी जार्जके आन्दोलनोंने दरिद्रताके उन्मूलनकी ओर समाजका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट किया।

यों हम देखते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दीका श्रीगणेश जहाँ पूँजीवादके विकास-से होता है, वहाँ उसकी समाप्ति होती है पूँजीवादके अभिशाप—दरिद्रताके उन्मूलनके चतुर्मुखी प्रयाससे।

● ● ●

सर्वोदय विचारधारा

सर्वोदय

- नैतिक पक्ष
  - साध्य
    - सत्य
  - साधन
    - अहिंसा
    - अस्तेय
    - ब्रह्मचर्य
    - अपरिग्रह
    - श्रम
    - अस्वाद
    - अभय
    - स्वदेशी आदि
- व्यावहारिक पक्ष
  - रचनात्मक कार्यक्रम
    - खादी
    - ग्रामोद्योग
    - मद्यनिषेध
    - आर्थिक समानता
    - साम्प्रदायिक एकता
    - अस्पृश्यता-निवारण
    - बुनियादी तालीम
    - किसानोंकी सेवा
    - मजदूरोंकी सेवा
    - स्त्रियों की सेवा आदि

आर्थिक विचारधारा

उदयसे सर्वोदयतक

तृतीय खण्ड

बीसवीं शताब्दी

नवपरम्परावादी विचारधारा

मार्शल

बीसवीं शताब्दीका उदय होता है मार्शल (सन् १८४२–१९२४) की नव-परम्परावादी (Neo-Classicism) विचारधारासे। अर्थशास्त्रके इस महान् विचारकने मौलिक अनुदान तो कम दिया, पर इसने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि शास्त्रीय पद्धतिकी सूखती हुई विचारधारामें नवजीवनका सञ्चार कर दिया।

स्टुअर्ट मिलके उपरान्त शास्त्रीय पद्धतिकी विचारधाराका बुरा हाल था, समाजवादियोंने उसकी पूँजीवादी धारणाओंकी छीछालेदर कर रखी थी, इतिहासवादियोंने उसकी पद्धतिके प्रश्नको लेकर, सुखवादी लोगोंने उसकी अन्य कमियोंको लेकर, रस्किन और कार्लाइल जैसे मानवतावादियोंने लोक-कल्याणके प्रश्नको लेकर इस विचारधाराकी मिट्टी पलीद कर रखी थी। उधर कालका चक्र भी बड़ी तीव्र गतिसे घूम रहा था। इंग्लैण्डमें औद्योगिक विकास चरम

सीमापर पहुँच रहा था, रिकार्डो और मिलके समयकी व्यापारिक स्थिति सर्वथा समाप्त हो गयी थी, व्यापारिक उत्थान-पतनका चक्र चालू हो गया था, व्यापारपर सरकारी नियंत्रण ढीला पड़ने लगा था आर्थिक जगत्में मुद्राके स्थानपर साखका महत्त्व बढ़ रहा था। फलतः ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी कि इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए अर्थशास्त्रका नये सिरेसे संगठन किया जाय तथा देश, काल और युगकी माँगके अनुकूल आर्थिक धारणाओंको व्यवस्थित रूप प्रदान किया जाय। साथ ही इन परस्पर-विरोधी दीखनेवाली विचारधाराओंमें सामंजस्य स्थापित किया जाय।

पुरानी शराबको नयी बोतलमें भरनेका यह काम किया मार्शलने।

जीवन-परिचय

नवपरम्परावादके सम्मानित अल्फ्रेड मार्शलका जन्म सन् १८४२ में लन्दनके एक मध्यवर्गीय परिवारमें हुआ। शिक्षा हुई मर्चेण्ट टेलरकी पाठशालामें और बादमें केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें। गया था गणित और भौतिकशास्त्र पढ़ने, पिताने छात्र-वृत्ति दिलाकर भरती करवा दिया नैतिक शास्त्रमें। ग्रीन मारिस

और सिजविकके पास उसने हीगेल और काण्टका दर्शन पढ़ा। एमांस और उनकी हर्बर्ट स्पेन्सर, बैंथम और मिल बेकन्स, वाकर, कूर्नो थ्यूने जैसे विचारकोंका भी उसने गहरा अध्ययन किया। शास्त्रीय पद्धतिके ही नहीं राष्ट्रवादी, ऐतिहासवादी, गणितीय, मनोवैज्ञानिक समाजवादी आदि विभिन्न धाराओंके विचारकोंके विचारोंका उसने गूढ़ एवं गम्भीर अध्ययन करके अपनी ज्ञान राशि बढ़ायी।

मार्शलकी कल्पना पादरी बनने की थी पर बन गया वह अर्थशास्त्री। सन् १८७७ से १८८१ तक वह ब्रिस्टलके युनिवर्सिटी कालेजका प्रधानाध्यापक रहा। सन् १८८३ से ८४ तक आक्सफोर्डमें और उसके बाद सन् १८८५ से १९०८ तक केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें अर्थशास्त्रका प्राध्यापक रहा। उसके बाद जीवनके अन्ततक केम्ब्रिजमें ही शोध-प्राध्यापकके रूपमें काम करता रहा। सन् १९२४ में उसका देहान्त हो गया।

मार्शलने अर्थशास्त्रके अध्ययन-अध्यापनमें अमूल्य योगदान किया। उसीके तत्त्वावधानमें 'केम्ब्रिज स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स' विश्वके अर्थशास्त्रीय अनुसधानका एक प्रसिद्ध केन्द्र बन सका। 'रायल इकॉनॉमिक सोसाइटी' और 'इकॉनॉमिक जर्नल' की भी उसने स्थापना की। अपने युगके महान् अर्थशास्त्रियोंमें उसकी गणना होती थी। वह कई शाही कमीशनोंका सदस्य रहा।

मार्शलकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'इकॉनॉमिक्स ऑफ इण्डस्ट्री' (सन् १८७९), 'प्रिंसिपल्स ऑफ इकॉनॉमिक्स' (सन् १८९०), 'इण्डस्ट्री एण्ड ट्रेड' (सन् १९१९) और 'मनी, क्रेडिट एण्ड कामर्स' (सन् १९२३)।

प्रमुख आर्थिक विचार

मार्शलके प्रमुख आर्थिक विचारोंको मुख्यत. तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है .

(१) अर्थशास्त्रकी परिभाषा,
(२) अर्थशास्त्रीय अध्ययनकी पद्धति और
(३) अर्थशास्त्रके सिद्धान्त।

१. अर्थशास्त्रकी परिभाषा

मार्शलने अर्थशास्त्रकी परिभाषा इन शब्दोंमे दी है

'अर्थशास्त्र जीवनके सामान्य व्यापारमें मानवमात्रका अध्ययन है। वह व्यक्तिगत एव सामाजिक कार्यके उस अशका परीक्षण करता है, जो कल्याणकी भौतिक आवश्यकताओंकी प्राप्ति तथा उपयोगसे घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध है।'[1]

अडम स्मिथने अर्थशास्त्रको 'सम्पत्तिका विज्ञान' बताया था। रस्किन और कार्लाइल जैसे विचारकोंने नैतिकतापर जोर देते हुए कहा था कि अर्थशास्त्र मानव मस्तिष्कमें गन्दी मनोवृत्ति भरनेवाला 'काला शास्त्र' है, 'कुबेरका विज्ञान' है। मार्शलने इन दोनों परस्पर-विरोधी धारणाओंके बीच सामजस्य स्थापित करनेकी चेष्टा की। मार्शलके अनुसार अर्थशास्त्रका क्षेत्र है—व्यक्तियोंके सामाजिक कार्योंका अध्ययन। पर सभी कार्योंका अध्ययन नहीं, केवल उन कार्योंका अध्ययन, जो जीवनकी भौतिक वस्तुओंके साथ सम्बद्ध हैं।

मार्शलकी धारणा है कि अर्थशास्त्रका लक्ष्य है मानवके उस सामाजिक व्यवहारका अध्ययन, जिसका मापदण्ड है पैसा। मानवके आर्थिक क्रिया-कलापोंका, पैसेके उपार्जन एव पैसेके व्ययका, अध्ययन अर्थशास्त्रके क्षेत्रमे आता है।

मार्शलके अध्ययनके मानव 'काल्पनिक मानव' नहीं हैं। वे जीते-जागते मानव हैं, जो विभिन्न इच्छाओं, भावनाओं और वासनाओंसे प्रेरित होते हैं, जिनमें सब

[1] मार्शल प्रिंसिपल्स ऑफ इकानामिक्स, पृ १।

बातें सदा एक-सी ही नहीं रहतीं। पहलेके अर्थशास्त्री जहाँ अपने आर्थिक सिद्धान्तोंको प्राकृतिक नियमोंकी भाँति, भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्रके नियमोंकी भाँति, निश्चित और अटल मानते थे, वह बात मार्शलमें नहीं है। वह कहता है कि अर्थशास्त्रमें गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्त जैसे सदा स्थिर रहनेवाले कोई सिद्धान्त नहीं हैं। इसके नियम प्राणिशास्त्रकी भाँति हैं, ज्वारीय नियमकी भाँति उनमें परिवर्तन होता रहता है।

मार्शल मानवतावादका भी समर्थक है। कहता है कि अर्थशास्त्रीको मानवतावादी पहले होना चाहिए, वैज्ञानिक उसके बाद। उसे यह बात कभी विस्मरण नहीं करनी चाहिए कि उसका कर्तव्य है, अपने युगकी सामाजिक समस्याओंके निराकरणमें योगदान करना।

स्पष्ट है कि मार्शल विवेकको विशिष्ट स्थान देते हुए मानवके आर्थिक क्रियाकलापोंके अध्ययनका पक्षपाती है।

२. अध्ययनकी पद्धति

मार्शलके पहलेतक अर्थशास्त्रके अध्ययनकी पद्धतिका विवाद विशेष रूपसे चलता रहा। स्मिथ और रिकार्डो निगमन-पद्धतिके समर्थक थे। सिसमाण्डीने अनुभव, इतिहास एवं परीक्षणको महत्त्व दिया। इतिहासवादी विचारकोंने अनुगमन पद्धतिपर जोर दिया। गणितीय शाखावाले गणितकी ओर झुके। आस्ट्रियन शाखाके मनोवैज्ञानिक विचारकोंने दोनोंका समर्थन किया।

मार्शलने निगमन एवं अनुगमन दोनों ही पद्धतियोंको अर्थशास्त्रके विकासके लिए आवश्यक माना। कहा : जिस प्रकार चलनेके लिए बायें पैरकी भी आवश्यकता है दाहिने पैरकी भी इसी प्रकार अर्थशास्त्रके अध्ययनके लिए दोनों ही पद्धतियोंका समयानुसार उपयोग करना चाहिए।

मार्शल कहता है कि आवश्यकतानुसार दोनों पद्धतियोंका उपयोग करनेसे ही शास्त्रीय चिन्तनका विकास सम्भव है। जहाँ पर्याप्त सामग्री आँकड़े सहज उपलब्ध हों, प्राकृतिक प्रभाव अधिक हो, घटनाओंमें यथारुचि परिवर्तन करके परिणामोंका परीक्षण सम्भव हो, वहाँ अनुगमन-पद्धति ठीक होगी, जहाँ अवलोकन एवं परीक्षणकी सम्भावना कम हो, वहाँ निगमन-पद्धति। इसके साथ साथ यह भी आवश्यक है कि निगमन-पद्धतिके निष्कर्षोंकी परीक्षा अनुगमन-पद्धति द्वारा की जाय और अनुगमन-पद्धतिके निष्कर्षोंकी परीक्षा निगमन-पद्धतिसे। दोनोंको परस्पर पूरक बनाकर अर्थशास्त्रका विकास करना ही सर्वथा उचित है।

मार्शलपर एक ओर दर्शनका प्रभाव था, दूसरी ओर भौतिकशास्त्रका। उसके चिन्तनमें डार्विनकी छाप है। उसकी समस्त विचारधारामें दो तत्त्व सदैव उसके नेत्रोंके

१ मार्शल : वही, पृष्ठ ४२।

समस्त है—एक है मनुष्य और दूसरा है भौतिक सम्पत्ति। वह दार्शनिक भी है, अर्थशास्त्री भी। आदर्शवादकी ओर भी उसका झुकाव है, वास्तविकताकी ओर भी। गणित भी उसका प्रिय विषय है और इतिहास भी। अत. उसकी विवेचनात्मक पद्धतिमें इन सभी भावोंकी झाँकी दिखाई पड़ती है।[1]

३. अर्थशास्त्रके सिद्धान्त

मार्शलने अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंका अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करके उन्हें व्यवस्थित रूप प्रदान करनेका प्रयत्न किया। उसने शास्त्रीय पद्धतिके सभी सिद्धान्तोंको सशोधित एव विकसित कर उन्हें उत्तम रूप दिया। उसकी 'प्रिंसिपल्स आफ इकॉनॉमिक्स' ऐसी रचना है, जो अर्थशास्त्रकी प्रामाणिक कृति मानी जाती है। इसमें अर्थशास्त्रके आधुनिक सिद्धान्तोंका विस्तृत विवेचन है।

मार्शलने अपनी यह रचना ६ खण्डोंमें विभाजित की है। प्रथम दो खण्डोंमें आरम्भिक सामग्री है। तृतीय खण्डमें उसने उपभोगका सिद्धान्त दिया है। चतुर्थ खण्डमें उसने उत्पादनकी समस्यापर विचार किया है, पचममें मूल्य सिद्धान्तपर। अन्तिम खण्डमें उसने राष्ट्रीय आयके वितरणपर अपने विचार प्रकट किये हैं।

उपभोग

शास्त्रीय पद्धतिके विचारकोंका अधिकतर ध्यान उत्पादन या वितरणकी समस्याओंतक सीमित था। गणितीय शाखाके विचारक जेवन्सने उपभोगको अपने क्षेत्रका प्रमुख विषय बनाया। मार्शलने जेवन्सकी भाँति इस बातपर जोर दिया कि उपभोगकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उसकी दृष्टिमें उपभोग ही सारे आर्थिक क्रिया कलापका केन्द्रबिन्दु है, अत. अर्थशास्त्रमें सबसे पहले उपभोगके अध्ययनपर ध्यान देना चाहिए।

मार्शलने इच्छाओंकी विशेषताएँ बतायीं, उनका वर्गीकरण किया और एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त दिया—उपभोक्ताके अतिरेकका।

उपभोक्ताका अतिरेक वह अन्तर है, जो किसी वस्तुसे उपलब्ध समग्र उपयोगिता एव उसपर व्यय किये गये द्रव्यकी कुल उपयोगिताके बीच होता है। पैसेकी भाषामें कहें, तो हम कह सकते हैं कि किसी वस्तुकी प्राप्तिके लिए उपभोक्ता जितना पैसा खर्च करनेको प्रस्तुत हो और वस्तुतः उसे जितना पैसा उसपर खर्च करना पड़े, दोनोंका अन्तर ही उपभोक्ताका अतिरेक है।

इसका सूत्र है . उपभोक्ताका अतिरेक = वस्तुकी कुल उपयोगिता—उसपर व्यय किये गये द्रव्यकी कुल उपयोगिता।

---

१ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ६४८–६५१।

क — की × मा = उपभोक्ताका अतिरेक।

क = द्रव्यकी वह मात्रा, जो उपभोक्ता वस्तुके न खरीदनेकी अपेक्षा उसपर व्यय करनेको प्रस्तुत रहता है।

की = वस्तुकी कीमत।

मा = वस्तुकी खरीदी हुई मात्रा।

मुझे घर पत्र भेजना आवश्यक है उसे भेजे बिना मैं रह नहीं सकता। उसके लिए पन्द्रह नये पैसेका लिफाफा लेना पड़े तो भी मैं पत्र भेजूँगा पर दस नये पैसेका अन्तर्देशीय पत्र भेजनेसे मेरा काम चल जाता है। तो, इन दोनों क्रियाओंके बीचका अन्तर (१५ − १ =) ५ नये पैसे उपभोक्ताका अतिरेक है।

सभ्यताके विकासके फलस्वरूप समाचारपत्र, दियासलाई, नमक तथा अनेक वस्तुएँ हमें अत्यधिक कम मूल्यपर उपलब्ध हो जाती हैं। उनसे प्राप्त होनेवाली संतुष्टि उनपर व्यय किये गये पैसेसे कहीं अधिक होती है।

प्रोफेसर निकल्सन तथा अन्य आलोचकोंने मार्शलके इस सिद्धान्तकी कड़ी आलोचना की। उन्होंने इसे काल्पनिक एवं अव्यावहारिक माना। कुछने कहा कि जैसे-जैसे कोई व्यक्ति अधिक व्यय करता जाता है, द्रव्यकी उपयोगितामें वृद्धि होती जाती है। उपभोक्ताका अतिरेक मापते समय मार्शलने इसपर नहीं सोचा। उपभोक्ताके अतिरेकका सही अनुमान लगानेके लिए वस्तुकी माँग-सारिणी चाहिए, पर पूरी सारिणी तो काल्पनिक ही होगी। साथ ही विभिन्न व्यक्तियोंके लिए उपयोगिता भिन्न-भिन्न होगी। अतः एक उपभोक्ताके अतिरेककी तुलना दूसरेसे करना ठीक नहीं। आलोचकोंका मुख्य जोर इस बातपर था कि उपभोक्ताका अतिरेक सही-सही नहीं मापा जा सकता।

ऐसी आलोचनाओंमें कुछ सार तो है ही फिर भी इस सिद्धान्तके कुछ लाभ स्पष्ट हैं। जैसे इसके आधारपर अर्थशास्त्री विभिन्न समयोंपर विभिन्न देशोंके विभिन्न वर्गोंकी आर्थिक स्थितिकी तुलना कर सकते हैं और पता लगा सकते हैं कि उनके रहन-सहनका स्तर उठ रहा है या गिर रहा है। सरकार इसके आधार पर अपनी कर-व्यवस्थाकी ऐसी पुनर्योजना कर सकती है कि उपभोक्ताओंके अतिरेकमें न्यूनतम कमी हो। एकाधिकारी इसके आधारपर अधिकतम एकाधिकार लाभ प्राप्त कर सकते हैं।[1]

उत्पादन

मिलकी भाँति मार्शल उत्पादनके तीन साधन मानता है—श्रम, भूमि और

---

[1] दयाशंकर दुबे : अर्थशास्त्रकी मूलाधार, पृष्ठ ५ ।

पूँजी। सघटन और उपक्रमका भी महत्त्व वह स्वीकार करता है। उसकी धारणा है कि भूमिमें सदा उत्पादन-ह्रास-नियम ही नहीं, उत्पादन वृद्धि नियम भी लागू हो सकता है। इस सम्बन्धमें उसने उत्पादन समता-सिद्धान्त भी खोज निकाला है।

मार्शल मेल्थसके जनसंख्याके सिद्धान्तको ग्राह्य नहीं मानता। उसका कहना है कि सभ्य देशोंमें जनसंख्या जिस गतिसे बढ़ती है, उसकी अपेक्षा उत्पादन अधिक तीव्रतासे बढ़ता है।

उत्पादनकी समस्याओंपर विचार करते हुए मार्शलने प्रतिनिधि संस्थाकी कल्पना की। यह संस्था सामान्य संस्था है और अन्य संस्थाओंके उतार-चढ़ावके मध्य इसकी स्थिति सामान्य ही बनी रहती है। वह कहता है कि इस संस्थाका जीवन सुदीर्घ होता है, इसे समुचित सफलता प्राप्त होती है, इसके व्यवस्थापकोंमें सामान्य योग्यता रहती है। इसकी उत्पादन, विक्रय और आर्थिक वातावरणकी स्थितियाँ सामान्य रहती हैं। हेनेके कथनानुसार मार्शलकी यह युक्ति दीर्घकाल और अल्पकालके बीच सामंजस्य स्थापित करनेके लिए जान पड़ती है।[1] मार्शलकी यह युक्ति उतनी सफल नहीं है, जितनी उसने कल्पना कर रखी थी।[2]

मूल्य और विनिमय

मार्शलके अर्थशास्त्रका मूलाधार है उसका मूल्यका सिद्धान्त। वह यह मानकर चलता है कि मानवके आर्थिक कार्य-कलापका केन्द्रबिन्दु है बाजार। उसने बाजार और कालका अध्ययन करके माँग और पूर्तिके आधारपर वस्तुओंके मूल्यका सिद्धान्त निकाला।

मार्शलके समक्ष एक ओर थी शास्त्रीय पद्धतिकी बाह्य मान्यता और दूसरी ओर थी आस्ट्रियन विचारकोंकी आन्तरिक मान्यता। एक मूल्यके श्रम-सिद्धान्तपर जोर देती थी, दूसरी उपयोगितापर। मार्शलने इनमें कालका तत्त्व जोड़कर मूल्यका वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया।

मार्शलकी धारणा है कि कालकी दृष्टिसे बाजारके चार भेद किये जा सकते हैं .

(१) दैनिक बाजार,
(२) अल्पकालीन बाजार,
(३) दीर्घकालीन बाजार और
(४) अति दीर्घकालीन बाजार।

मार्शल मानता है कि दैनिक बाजारमें पूर्ति पूर्णतः स्थिर रहती है। अल्पकालीन बाजारमें स्थानान्तरित करके उसमें किंचित् वृद्धि की जा सकती है। दीर्घ-

---

१ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ६५४।
२ एरिक रौल ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४००।

कालीन बाजारमें पूर्तिमें पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। अति-दीर्घकालीन बाजारमें नवीन आविष्कारोंका भरपूर प्रयोग करके पूर्तिको जितना चाहें, उतना बढ़ा सकते हैं।

मार्शलकी धारणा है कि वस्तुकी उत्पादन-लागत एवं उपयोगिता दोनोंका ही महत्त्व है। दोनों ही मिलकर मूल्यका निर्धारण करती हैं। दोनों ही कैंचीके दोनों फल हैं जो मिलकर ही कपड़ेको काटते हैं। उनमेंसे किसी एकपर ही बल देनेका कोई अर्थ नहीं होता। वह मानता है कि अल्पकालीन बाजारमें अधिकतर माँग ही मूल्यकी निर्धारिका होती है। जैसे छोटे स्थानमें सेनाकी टुकड़ी आ जाय तो दूधकी माँग—उसकी उपयोगिता बढ़नेसे ग्वाले दूधके मनमाने दाम वसूल करेंगे पर जैसे ही यह पता चले कि यह दस्ता कुछ अधिक समयतक यहाँ टिकेगा तो दूधकी पूर्ति बढ़ानेके और प्रयत्न होंगे। फलतः पूर्ति बढ़नेसे दूधके दाम गिरने लगेंगे। ऐसा भी समय आ सकता है कि माँगकी अपेक्षा पूर्ति बढ़ जाय तब ग्वाले इस बातकी चेष्टा करेंगे कि इस दूधको तो सस्ते भाव खपाना ही है, अन्यथा खराब हो जायगा। यहाँ पूर्ति ही मूल्यकी निर्धारिका हो जाती है। तो कभी माँग और कभी पूर्ति कभी उपयोगिता और कभी उत्पादन-लागत वस्तुके मूल्यका निर्धारण करती है।

मार्शल 'माँगके मूल्यों' और 'पूर्तिके मूल्यों' के बीच सन्तुलनको ही मूल्य-निर्धारणकी कसौटी मानता है। दोनोंकी वक्र रेखाएँ जहाँ मिलती हैं वहीं मूल्य होता है।

मार्शलकी धारणा है कि मूल्यके उतार-चढ़ावकी दो सीमाएँ होती हैं एक निम्न सीमा, दूसरी उच्च सीमा। न दोनोंके बीच ही कहींपर मूल्य स्थिर होगा। इन सीमाओंका अतिक्रमण नहीं होता। कारण अतिक्रमणका अर्थ है, एक पक्षकी हानि। मार्शलने अनेक कोष्ठकों द्वारा अपने मूल्य-सिद्धान्तका प्रतिपादन किया। उसने माँग और पूर्तिकी लोच तथा उसके नियमोंका विवेचन करते हुए क्लासीय पद्धति और जेवन्स आदिके उपयोगिताके सिद्धान्तके बीच सामंजस्य स्थापित किया।

वितरण

मार्शलने राष्ट्रीय लाभांशके सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए बताया कि वितरण और कुछ नहीं मूल्य-सिद्धान्तका ही विस्तार है। वह मानता है कि उत्पादनके विभिन्न साधन मिलकर राष्ट्रीय लाभांशकी सृष्टि करते हैं और उस लाभांशमेंसे ही प्रत्येक साधनको एक-एक अंशकी प्राप्ति होती है।

---

२ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक थॉट, पृष्ठ ३८०-३८१।

मार्शलने भाटक, मजूरी, सूदकी दर एवं मुनाफेके कई नियम बनाये हैं।

भाटकके सम्बन्धमें रिकार्डोकी ही भाँति मार्शलकी भी धारणा है कि उत्पत्तिका वह भाग, जिसपर भूमि-पति दावा करता है, 'भाटक' है। मार्शलने भाटकके सिद्धान्तका विकास करते हुए सुविधा-भेद या प्रत्यायान्तरकी धारणाका अधिक व्यापक उपयोग किया है। रिकार्डोने जहाँ इसका उपयोग केवल भूमिके सम्बन्धमें किया है, मार्शलने अन्य क्षेत्रोंमें भी इसका प्रयोग किया है।

मार्शलने 'आभास भाटक' की नयी धारणा प्रस्तुत की है। उसके मतसे 'आभास भाटक' वह अतिरिक्त आय है, जो कि भूमिके अतिरिक्त उत्पादनके अन्य साधनों द्वारा उपलब्ध होती है। यह मानवके प्रयत्नोंसे निर्मित मशीनों तथा अन्य यन्त्रोंसे होती है। माँग बढ़ जानेसे जब पूर्ति माँगके अनुरूप बढ़ायी नहीं जा सकती है, तब यह अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

उदाहरणस्वरूप, युद्धकालमें बाहरसे वस्त्रका आयात बन्द हो जानेपर व्यापारी वस्त्रका दाम बढ़ा देते हैं और उसपर अतिरिक्त लाभ उठाते हैं। मकानोंकी कमी होनेसे किराया बढ़ जाता है। यह अतिरिक्त आय 'आभास भाटक' है। या जब कोई नया आविष्कार होता है, तो व्यापारी उससे अतिरिक्त लाभ उठाते हैं। कुछ समय बाद स्थिति सुधरनेपर यह लाभ कम हो जाता है।

मार्शल कहता है कि चल पूँजीपर प्राप्त होनेवाला ब्याज भी आभास भाटक ही है, वह पूँजीके पुराने विनियोजनोंपर प्राप्त होता है।[1] वह विशेष योग्यताके कारण होनेवाली अतिरिक्त आयको भी 'आभास भाटक' मानता है।

मजूरीके सम्बन्धमें मार्शलने कई सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया, परन्तु वह इस विषयमें पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। अन्तमें वह माँग और पूर्तिको ही मजूरी-निर्धारणका मापदण्ड मानता है।

मार्शलने माँग और पूर्तिका सिद्धान्त ब्याजकी दरपर भी लागू करके पूँजीकी उत्पादनशीलता एवं आत्मत्यागके सिद्धान्तके बीच सामञ्जस्य लानेकी चेष्टा की।

यही पद्धति मुनाफा या लाभके क्षेत्रमें भी मार्शलने व्यवहृत की। वह कहता है कि व्यवस्थापकोंकी माँग और पूर्तिके अनुसार ही मुनाफेकी दर निश्चित होगी। उसने जोखिमके सिद्धान्तको अस्वीकार किया।

मूल्यांकन

मार्शलने यद्यपि विभिन्न विरोधी विचारधाराओंमें सामञ्जस्य स्थापित करनेका प्रयत्न किया, परन्तु वह ऐसा मानता नहीं। कहता है कि 'मेरा लक्ष्य सामञ्जस्य स्थापित करना नहीं, मेरा लक्ष्य है—सत्यका शोधन।' चैपमैन कहता

---

१ मार्शल : प्रिंसिपल्स ऑफ इकॉनॉमिक्स १९३९, पृष्ठ ४१२।

है कि 'मार्शल पहला अर्थशास्त्री है जिसने अर्थशास्त्रकी उपयोगिता स्थापित की।' हेने कहता है कि 'रिकार्डोके बाद महानतम अर्थशास्त्री है मार्शल।'[1]

मार्शलने शास्त्रीय पद्धतिको आधार मानकर अपनी सारी विचारधाराका महल खड़ा किया। इसलिए उसकी विचारधाराको 'नवपरम्परावाद' का नाम प्राप्त हुआ है। इच्छाओंका वर्गीकरण, उपभोक्ताका अतिरेक, उत्पादन-ह्रासका नियम, प्रतिनिधि संस्था, मूल्य निर्धारणमें काल-तत्त्वका प्रवेश, सीमान्त उपयोगिता सीमान्त उत्पादनकी धारणा, माँग और पूर्तिकी लोच, संयुक्त माँग और संयुक्त पूर्ति आदिके सम्बन्धमें मार्शलके विचार नवपरम्परावादकी विशेषताएँ हैं।

सातत्यका सिद्धान्त मार्शलकी विशिष्टता है। वह मानता है कि अर्थशास्त्र सतत विकासशील है। पुराने विचारोंकी आधारशिलापर ही आधुनिक विचारों का विकास होता है। अर्थशास्त्रमें काल-तत्त्वका प्रवेश मार्शलकी अनूठी देन है।

कैम्ब्रिज स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स की स्थापना द्वारा मार्शलने अर्थशास्त्रके विकासमें जो कल्पनातीत योगदान किया है, उसे कौन अस्वीकार कर सकता है?

परवर्ती विचारक

फ्रांसिस वाई एजवर्थ (सन् १८४५–१९२६) आर्थर सेसिल पिगू (सन् १८७७) पी एच विकस्टीड (सन् १८४४–१९२७) ए डब्ल्यू फ्लक्स (सन् १८६७–१९४२) एस जे चैपमैन श्रीमती रॉबिन्सन पी सार्जेण्ट डी एच रॉबर्टसन जे एम केन्स हैरोड आदि अनेक शिष्य मार्शलकी छत्रछायामें विकसित हुए हैं। इन्होंने मार्शलके सिद्धान्तोंको परिष्कृत किया है।

मार्शल पूर्ण प्रतिस्पर्धाका पक्षपाती था। सन् १९२ की आर्थिक दुरवस्थाने मार्शलके कुछ अनुयायियोंको यह विचारधारा त्यागनेके लिए विवश किया। श्रीमती रॉबिन्सन, ई एच चेम्बरलेन आदिने अपूर्ण प्रतिस्पर्धाकी धारणा दी।

पिगू, हाब्सन आदिने मार्शलकी कल्याणकारी दृष्टिका विशेष रूपसे विकास किया। हाट्रे आदिने आर्थिक प्रवृत्तिके नैतिक पक्षपर बल दिया। मार्शलके प्रिय शिष्य पिगूकी 'इकानामिक्स आफ वेलफेयर' (सन् १९२) मार्शलकी 'प्रिंसिपल्स' के बाद नवपरम्परावादकी सबसे प्रमुख रचना मानी जाती है। रॉबर्टसन, केन्स, हैरोड आदिने आधुनिक अर्थशास्त्रके सिद्धान्तका विकास किया। ● ● ●

---

१ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनामिक थॉट, पृष्ठ ६८६।

सन्तुलनात्मक विचारधारा

विक्सेल

अर्थशास्त्रमें इधर थोड़े दिनोंसे एक नयी विचारधाराका उदय हुआ है। उसका नाम है—सन्तुलनात्मक विचारधारा (General Equilibrium Economics)।

इस विचारधाराका मूल आधार है यह भावना कि किसी एक वस्तुका मूल्य अथवा उसकी कीमतका, जबतक कि वह एक या अकेली है तबतक, निर्द्धारण नहीं हो सकता। मूल्य अन्य वस्तुपर निर्भर करता है। वह पारस्परिकतापर आश्रित है। एक वस्तुसे अन्य वस्तुकी माँग होती है। एककी स्वीकृतिका अर्थ है अन्यकी अस्वीकृति। दोनों बातें साथ साथ चलती हैं, समानान्तरसे चलती हैं।

अभीतकके अर्थशास्त्री वैयक्तिक मूल्य-प्रणालीको आधार मानकर चलते थे। सन्तुलनात्मक विचारधारावालोंने कहा कि वैयक्तिक मूल्योंका निर्द्धारण सम्भव

नहीं। कारण, सीमान्त उपयोगिताकी माप असम्भव है। वे मानते हैं कि वैयक्तिकके स्थानपर आर्थिक समूहोंका ही अध्ययन सम्भव है।

इन विचारकोंने बुद्धिसम्मत पुनाप वस्तुओंकी सबाकिता, द्रव्यके मूल्यमें स्थिरता एवं बाजारकी अन्य स्थिरताओंके आधारपर अपना वैचारिक महल खड़ा किया। समीकरणोंके द्वारा अपनी तर्कशक्ती उपस्थित की और इस बातपर जोर दिया कि सरकारी व्यय अथवा अधिकोष दरके निर्धारण द्वारा वस्तुओंके मूल्यपर सफलतापूर्वक नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

इस विचारधाराका जन्मदाता है—विक्सेल। कुछ लोग इसे स्वीडेनकी विचारधारा कहते हैं कुछ लोग स्टाकहोमकी। विक्सेलके अनुयायी हैं—ओहलिन, लिंडहल और मिर्डाल। इन्होंने सन् १९२ से सन् १९४ तक अनेक महत्त्वपूर्ण शोधें कीं। इंग्लैण्डमें राबर्टसन और हिक्स जैसे विचारकोंने विक्सेलके विचारोंसे प्रेरणा ली।

विक्सेलने जिस विचारधाराका प्रतिपादन किया उसके द्वारा आर्थिक संकट और मूल्योंके भारी उतार-चढ़ावपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। दो महायुद्धोंके बीच वस्तुओंके मूल्योंमें भयंकर उतार चढ़ावको लेकर जो वाद विवाद चला, उसमें विक्सेलके विचारोंका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। द्रव्यकी बचत और पूँजीके विनियोगके सम्बन्धमें उसकी विचारधाराका विशेष महत्त्व है।[1]

जीवन-परिचय

नट विक्सेल (सन् १८५१–१९२६) का जन्म स्वीडेनमें और शिक्षा जर्मनी आस्ट्रिया और इंग्लैण्डमें हुआ। उसने दर्शन और गणितका विशेष रूपसे अध्ययन किया। सन् १९ से १९१६ तक वह स्वीडेनके लन्दन विश्व विद्यालयमें अध्यापक रहा। वहीं रहकर उसने अपनी महत्त्वपूर्ण शोधें कीं।

विक्सेलकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'वैल्यू, कैपिटल एण्ड रेण्ट (सन् १८९३), स्टडीज इन फिनान्स थ्योरी' (सन् १८९८) और लेक्चर्स ऑन पोलिटिकल इकानामी (दो खण्ड सन् १९०१–१९ ६)।

विक्सेलपर अर्थशास्त्रकी प्राचीन विचारधाराका प्रभाव तो था ही आस्ट्रियाके बम-बावर्क तथा अन्य विचारकोंका भी विशेष प्रभाव था। सीमान्त उपयोगिताके सिद्धान्तका उसने वालरसके विचारोंसे मेल बैठाकर अपने सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेकी चेष्टा की। मार्शल, विकस्टेड, एजवर्थ आदि विचारकोंने भी उसे प्रभावित किया था।

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक डॉक्ट्रिन्स, पृष्ठ ५५८।

प्रमुख आर्थिक विचार

विक्सेलके प्रमुख आर्थिक विचारोंको तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है :

(१) पूँजी और व्याजका सिद्धान्त,
(२) व्याज और कीमतोंका सिद्धान्त और
(३) बचत और विनियोगका सिद्धान्त ।

१ पूँजी और व्याज

विक्सेल यह मानता है कि गत वर्षका बचाया हुआ श्रम और बचायी हुई भूमि मिलकर 'पूँजी' बनती है । उसके मतसे चालू वर्षके साधनोंमेंसे कुछ बचत करनी आवश्यक है । वही आगामी वर्षके लिए पूँजीका काम करेगी ।

सीमान्त उत्पत्तिकी सहायतासे विक्सेल मूल्य एवं वितरणका सामंजस्य स्थापित करना चाहता है ।[१] वह कहता है कि प्रतीक्षाकी सीमान्त उत्पत्ति ही व्याज है । संचित श्रम एवं भूमिकी उत्पत्ति और चालू श्रम एवं भूमिके उत्पत्तिके बीच जो अन्तर होता है, वही 'व्याज' है। वह यह मानकर चलता है कि ये दोनों कभी बराबर नहीं होंगे, इसलिए व्याजकी दर कभी भी शून्य नहीं हो सकती ।

२ व्याज और कीमतें

विक्सेलकी दृष्टिसे व्याजकी दो दरें होती हैं :

(१) प्राकृतिक दर और
(२) बाजार दर ।

प्राकृतिक दर वह दर है, जो बचत और विनियोगको समान करती है । वह पूँजीकी सीमान्त उत्पत्तिके बराबर रहती है । यह दर स्थिर रहती है ।

बाजार दर वह दर है, जो बाजारमें चालू रहती है। द्रव्यकी माँग और पूर्तिके हिसाबसे इसका निर्णय होता है।

विक्सेल इन दोनों दरोंका पारस्परिक सम्बन्ध बताते हुए अपना कीमतोंका सिद्धान्त उपस्थित करता है । उसका कहना है कि प्राकृतिक दर और बाजार-दर का परस्पर सम्बन्ध होता है । बाजार दर यदि प्राकृतिक दरसे नीची हो, तो कम बचत की जायगी और उपभोगपर अधिक व्यय होगा । इसके कारण विनियोगकी माँग बढ़ेगी और वस्तुओंकी कीमत चढ़ने लगेगी। इसके विरुद्ध यदि बाजार-दर

---

१ हेने हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ६६४ ।

प्राकृतिक दरसे ऊँची होगी, तो उसके फलस्वरूप उत्पादकोंको घाटा होगा और वस्तुओंकी कीमतें गिर जायेंगी।

विक्सेल कहता है कि यह आवश्यक नहीं कि समृद्ध देशमें ऊँची कीमतें हों ही।[1]

विक्सेलका कहना है कि अधिकोष दरपर नियंत्रण करके वस्तुओंकी कीमतोंपर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

३ बचत और विनियोग

विक्सेलकी धारणा है कि कीमतें गिरनेपर लोग कम खर्चमें ही पहलेके समान उपभोग कर सकते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वस्तुओंकी माँग शायद बढ़ेगी, पर ऐसा होता नहीं। कीमतें गिरनेसे कुछ लोग पैसा बचा पाते हैं कुछ लोग नहीं। कुछ की आय कम हो जाती है। वे कम उपभोग कर पाते हैं। फलतः वस्तुओंकी कुल माँग जैसी-की-तैसी स्थिर ही रह जाती है। उसमें कोई विशेष वृद्धि नहीं हो पाती।

बचत करनेवाले और विनियोग करनेवाले लोग भिन्न भिन्न होते हैं। अतः यह आवश्यक नहीं कि सारी बचतका विनियोग हो ही। एकका व्यय दूसरेकी आय होता है। यदि विनियोग न हो, तो वस्तुओंकी माँग कम होगी और माँग कम होनेका प्रभाव यह होगा कि वस्तुओंकी कीमत गिर जायगी।

विक्सेलने यह माना है कि बैंक-दरपर नियंत्रण करके, उसे घटा-बढ़ाकर विनियोगको घटाया-बढ़ाया जा सकता है वस्तुओंका उत्पादन घटाया-बढ़ाया जा सकता है और वस्तुओंकी कीमतें भी घटायी-बढ़ायी जा सकती हैं।

बैंक-दरकी महत्ता बताकर विक्सेलने सबसे पहले अर्थशास्त्रियोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। आज केन्द्रीय बैंक इस साधनके सहारे मूल्य-नियंत्रण करनेका प्रयत्न करते हैं।

शिष्य-परम्परा

विक्सेलके विचारोंको उसकी शिष्य-मण्डलीने आगे बढ़ाया। गुन्नार मिर्डालने अपनी पुस्तक 'मानिटरी एण्ड दि प्राइस लेवेल' (सन् १९२७) में इस बातपर जोर दिया है कि वस्तुओंकी कीमत निश्चित करनेमें अग्रिमिळ्याका कितना हाथ रहता है। ई० लिंडहालने 'दि मीन्स ऑफ मोनेटरी पालिसी' (सन् १९१) और बी० ओहलिनने 'रेसेशन ऑफ मन एम्प्लायमेण्ट' (सन् १९३५) पुस्तकोंमें विक्सेलके विचारोंको प्रकाश किया। इन शिष्योंकी विशेषता यह है कि

---

[1] जीड और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ८६४।

इन लोगोंने गुरुके कुछ मूलभूत सिद्धान्तोंसे अपना मतभेद प्रदर्शित किया है।[1] हिलेग्यर और लियोनटिफने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारपर अपने विचार प्रकट किये हैं।

सन्तुलनात्मक विचारधाराके काल्तत्त्वका केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके प्राध्यापक डॉ० एच० रावर्टसनपर विशेष प्रभाव पड़ा। पर विक्सेल जहाँ सतुलनात्मक स्थितिको स्थिर मानता है, राबर्टसन उसे अस्थिर मानता है। उसकी रचना 'बैंकिंग पालिसी एण्ड दि प्राइस लेवेल' (सन् १९३२) अपने विषयकी प्रामाणिक रचना मानी जाती है।[2] लंदनके स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्सके जे० आर० हिक्सने 'वैल्यू एण्ड कैपिटल' (सन् १९३९) में सन्तुलनात्मक सिद्धान्तका विशद वर्णन किया है।[3]

● ● ●

१ जीद और रिस्ट वही, पृष्ठ ७२५।
२ एरिक रौल ए हिस्ट्री आफ इकॉनॉ
३ एरिक रौल वही, पृष्ठ ४६४।

अमरीकी विचारधारा

तीन धाराएँ

अमेरिका अत्यन्त समृद्धिशाली देश है। उसकी समृद्धि आधुनिक जगत्की दृष्टि चकाचौंध करती है। नया देश, साधनोंका बाहुल्य और आधुनिक आविष्कार—तीनोंने मिलकर उसकी समृद्धिमें चार चाँद लगा दिये हैं। यह बात सही है कि वैभवके कारण ही वाणिज्य भी वहाँ पनप रहा है।

पूर्वपीठिका

अमेरिकामें राष्ट्रीय पद्धतिका किस प्रकार विकास हुआ, उसकी चर्चा की जा चुकी है। पर वहाँ अर्थशास्त्रका विकास मुख्यतः बीसवीं शताब्दीमें ही हुआ।

उसके पूर्व अमेरिकाके आर्थिक विचारकोंके तीन वर्ग माने जाते हैं।

आरम्भिक कालमें हेनरी केरे ही वहाँका प्रमुख विचारक था। उस समय संरक्षण एवं आशावादपर ही वहाँ सबसे अधिक जोर था।

मध्यवर्ती कालमें आर्थिक समस्याओंकी ओर लोगोंका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ। शास्त्रीय पद्धतिका ही प्राधान्य रहा। इस कालके प्रमुख विचारक थे—आमसा वाकर, जान वैस्कम और ए० एल० पेरी।

तीसरा काल है सन् १८८५ के लगभगका। इसमें उद्योगोंका विस्तार, रेलों, कारपोरेशनोंकी समस्याएँ—हड़ताल और श्रम-आन्दोलनोंकी भरमार रही। सम्पन्नता और दरिद्रता, दोनोंकी साथ साथ वृद्धिने हेनरी जार्जका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और उसने दरिद्रताकी समस्याके समाधानके लिए भूमिके समाजीकरण और एक-कर प्रणालीका जो तीव्र आन्दोलन छेड़ा, उसकी प्रतिध्वनि आज भी सुनाई पड़ती है।[1]

तीन आर्थिक धाराएँ

शीघ्र ही अमेरिकामें जर्मनीकी इतिहासवादी विचारधारा और आस्ट्रियाकी मनोवैज्ञानिक विचारधारा पनपने लगी। प्रोफेसर क्लार्क भी लगभग ऐसे ही विचारोंका प्रतिपादन कर रहे थे। तभी वहाँ 'अमेरिकन इकॉनॉमिक असोसियेशन' की स्थापना हुई। एले, अदम्स, जेम्स, सैलिगमैन जैसे विचारकोंने इस संस्थाको परिपुष्ट किया। इस संस्थाने अर्थशास्त्रीय विचारधाराके अध्ययन, मनन, चिन्तनका मार्ग प्रशस्त किया। आगे चलकर अमरीकी विचारधाराने तीन धाराएँ पकड़ीं

(१) परम्परावादी धारा (Traditional Economics),

(२) संस्थावादी धारा (Institutionalism) और

(३) समाज कल्याणवादी धारा (New Welfare School)।

परम्परावादी धाराके दो भाग हैं—एक विषयगत, दूसरा बाह्य। क्लार्क, पैटन, फिशर और फेटर पहले भागमें आते हैं। उनपर आस्ट्रियन विचारकोंका विशेष प्रभाव है। दूसरे भागमें आते हैं टासिग और कारवर। उनपर मिल और मार्शलका प्रभाव है। प्रोफेसर एले पुरानी इतिहासवादी विचारधाराके विचारक माने जा सकते हैं। सैलिगमैन और डेवनपोर्टके विचार भी इनसे मिलते-जुलते हैं।

संस्थावादी धाराके विचारकोंमें भी दो भाग हैं—एक पुरानी पीढ़ीवाले, दूसरे नयी पीढ़ीवाले। वेब्लेन और मिचेल पुरानी पीढ़ीवाले हैं, हैमिल्टन, टगवैल, एटकिन्स, बोल्क आदि नयी पीढ़ीवाले।

समाज कल्याणवादी धाराके विचारकोंमें अग्रगण्य हैं—लर्नर, लाज, शुम्पटर, चर्मसन आदि।

---

[1] हने हिस्ट्री आफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ७१६-७१८।

इनके अतिरिक्त नाइट, वीनर, हैनसन, डगलस, कुस्न केल्नर, सेमुअलसन आदि अनेक विचारक स्वतंत्र रूपसे अपने विचारोंका प्रतिपादन कर रहे हैं।

यहाँ हम कुछ प्रमुख विचारकोंपर संक्षेपमें विचार करेंगे।

परम्परावादी धारा

क्लार्क

परम्परावादी धाराका सबसे प्रभावशाली व्यक्ति है—जानबेट्स क्लार्क (सन् १८४७–१९३८)। यह सन् १८९५ से १९२३ तक कोलम्बिया विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक रहा। इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'दि फिलासॉफी ऑफ वेल्थ' (सन् १८८५) 'दि डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ वेल्थ' (सन् १८९) और एसेन्शल्स ऑफ इकॉनामिक थ्योरी (सन् १ ७)। क्लार्कपर नीस, मार्शल और हेनरी जार्जका प्रभाव था।

क्लार्कने अर्थव्यवस्थाके स्थिर और अस्थिर दो स्वरूप बताये। वह मानता है कि जनसंख्या, पूँजी, उत्पादनके प्रकार, उद्योगोंका स्वरूप और उपभोक्ताओंकी आवश्यकताएँ जब ज्योंकी त्यों रहती हैं तो आर्थिक स्थिति स्थिर रहती है। इस स्थैतिक समाजमें निश्चिन्तता रहती है उत्पादनके साधनोंको समुचित अंश प्राप्त होता है और लाभ शून्य रहता है। पर जब आर्थिक स्थिति अस्थिर रहती है तब लाभका जन्म होता है। स्थितिकी गतिशीलतासे श्रमिकोंको लाभ होता है।

क्लार्क सीमान्त उत्पादकताके अपने सिद्धान्तके लिए प्रख्यात है।

क्लार्क पूर्ण प्रतिस्पर्धाका समर्थक था। वह मानता था कि पूर्ण प्रतिस्पर्धा होनेपर ही उत्पादनके सभी साधनोंको समुचित अंश प्राप्त होता है और किसीका शोषण नहीं होता।

अमरीकाके प्रमुख अर्थशास्त्रियोंमें क्लार्ककी गणना की जाती है। यद्यपि उसके स्थिर स्थितिके सिद्धान्त आदिकी तीव्र आलोचना हुई है फिर भी अमरीकी विचारधारापर उसका प्रभाव अत्यधिक है।[1]

पैटन

साइमन एन पैटन (सन् १८५२–१९२२) अमरीकाका अत्यन्त मौलिक अर्थशास्त्री माना जाता है। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'प्रिमिसेज ऑफ पोलिटिकल इकानॉमी' (सन् १८८५), 'दि कन्जम्पशन ऑफ वेल्थ' (सन् १८८) 'डिनैमिक इकॉनामिक्स' (सन् १८९२) और 'दि थ्योरी ऑफ प्रास्पेरिटी' (सन् १ २)।

---

१. हेने : वही, पृष्ठ ७०९–७१०।

पैटनने क्लार्कका स्थैतिक सिद्धान्त अस्वीकार करते हुए उसे 'कल्पनाकी उड़ान' बताया। वह परम आशावादी था। उसने उपभोगके महत्त्वका विकास किया। समाज-हितके लिए उसने सरकारी हस्तक्षेपका विशेष रूपसे समर्थन किया।[1]

फिशर

इर्विंग फिशर (सन् १८६७–१९४७) प्रसिद्ध गणितज्ञ है और समयवादीका शिष्य। उसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'दि नेचर ऑफ कैपिटल एण्ड इनकम' (सन् १९०६), 'दि रेट ऑफ इण्टरेस्ट' (१९०७) और 'दि थ्योरी ऑफ इण्टरेस्ट' (सन् १९३०)।

फिशरके दो सिद्धान्त विशेष रूपसे प्रख्यात हैं—समयका अधिमान-सिद्धान्त और द्रव्यका परिमाण सिद्धान्त।

फिशरका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति भविष्यके उपभोगपर वर्तमानके उपभोगको प्राधान्य देता है। यदि उसे इससे विरत करना है, तो उसे कुछ लोभ देना आवश्यक है। वर्तमानमें उपभोगके लिए मानवका अधैर्य कई बातोंपर निर्भर करता है। जैसे, आयकी मात्रा, आयका समयानुसार वितरण, भविष्यमें आयकी निश्चितता, मनुष्यका स्वभाव, उसकी दूरदर्शिता, उसका आत्मनियन्त्रण आदि। मनुष्यकी आय कम होती है, तो भविष्यके लिए बचानेकी वह लेशमात्र भी उत्सुक नहीं रहता। अधिक रहती है, तो वह कुछ बचाता है और वर्तमानमें ही उसका उपभोग करनेको वह उतावला नहीं रहता। समयके साथ साथ आय घटती है, तो बचानेकी प्रवृत्ति होती है, अन्यथा नहीं। उसके स्वभाव आदिपर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। फिशर कहता है कि ब्याजकी दर उधार देनेवालोंके समय-अभिधानपर निर्भर करती है।[2]

फिशरके द्रव्यके परिमाण-सिद्धान्तमें मुख्य बात यह है कि द्रव्यकी मात्रामें और द्रव्यके मूल्यमें प्रतिकूल सम्बन्ध रहता है। जब परिचलनमें द्रव्यकी मात्रा बढ़ जाती है, तो द्रव्यका मूल्य घट जाता है, पर जब द्रव्यकी मात्रा घट जाती है, तो द्रव्यका मूल्य बढ़ जाता है। यह नियम लागू होनेकी अनिवार्य शर्त है—'अन्य बातें समान रहने पर'। फिशरका परिमाण-सूत्र यों है—

$$प = \frac{म क + म' व'}{८}$$

प = कीमतोंका स्तर या $\frac{१}{प}$ = द्रव्यका मूल्य

---

१ हेने : वही, पृष्ठ ७२७-७२८।

२ एरिक रौल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट्स, पृष्ठ ४३५।

टासिगका लाभका मजूरी सिद्धान्त और सीमान्त उत्पत्तिकी छूटका मजूरी सिद्धान्त प्रसिद्ध है। टासिग मानता है कि लाभ एक प्रकारसे साहसोद्यमीकी मजूरी है, जो उसे उसकी विशेष योग्यता एवं बुद्धिमत्ताके फलस्वरूप प्राप्त होती है। उसकी दृष्टिसे स्वतंत्र व्यवस्थापक और वेतनभोगी व्यवस्थापकमें कोई अन्तर नहीं होता।[1] मजूरीके सम्बन्धमें टासिगकी धारणा है कि चूँकि उत्पादित वस्तुकी बिक्रीके पहले ही मजदूरको मजूरी दे दी जाती है, इसलिए उत्पादक सीमान्त उत्पत्तिसे कुछ कम मजूरी देता है। वह उसमें थोड़ासा बट्टा काट लेता है।

कारवर

टी० एन० कारवरकी रचना 'डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ वेल्थ' (सन् १९०४) विशेष रूपसे प्रख्यात है। केवल मनोवैज्ञानिक प्रतिपादनका उसने विरोध किया। उसका कहना था कि आर्थिक वातावरणके महत्त्वको भुलाकर एकमात्र मनोवैज्ञानिक पक्षपर जोर देना ठीक नहीं।

आस्ट्रियन विचारधाराके आलोचन एवं आह्लासी प्रत्याय नियमके पुनर्व्यंजनके कारण कारवरकी प्रसिद्धि है। वह भूमि, श्रम और पूँजीके क्षेत्रमें ह्रासमान उत्पत्ति नियम लागू करनेके पक्षमें है, उपक्रमीके पक्षम नहीं।[2]

एले

रिचर्ड टी० एले (सन् १८५४–१९४३) का अमेरिकाके अर्थशास्त्रियोंपर विशेष प्रभाव है और उसने अमरीकी विचारधाराको मोड़नेमें महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

एलेकी आर्थिक धारणाओंकी परिभाषाएँ और उसका क्षेत्र निर्धारण प्रसिद्ध है। यों उसकी आर्थिक धारणाएँ टासिग और कारवरसे मिलती-जुलती सी हैं, परन्तु उसका दर्शन उनसे सर्वथा भिन्न है।[3]

एलेने सामाजिक संस्थाओंके उद्‌भवके महत्त्वपर विशेष जोर दिया और उसी दृष्टिसे उसने व्यक्तिगत सम्पत्ति आदिकी समस्याओंपर विचार किया। उसके समकालीन विचारक ऐसा मानने लगे थे कि एले समाजवादी हो गया था, परन्तु बादमें उनकी यह धारणा भ्रामक सिद्ध हुई।

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ६८१।
२ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ७३१।
३ हेने : वही, पृष्ठ ७३२।

इनके अतिरिक्त नाइट, वीनर, हैनसन, टासिग, मुरचेल, फेल्नर, सैमुअल्सन आदि अनेक विचारक स्वतन्त्र रूपसे अपने विचारोंका प्रतिपादन कर रहे हैं।

यहाँ हम कुछ प्रमुख विचारकोंपर संक्षेपमें विचार करेंगे।

परम्परावादी धारा

क्लार्क

परम्परावादी धाराका सबसे प्रभावशाली व्यक्ति है—जानबेट्स क्लार्क (सन् १८४७-१९३८)। यह सन् १८९५ से १९२३ तक कोलम्बिया विश्व विद्यालयमें प्राध्यापक रहा। इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'फिलासफी ऑफ वेल्थ' (सन् १८८६) 'दि डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ वेल्थ' (सन् १८९९) और 'एसेन्शल्स ऑफ इकॉनामिक थ्योरी' (सन् १९०७)। क्लार्कपर नीस्ट बास्तेपा और हेनरी जार्जका प्रभाव था।

क्लार्कने अर्थव्यवस्थाके स्थिर और अस्थिर दो स्वरूप बताये। वह मानता है कि जनसंख्या, पूँजी, उत्पादनके प्रकार, उद्योगोंका स्वरूप और उपभोक्ताओंकी आवश्यकताएँ जब ज्योंकी त्यों रहती हैं, तो आर्थिक स्थिति स्थिर रहती है। इस स्थैतिक समाजमें निश्चिन्तता रहती है, उत्पादनके साधनोंको समुचित अंश प्राप्त होता है और लाभ शून्य रहता है। पर जब आर्थिक स्थिति अस्थिर रहती है तो लाभका जन्म होता है। स्थितिकी गतिशीलतासे श्रमिकोंको लाभ होता है।

क्लार्क सीमान्त उत्पादकताके अपने सिद्धान्तके लिए प्रख्यात है।

क्लार्क पूर्ण प्रतिस्पर्धाका समर्थक था। वह मानता था कि पूर्ण प्रतिस्पर्धा होने पर ही उत्पादनके सभी साधनोंको समुचित अंश प्राप्त होता है और किसीका शोषण नहीं होता।

अमरीकाके प्रमुख अर्थशास्त्रियोंमें क्लार्ककी गणना की जाती है। यद्यपि उसके स्थिर स्थितिके सिद्धान्त आदिकी तीव्र आलोचना हुई है फिर भी अमरीकी विचारधारापर उसका प्रभाव अत्यधिक है।[1]

पैटन

साइमन एन० पैटन (सन् १८५२-१९२२) अमरीकाका अत्यन्त मौलिक अर्थशास्त्री माना जाता है। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'प्रिंसिपल्स ऑफ पालिटिकल इकॉनामी' (सन् १८९१) 'दि कन्जम्पशन ऑफ वेल्थ' (सन् १८८९) 'डिनैमिक इकॉनामिक्स' (सन् १८९२) और 'दि थ्योरी ऑफ प्रास्पैरिटी' (सन् १९०२)।

---

[1] हेने : वही पृष्ठ ५७८-८१।

पैटनने मस्तिष्कके स्थैतिक सिद्धान्त अस्वीकार करते हुए उसे 'कल्पनाकी उड़ान' बताया। वह परम आशावादी था। उसने उपभोगके महत्त्वका विकास किया। समाज हितके लिए उसने सरकारी हस्तक्षेपका विशेष रूपसे समर्थन किया।[1]

फिशर

इर्विंग फिशर (सन् १८६७–१९४७) प्रसिद्ध गणितज्ञ है और बमबवार्कका शिष्य। उसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'दि नेचर ऑफ कैपिटल एण्ड इनकम' (सन् १९०६), 'दि रेट ऑफ इण्टरेस्ट' (१९०७) और 'दि थ्योरी ऑफ इण्टरेस्ट' (सन् १९३०)।

फिशरके दो सिद्धान्त विशेष रूपसे प्रख्यात हैं—समयका अधिमान-सिद्धान्त और द्रव्यका परिमाण सिद्धान्त।

फिशरका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति भविष्यके उपभोगपर वर्तमानके उपभोग-को प्राधान्य देता है। यदि उसे इससे विरत करना है, तो उसे कुछ लोभ देना आवश्यक है। वर्तमानमें उपभोगके लिए मानवका अधैर्य कई बातोंपर निर्भर करता है। जैसे, आयकी मात्रा, आयका समयानुसार वितरण, भविष्यमें आयकी निश्चितता, मनुष्यका स्वभाव, उसकी दूरदर्शिता, उसका आत्मनियंत्रण आदि। मनुष्यकी आय कम होती है, तो भविष्यके लिए बचानेको वह लेशमात्र भी उत्सुक नहीं रहता। अधिक रहती है, तो वह कुछ बचाता है और वर्तमानमें ही उसका उपभोग करनेको वह उतावला नहीं रहता। समयके साथ-साथ आय घटती है, तो बचानेकी प्रवृत्ति होती है, अन्यथा नहीं। उसके स्वभाव आदिपर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। फिशर कहता है कि ब्याजकी दर उधार देनेवालोंके समय-अभिधानपर निर्भर करती है।[2]

फिशरके द्रव्यके परिमाण-सिद्धान्तमें मुख्य बात यह है कि द्रव्यकी मात्रामें और द्रव्यके मूल्यमें प्रतिकूल सम्बन्ध रहता है। जब परिचलनमें द्रव्यकी मात्रा बढ़ जाती है, तो द्रव्यका मूल्य घट जाता है, पर जब द्रव्यकी मात्रा घट जाती है, तो द्रव्यका मूल्य बढ़ जाता है। यह नियम लागू होनेकी अनिवार्य शर्त है—'अन्य बातें समान रहने पर'। फिशरका परिमाण-सूत्र यों है—

$$प = \frac{म\ क + म'\ व'}{ट}$$

$प$ = कीमतोंका स्तर या $\frac{१}{प}$ = द्रव्यका मूल्य

१ हेने : वही, पृष्ठ ७२७-७२८।

२ एरिक रोल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ४३५।

उ = द्रव्य द्वारा होनेवाले सौदे

म = चालू द्रव्य म' = साख द्रव्य

च = द्रव्यका चलनवेग च' = साख द्रव्यका चलनवेग

फिशरने द्रव्य और साखकी प्रवाहमानताका सिद्धान्त भी दिया है। इसमें उसने कहा है कि कीमतके स्तरोंमें परिवर्तन होनेसे मन्दी आती है। उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहे और द्रव्यकी राशि स्थिर रहे, तो कीमतें गिर जायँगी और आर्थिक संकट उत्पन्न हो जायगा।

फिशरकी धारणा थी कि आयमें केवल उन भौतिक पदार्थोंकी ही गणना नहीं करनी चाहिए, जिनका उत्पादन होता है प्रत्युत उन सेवाओंकी भी गणना करनी चाहिए, जो उन पदार्थोंसे प्राप्त होती हैं।

फिशरने गणितीय सूत्रोंसे अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है। अमेरिकामें मन्दी रोकनेके लिए फिशरके विचारोंको व्यवहारमें लानेकी चेष्टा की गयी।

फेटर

फ्रैंक ए. फेटर (सन् १८६३–१९४९) इस बातमें विश्वास करता था कि समाज-कल्याणको अर्थशास्त्रमें ऊँचा स्थान मिलना चाहिए। अर्थशास्त्रका कर्तव्य है कि वह मानवको उसके कल्याणकी पूर्तिमें सहायक बने।[1] उसकी प्रमुख रचना है—'इकॉनॉमिक प्रिंसिपल्स' (सन् १९१५)। फेटरने फिशरके ब्याजके सिद्धान्तकी यह कहकर टीका की कि उसने उसमें 'उत्पत्ति' का सिद्धान्त जोड़ दिया है। फेटरकी दृष्टिमें ब्याज और कुछ नहीं, वह है मौजूदा माल और आगामी मालके वर्तमान मूल्यांकनका अन्तर।

फेटर पहले आस्ट्रियन विचारधारासे प्रभावित था, पर बादमें वह यह मानने लगा कि मूल्य सीमान्त उपयोगिताकी अपेक्षा सर्वांग रुचिपर अधिक निर्भर करता है।

टासिग

हार्वर्ड विश्वविद्यालयके प्राध्यापक एफ. डब्लू. टासिग (सन् १८५९–१९४०) की रचना 'प्रिंसिपल्स ऑफ इकॉनॉमिक्स' (सन् १९११) अर्थशास्त्रकी परम प्रख्यात रचना मानी जाती है। टासिगकी गणना विश्वके प्रमुख अर्थशास्त्रियोंमें की जाती है।

टासिगने शास्त्रीय पद्धति, नवपरम्परावाद और आस्ट्रियन विचारोंका सामंजस्य स्थापित करनेकी चेष्टा की है। वह फिशर, मार्शल, मिल, बमबावर्कसे विशेष रूपसे प्रभावित था।

---

१ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ७४ ।

टासिगका लाभका मजूरी सिद्धान्त और सीमान्त उत्पत्तिकी छूटका मजूरी सिद्धान्त प्रसिद्ध है। टासिग मानता है कि लाभ एक प्रकारसे साहसोद्यमीकी मजूरी है, जो उसे उसकी विशेष योग्यता एवं बुद्धिमत्ताके फलस्वरूप प्राप्त होती है। उसकी दृष्टिमें स्वतन्त्र व्यवस्थापक और वेतनभोगी व्यवस्थापकमें कोई अन्तर नहीं होता।[1] मजूरीके सम्बन्धमें टासिगकी धारणा है कि चूँकि उत्पादित वस्तुकी बिक्रीके पहले ही मजदूरको मजूरी दे दी जाती है, इसलिए उत्पादक सीमान्त उत्पत्तिसे कुछ कम मजूरी देता है। वह उसमें थोड़ासा बट्टा काट लेता है।

कारवर

टी० एन० कारवरकी रचना 'डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ वेल्थ' (सन् १९०४) विशेष रूपसे प्रख्यात है। केवल मनोवैज्ञानिक प्रतिपादनका उसने विरोध किया। उसका कहना था कि आर्थिक वातावरणके महत्त्वको भुलाकर एकमात्र मनोवैज्ञानिक पक्षपर जोर देना ठीक नहीं।

आस्ट्रियन विचारधाराके आलोचन एवं ह्रासी प्रत्याय नियमके पुनर्व्यंजनके कारण कारवरकी प्रसिद्धि है। वह भूमि, श्रम और पूँजीके क्षेत्रमें ह्रासमान उत्पत्ति नियम लागू करनेके पक्षमें है, उपक्रमीके पक्षमें नहीं।[2]

एले

रिचर्ड टी० एले (सन् १८५४-१९४३) का अमेरिकाके अर्थशास्त्रियोंपर विशेष प्रभाव है और उसने अमरीकी विचारधाराको मोड़नेमें महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

एलेकी आर्थिक धारणाओंकी परिभाषाएँ और उसका क्षेत्र-निर्धारण प्रसिद्ध है। यों उसकी आर्थिक धारणाएँ टासिग और कारवरसे मिलती-जुलती सी हैं, परन्तु उसका दर्शन उनसे सर्वथा भिन्न है।[3]

एलेने सामाजिक संस्थाओंके उद्भवके महत्त्वपर विशेष जोर दिया और उसी दृष्टिसे उसने व्यक्तिगत सम्पत्ति आदिकी समस्याओंपर विचार किया। उसके समकालीन विचारक ऐसा मानने लगे थे कि एले समाजवादी हो गया था, परन्तु बादमें उनकी यह धारणा भ्रामक सिद्ध हुई।

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ६८१।
२ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ७३१।
३ हेने : वही, पृष्ठ ७३२।

सेलिगमैन

प्रोफेसर एडविन आर॰ ए॰ सेलिगमैन (सन् १८६१–१९३९) की गणना विश्वके प्रख्यात अर्थशास्त्रियोंमें की जाती है। कर प्रणालीके सम्बन्धमें सेलिगमैनका अनुदान विशेष उल्लेखनीय है। उसकी रचना 'प्रिंसिपल्स ऑफ इकॉनॉमिक्स' (सन् १९०५) अत्यन्त प्रसिद्ध है।

सेलिगमैनने शास्त्रीय परम्पराकी विभिन्न धारणाओंका नवपरम्परावाद और आस्ट्रियन धारा तथा इतिहासवादके साथ सामंजस्य स्थापित करनेका प्रयत्न किया है।

'अमेरिकन इकॉनॉमिक असोसियेशन' के निर्माणमें सेलिगमैनने सक्रिय भाग लिया। सामाजिक विज्ञानके विश्वकोशका यह प्रधान सम्पादक भी रहा था।

डेवनपोर्ट

प्रोफेसर एच॰ जे॰ डेवनपोर्ट (सन् १८६१–१९३१) का विशेष अनुदान है 'उपक्रमीका दृष्टिकोण' और उससे सम्बद्ध 'अवसरजनित लागत'। उसके सिद्धान्तमें कीमतोंकी कल्पना की गयी है और सीमान्त उपयोगिताओं और अनुपयोगिताओंको उसीपर आश्रित किया गया है। प्रमुख बातोंमें उसका यह सिद्धान्त मेंजरकी 'मूल्य-व्यवस्था' से सम्बद्ध है, पर गणितज्ञ न होनेसे उसने अन्य मार्ग ग्रहण किया है।[1]

संस्थावादी धारा

सन् १८९९ में वेब्लेनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई—'थ्योरी ऑफ दी लेजर क्लास'। इस रचनाने अमरीकी विचारधाराकी एक नयी धाराको जन्म दिया। संस्थावादी धाराने क्रमशः इतना प्रभाव प्रकट किया कि रूजवेल्टने शासन सूत्र हाथमें लेते ही कई संस्थावादियोंको अपने शासनके परामर्शदाताओंमें स्थान दिया।

संस्थावादी विचारकोंमें यद्यपि अनेक बातोंमें परस्पर मतभेद है, पर निम्नलिखित ५ बातोंमें वे एकमत हैं :

(१) उनका विश्वास है कि अर्थशास्त्रके अध्ययनका केन्द्रबिन्दु होना चाहिए समुदायका व्यवहार, न कि वस्तुओंकी कीमत।

---

१ हेने : वही, पृष्ठ ४१२।
२ हेने : वही, पृष्ठ ४७४।

(२) वे यह मानते हैं कि मानव-व्यवहार सतत परिवर्तनशील है और आर्थिक सिद्धान्त काल और देशके सापेक्ष होने चाहिए।

(३) वे इस बातपर जोर देते हैं कि रीति-रिवाज, आदत और कानून आर्थिक जीवनको विशेष रूपसे प्रभावित करते हैं।

(४) उनकी मान्यता है कि व्यक्तियोंको प्रभावित करनेवाली आवश्यक मनोवृत्तियोंकी मापना सम्भव नहीं।

(५) उनकी यह धारणा है कि आर्थिक जीवनमें जो कुव्यवस्थाएँ दीख पड़ती हैं, उन्हें सामान्य सन्तुलित अवस्थासे बहुत दूर नहीं मानना चाहिए। वे सामान्य ही हैं—कम-से कम वर्तमान संस्थाओंमें।

संस्थावादी विचारकोंकी अनेक धारणाएँ इतिहासवादियोंसे साम्य रखती हैं। जैसे :[१]

(१) दोनों ही संस्थाओंको महत्त्व देते हैं।

(२) दोनों ही सापेक्षिकताके सिद्धान्तपर बल देते हैं।

(३) दोनों परिवर्तनपर और किसी प्रकारके उद्भवपर जोर देते हैं।

(४) दोनों ही शास्त्रीय विचारधाराका इस आधारपर तीव्र विरोध करते हैं कि वह व्यक्तिवाद और स्वार्थकी भावनाको ही आर्थिक कार्योंकी प्रेरिका मानती है।

(५) दोनों ही मानवीय व्यवहारके वास्तविक अध्ययनपर जोर देते हैं, काल्पनिक सिद्धान्तोंपर विश्वास नहीं करते।

मजेकी बात है कि आस्ट्रियन विचारकोंने इतिहासवादी विचारकोंपर प्रहार किया और संस्थावादियोंने आस्ट्रियनोंपर!

संस्थावादी विचारकोंकी यह मान्यता है कि आर्थिक संस्थाएँ ही सारे आर्थिक कार्यकलापकी निर्णायिका शक्ति है और इन आर्थिक संस्थाओंका उद्भव होता है मनोवैज्ञानिक आदतोंसे, रीति रिवाजोंसे और वर्तमान सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थासे। सामूहिक आदतोंमें ही संस्थाओंका निर्माण होता है और सामूहिक आदतें बनती हैं वंश परम्परासे, संस्कृतिसे और वातावरणसे। संस्थावादी मानते हैं कि संस्थाओंके अध्ययनसे हमें आर्थिक व्यवहारकी कुंजी प्राप्त हो सकती है।

वेबलेन

वेबलेन संस्थावादका जन्मदाता है। वह पूँजीवादका घोर विरोधी है, पर मार्क्सवादी नहीं। समाज परिवर्तन और प्रगतिमें मार्क्सकी भाँति उसकी भी

१ देखे वही, पृष्ठ ७४३-७४४।

मानता है वर्ग-संघर्षका वह भी पक्षपाती है, शास्त्रीय विचारधाराका वह भी आलोचक है, पर मार्क्स एक छोरपर है, वेब्लेन दूसरे छोरपर। ऊपरसे दोनोंमें साम्य दीखता है, पर वस्तुतः दोनोंमें साम्य है नहीं।[1] मार्क्स जहाँ उत्पादनके साधनों और सामाजिक संस्थाओंके विकासका अध्ययन करता है वेब्लेन वहाँ इनसे उत्पन्न और प्रतिकृत भावनाका अध्ययन करता है। एक जहाँ वस्तुस्थिति और वास्तविकता प्रधान है दूसरा वहाँ भावना प्रधान।

वेब्लेनपर चार्ल्स पीयर्सकी वैज्ञानिक पद्धति दार्शनिकता और रूढ़िहीनता का विलियम जेम्स और जान डेवीकी व्यापक दृष्टिका डार्विनके विकासवादका मार्गनके प्राचीन समाजका तथा मार्क्सके सिद्धान्तोंको वस्तुस्थितिकी दृष्टिसे देखनेका प्रभाव था। इतना ही नहीं तत्कालीन समाजकी स्थितिका पूँजीवादके विकास एवं उसके अभिशापका भी उसपर प्रभाव पड़ा था। गैके कथनानुसार वह अपने युगकी उपज था। उसपर उसके जीवन काल और वातावरणका सब प्रभाव था।[2]

थोर्स्टीन वेब्लेन (सन् १८५७-१९२९) अत्यन्त साधारण परिवारमें जनमा पला पनपा पर बुद्धि बचपनसे तीव्र थी। क्लार्कके चरणोंमें बैठकर उसने विविध विषयोंका अध्ययन किया। बादमें विश्वविद्यालयोंमें अर्थशास्त्र-विभागका अध्यक्ष बन गया। वह 'जर्नल ऑफ पोलिटिकल इकोनॉमी' का सम्पादक भी रहा। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं— 'दि थ्योरी ऑफ लेजर क्लास' (सन् १८९९) 'दि थ्योरी ऑफ बिजिनेस एण्टरप्राइज' (सन् १९०४) 'दि इन्सटिंक्ट ऑफ वर्कमैनशिप' (सन् १९१४) और 'इन्जीनियर्स एण्ड दि प्राइस सिस्टम' (सन् १९२१)।

प्रमुख आर्थिक विचार

वेब्लेनकी मान्यता थी कि शास्त्रीय विचारधाराका आधार व्यक्तिवाद और स्वार्थकी भावना है जो कि गलत है। उसके मतसे अर्थशास्त्र ऐसा विज्ञान है, जो क्रमशः विकसित होता चल रहा है। भौतिक वातावरणका मानवपर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। मानवकी अन्तःप्रेरणा और संस्थाएँ ही उसे प्रभावित करती हैं। वेब्लेनकी धारणा थी कि जब किसी समस्याका अध्ययन करना हो, तो अन्तः प्रेरणा और संस्थाओंका तो अध्ययन होना ही चाहिए, उसके साथ-साथ विविध विज्ञानोंकी भी सहायता लेनी चाहिए। वेब्लेन मानता है कि अन्तःप्रेरणाओं

१ चार्ल्स जीद : ए हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक डॉक्ट्रिन्स, पृष्ठ ४४५।
२ चार्ल्स जीद : वही पृष्ठ ४४०-४२।

कार्यान्वित करनेके लिए जो कार्य किये जाते हैं, वे ही आगे चलकर आदतका रूप धारण कर लेते हैं और उन्हींके द्वारा संस्थाओंका उदय एवं विकास होता है। ये संस्थाएँ ही वेब्लेनके अध्ययनका मूल आधार हैं।

वेब्लेनकी दृष्टिसे मुख्य संस्थाएँ केवल दो हैं : सम्पत्ति और उत्पादनके प्रौद्योगिक प्रकार। वह मानता है कि वैज्ञानिक पद्धतिपर ज्यों ज्यों उत्पादनका विकास होने लगा, त्यों-त्यों सम्पत्ति-स्वामी अधिकाधिक मुनाफा कमाने लगे और मुफ्तकी कमाईपर गुलछर्रे उड़ाने लगे। इसके अतिरिक्त वे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक ज्ञानपर भी अपना स्वामित्व स्थापित करने लगे। यहींतक बस नहीं, उन्होंने उत्पादनपर नियन्त्रण कर, कीमतोंको चढ़ाकर अति-उत्पादनको, वर्ग-संघर्षको और आर्थिक संकटको जन्म दिया।[१]

वेब्लेनकी लेखनी बड़ी जोरदार थी। उसकी भाषामें व्यंग्य भी है, भावना भी, प्रवाह भी है, तीव्रता भी। यही कारण है कि उसके विचारोंका अमरीकी विद्वानोंपर अच्छा प्रभाव पड़ा।

मिचेल

वेसेल सी० मिचेल (सन् १८७४–१९४८) कोलम्बिया विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक था। उसने आँकड़ोंपर बड़ा जोर दिया। व्यापारचक्रोंपर उसकी रचना 'मेजरिंग बिजनेस साइकिल्स' (सन् १९४६) बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

मिचेलने व्यापार-चक्रके चार रूप बताये हैं :

१. विस्तार (ऊपरकी ओर गति),

२ अवरोध,

३. संकुचन (नीचेकी ओर गति) और

४ पुनर्लाभ।
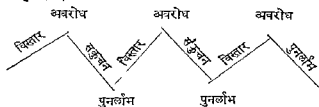
मिचेलकी धारणा है कि अन्तःप्रेरणा ही वह मूलशक्ति है, जो मानवीय व्यवहारको प्रेरित करती है। वह मानता है कि अर्थशास्त्रमें मानवीय व्यवहारका

---

१ हेने : हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ७७४-७७६।

ही अध्ययन होना चाहिए। उसमें ऐतिहासिक शोध भी हो और सैद्धान्तिक भी। संस्थाओं और संस्कृतिके विकासके अध्ययनपर मिचेल विशेष जोर देता है।[1]

मॉर्गनके मतानुसार अर्थशास्त्रीय शोध करनेके क्षेत्रमें मिचेलका अनुदान अत्यधिक प्रशंसनीय माना जाता है।

नयी पीढ़ी

पुरानी पीढ़ीने जहाँ संस्थाओंके विश्लेषणमें अपनेको सीमित रखा, वहाँ नयी पीढ़ीके संस्थावादियोंने यह सोचा कि आदतों, कानूनों और आर्थिक संस्थाओंमें एक सरीखी बातोंको लेकर आर्थिक सिद्धान्तोंकी रचना की जा सकती है। सामाजिक नियन्त्रण द्वारा संस्थाओंकी दिशा मोड़ी जा सकती है। महत्त्वचेतना और आत्मनियंत्रण उसका मार्ग हो सकता है। पर ये विचारक अपनी कल्पनाके अनुकूल आर्थिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेमें समर्थ नहीं हो सके। यों समाज विज्ञान, इतिहास और अंकशास्त्रकी दृष्टिसे उनका अनुदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

संस्थावादका प्रभाव अमेरिकापर सबसे अधिक पड़ा। यूरोपमें सियाक और सोम्बार्ट जैसे विचारक उससे प्रभावित हुए हैं। भारतमें राधाकमल मुखर्जी और विनय सरकार जैसे अर्थशास्त्री इस ओर झुके हैं।[2]

समाज-कल्याणवादी धारा

सस्थावादी विचारधाराके विचारक जहाँ इस बातपर जोर देते हैं कि अर्थशास्त्रको चाहिए कि वह कीमतोंकी कसौटी बनाना छोड़कर मानवीय व्यवहारको अपनी आधारशिला बनाये, वहाँ हिक्स, कैन्स और मार्क्ससे प्रभावित लोककल्याणवादी विचारक कहते हैं कि अब यह मान्यता उठा देनी चाहिए कि सीमान्त उपयोगिता और प्रतिस्पर्धा ही आर्थिक जीवनका मूलाधार है। इनका कहना है कि पूँजीवादी समाजका समाजवादी नियंत्रण होना चाहिए। केन्द्रीय संयोजन और राष्ट्रकी सारी योजनाओंपर अपना नियंत्रण रखे।[3]

इस प्रकार अमरीकी विचारधारा पूँजीवादसे समाजवादकी दिशामें अग्रसर होती जा रही है। ● ● ●

---

१ हेने : वही, पृष्ठ ८८७।
२ एरिक रौल : वही, पृष्ठ ८८।
३ भटनागर और शर्मा : ए हिस्ट्री आफ इकोनॉमिक थॉट, पृष्ठ १९९–२००।

सम्पूर्णदर्शी विचारधारा

केन्स

अर्थशास्त्रकी आधुनिकतम विचारधारा है—सम्पूर्णदर्शी विचारधारा। अभी-तकके अर्थशास्त्री समस्याओंके अध्ययनका केन्द्रबिन्दु बनाते थे व्यक्ति, उनका अर्थशास्त्र था सूक्ष्मदर्शी अर्थशास्त्र। केन्सने इस धाराको उलट दिया। उसकी विचारधाराका नाम है—सम्पूर्णदर्शी विचारधारा (Macro-Economics)। इसमें व्यक्तियों और वर्गोंका अन्तर भुलाकर सभी व्यक्तियोंके सम्पूर्ण कार्यों—सम्पूर्ण आय, सम्पूर्ण उपभोग, सम्पूर्ण विनियोग, सम्पूर्ण रोजगार—के अध्ययनपर बल दिया जाता है। सम्पूर्णदर्शी विचारक द्रव्यके सभी पक्षोंको एकमें मिलाकर अध्ययन करते है। पहलेके अर्थशास्त्री जहाँ वास्तविक आय, वास्तविक मजूरी, वास्तविक लागत आदिका अध्ययन करते थे, वहाँ ये आधुनिक अर्थशास्त्री सम्पूर्ण आय, सम्पूर्ण उपभोग, सम्पूर्ण विनियोगके सम्पूर्ण रूपका अध्ययन करते हैं।

ही अध्ययन होना चाहिए। उसमें ऐतिहासिक शोध भी हो और सैद्धान्तिक भी। संस्थाओं और संस्कृतिके विकासके अध्ययनपर मिचेल विशेष जोर देता है।[1]

आँकड़ोंके माध्यमसे अनुसन्धानीय शोध करनेके क्षेत्रमें मिचेलका अनुदान अत्यधिक प्रशंसनीय माना जाता है।[2]

नयी पीढ़ी

पुरानी पीढ़ीने जहाँ संस्थाओंके विश्लेषणमें अपनेको सीमित रखा, वहाँ नयी पीढ़ीके संस्थावादियोंने यह सोचा कि आदर्शों, कानूनों और आर्थिक संस्थाओंमें एक सरीखी मान्यताओंको लेकर आर्थिक सिद्धान्तोंकी रचना की जा सकती है। सामाजिक नियंत्रण द्वारा संस्थाओंकी दिशा मोड़ी जा सकती है। श्रम-संगठन और आत्मनियंत्रण उसका मार्ग हो सकता है। पर ये विचारक अपनी कल्पनाके अनुकूल आर्थिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेमें समर्थ नहीं हो सके। यों समाज विज्ञान, इतिहास और मनोविज्ञानकी दृष्टिसे उनका अनुदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

संस्थावादका प्रभाव अमेरिकापर सबसे अधिक पड़ा। यूरोपमें सिम्यन्ड और सोम्बार्ट जैसे विचारक उससे प्रभावित हुए हैं। भारतमें राधाकमल मुकर्जी और विनय सरकार जैसे अपवादस्वरूप इस ओर झुके हैं।

समाज-कल्याणवादी धारा

संस्थावादी विचारधाराके विचारक सदा इस बातपर जोर देते हैं कि अर्थशास्त्रको चाहिए कि वह श्रीमन्तोंको कसौटी बनाना छोड़कर मानवीय व्यवहारको अपनी आधारशिला बनाये। वहाँ हिक्स, केन्स और मार्क्ससे प्रभावित समाजकल्याणवादी विचारक कहते हैं कि अब यह मान्यता उठा देनी चाहिए कि सीमान्त उपयोगिता और प्रतिस्पर्धा ही आर्थिक जीवनका सूत्रधार है। इनका कहना है कि पूँजीवादी समाजका समाजवादी नियंत्रण होना चाहिए। केन्द्रीय संयोजन बोर्ड राष्ट्रकी सारी योजनाओंपर अपना नियंत्रण रखे।

इस प्रकार अमरीकी विचारधारा पूँजीवादसे समाजवादकी दिशामें अग्रसर होती चल रही है। ● ● ●

---

१ हेने : वही, पृष्ठ ७४६-७४७।

२ एरिक रौल : वही, पृष्ठ ४५१।

३ मम्फर्ड और सतीशचन्द्र बहादुर : ए हिस्ट्री ऑफ इकानामिक थॉट, पृष्ठ ३९८-४००।

शास्त्रीय परम्परा और नवपरम्परावादके दोष-गुण उसके समक्ष थे। सिसमाण्डी, प्रोदों, मार्क्सकी आलोचनाएँ उसे प्रभावित कर रही थीं। उसने अर्थशास्त्रकी विभिन्न समस्याओंपर चिन्तन, मनन आरम्भ कर दिया था, पर उसे सबसे अधिक प्रभावित किया दो बातोंने। एक तो व्यक्तिको केन्द्र बनाकर सोचनेकी प्रवृत्तिने और दूसरे, प्रथम महायुद्धकी भयकर प्रतिक्रियाने। उस महासंहारने जिस मंदी, बेकारी और अर्थ संकटको जन्म दिया, उसने केन्सको संकटजनित समस्याओंपर विचार करनेके लिए विवश कर दिया।

केन्सके आर्थिक विचार तीन भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं :

(१) पूर्ण रोजगार,
(२) ब्याजकी दर और
(३) गुणक सिद्धान्त।

१ पूर्ण रोजगार

केन्स कहता है कि अर्थव्यवस्थाका लक्ष्य होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्तिको काम मिले। पूर्ण रोजगार, पूर्ण वृत्ति देनेके उद्देश्यसे ही सारा आर्थिक संयोजन होना चाहिए। सौ प्रतिशत लोगोंको काम देना व्यवहार्यतः कठिन हो सकता है। तीनसे लेकर पाँच प्रतिशत लोग सदा ही बेकार रहेंगे। कारण, या तो वे एक कार्यसे दूसरे कार्यकी ओर जा रहे होंगे या किसी विशेष कार्यकी शिक्षा ग्रहण कर रहे होंगे अथवा उन्हें जो काम मिल रहा होगा, उसे वे पसन्द नहीं करते होंगे। शेष ९५ से ९७ प्रतिशत लोगोंको भरपूर काम देनेकी स्थिति होनी चाहिए। युद्ध-कालमें ही नहीं, शान्ति कालमें भी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।

केन्स यह मानकर चलता है कि पूर्ण रोजगारीकी स्थिति उत्पन्न करना सरकारका आवश्यक कर्तव्य है। वह कहता है कि सरकार सबसे पहले तो यह काम करे कि वह आर्थिक संकटको टालनेके लिए उपयुक्त व्यवस्था करे। यदि मंदीकी स्थिति हो, तो वह विनियोगके नये क्षेत्र खोलनेकी योजना बनाये। नये-नये उत्पादक कार्य आरम्भ कर बेकारोंको रोजी दे। इस संचरक आशा (पम्प प्राइमिंग) द्वारा, बाँध, सड़कें, बिजलीघर, विद्यालय आदिके निर्माण द्वारा ही स्थिति सुधर सकेगी। लोगोंको काम मिलेगा। उनकी क्रयशक्तिमें वृद्धि होगी। उपभोग बढ़ेगा, जिससे वस्तुओंकी माँग बढ़ेगी। स्थिति सुधर जानेपर सरकार इस बातका ध्यान रखे कि सट्टेबाज कहीं सट्टेके फेरमें उसे बिगाड़ न दें। सरकारको बैंक दरपर नियंत्रण करके उनके कुचक्रको विफल कर देना चाहिए। पूर्ण रोजगार-के लिए केन्स प्रादेशिक उत्पादन बढ़ाने, जिन क्षेत्रोंमें बेकारी अधिक हो, वहाँ नये कारखाने खोलने और गृह-उद्योगोंको प्रोत्साहन देनेका भी पक्षपाती है।

जीवन-परिचय

जान मेनार्ड केन्स (सन् १८८३–१९४६) का जन्म कैम्ब्रिजमें हुआ। पिता प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे, माँ नगरकी मेयर। एटन और कैम्ब्रिजमें शिक्षण हुआ।

बाल्यावस्थासे ही वह कुशाग्रबुद्धि था। गणित, दर्शन और अर्थशास्त्र उसके प्रिय विषय थे। मार्शल उसका गुरु था।

केन्स अपना शिक्षण समाप्त कर भारत सरकारके दफ्तरमें उच्च पदपर काम करता रहा। सन् १९१९ तक वित्त मन्त्रालयमें रहा। फिर सन् १९२९ तक कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें। कई शाही कमीशनोंका सदस्य भी रहा। सन् १९४ में वित्तमंत्रीका परामर्शदाता रहा। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोषमें ब्रिटिश सरकारका प्रतिनिधित्व किया। सन् १९४२ में 'लार्ड' बना। सन् १९४४ के ब्रेटन वुड्स सम्मेलनमें उसने प्रमुख रूपसे भाग लिया।

रौलके कथनानुसार केन्स आदिसे अन्ततक अर्थशास्त्री रहा—कभी विचारक, कभी लेखक, कभी अध्यापक, कभी सरकारी कर्मचारी और कभी राजनीतिज्ञ।[1]

केन्स उत्कृष्ट विचारक था। सन् १९१९ में उसने 'दि इकॉनॉमिक कन्सीक्वेन्सेज ऑफ दि पीस' पुस्तकमें सरकारी नीतिकी कटु आलोचना की। यों वह भारतीय मुद्रा और अर्थव्यवस्थापर सन् १९१३ में ही एक पुस्तक लिख चुका था, पर उसे ख्याति मिली शांतिके आर्थिक प्रभाव बतानेवाली उक्त पुस्तकसे। केन्सकी कई रचनाएँ हैं, जिनमें 'ए ट्रीटाइज ऑन मनी' (सन् १९१) और 'हाउ टु पे फार दि वार' (सन् १९४) प्रसिद्ध हैं, पर उसकी सर्वोत्तम रचना है 'दि जनरल थ्योरी ऑफ एम्प्लायमेण्ट, इण्टरेस्ट एण्ड मनी' (सन् १९३६)।

प्रमुख आर्थिक विचार

केन्सने अर्थशास्त्रका गम्भीर अध्ययन किया था। वाणिज्यवाद, प्रकृतिवाद,

---

१ एरिक रौल : द हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ५८ ।

२ जीद और रिस्ट : द हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ६६० ।

वाले लोग अपनी बचत द्वारा अपना ही विनाश करते हैं, पर वे इस तत्त्वको नहीं जानते। केन्सने नैसर्गिका अध्ययन नहीं किया था। फिर भी वह युद्धोपरान्त ब्रिटेनकी बेकारी और मन्दी देखकर इसी निश्चयपर पहुँचा था।[1]

केन्स जनताकी उपभोग-प्रवृत्तिकी चर्चा करते हुए कहता है कि यह उपभोक्ताके मनोविज्ञान और उसकी आदतपर निर्भर करती है। उसे बदलना सरल नहीं। आयकी मात्रापर भी उपभोग प्रवृत्ति निर्भर करती है। निर्धन व्यक्ति अधिक उपभोग करते हैं। पर आय बढ़ाने और बेकारोंको काम देनेकी दृष्टिसे इस क्षेत्रसे विशेष आशा नहीं रखी जा सकती।

२. ब्याजकी दर

विनियोग दो बातोंपर निर्भर करता है—पूँजीकी सीमान्त कुशलतापर और ब्याजकी दरपर।

पूँजीकी सीमान्त कुशलताके क्षेत्रमें भी सरकारको विनियोगकी प्रेरणाके लिए कम ही गुंजाइश है। उसमें वर्तमानको छोड़कर भविष्यके आश्रयकी बात है। यह स्वयं दो बातोंपर आश्रित है—(१) पूँजीका पूर्ति मूल्य और (२) सम्भावित प्राप्ति। पूँजीका पूर्ति मूल्य उत्पादनके बाह्य कारणोंपर तथा यन्त्र विज्ञानके स्तरपर निर्भर करता है। सम्भावित प्राप्ति मनोवैज्ञानिक तत्त्व है। अतः इसमें विनियोगके लिए कम ही सम्भावना है।

तरलता-अधिमान

अब रहती है ब्याजकी दर। केन्सने इसके लिए तरलता-अधिमानका सिद्धान्त प्रस्तुत किया है।[2] वह कहता है कि 'ब्याज एक निश्चित अवधिके लिए तरलताके त्यागका पुरस्कार है।' तरलता अधिमान द्वारा ब्याजका निर्णय होता है। आय होते ही मनुष्यके समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह उसमेंसे कितना व्यय करे। कल्पना कीजिये कि एक व्यक्तिकी आय १०० रुपया है। वह यह निर्णय करता है कि इसमेंसे मैं ७० रुपया उपभोगपर व्यय करूँगा, ३० रुपया बचाऊँगा। अब प्रश्न है कि ये ३० रुपये वह किस रूपमें रखे? इन्हें वह तरल द्रव्यके रूपमें रखे अथवा किसीको उधार दे दे? तरल द्रव्यके रूपमें रखनेसे वह इसका उपयोग किसी भी समय अपनी इच्छाओंकी सन्तुष्टिके लिए कर सकता है। उसे दोमेंसे एक बात चुननी पड़ेगी। या तो वह यह बचत तरल द्रव्यके रूपमें रखे या वह उधार दे। तरल द्रव्यके रूपमें उसे रखनेका अर्थ यह है कि उसके लिए तरल द्रव्य अधिमान है। उधार देनेका अर्थ यह है कि वह जिस आयको

---

१ जीद और रिस्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ७३६।
२ केन्स : जनरल थ्योरी ऑफ एम्प्लायमेण्ट, इण्टरेस्ट एण्ड मनी, पृष्ठ १६७।

उसका विश्वास है कि सरकार यदि समुचित नियंत्रण रखे, तो पूर्ण रोजगारकी स्थिति सदा ही बनी रह सकती है।

केन्स कहता है कि राष्ट्रीय आयके तीन साधन हैं : (१) राष्ट्रीय उपभोग, (२) राष्ट्रीय विनियोग और (३) सरकारी व्यय।

तीनोंमेंसे एकको अथवा तीनोंको बढ़ाकर राष्ट्रीय आयमें वृद्धि की जा सकती है। राष्ट्रीय आय जितनी अधिक होगी, राष्ट्रीय उपभोग भी उतना ही अधिक होगा।

उपभोग-प्रवृत्ति

केन्सके मतसे जब किसीकी आय कम रहती है तो उसका उपभोग उतना ही रहता है। पर जब उसकी आयमें वृद्धि होती है, तो आयके समान ही व्यय न होकर कुछ बचत होने लगती है। ८०) की आमदनीमें ५) बचत या तो १) की आमदनीमें ७) ही रहता है। ३) की बड़ी या बचत होती है यही सारे आर्थिक अनर्थोंकी जड़ है। समाजमें आज धनका जो असमान वितरण है, उसका कारण यही है कि निर्धन व्यक्तियोंकी उपभोग-प्रवृत्ति ज्यादा है धनिकोंकी उपभोग-प्रवृत्ति ज्यादासे कम।

बचत एक अभिशाप

केन्सकी दृष्टिमें बचत वरदान नहीं, अभिशाप है। केकोंका प्रसिद्ध उदाहरण देते हुए वह कहता है कि बचतका परिणाम यह होता है कि उपभोग कम होता है और उपभोग कम होनेसे माँग घटती है उत्पादन कम किया जाने लगता है और श्रमिकोंको कामपरसे हटा दिया जाता है जिससे बेकारी बढ़ती है। जैसे कोई समाज ऐसा है जो केकोंके उत्पादन और उपभोगपर निर्भर रहता है, पर उसके लिए वह पैसेका उपयोग करता है। मान लें कि उस समाजमेंसे कुछ व्यक्ति बचत करनेकी धुनमें आकर यह निश्चय करते हैं कि हम अभीतक जितने केकोंका उपभोग करते थे अब नहीं करेंगे। अपनी इस बचतका विनियोग वे केकोंका उत्पादन बढ़ानेमें नहीं करते। तो इसका परिणाम क्या होगा ?

यही कि केकोंका दाम गिर जायगा। उपभोक्ताओंको उससे प्रसन्नता होगी। पर साथ ही उत्पादकोंके आयमें कमी होनेसे उन्हें दुःख होगा। वे उत्पादन कम करेंगे या अपने नौकरोंको कामसे हटा देंगे। उत्पत्ति भी कम होगी बेकारी भी बढ़ेगी। इस प्रकार बचत गुण सिद्ध न होकर सत्यानाशका एक कारण बन जायगी।[1]

केन्सकी यह धारणा प्राचीन विचारधाराके प्रतिकूल है। नेमोर्सने एक शताब्दी पहले इसी तरहके विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि बचत करने

---

१ केन्स : ट्रीटाइज ऑन मनी, खण्ड १, पृष्ठ १७८।

वाले लोग अपनी बचत द्वारा अपना ही विनाश करते हैं, पर वे इस तत्वको नहीं जानते। केन्सने नेमोर्सका अध्ययन नहीं किया था। फिर भी वह युद्धोपरात ब्रिटेनकी बेकारी और मंदी देखकर इसी निश्चयपर पहुँचा था।[1]

केन्स जनताकी उपभोग-प्रवृत्तिकी चर्चा करते हुए कहता है कि वह उपभोक्ताके मनोविज्ञान और उसकी आदतपर निर्भर करती है। उसे बदलना सरल नहीं। आयकी मात्रापर भी उपभोग-प्रवृत्ति निर्भर करती है। निर्धन व्यक्ति अधिक उपभोग करते हैं। पर आय बढ़ाने और बेकारोंको काम देनेकी दृष्टिसे इस क्षेत्रसे विशेष आशा नहीं रखी जा सकती।

२. व्याजकी दर

विनियोग दो बातोंपर निर्भर करता है—पूँजीकी सीमान्त कुशलतापर और व्याजकी दरपर।

पूँजीकी सीमान्त कुशलताके क्षेत्रमें भी सरकारको विनियोगकी प्रेरणाके लिए कम ही गुंजाइश है। उसमें वर्तमानको छोड़कर भविष्यके आश्रयकी बात है। वह स्वय दो बातोंपर आश्रित है—(१) पूँजीका पूर्ति मूल्य और (२) सम्भावित प्राप्ति। पूँजीका पूर्ति-मूल्य उत्पादनके बाह्य कारणोंपर तथा यत्र-विज्ञानके स्तरपर निर्भर करता है। सम्भावित प्राप्ति मनोवैज्ञानिक तत्त्व है। अतः इसमें विनियोगके लिए कम ही सम्भावना है।

तरलता-अधिमान

अब रहती है व्याजकी दर। केन्सने इसके लिए तरलता-अधिमानका सिद्धान्त प्रस्तुत किया है।[2] वह कहता है कि 'व्याज एक निश्चित अवधिके लिए तरलताके त्यागका पुरस्कार है।' तरलता अधिमान द्वारा व्याजका निर्णय होता है। आय होते ही मनुष्यके समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह उसमेंसे कितना व्यय करे। कल्पना कीजिये कि एक व्यक्तिकी आय १०० रुपया है। वह यह निर्णय करता है कि इसमेंसे मैं ७० रुपया उपभोगपर व्यय करूँगा, ३० रुपया बचाऊँगा। अब प्रश्न है कि वे ३० रुपये वह किस रूपमें रखे? इन्हें वह तरल द्रव्यके रूपमें रखे अथवा किसीको उधार दे दे? तरल द्रव्यके रूपमें रखनेसे वह इसका उपयोग किसी भी समय अपनी इच्छाओंकी सतुष्टिके लिए कर सकता है। उसे दोमेंसे एक बात चुननी पड़ेगी। या तो वह यह बचत तरल द्रव्यके रूपमें रखे या वह उधार दे। तरल द्रव्यके रूपमें उसे रखनेका अर्थ यह है कि उसके लिए तरल द्रव्य अधिमान है। उधार देनेका अर्थ यह है कि वह जिस आयको

---

१ जीद और रिस्ट ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक डाक्ट्रिन्स, पृष्ठ ७१६।
२ केन्स जनरल थ्योरी ऑफ एम्प्लायमेंट, इण्टरेस्ट एण्ड मनी, पृष्ठ १६७।

तरल द्रव्यके रूपमें रख सकता था उसे वह दे देनेके लिए, कुछ अवधिके लिए उसका त्याग कर देनेके लिए प्रस्तुत है।

केन्सकी यह धारणा है कि मानव-स्वभाव ऐसा है कि वह वस्तुओं एवं सेवाओंपर अधिकार प्राप्त करनेके लिए उत्सुक रहता है। अतः वह उधार देनेके स्थानपर तरल द्रव्यको हाथमें ही रखना पसन्द करता है। मनुष्यके लिए द्रव्यकी तरलता अधिमान्य रहती है। इस तरलता-अधिमानका वह त्याग करे, इस इच्छा को जान-बूझकर दबाये, इसके लिए वह कुछ पुरस्कार चाहेगा। यह पुरस्कार, यह प्रतिफल ही ब्याज है। तरल द्रव्यको हाथमें रखनेकी मनुष्यकी तीव्रता जितनी रहेगी, उसी हिसाबसे ब्याजकी दर निश्चित होगी।

मनुष्य द्रव्यको तरल रूपमें रखनेके लिए क्यों उत्सुक रहता है, इसके केन्सने तीन कारण बताये हैं

(१) लेन देनका या व्यापारिक हेतु—व्यक्तिगत या व्यापारिक भुगतानके लिए, वस्तुएँ खरीदने-बेचनेके लिए मनुष्य पैसा रखना चाहता है।

(२) सावधानीका या पूर्वोपाय हेतु—शायद कल आवश्यकता पड़ जाय इस दृष्टिसे वस्तुएँ महँगी हो जायँ तो उन्हें खरीदनेके लिए भी मनुष्य पैसा रखना चाहता है। सावधानीकी दृष्टिसे वह ऐसा करता है।

(३) सट्टेका या दूरदर्शी हेतु—आजके बजाय कल ब्याजकी दर बढ़नेकी कल्पना करके, भविष्यमें अधिक लाभ उठानेकी दृष्टिसे भी मनुष्य तरल द्रव्यको हाथमें रखना चाहता है।

केन्स मानता है कि पहले हेतुसे द्रव्यकी मात्रासे विभाजित कर दें तो ब्याजकी दर निकल आयेगी। तरलताका त्याग करने या त्याग न करने उधार देने या उधार न देनेपर द्रव्यकी वर्तमान मात्राका घटना-बढ़ना निर्भर करता है।

केन्सकी मान्यता है कि द्रव्यकी माँग और पूर्ति द्वारा ही ब्याजका निर्धारण होता है। ब्याजकी दर बढ़ जाय तो यह निश्चित नहीं है कि दी हुई आयका बचाया हुआ अंश भी बढ़ ही जायगा। ब्याजकी दर और बचत करनेमें होनेवाले त्यागमें केन्सकी दृष्टिसे कोई सम्बन्ध नहीं। ब्याजकी दर शून्य हो तो भी यह सम्भव है कि कुछ आय खर्च न होनेके फलस्वरूप कुछ बचत हो जाय।

शास्त्रीय विचारधारासे मतभेद

यों केन्सकी उधार दी हुई तरलता और शास्त्रीय विचारकोंकी 'बचत' एक ही बात है। ब्याजका निर्धारण तरलतासे होता है या बचतसे—दोनों बातोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं पर कुछ बातोंमें दोनोंमें महत्त्वपूर्ण अन्तर है। जैसे :

---

[१] जैथरा : अर्थशास्त्रके मूलाधार, पृष्ठ ९९ ।

केन्सकी मान्यता	शास्त्रीय विचारकोंकी मान्यता
१. ब्याजका सिद्धान्त द्राव्यिक बचत या पूँजीपर ही लागू होता है।	१. ब्याजका सिद्धान्त अद्राव्यिक पूँजीपर भी लागू होता है।
२. ब्याज केवल द्राव्यिक पूँजीके त्यागका प्रतिफल है।	२. ब्याज किसी भी प्रकारकी पूँजीके त्यागका प्रतिफल है।
३. ब्याजका सिद्धान्त द्रव्यके प्रयोगवाले समाजपर लागू होगा।	३. ब्याजका सिद्धान्त ऐसे समाजपर भी लागू होगा, जहाँ द्रव्यका प्रयोग नहीं होता।
४. व्यक्ति अपनेसे भिन्न व्यक्तिको उधार देनेके लिए ही तरलताका त्याग करेगा।	४. व्यक्ति दूसरोंको न देकर स्वय भी उत्पादक कार्योंमें बचत लगाकर ब्याज पा सकेगा।

ब्याजकी दर द्रव्यकी माँग और पूर्तिपर निर्भर करती है। द्रव्यकी पूर्ति जितनी अधिक होगी, ब्याजकी दर उतनी ही कम होगी। द्रव्यकी पूर्ति जितनी कम होगी, ब्याजकी दर उतनी ही अधिक होगी। केन्स कहता है कि उपभोग-प्रवृत्तिके कारण मनुष्य तरल द्रव्यको अपने पास रखना चाहेगा। यह मनुष्यकी मानसिक प्रवृत्ति है। इसे बदलना सरल नहीं। अत. केन्द्रीय बैंककी दरमें परिवर्तन करके सरकार पूर्तिमें वृद्धि कर सकती है। राष्ट्रीय आय बढाने और जनताको काम देनेकी दृष्टिसे सरकारको चाहिए कि वह इस साधनका उपयोग करे।

केन्स शास्त्रीय पद्धतिवालोंकी इस धारणाको अस्वीकार करता है कि ब्याजकी दर कम होनेसे स्वत. ही विनियोगमें वृद्धि हो जायगी और उसके फलस्वरूप लोगोंको अधिक काम मिल सकेगा। साहसोद्यमीको यदि यह विश्वास हो जाय कि भविष्य उज्ज्वल दीखता है, तो वह ब्याजकी दर अधिक देनेके लिए भी प्रस्तुत हो जायगा। यदि भविष्य उज्ज्वल न प्रतीत हो, तो ब्याजकी दर कम होनेपर भी वह विनियोगके लिए प्रस्तुत न होगा।

केन्स यह मानता है कि ब्याजकी दर पूँजीसे भविष्यमें मिलनेवाले लाभकी सीमान्त दरके बराबर होनी चाहिए। इस सम्बन्धमें उसके सूत्र इस प्रकार हैं :

आय = उपभोग + विनियोग।

विनियोग = बचत।

बचत = आय — उपभोग।

विनियोगको बचतके समान माननेके केन्सके सूत्रकी बड़ी आलोचना हुई है।[1]

[1] एरिक रौल : ए हिस्ट्री ऑफ इकानॉमिक थॉट, पृष्ठ ४९२।

केन्स यह मानता है कि यदि दो-तिहाई आयका उपभोगमें व्यय हो जाता है, तो गुणक होगा ३। अर्थात् विनियोगमें प्रत्येक वृद्धिसे आय (अथवा रोजी) में तिगुनी वृद्धि होगी। ऊपरके उदाहरणमें गुणक होगा १०।

केन्सके रोजगारका कोष्ठक यों होगा :
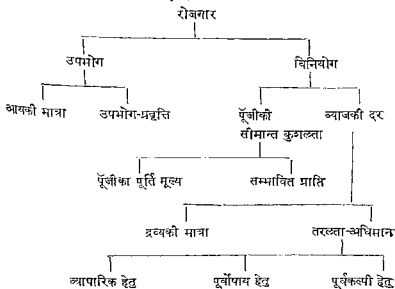
केन्स निर्बाध व्यापारका इसी आधारपर तीव्र विरोध करता है कि इसके कारण अर्थव्यवस्थाके दोष दूर होनेके स्थानपर उल्टे बढ़ जायँगे और आर्थिक संकटमें फँसना पड़ेगा। केन्स इस संकटके निवारणके लिए सरकारी हस्तक्षेप और नियन्त्रणका पक्षपाती है और कहता है कि सरकारको हीनार्थ-प्रबंधन (डेफीसिट फिनान्सिंग) की नीति अपनानी चाहिए। आयसे अधिक व्यय करना चाहिए। इसके फलस्वरूप आर्थिक संकटका निवारण हो सकेगा।

केन्सकी हीनार्थ-प्रबंधनकी नीति विश्वके अनेक राष्ट्र व्यवहृत करते हैं।

मूल्यांकन

केन्सके पूँजीकी सीमान्त कुशलता, तरलता-अधिमान तथा गुणकके सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। मंदी और बेकारीके निवारणके लिए उसने जो उपाय बताये और जिन नीतियोंके व्यवहृत करनेकी माँग की, उनका अमेरिकापर तो भारी प्रभाव पड़ा ही, ब्रिटेनपर भी असर हुआ है। अन्य देशोंपर भी उसका प्रभाव पड़ रहा है।

मार्क्सने पूँजीवादके दोषोंका विरोध तो किया, पर वह पूँजीवादी संस्थाओंके विनाशका समर्थक नहीं था। उसकी धारणा यह थी कि सरकारको चाहिए कि वह अर्थव्यवस्थापर इस प्रकार नियंत्रण स्थापित करे कि आर्थिक संकट उत्पन्न ही न होने पायें और यदि होनेकी सम्भावना हो, तो उनका निवारण कर दिया जाय।

हन, नाइट, पिगू आदि कहते हैं कि केन्सकी उपभोग प्रवृत्ति, गुणक आदिके सिद्धान्त पुराने हैं, उसकी परिभाषाएँ भ्रामक और मनमानी हैं। नाइट और दूसरोंके अनुसार केन्सके सिद्धान्त सर्वव्यापी नहीं हैं, वे विशेष परिस्थितियोंमें ही लागू होते हैं, आर्थिक समस्याओंको वह अत्यन्त सरल बनाकर अध्ययन करता है, पूर्ण रोजगारके क्षेत्रमें वह उत्पादन और भावका उचित महत्त्व नहीं देता, किमि माग और बचतको वैज्ञानिक पद्धतिसे बराबर नहीं सिद्ध कर पाता किन्तु स्थिति मानकर अपनी धारणाएँ बनाता है। ये सब बातें अनेकांशमें सही हैं। उसकी कई मान्यताएँ गलत हो सकती हैं, परन्तु उसने कुछ ऐसे प्रश्न उठाये हैं, जिनकी ओर अर्थशास्त्रियोंका अभीतक ध्यान ही नहीं गया था।

केन्सकी महत्ताका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि आज विश्वके प्रायः सभी विश्वविद्यालयोंमें उसके सिद्धान्तोंका अध्ययन किया जाता है। एरिक रौलका तो यहाँतक कहना है कि 'स्मिथ और रिकार्डोके बाद जिस व्यक्तिका आर्थिक विचारधारापर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है, वह है—केन्स'।[1]

हेन्सन, लेवरिज, हेरड, हेरिस लर्नर, सैमुअल्सन हिक्स, टिमलिन जैसे अनेक विचारकोंने केन्सकी विचारधाराको विकसित करनेमें हाथ बँटाया है।

आधुनिक आर्थिक विचारधारामें केन्सका मौलिक अनुदान भले ही कम माना जाय पर इतना निश्चित है कि उसने पुरातन सामग्रीको नये साँचेमें ढालकर, नयी धाराओंका प्रयोग करके अर्थशास्त्रको नयी दिशा प्रदान की है। ● ● ●

---

१ एरिक रौल : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४८ ।

समाजवादी विचारधारा

श्रेणी-समाजवाद

उन्नीसवीं शताब्दीमें समाजवादी विचारधाराका जिन भिन्न भिन्न रूपोंमे विकास हुआ, उनमसे एक नयी प्रचण्ड धारा फूटी—श्रेणी-समाजवाद (Guild Socialism) की। प्रथम विश्वयुद्धके पूर्व इंग्लैंडमें इस धाराका विकास हुआ।

अशोक मेहताका कहना है कि फरासीसी कुछ तूफानी होते हैं। यही स्थिति इटालियनों और स्पेनियोंकी है। लैटिन जनता उग्र होती है। डान क्विक्सोट जैसे लोग स्पेनमें ही हो सकते हैं। शक्तिशाली और उग्रवादी लैटिन देश ही सघ समाजवादको जन्म दे सकते थे। अधिक यथार्थवादी और भावुकता-शून्य अंग्रेजोंने शिल्पी संघ या श्रेणी समाजवादके सिद्धान्तकी रचना की। यह सिद्धान्त भी राज्य-विरोधी है। ध्यान देनेकी बात है कि समाजवादी विचारकी दो धाराएँ लगभग साथ ही साथ विकसित हुईं। एक ओर थी शान्त धारा,

मार्क्सन पूँजीवादके दोषोंका विरोधी था किन्तु, पर वह पूँजीवादी संस्थाओंके विनाशका समर्थक नहीं था। उसकी धारणा यह थी कि सरकारको चाहिए कि वह अर्थव्यवस्थापर इस प्रकार नियंत्रण स्थापित करे कि आर्थिक संकट उत्पन्न ही न होने पायें और यदि इनकी सम्भावना हो, तो उनका निवारण कर दिया जाय।

हैन, नाइट, पिगू आदि कहते हैं कि केन्सके उपभोग प्रवृत्ति, गुणक आदिके सिद्धान्त पुराने हैं, उसकी परिभाषाएँ भ्रामक और मनमानी हैं। नाइट और दूसरेके अनुसार केन्सके सिद्धान्त सर्वव्यापी नहीं हैं, वे विशेष परिस्थितियोंमें ही लागू होते हैं, आर्थिक समस्याओंका वह अत्यन्त सरल बनाकर अध्ययन करता है, पूर्ण रोजगारके क्षेत्रमें वह उत्पादन और आयका उचित महत्त्व नहीं देता विनियोग और बचतको वैज्ञानिक पद्धतिसे बराबर नहीं सिद्ध कर पाता स्थिर स्थिति मानकर अपनी धारणाएँ बनाता है। ये सब बातें अंशतः सही हैं। उसकी कई मान्यताएँ गलत हो सकती हैं, परन्तु उसने कुछ ऐसे प्रश्न उठाये हैं, जिनकी ओर अर्थशास्त्रियोंका अभीतक ध्यान ही नहीं गया था।

केन्सकी महत्ताका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि आज विश्वके प्रायः सभी विश्वविद्यालयोंमें उसके सिद्धान्तोंका अध्ययन किया जाता है। एरिक रोल्ने[1] तो यहाँतक कह डाला है कि 'स्मिथ और रिकार्डोके बाद जिस व्यक्तिका आर्थिक विचारधारापर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है, वह है—केन्स'।

हैन्सन, बेवरिज, हैरड, हैरिस, लर्नर, सैमुअल्सन डिलार्ड टिमलिन जैसे अनेक विचारकोंने केन्सकी विचारधाराको विकसित करनेमें हाथ बँटाया है।

आधुनिक आर्थिक विचारधारामें केन्सका मौलिक अनुदान भले ही कम माना जाय पर इतना निश्चित है कि उसने पुरातन सामग्रीको नये साँचेमें ढालकर, नयी शब्दावलीका प्रयोग करके अर्थशास्त्रको नयी दिशा प्रदान की है। ● ● ●

1. एरिक रोल : ए हिस्ट्री ऑफ इकोनॉमिक थॉट, पृष्ठ ५८ ।

बताना आरम्भ किया कि व्यक्तिके विकासके लिए अत्यधिक शक्तिसम्पन्न सत्ता कितनी हानिकर होती है।

जे० एन० फिगिस जैसे स्वातन्त्र्यवादी विचारकोंने सत्ता और राज्यविरोधी भावनाओंको बल दिया। मैलतू और गुरिया जैसे स्पेनिश विचारकोंने 'वृत्तिमूलक स्वामित्व सिद्धान्त' की व्याख्या करते हुए कहा कि किसीके श्रमका उत्पादन ही धन नहीं है, श्रमकी विधि भी धन ही है। दक्षता और क्षमताका ऐसा गुण व्यक्तिमें मौलिक प्रवृत्ति, कार्यको भलीभाँति सम्पन्न करनेकी इच्छा तथा श्रमकी प्रतिष्ठाकी भावना जागरित करता है।[1]

मार्क्सवादी विचारकोंने मजूरी पद्धतिके विरुद्ध जो आवाज उठायी, उसने भी श्रेणी-समाजवाद आन्दोलनको विकसित करनेमें बड़ा काम किया।

प्रमुख विचारक

श्रेणी समाजवादी विचारधाराके प्रमुख विचारक हैं : ए० जे० पेण्टी, ए० आर० ओरेज, एस० जी० हाब्सन और जी० डी० एच० कोल।

पेण्टीने अपनी रचना 'रेस्टोरेशन ऑफ दि गिल्ड सिस्टम' (सन् १९०६) में शिल्पसंघोंकी स्थापनाकी बात विस्तारसे बतायी। ओरेजने 'न्यू एज' नामक पत्रके माध्यमसे इस विचारको बल दिया। हाब्सनने मार्क्सवादके आधारपर श्रेणी-समाजवादके आर्थिक सिद्धान्त गढ़े।

कोल इस विचारधाराका प्रख्यात विचारक है। इस विषयपर उसकी दो रचनाएँ विशेष रूपसे प्रख्यात हैं—'सेल्फ गवर्नमेंट इन इण्डस्ट्री' (सन् १९१७) और 'गिल्ड सोशलिज्म' (सन् १९२०)।

आन्दोलनका विकास

मध्यकालीन युगकी शिल्पसंघीय व्यवस्था श्रेणी समाजवादका मूल आदर्श है। कोल कहता है कि 'मध्यकालीन शिल्पसंघीय व्यवस्था हमारे लिए ऐसी प्रेरक शिक्षा है, जिसके आधारपर हम विश्व-हाटकी दृष्टिसे बड़े पैमानेका उत्पादन करते हुए ऐसे औद्योगिक संगठनका निर्माण कर सकते हैं, जो मानवकी उच्च भावनाओं-को प्रभावित करे और सामुदायिक सेवाकी परम्पराको विकसित करनेमें समर्थ हो।'

ओरेजने शिल्पसंघकी व्याख्या करते हुए उसे 'कार्यविशेषके लिए परस्परा-श्रित सम्पूर्ण संगठित स्वायत्तशासित सत्र' बताया। प्रत्येक शिल्पसंघमें मैनेजरसे लेकर मजदूरतक वे सभी लोग रहें, जो एक निर्दिष्ट उद्योग, व्यापार और व्यवसायमें काम करते हों। प्रत्येक संघका अपने कार्यक्षेत्रके क्षेत्रमें एकाधिकार रहे।

---

१ अशोक मेहता : एशियाई समाजवाद : एक अध्ययन, पृष्ठ १६४-१६५।

जिनमें थे राज्यके प्रति अनुकूल दृष्टिकोण रखनेवाले व्यक्ति—गुड ब्लों, आगाल, पोल्मर मनस्यान बर्नार्ड शा, वेब दम्पति, एच मारेस, गुपठी आदि। दूसरी ओर था उग्र, कट्टर और दृढ़ आत्मविश्वासी लोगोंका उपस्थ-पुथल मचा देनेवाला प्रचण्ड सोता—संघ-समाजवाद तथा श्रेणी-समाजवाद।[1]

इस धाराके विचारक अत्यन्त उग्र थे। उनमें अराजकता और समाजवादका सम्मिश्रण था। वे चाहते थे कि सारा समाज या कमसे कम श्रम-व्यवसायका संगठन शिल्पी-संघोंके आधार पर किया जाना चाहिए। वे पूँजीवादके स्थानपर मध्यकालीन युगकी भाँति उत्पादकोंके संघ स्थापित करना चाहते थे।

वे राज्यके हस्तक्षेपसे मुक्त ऐसे संघोंके माध्यमसे समाजकी आर्थिक व्यवस्था का संचालन करनेके पक्षपाती थे। उनकी यह मान्यता थी कि वास्तविक निर्माता तो शिल्पी ही होते हैं। उन्हें स्वयं ही अपने सारे कर्मकलापोंपर नियन्त्रण रखना चाहिए। उद्योगोंपर श्रमिकोंका ही आधिपत्य रहना चाहिए।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विश्वयुद्धके पूर्वकी आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितिने श्रेणी-समाजवादकी धाराको जन्म देनेमें विशेष कार्य किया। ब्रिटेनके उग्र समाजवादी लोग श्रमिक कानूनों आदिके माध्यमसे श्रमिकोंकी स्थितिमें कोई विशेष सुधार न होते देखकर हताश हो उठे थे। राज्यसत्तापरसे ही उनकी आस्था उठ गयी थी। रस्किन और कार्लाइल आदिने भी इस विचारधाराको पनपनेमें सहायता की। इन विचारकों ने इस बातकी तीव्र आलोचना की कि औद्योगिक पद्धतिमें श्रमिक कार्य तो करता है पर विवश होकर। उसे अपने कार्यमें कोई रुचि या उत्साह नहीं रहता। मशीनयुगके पीछे जो दौड़ लगी अधिककी जो तृष्णा जाग्रत हुई, उसने वस्तुके समक्ष मनुष्यको गौण बना दिया। श्रम कर्मचारीको निगल गया। लोग बड़ी आसानीसे उन पिछले दिनोंकी याद भूल गये जब दैनिक व्यवहारकी छोटी मोटी वस्तुओंके निर्माणमें भी कला कल्पना और सौन्दर्यका सामंजस्य रहता था और जब कला भी वैसी ही आवश्यक थी जैसी रोटी, कपड़ा और मक्खन आदि।

मशीनके कलके पहियोंमें कला ही नहीं पिस गयी, मानवकी प्रसन्नता भी पिस गयी। उसका उत्साह मन्द पड़ गया। उसकी उमंग जाती रही। रस्किन प्रभृतिके विलियम मारिस जैसे विचारकोंने उपयोगिताके लिए कला और सौन्दर्यकी हत्याका तीव्र विरोध किया। उधर चेस्टरटन हिलेयर बैलक जैसे विचारकोंने यह

---

१ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ २११।
२ कमलादेवी चट्टोपाध्याय : सोशलिज्म एण्ड सोसाइटी, पृष्ठ १०७।

विध्वंस आदिके उग्र उपायोंके समर्थक थे, पर कोल्के नेतृत्वमें अधिकांश व्यक्ति शान्तिपूर्ण पद्धतिसे समस्याओंका निदान करना चाहते थे। श्रमिक संघोंका यह भी कर्तव्य था कि वे श्रमिकोंके शिक्षण, संगठन और अनुशासनका भी कार्य करें, ताकि श्रमिक लोग सत्ताको विधिवत् सँभाल सकें।

आदर्शका चित्र

श्रेणी समाजवादी विचारकोंने अपने संघों और संघके महासंघोंकी एक कल्पना भी की थी, जिसमें कहा था कि विभिन्न क्षेत्रोंके स्वतन्त्र संघ स्थापित होंगे, जिनका संगठन स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय आधारपर किया जायगा। कृषकोंके संघ बनेंगे, विभिन्न व्यवसायोंके संघ बनेंगे। सारी अर्थव्यवस्था इन संघोंके हाथमें रहेगी। वे परस्पर परामर्श करके आवश्यकताके अनुरूप सारा उत्पादन करेंगे।

कोलका कहना है कि यह चित्र समग्र नहीं है, पर लोकतन्त्रात्मक पद्धतिसे समाजवादको कार्यान्वित करनेकी रूपरेखामात्र है।

श्रेणी समाजवाद यद्यपि सफलता नहीं प्राप्त कर सका, परन्तु औद्योगिक क्षेत्रमें समाजवादके विकासमें उसका महत्त्वपूर्ण हाथ है।

इतिहासकी करवट

बीसवीं शताब्दीमें इतिहासने जो करवट ली, उससे कौन अनभिज्ञ है ? प्रथम महायुद्ध, रूसकी महाक्रान्ति, द्वितीय महायुद्ध तथा विश्वके विभिन्न अंचलोंमें उपनिवेशवाद, गुलामी, अन्याय, शोषण और उत्पीड़नके विरुद्ध जो क्रान्तियाँ हुईं और हो रही हैं, उनका समाजवादी विचारधारासे प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध है ही।

आज विश्वमें पूँजीवादका अस्तित्व है तो अवश्य ही, पर समाजवादने उसका नग्न चित्र प्रकट कर उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय बना दी है। पूँजीवादको उखाड़नेमें समय भले ही लगे, पर समाजवादने उसकी जड़ें अवश्य ही खोखली कर दी हैं। समाजवादने यह माँग की है कि औद्योगिक व्यवस्थाका आधार सेवा होना चाहिए, मुनाफा नहीं, वितरण और उत्पादनपर सार्वजनिक, सहकारी या सामूहिक स्वामित्व होना चाहिए, आर्थिक बर्बादी रुकनी चाहिए, सामाजिक सुरक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिए और धनका विषम वितरण समाप्त होना चाहिए।

समाजवादी विचारकोंकी इन माँगोंने, उनके तर्कोंने और उनके आन्दोलनोंने शास्त्रीय पद्धतिके विचारकोंकी मान्यताओंको, उत्पादन और विनिमयको ही प्रश्रय देनेवाली धारणाओंको बुरी तरह ध्वस्त कर दिया है।

बीसवीं शताब्दीमें समाजवादी विचारकोंने प्रकारान्तरसे उन्हीं विचारोंको पुष्पित पल्लवित किया, जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दीमें जन्म ग्रहण किया था। रूसी क्रान्तिने मार्क्सके विचारोंको जो प्रोत्साहन दिया, वह किसीसे छिपा नहीं।

सा मूर दुनिनके शब्दोंमें 'व्यवसायमें सभी सम्पत्तिका उद्देश्य है कि और पैमानेपर उत्पादन किया जाय ताकि श्रमजीवी उत्पादनकी सारी विधियोंको जान सकें, समझ सकें और साथ-साथ काम करनेवाले लोगोंमें व्यक्तिगत सम्बन्ध एवं संतुलित गति कायम रहे। मानव मस्तिष्कके समस्त क्षमता एवं उत्पादनके दावे गौण रहें। गिल्डसंघको अपने विकासके लिए आचारका पालन करना आवश्यक है। इसे ऊपरसे नहीं लादा जा सकता।'

सन् १९१६ से गिल्डसंघकी पुनः-प्रतिष्ठाका आन्दोलन तीव्रगतिसे चला। सन् १९१५ में गिल्डसंघोंका राष्ट्रीय महासंघ 'नेशनल गिल्ड्स लीग' की स्थापना हुई। सर्वसत्ता और साम्यवादके आन्दोलके पीछे पड़ते ही बहुतसे गिल्डसंघी कम्युनिज्मके प्रवाहमें आ गये।[1]

सन् १९२५ के उपरान्त श्रेणी-समाजवादका आन्दोलन ठण्डा पड़ गया। उसका एक बड़ा कारण यह भी था कि कोलने उसके आरम्भिक सिद्धान्तोंको स्वयं ही अस्वीकार कर दिया था।

श्रेणी-समाजवादकी विशेषताएँ

श्रेणी-समाजवादकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। जैसे :

(१) राजनीतिके स्थानपर अर्थनीतिपर जोर।

(२) उत्पादक संघोंके निर्माण और विकासपर जोर।

(३) धार्मिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक तथा कलात्मक दृष्टिसे मजूरी-पद्धतिका तीव्र विरोध। उसकी पूर्ण समाप्तिके लिए जोरदार आन्दोलन।

(४) उद्योगमें श्रमिकोंके स्वायत्त शासनकी माँग जिससे :

१ श्रमिक मानव माना जाय वस्तु या पदार्थ नहीं;
२. उसे बेकारीमें रोग-बीमारीमें भी मजदूरी मिले;
३ उत्पादनपर उसका संयुक्त नियन्त्रण रहे;
४ वितरणमें उसका संयुक्त दावा रहे।

(५) लक्ष्य-पूर्तिके लिए श्रमिक संघोंका संगठन।

श्रेणी-समाजवादी श्रमिक संघोंका इस ढंगसे संगठन करना चाहते थे कि मजूरी पद्धतिकी पूर्णतया समाप्ति होकर सारी सत्ता सारा नियंत्रण श्रमिकोंके हाथ आ जाय। इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए कुछ लोग आम हड़ताल, 'धीरे चलो'

---

[1] जवाहिर मेहता : पाश्चात्य समाजवाद, पृष्ठ २१५–२२०।

भारतीय विचारधारा

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : १ :

पठान गये तो मुगल आये। मुगल गये तो अंग्रेज। सन् १७०७ में औरंगजेबका जब जनाजा निकला, तो उसीके साथ साथ मुगल साम्राज्य भी कब्रमें दफना दिया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके रूपमें सत्रहवीं शताब्दीमें भारतके व्यापारपर कब्जा करनेके लिए पधारे हुए गोरे धीरे-धीरे भारतके साम्राज्यको भी हथियानेके लिए उद्युक्त हो उठे। अंग्रेजोंके आगमनसे भारतके सुख और सन्तोषमय आर्थिक जीवनको राहु लगा।

अंग्रेजी शासन

अंग्रेजोंने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनायी। भारतकी तत्कालीन स्थितिमें उनकी फूटकी बेल खूब ही फली-फूली। छल और बल, तलवार और धोखा, प्रवंचना और विश्वासघात, सबका आश्रय लेकर उन्होंने धीरे-धीरे

संशोधनवादी हों चाहे संघवादी, फेबियनवादी हों चाहे श्रेणी-समाजवादी, लोकतान्त्रिक हों या अन्य किसी प्रकारके समाजवादी, सबके सब पूँजीवादपर नाना प्रकारसे प्रहार कर रहे हैं।

हालके समाजवादी विचारकोंमें ग्राहम वैलेस, जे० ए० हाब्सन, वाल्टर लिपमैन, जॉन डेवी, मॉरिस हिलक्विट, स्टुअर्ट चेज, सिडनी वेब, मार्गरेट वेबसन, आर० एच० टानी, विलियम राब्सन, मैक्स इस्टमैन, जी० डी० एच० कोल, पाल स्वीजी, मारिस डाब, फ्रेडरिक टकर, ओस्कर लांज, जोसेफ शुंपीटर, ए० पी० लर्नर, बारबरा वूटन, हेराल्ड लास्की आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

यों तलवार और कलम—दोनोंके सहारे बीसवीं शताब्दीमें समाजवादी विचारधारा आगे बढ़ती चल रही है। ● ● ●

भारतीय विचारधारा

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : १ :

पठान गये तो मुगल आये। मुगल गये तो अंग्रेज। सन् १७०७ में औरंगजेबका जब जनाजा निकला, तो उसीके साथ-साथ मुगल साम्राज्य भी कब्रमें दफना दिया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके रूपमें सत्रहवीं शताब्दीमें भारतके व्यापारपर कब्जा करनेके लिए पधारे हुए गोरे धीरे-धीरे भारतके साम्राज्यको भी हथियानेके लिए उत्सुक हो उठे। अंग्रेजोंके आगमनसे भारतके सुख और सन्तोषमय आर्थिक जीवनको राहु लगा।

अंग्रेजी शासन

अंग्रेजोंने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनायी। भारतकी तत्कालीन स्थितिमें उनकी फूटकी बेल खूब ही फली-फूली। छल और बल, तलवार और घूंसा, प्रवंचना और विश्वासघात, सबका आश्रय लेकर उन्होंने धीरे-धीरे

सारे भारतपर कब्जा कर ही लिया । न मराठे और हैदरअली ही उनके आगे टिक सके, न टीपू सुल्तान ही । फरासीसी बेचारे भी उनकी चालोंसे मात खाकर चुप बैठ रहे । सन् १८५६ तक भारतके अधिकांश भूभागपर यूनियन जैक फहराने लगा ।

सन् सत्तावनका विद्रोह

और उसके बाद ही हो गया सन् सत्तावनका विद्रोह । फीरोजशाह, तात्या टोपे, महारानी लक्ष्मीबाईके नेतृत्वमें भारतीय जनताने जो विद्रोह किया, उससे अंग्रेजी साम्राज्यकी नींव थरथरा उठी । भारतका दुर्भाग्य था कि उसकी आजादी की यह पहली तड़प बेकार गयी । अंग्रेजी राज्य उखड़ते-उखड़ते बचा । उसके बाद निरपराध स्त्री-बच्चों जवानों और बूढ़ोंको जिस बुरी तरहसे गोलियोंसे भूना गया, तलवारके घाट उतारा गया उसके प्रमाण ब्रिटिश पार्लमेण्टके कागजोंतकमें दर्ज हैं । अंग्रेजोंने अपनी करतूतोंसे दिखा दिया कि क्रूरतामें वे न तैमूरलंगसे पीछे हैं न नादिरशाहसे ।[1]

इस विद्रोहका परिणाम यह निकला कि ब्रिटिश सरकारने भारतके शासनकी बागडोर पूरे तौरसे अपने हाथमें ले ली ।

अंग्रेजोंको भारत क्या मिला, सोनेकी चिड़िया ही हाथ लग गयी । उन्होंने भारतकी कृषि नष्ट कर दी, उद्योग धन्धे चौपट कर दिये, व्यापार समाप्त कर दिया । भारतका खजाना, भारतका सोना, भारतके हीरा-जवाहरात जहाजोंमें भर-भरकर इंग्लैण्ड पहुँच गये और इस घटके फलस्वरूप कम्पनीके भूखों मरनेवाले मुनीम सम्राट् और भारतीय नवाबोंके चरणोंपर नाक रगड़नेवाले दो कौड़ीके गुमाश्ते लखपती करोड़पती बनकर 'साम्राज्य-निर्माता' का बिल्ला लगाकर इंग्लैण्ड पहुँचे, वहाँ उनका शानदार स्वागत किया गया, उनकी मूर्तियाँ खड़ी की गयीं और इतिहासकी पोथियोंमें उनका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखा गया ।

हर्बर्ट स्पेन्सरने लिखा है : 'कम्पनीके डाइरेक्टरोंतकने यह बात स्वीकार की है कि भारतके आन्तरिक व्यापारमें जो प्रचुर धन कमाया गया है, वह सब ऐसे घृणित अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त किया गया है, जिनसे बढ़कर अन्याय और अत्याचार कभी किसीने सुना भी न होगा !'[2]

शोषणकी कहानी

व्यापारके क्षेत्रमें कम्पनीका एकाधिकार था ही, शासनाधिकार मिल जानेसे उसे दोहरी सुविधा हो गयी । एक ओर उद्योगोंका नाश किया गया, दूसरी ओर व्यापारपर पूरा नियंत्रण कर लिया गया । सारी व्यापारिक नीतियाँ संचालन इस

---

१. मोहनलाल भट्ट : भारतवर्षका आर्थिक इतिहास पृष्ठ २१०–२११ ।

२. मोहनलाल भट्ट : वही पृष्ठ २२४ ।

३ [illegible] ११० ।

दृष्टिसे किया गया कि इंग्लैण्डके उद्योगोंका विकास करना है। जकात और चुंगी, कर और महसूल, भाड़ा और किराया, सभी बातोंमें यही लक्ष्य अपने सम्मुख रखा गया।[1]

ढाका, कृष्णनगर, चन्देरी आदिकी मसलिन, लखनऊकी छींट, अहमदाबादकी धोतियाँ, दुपट्टे, मध्यप्रान्त, नागपुर, उमरेर, पवनी आदिके रेशमी पाड़वाले वस्त्र, पालमपुर, मदुरा, मद्रास आदिके बढ़िया वस्त्रोंका उद्योग ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा ब्रिटिश सरकारकी अमलदारीमें बुरी तरह नष्ट हो गया। उसकी सारी ख्याति लुप्त हो गयी।[2]

वस्त्र उद्योग भारतका सर्वोत्कृष्ट उद्योग था। वह बुरी तरह चौपट कर दिया गया। सर विलियम हेटरने लिखा है कि देशी अदालतोंकी समाप्ति, गोरे पूँजीपतियोंकी चालों तथा विभिन्न परिस्थितियोंने भारतीय जुलाहोंको विवश कर दिया कि वे करघा छोड़कर हल चलायें। अन्य छोटे-मोटे अनेक उद्योग भी नष्ट हो गये।[3]

देशकी कृषि उधर चौपट हो रही थी। कृषक ऋण-भारसे पिसा जा रहा था। उसका भार सन् १८९५ में जहाँ ४५ करोड़ था, वहाँ सन् १९११ में वह ३०० करोड़ हो गया, सन् १९३७ में १८०० करोड़।[4] भूमिपर लोगोंकी निर्भरता बढ़ने लगी। सन् १८९१ में जहाँ ६१·१ प्रतिशत व्यक्ति कृषिपर निर्भर रहते थे, सन् १९११ में ६६·५ प्रतिशत हो गये और सन् १९४१ में ७४ प्रतिशत।[5]

कृषकका यह हाल, उधर मजबूर मिलोंकी ओर दौड़ने लगा। वहाँ न उसे भरपेट खाना था, न कपड़ा, मकानकी जगह खुला आकाश! सन् १९२३ में बम्बई सरकारने जाँच की, तो निष्कर्ष निकला कि मजदूरोंकी खुराक बम्बई जेल मैनुएलमें लिखी कैदियोंकी साधारण खुराकसे भी गयी बीती है।[6]

क्लाइवके जमानेसे अंग्रेजोंने भारतकी जो चतुर्मुखी लूट मचायी, उसकी कहानी पत्थरका भी हृदय द्रवित करनेवाली है। इस लूटका ही परिणाम था कि सन् १७५० में इंग्लैण्डमें जहाँ १२ बैंक थे, सन् १७९० में प्रत्येक नगरमें एक बैंक खुल गया।[7] प्लासी और वाटरलूके युद्धोंके बीच भारतसे १ अरब पौण्ड

१ एन० जे० शाह हिस्ट्री ऑफ इण्डियन टैरिफ्स, अध्याय ४।
२ गाडगिल इण्डस्ट्रियल एवोल्यूशन ऑफ इण्डिया, पृष्ठ ३२-४५।
३ रामचन्द्र राव डिके ऑफ इण्डियन इण्डस्ट्रीज, पृष्ठ ६८।
४ कन्हैयालाल मुंशी दि रिउन दैट मिटेन राट, पृष्ठ ८५-८६।
५ मुंशी वही, पृष्ठ ६१।
६ बी० शिवराव दि इण्डस्ट्रियल वर्कर इन इण्डिया, पृष्ठ १८५।
७ ब्रुकएडम्स ला ऑफ सिविलिजेशन एण्ड डिके, पृष्ठ ३१६।

ब्रिटिश बैंकोंमें पहुँच गये ।[1] इस दाममें लेकर ब्रिटिश सरकारने सार्वजनिक ऋणके नामपर अन्धाधुन्ध रुपया भारतके मत्थे मढ़ा । सन् १९२१ तक यह रकम १८ ५ करोड़से ऊपर हो गयी । यह चक्र विनिमयके बहाने, आयात-निर्यातके बहाने, पौण्ड-पावनेके बहाने खूब चलता रहा । ब्रिटिश-शासनका सारा आर्थिक इतिहास लूट, शोषण और अन्यायका ही भयंकर इतिहास है ।

दरिद्रताकी चरम सीमा

परिणाम यह हुआ कि विश्वका सबसे समृद्ध देश सबसे दरिद्र बन गया । खाने-पीनेके लाले पड़ गये । दुर्भिक्षोंका ताँता लग गया । सन् १८ से १८११ तक ५ दुर्भिक्षोंमें १ लाख, सन् १८२५ से १८५० तक २ दुर्भिक्षोंमें ४ लाख, सन् १८५ से १८७१ तक ६ दुर्भिक्षोंमें ५ लाख, सन् १८७१ से १९ तक १८ दुर्भिक्षोंमें २६ लाख व्यक्ति मृत्युके घाट उतरे । सन् १९४३ के बंगालके दुर्भिक्षने तो इस भयंकरताको चरम सीमापर पहुँचा दिया । उसमें सरकारी दुर्भिक्ष कमीशनके हिसाबसे १५ लाख और कलकत्ता विश्वविद्यालयकी रिपोर्टके अनुसार ३५ लाख व्यक्ति कीड़े मकोड़ोंकी भाँति तड़प-तड़पकर मरे ।[2]

मुगलोंके शासनकालमें भारतकी आर्थिक स्थिति कुछ बिगड़ने तो लगी थी पर विशेष नहीं । कारण ये शासक भारतमें ही बस गये थे और उन्होंने अपनी संस्कृति भारतीय संस्कृतिमें ही एकाकार कर दी थी । फलतः भारतको कोई विशेष क्षति सहन नहीं करनी पड़ी । अंग्रेजोंने इसके सर्वथा विपरीत मार्ग पकड़ा । वे भारतमें रहते थे, भारतमें फलते-फूलते थे, भारतके अन्न और धनसे परिपुष्ट होते थे पर भारतका हित उनका हित नहीं था । उनकी दृष्टिमें इंग्लैण्डका ही हित सर्वोपरि था, पाश्चात्य संस्कृति ही सर्वस्व थी । भारतीय जनताका चतुर्मुखी शोषण ही उन्होंने अपना ध्येय बनाया । पाश्चात्य संस्कृति भारतपर लादनेका जी-तोड़ प्रयत्न किया । मैकालेने काले दुभाषियोंकी फौज खड़ी करनेके उद्देश्यसे यहाँ अंग्रेजी शिक्षा चालू की । भारतीयोंको आपसमें लड़ानेके लिए मसलों और कचहरियों लोकी पंचायतें चौपट की । भारतका कच्चा माल ले जाने और ब्रिटेनके पक्के मालसे भारतको पाट देनेके लिए रेलकी पटरियाँ बिछायी । आयात निर्यातके ऐसे कानून बनाये, ऐसे ऐसे कर लगाये कि जिससे भारतकी अर्थव्यवस्था चौपट हो जाय । 'होमचार्ज' के रूपमें वे भारतकी अटूट सम्पत्ति विलायत ले जाने लगे । भारतके आर्थिक शोषणकी यह कहानी किससे छिपी है ? इसके फलस्वरूप यहाँपर दरिद्रताका नंगा नाच होना स्वाभाविक ही था ।

---

१ विलियम डिग्बी : प्रॉस्परस ब्रिटिश इण्डिया पृष्ठ ३२।

२ कुमारप्पा : पब्लिक फिनान्स एण्ड अवर पावर्टी पृष्ठ २ ।

३ श्रीकृष्णदत्त भट्ट : भारतवर्षका आर्थिक इतिहास पृष्ठ ५ ६-५ ४ ।

राजनीतिक चेतना

विदेशी सत्ताके दोष कबतक छिपते? सत्तावनकी क्रान्ति विफल होनेके उपरान्त भी सन् १८६६-६७ की वहाबी मुसलमानोंकी सशस्त्र क्रान्तिकी चेष्टा, सन् १८७२ के कूका-विद्रोह और बम्बईमें किसानोंके संगठित आन्दोलनने यह बात स्पष्ट कर दी कि आग बुझी नहीं, भीतर ही भीतर सुलग रही है। वासुदेव बलवंत फड़केने सन् १८६९ से १९१९ तक देशमें सशस्त्र क्रान्तिके लिए और प्रजासत्ताक राज्यकी स्थापनाके लिए कई प्रयत्न किये, पर जनताने उसका साथ नहीं दिया।

एक ओर क्रान्तिकी लपटें सुलगने लगीं, दूसरी ओर धार्मिक पुनरुज्जीवनका प्रवाह चला। राममोहन रायका ब्रह्म-समाज, पंजाबमें देव-समाज और बम्बईमें प्रार्थना-समाजने इस दिशामें कुछ काम किया। सैयद अहमद खाँने शिक्षाके क्षेत्रमें कुछ जाग्रति उत्पन्न की। देशमें बढ़ती हुई राजनीतिक चेतनासे अंग्रेजोंका माथा ठनका। वे उसकी रोकथामके लिए कुछ करना चाहते थे। इसी उद्देश्यसे सन् १८८५ में कांग्रेसका जन्म हुआ।

इटावाके कलक्टर ह्यूम साहब भला क्या जानते थे कि वे जिस कांग्रेसको जन्म दे रहे हैं, वही आगे चलकर ब्रिटिश नौकरशाहीकी समाप्तिका कारण बनेगी। पट्टाभिके शब्दोंमें 'कुछ दिनोंतक हाईकोर्टकी जजी पानेका सरल उपाय यह था कि कांग्रेसके कार्यमें दिलचस्पी ली जाय।' पर यह चाल अधिक दिनोंतक नहीं चल सकी।

इधर आर्य-समाज और थियासॉफिकल सोसाइटी जैसी संस्थाएँ और रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द जैसे व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टिसे जागरणकी लहर फैला रहे थे, उधर राजनीतिक आन्दोलन भी आरम्भ हो गये। बंगालके क्रान्तिकारी लोग फाँसीके तख्तेपर लटककर देश-प्रेमकी भावनाका विस्तार करने लगे। कांग्रेसमें नरम और गरम दल सक्रिय हो उठे। तिलकने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' यह घोषणा की। विश्वयुद्धकी समाप्तिपर भारतको 'जलियानवाला बाग' का पुरस्कार मिला। गांधीका राजनीतिक क्षेत्रमें पदार्पण हुआ और उसके अहिंसा और सत्यके अस्त्र द्वारा कांग्रेसने '४२ की अगस्त-क्रान्तिके बाद १५ अगस्त सन् १९४७ को स्वाधीनता प्राप्त कर ली। ● ● ●

यंत्रके जन्मने बड़े उद्योगोंको जन्म दिया। चरखे और करघेके स्थानपर बड़ी बड़ी मशीनें खड़ी हुईं। जिस काममें सप्ताह मास और वर्ष लगते थे वह चुटकियोंमें होने लगा। एक मशीन हजारोंका काम करने लगी। यूरोपमें इस यंत्र-दानवने क्रान्ति मचा दी। यह दानव ही भारतीय उद्योगोंके मूलपर कुठाराघात करनेवाला सिद्ध हुआ। ब्रिटिश मिलोंने अपने मालसे भारतका सारा बाजार पाट दिया। भारतकी व्यापार-नीति ब्रिटेनके व्यापारियों और उनके पंजेमें रहनेवाली ब्रिटिश सरकारके हाथमें थी। अतः अबाध वाणिज्य और मुक्तद्वार वाणिज्यके नाम-पर भारत ब्रिटिश मालकी मण्डी बनाया गया। यहाँसे कच्चा माल ब्रिटेन जाने लगा। भारतकी छातीपर ब्रिटेनके उद्योग पनपने लगे।[1] लंकाशायर और मानचेस्टरकी मिलोंके मजदूर काम पाते रहे, भारतके कारीगर सर्वहारा-वर्गके सदस्य बनकर दर-दर भटकते रहे।

एक ओर यह स्थिति थी दूसरी ओर 'होमचार्ज' के नामपर यूरोपियन अधिकारियोंके वेतनके नामपर, उनकी पेंशन और भत्तेके नामपर उनकी बचतके नामपर भारतकी अपार सम्पत्ति जहाजोंमें लद लदकर ब्रिटेन पहुँच रही थी। सम्पत्तिके इस प्रवाहने भारतकी नसोंका रक्त चूस डाला।

दादाभाई नौरोजी

'भारतके दारिद्र्यका कारण क्या है, उसकी यह दयनीय स्थिति क्यों है?' यह ऐसा प्रश्न था, जिसका समाधान खोजनेकी ओर सबसे पहले हमारे जिस विचारकका ध्यान गया वह था—दादाभाई नौरोजी (सन् १८२५–१९१७)।

जिन दिनों मार्क्स अपनी 'दास कैपिटल' की रचनाके लिए प्रतिदिन ब्रिटिश संग्रहालयमें बैठकर पूँजीवादकी गतिके सिद्धान्तकी खोज कर रहा था उन्हीं दिनों यह भारतीय विचारक भी वहीं बैठकर 'पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया' की सामग्री जुटा रहा था और 'उत्सारण-सिद्धान्त' (Drain Theory) की खोज कर रहा था। अशोक मेहताका कहना है कि हमारे पास यह जाननेका कोई साधन नहीं है कि मार्क्स और दादाभाईमें कभी मुलाकात और बातचीत हुई या नहीं

---

१ श्रीकृष्णदत्त भट्ट : भारतवर्षका आर्थिक इतिहास, पृष्ठ १२८।
२ वही, पृष्ठ १११।

पर यह तो है ही कि इन दोनों महान् बुद्धिवादियोंने विश्वको प्रकम्पित कर देनेवाले दो सिद्धान्तोंको एक साथ जन्म दिया। मार्क्स जहाँ एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्गके शोषणसे चिन्तित था, दादाभाईके चिन्तनका विषय था—एक देश द्वारा दूसरे देशका शोषण।[1]

जीवन-परिचय

४ सितम्बर १८२५ को बम्बईके एक सम्पन्न पारसी परिवारमें जन्म लेकर दादाभाई नौरोजी वकील बना और सामाजिक जीवनमें भाग लेने लगा। सन् १८८६, १८९३ और १९०६ में वह कांग्रेसका अध्यक्ष बना। कांग्रेसके द्वितीय अधिवेशनके अध्यक्ष-पदसे उसने यह घोषणा की कि 'यह कांग्रेस सामाजिक नहीं है, यह धार्मिक नहीं है, यह साम्प्रदायिक नहीं है, यह जातीय नहीं है, यह कांग्रेस अखिल भारतीय कांग्रेस है और इसका सम्बन्ध केवल राजनीतिक संस्थाओंसे रहेगा।' दादाभाईने ही सन् १९०६ में कलकत्ता कांग्रेसमें 'स्वराज्य' शब्दकी घोषणा की।[2]

जीवनके अन्तिम दिनोंमें दादाभाई इंग्लैण्डमें जाकर बस गया। वहाँ लिबरल दलकी ओरसे वह पार्लमेण्टका सदस्य चुन लिया गया।

सन् १९१७ में दादाभाईका देहान्त हो गया।

प्रमुख आर्थिक विचार

दादाभाईने ब्रिटिश सरकारके शोषण और दोहनके विरुद्ध कड़ी आवाज उठायी। उसपर शास्त्रीय विचारधाराका और मुख्यतः मिलका विशेष प्रभाव था। दादाभाईकी मान्यता थी कि उद्योगकी सीमाका निर्धारण पूँजी द्वारा होता है और पूँजीकी अभिवृद्धि होती है बचत द्वारा। मार्क्सकी भाँति दादाभाईकी भी धारणा थी कि श्रमिक ही वास्तविक उत्पादक है। विभिन्न प्रकारकी सेवाएँ अनुत्पादक हैं। जो लोग अनुत्पादक हैं, वे भी श्रमिक द्वारा उत्पन्न वस्तुसे ही जीवित रहते हैं।

दादाभाईकी यह भी मान्यता है कि अर्थशास्त्रको समाजशास्त्र, राजनीति तथा नीतिशास्त्रसे पृथक् नहीं किया जा सकता।

---

१ अशोक मेहता : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पृष्ठ ३११-३१२।
२ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय-दर्शन, १९५७, पृष्ठ ३१६।

दादाभाईकी अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है 'पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया।' उसमें भारतकी दरिद्रताका विशद विवेचन है।

दादाभाईका कहना था कि २) वाणिज्यकी आय, आयात-निर्यातकी कमी, सरकार द्वारा लगाये जानेवाले अनेक कर सेनापर अन्धाधुन्ध खर्च, समय-समयपर पड़नेवाले दुर्भिक्ष, महामारियाँ आदि भारतकी दरिद्रताके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

दादाभाईकी मुख्य देन दो हैं :

(१) राष्ट्रीय आयका निर्धारण और

(२) उत्सारण-सिद्धान्त।

१ राष्ट्रीय आयका निर्धारण

दादाभाईने सन् १८६७—७ के बीच भारतकी आर्थिक स्थितिका विधिवत् विश्लेषण करके यह निष्कर्ष निकाला कि आज भारतकी आय प्रतिव्यक्ति २) सालाना है।

उनका कहना था कि जेलोंमें रहनेवाले अपराधियोंको जितना भोजन और वस्त्र दिया जाता है, उतना भी प्रत्येक भारतवासीको उपलब्ध नहीं। जीवनकी अनिवार्य आवश्यकताओंका जब यह हाल है, तो अन्य भोग-सामग्रीका तो प्रश्न ही नहीं उठता। भारतवासियोंकी सामाजिक और धार्मिक आवश्यकताओंकी भी पूर्ति नहीं हो पाती सुख-दुःखके अवसरोंपर अथवा रोग बीमारी या संकटोंका सामना करनेके लिए भी उनके पास कुछ नहीं रहता। इसका परिणाम यह होता है कि भारतवासियोंको पूरा नहीं पड़ता है और उन्हें पूँजीमें से ही खाना पड़ता है।

भारतकी राष्ट्रीय आय कूतनेवाला सर्वप्रथम व्यक्ति दादाभाई नौरोजी ही था। उसके बाद तो अन्य लोगोंने भी इस दिशामें कदम उठाया। सन् १८८२ में क्रोमर और बारबरने भारतकी प्रतिव्यक्ति आय २७) वार्षिक कूती सन् १८९८ ९ में विलियम डिगबीने १७॥) कूती सन् ११ में लार्ड कर्जनने १) कूती; सन् १९२१ में के टी शाहने ९४) कूती। सन् १९४८ में भारतकी राष्ट्रीय आय २२८) प्रतिव्यक्ति थी जब कि इंग्लैण्डमें प्रतिव्यक्तिकी आय २५७७) थी और अमेरिकामें ५१११) प्रतिव्यक्ति। इन आँकड़ोंसे भारतकी दयनीय स्थितिकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। हमारी स्थिति कैसी है इसकी जाँचका यह पैमाना खड़ा करनेका श्रेय दादाभाई नौरोजीको ही है।

---

१ श्रीकृष्णदत्त भट्ट भारतवर्षका आर्थिक इतिहास पृ ५ ९।
२ इंडिया इन वर्ल्ड इकोनॉमी जनवरी १९५१ पृ १९।

२. उत्सारण-सिद्धान्त

अपने उत्सारण सिद्धान्त (Drain Theory) की व्याख्या करते हुए दादाभाई कहता था कि ब्रिटेन भारतवर्षका शोषण और दोहन कर रहा है। भारतसे करके रूपमें जो पैसा वसूल किया जाता है, वह सबका सब भारतवासियोंपर खर्च नहीं किया जाता। जिस प्रकार इंग्लैण्ड अपने देशवासियोंसे ७ करोड़ पौण्ड वसूल करके पूरी रकम इंग्लैण्डवालोंके लिए ही खर्च करता है, उसी प्रकार ब्रिटेन भारतवासियोंसे वसूल की गयी ५ करोड़ पौण्डकी पूरी रकम भारतवासियोंके लिए खर्च नहीं करता। उसमेंसे २ करोड़ पौण्ड हर साल इंग्लैण्डके लोग अपने यहाँ खींच ले जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतिवर्ष भारतकी उत्पादन शक्तिका ह्रास होता जाता है। साथ ही भारतको अपने निर्यातपर कोई लाभ नहीं प्राप्त होता। इंग्लैण्डवाले भारतसे बीमा, जहाजरानी और मुनाफा आदिके रूपमें बहुत सा धन अपने देशमें खींच ले जाते हैं। ब्रिटेनवासी भारतकी सुरक्षाकी कोई समुचित व्यवस्था नहीं करते, उलटे अपने लाभके लिए भारतवासियोंका भरपूर शोषण करते हैं। अंग्रेज अफसरोंके वेतन, भत्ते, पेंशन आदिके नामपर भारतसे तीन करोड़ पौण्ड हर साल लूटे जा रहे हैं। फलत: भारतके उद्योग-धन्धों और वाणिज्य-व्यवसायको पनपनेका कोई अवसर ही नहीं मिलता। इस उत्सारणके फलस्वरूप भारत दिन दिन निर्धन होता जा रहा है।

'पावर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया' में भारतकी दरिद्रताके कारणोंका विश्लेषण करते हुए दादाभाईने इस बातपर जोर दिया कि 'होमचार्ज' के नामसे ब्रिटेन भारतकी जो लूट कर रहा है, वह बन्द होनी चाहिए। सन् १८३५ में जहाँ 'होमचार्ज' के नामपर ५० लाख पौण्ड भारतसे लिया जाता था, वहाँ सन् १९०० में ३ करोड़ पौण्ड लिया जाने लगा। उसका कहना था कि अंग्रेज अफसरोंकी बचत, वेतन और भत्तेकी यह भारी रकम जबतक बन्द नहीं होती, तबतक भारतकी दरिद्रता मिटनेवाली नहीं।

दादाभाई नौरोजीकी मान्यता थी कि ब्रिटिश शासनके कारण ही भारतमें इतनी भयंकर दरिद्रता है। 'होमचार्ज' सार्वजनिक ऋणके ब्याज आदिके बहाने वह भारतका 'जीवन-रक्त' खींच रहा है। आज भारतमें रोग और मृत्युकी संख्या बहुत है, दुष्कालपर दुष्काल पड़ रहे हैं, उसका आयात-निर्यात इतना कम है, सरकारी करोंसे होनेवाली आय भी कम ही है। इन सब बातोंसे भारतकी दरिद्रता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। सरकारको चाहिए कि वह भारतकी यह लूट बन्द करे, भारतमें विदेशी अधिकारी रखना कम करे और देशस्थ लोगोंको ही नौकर रखे। तभी यह लूट कम हो सकेगी।

थ्योडार मारिसनने दादाभाईके उत्सारण-सिद्धान्तको झूठ बताकर गलत सिद्ध करनेकी चेष्टा की कि भारतका शोषण या आर्थिक निर्दोहन बिल्कुल ही नहीं किया गया, क्योंकि प्रत्येक व्यय सेवाओंके लिए किया गया या भारतमें आये मालके लिए किया गया।

रमेशचन्द्र दत्त

भारतीय सिविल सर्विसका अफसर रहनेपर भी रमेशचन्द्र दत्त (सन् १८४८–१९०९) की राष्ट्रीयता कम न हुई। भारतकी दरिद्रता दादाभाईको जिस भाँति खटकती थी, रमेशचन्द्र दत्तको भी वह उसी भाँति खटकी। सन् १८९९ में वह भी कांग्रेसका अध्यक्ष चुना गया था। इतिहासका विद्वान् होनेके नाते लन्दन विश्वविद्यालयमें वह प्राध्यापक नियुक्त हुआ था।

प्रमुख रचना

'इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' (२ खण्ड) रमेशचन्द्र दत्तकी वह हृदयस्पर्शी रचना है, जिसने भारतकी दरिद्रताका नग्न चित्र उपस्थित करके असंख्य लोगोंको प्रभावित किया। 'हिन्दस्वराज' में गांधीने मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है कि उक्त पुस्तकने मुझपर विशेष रूपसे प्रभाव डाला है और उसके द्वारा मैं यह जान सका कि मानचेस्टरके मिल-वालोंने किस प्रकार भारतके ग्रामोद्योगोंको चौपट करके उसको निर्धन बनाया।

प्रमुख आर्थिक विचार

रमेशचन्द्र दत्तने भारतकी दरिद्रताके कारणोंपर विस्तारसे विचार किया। उनने कहा कि अंग्रेज व्यापारियोंने भारतका कच्चा माल खरीदकर अपना पक्का माल यहाँ बेचनेकी जो नीति पकड़ी, उसके कारण भारतीय उद्योग पूरी तरह चौपट हो गये। इससे कारीगर बेकार होकर कृषिकी ओर झुके और कृषिके लिए उसका भी सम्भालना कठिन हो गया। उधर कृषिका यह हाल है कि वह वर्षापर आश्रित रहती है जिसका स्वयं कोई ठिकाना नहीं। फलतः अकालपर अकाल पड़ते हैं। इसपर नाना प्रकारके कर लगाकर सिंचाई करानेवाले किसानोंकी कमर और भी तोड़ दी है।

रमेशचन्द्र दत्तने भी दादाभाईकी तरह माँग की कि भारतकी दरिद्रता मिटानेके लिए यह आवश्यक है कि अंग्रेजोंके स्थानपर भारतीय लोग ही उच्च पदोंपर नियुक्त किये जायँ। सैनिक और सरकारी व्यय घटाये जायँ। सार्वजनिक ऋण कम किया जाय। उसने ग्रामोद्योगोंको प्रोत्साहन देने, भूमि सुधार करने, स्थायी बन्दोबस्तवाली भूमिपर केवल ५० प्रतिशत लगान लेने और रैयतवारी क्षेत्रोंमें २० प्रतिशत करपर ३० सालके पट्टोंकी माँग की। वर्षाकी अनिश्चितताके चंगुलसे कृषककी रक्षा करनेके लिए रमेशचन्द्र दत्तने यह माँग की कि सरकार सिंचाईकी समुचित व्यवस्था करे, नहरें खोले और इस प्रकार दुर्भिक्ष और अर्थ-संकटसे भारतवासियोंको मुक्त करे।

सबसे पहले भारतका आर्थिक इतिहास लिखने और भूमि-सुधारका सुझाव देनेवाला पहला विचारक है—रमेशचन्द्र दत्त।

रानाडे

'प्रार्थना-समाज' का संस्थापक महादेव गोविन्द रानाडे (सन् १८४२—१९०१) था तो बम्बई हाईकोर्टका न्यायाधीश, पर अर्थशास्त्रका उसका अध्ययन अत्यन्त गम्भीर था। भारतीय आर्थिक विचारधाराके निर्माताओंमें उसका विशिष्ट स्थान है।

जीवन-परिचय

१८ जनवरी १८४२ को नासिकमें महादेव गोविन्द रानाडेका जन्म हुआ। उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके उपरान्त सन् १८६४ में वह बम्बईमें अर्थशास्त्रका प्राध्यापक नियुक्त हुआ। सन् १८६७ में वह कोल्हापुर राज्यका न्यायाधीश नियुक्त किया गया। सन् १८८५ में वह बम्बई विधानसभाका कानूनी सदस्य बना। अगले वर्ष वह भारत सरकार द्वारा नियुक्त व्यय तथा छटनी समितिमें बम्बई सरकारके प्रतिनिधिके रूपमें लिया गया। सन् १८९३ में वह बम्बई हाईकोर्टका जज नियुक्त किया गया।

सन् १९०१ में रानाडेका देहान्त हो गया।

प्रमुख आर्थिक विचार

रानाडेकी प्रसिद्ध रचना है—'एसेज ऑन इण्डियन पोलिटिकल इकॉनॉमी' (सन् १८९०—९२)। सन् १८९२ में महादेव गोविन्द रानाडेने दक्षिण कॉलेज, पूनामें सबसे पहले 'भारतीय अर्थशास्त्र' शब्दका प्रयोग किया। उसकी यह मान्यता है कि पाश्चात्य सिद्धान्तोंको आँख मूँदकर भारतपर लागू नहीं करना चाहिए। इतिहास, अनुभव एवं परीक्षणके आधारपर अर्थशास्त्रका अध्ययन होना चाहिए।

रानाडेके आर्थिक विचारोंको तीन भागोंमें विभाजित कर सकते हैं :

१ शास्त्रीय विचारकोंकी आलोचना,
२ भारतीय अर्थशास्त्र और
३ मुक्त वाणिज्यका विरोध ।

१ शास्त्रीय विचारकोंकी आलोचना

रानाडेने ऐडम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस, जेम्स मिल, मैकुलक, सीनियर आदि शास्त्रीय धाराके विचारकोंकी विस्तारसे आलोचना की। उनका कहना था कि शास्त्रीय विचारधाराकी धारणाएँ समाजको स्थिर मानकर चलती हैं, पर समाजके परिवर्तनशील होनेके कारण वे किसी भी समाजपर लागू नहीं होतीं।

शास्त्रीय पद्धतिके विचारक मानते हैं कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था वस्तुतः व्यक्तिवादी है और इसका कोई पृथक् महत्त्व नहीं है। 'आर्थिक व्यक्ति' केवल अपना हित बढ़ाना चाहता है, जिसके लिए उत्पादन बढ़ना आवश्यक है। व्यक्तिगत अपने लाभसे ही सार्वजनिक लाभमें वृद्धि होती है। पारस्परिक सौदेमें पूर्ण स्वतंत्रता रहनी चाहिए। सामाजिक तथा राजनीतिक नियंत्रणोंसे व्यक्तिकी स्वतंत्रता कुण्ठित होती है। खाद्यपदार्थोंकी अपेक्षा जनसंख्याकी वृद्धि तीव्रता से होती है। माँग और पूर्तिमें सामंजस्य स्थापित होता रहता है। पूँजी और श्रम एक व्यवसायसे दूसरेमें स्वतंत्रतापूर्वक आते-जाते रहते हैं।

रानाडेकी मान्यता थी कि शास्त्रीय विचारधाराकी उपर्युक्त धारणाएँ केवल धारणाएँ ही हैं। अन्य देशोंकी तो बात ही क्या, इंग्लैण्ड जैसे धनी देशपर भी ये लागू नहीं होतीं। भारतपर तो लागू होती ही नहीं। पूँजी और श्रममें कोई गतिशीलता नहीं है। मजदूरी और लगान भी स्थिर हैं। जनसंख्याका अपना सिद्धान्त है। रोगों और दुर्भिक्षोंके द्वारा उसमें यथासमय छँटनी होती जाती है।

ऐतिहासिक पद्धतिका समर्थन करते हुए रानाडे कहते हैं कि भूतकालका अध्ययन करके भविष्यके मार्गका निर्धारण करना चाहिए। उनका मत था कि अर्थशास्त्रके अध्ययनका केन्द्रबिन्दु न तो व्यक्ति होना चाहिए और न उसका हित। अर्थशास्त्रका केन्द्रबिन्दु होना चाहिए वह समाज, जिसकी इकाई व्यक्ति है।

२. भारतीय अर्थशास्त्र

रानाडेने भारतकी आर्थिक स्थितिका विवेचन करके यह निष्कर्ष निकाला कि भारतकी दरिद्रताके लिए ब्रिटिश सरकारकी पक्षपातपूर्ण नीति ही उत्तरदायी है। उसकी व्यापारिक नीतिके कारण भारतके उद्योग-धंधे चौपट हो रहे हैं। कारीगर बेकार हो रहे हैं। खेतीपर भार बढ़ रहा है। खेतीके सुधारपर सरकार कोई ध्यान नहीं दे रही है। नये उद्योग-धंधोंको भी सरकार पनपने नहीं दे रही है।

भारतमें बैंकोंका अभाव होनेसे व्यापारियोंको पर्याप्त मात्राम धन नहीं मिल पाता। इन सब कारणोंसे भारतकी दरिद्रता दिन दिन बढ़ती जा रही है।

रानाडेका मत था कि सरकारको नये-नये उद्योगोंकी स्थापना करनी चाहिए। उद्योगोंको भरपूर सरकारी सरक्षण मिलना चाहिए। पूँजीपतियोंका सघ बनाकर नये बैंकोंकी भी स्थापना करनी चाहिए। कृषिके सुधारकी ओर सरकारको भरपूर ध्यान देना चाहिए और लगान-सम्बन्धी अपनी नीतिमें सुधार करना चाहिए। जनसख्याको नियोजित करनेके लिए सरकारको उचित प्रयत्न करने चाहिए। घनी आबादीवाले स्थानोंसे लोगोंको कम आबादीवाले स्थानोंपर ले जाकर बसाना चाहिए।

३. मुक्त-वाणिज्यका विरोध

रानाडे मुक्त-वाणिज्यका तीव्र विरोधी था। वह सरक्षित व्यापारका पक्षपाती था। उसकी धारणा थी कि ब्रिटिश सरकारकी आर्थिक नीतिके फलस्वरूप भारतके उद्योग-धन्धे चौपट होते जा रहे हैं। कृषिप्रधान भारत देशकी सरकार कृषिके विकासकी ओर कोई ध्यान नहीं दे रही है।

रानाडेके विवेचनमें न्यायाधीशकी तार्किकता और तटस्थवृत्ति है। उसने भारतीय अर्थशास्त्रकी ओर लोगोंका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट किया।

गोखले

रानाडेका शिष्य, भारत-सेवक समाजका सस्थापक एव गाधीका प्रेरक गोपाल कृष्ण गोखले भी भारतके अर्थशास्त्रके प्रतिष्ठापकोंमेंसे एक है।

गोखले राजनीतिक नेता था, पर उसकी अर्थशास्त्रीय विचारधारा दादाभाई, रमेशचन्द्र दत्त और रानाडेसे मिलती-जुलती ही थी। गुलामीके अभिशापसे पीड़ित राष्ट्रके प्रमुख विचारकोंमें ऐसी भावना स्वाभाविक भी थी।

पी० के० गोपालकृष्णनने ठीक ही कहा है कि 'गोखलेको शिक्षा मिली थी शास्त्रीय विचारधाराकी, रुचिसे वह गणितज्ञ था, पर आवश्यकताने उसे अर्थ-शास्त्री और अकशास्त्री बना दिया। वह अपने युगका सच्चा विश्वप्रेमी था।' राजनीतिमें विरोधी होनेपर भी तिलकका कहना था कि 'गोखले भारतका हीरा था, महाराष्ट्रका रत्न और कार्यकर्ताओंका सम्राट्।'

जीवन-परिचय

सन् १८६६ में कोल्हापुरमें गोपाल कृष्ण गोखलेका जन्म हुआ। सन्

१८८४ में वह स्नातक हुआ। बादमें उसने पूनाके फर्ग्युसन कॉलेजमें अंग्रेजी साहित्य और गणितका अध्यापन किया। सन् १८८७ में वह 'सार्वजनिक सभा' का सम्पादक बना। सन् १९ में वह बम्बई विधान सभाका सदस्य चुना गया। सन् १९ २ में वह वाइसरायकी कार्यसमितिका सदस्य बना। सन् १९ ५ में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका अध्यक्ष चुना गया।

समाज-सेवामें गोखलेकी अत्यधिक रुचि थी। इसी भावनाको व्यावहारिक रूप प्रदान करनेके लिए उसने भारत सेवक-समाज (Servants of India Society) की स्थापना की। यह संस्था आज भी विभिन्न रूपोंमें समाजकी सेवा कर रही है।

सन् १९१५ में गोखलेका देहान्त हो गया।

प्रमुख आर्थिक विचार

गोखलेके आर्थिक विचारोंको तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है

(१) सार्वजनिक व्यय
(२) अफीमके निर्यातका विरोध और
(३) भारतकी आर्थिक अवस्था।

१ सार्वजनिक व्यय

गोखलेने भारतके सार्वजनिक व्ययकी तीव्र आलोचना करते हुए यह मत व्यक्त किया कि भारतमें नागरिक और सैनिक—दोनों ही व्यय अत्यधिक हैं। इसके फलस्वरूप हमारी जाति दिन-दिन क्षीण होती जा रही है। हमारे नवयुवकोंमें स्वतंत्र देशके नागरिकों जैसा बड़प्पन नहीं आ रहा है। सरकारका खर्च बढ़ता जा रहा है। देशकी उत्पत्ति, वितरण और उपभोगपर उसका दुष्प्रभाव पड़ रहा है।

गोखलेकी मान्यता थी कि सरकारी व्यय-व्यवस्थाके द्वारा वितरणकी असमानता दूर की जा सकती है।

२. अफीमके निर्यातका विरोध

भारत द्वारा चीनको अफीमके निर्यातका गोखलेने तीव्र विरोध करते हुए कहा कि अफीम किसी भी देशके नागरिकोंके हितमें नहीं होती। चीनको भारतसे

अफीम भेजी जाय, यह अनैतिक है। चीनवासियोंके हितमें भारत सरकारको अफीमका निर्यात बन्द कर देना चाहिए।

३ भारतकी आर्थिक व्यवस्था

गोखलेको यह बात सर्वथा अस्वीकार थी कि भारतकी अर्थव्यवस्था अंग्रेजी सरकारके हितमें हो। उसका कहना था कि सभी देशोंमे वहाँके करदाताओंका अपनी अर्थव्यवस्थापर नियन्त्रण रहता है, पर पराधीन भारतमें ऐसा नहीं है। भारतकी दरिद्र जनतापर करोंका अन्धाधुन्ध भार है। संसारके किसी भी देशकी जनतापर करोंका इतना अधिक भार नहीं है।

गोखलेने सुझाव दिया था कि भारतके व्ययपर नियन्त्रण करनेके लिए एक नियन्त्रण-समिति स्थापित की जाय। उसने सैनिक व्ययमें कमी करनेपर जोर दिया और नमक करका तीव्र विरोध किया। भूमिकी उर्वराशक्ति बढानेपर तथा कृषिकी स्थिति सुधारनेपर भी उसने बड़ा जोर दिया।

नौरोजी, दत्त, रानाडे और गोखलेने भारतीय आर्थिक विचारधाराके विकासमें नींवके पत्थरका काम किया। ● ● ●

आधुनिक अर्थशास्त्र ३ :

बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें भारतमें अर्थशास्त्रीय साहित्य तो पर्याप्त प्रकाशित हुआ है पर उसमें मौलिक अनुदान कम है। सरकारी और गैर सरकारी प्रकाशनकी मात्रा तो बड़ी दीखती है, पर उसमें सारतत्व कम है। जहाँ तक भारतीय अर्थशास्त्र एवं भारतीय समस्याओंका प्रश्न है, इस विषयपर अच्छा साहित्य निकला है, पर शुद्ध विज्ञानकी दृष्टिसे इस दिशामें थोड़ा ही काम हो सका है।

अभीतक मुख्यतः तीन सूत्रोंसे कुछ काम हुआ है

(१) सरकारी,
(२) विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान और
(३) राजनीतिक दल।

सरकारी रिपोर्टें

सरकारी आयोगों और समितियोंने अनेक आर्थिक समस्याओंपर अपने विचार प्रकट किये हैं। समय समयपर भारत सरकार विभिन्न समस्याओंके लिए राजकीय आयोग नियुक्त करती रही है विभिन्न समितियाँ बनाती रही है। इन आयोगों और समितियोंके सुझावोंपर तो सरकारने कम ही ध्यान दिया है, पर उनकी रिपोर्टें तो सरकारी अलमारियोंकी शोभा बढ़ाती ही हैं। अन्वेषकोंको उनसे अध्ययनकी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

सन् १९११ से जनसंख्या-आयोग प्रति दस वर्षपर जनगणना करता है और विभिन्न समस्याओंपर अपने निष्कर्ष निकालता है। जनगणनासे देशकी स्थिति जाँचनेमें अवश्य ही सहायता मिलती है। सन् १९११ से अबतककी जनगणनाकी रिपोर्टोंमें अर्थशास्त्रीय अध्ययनकी दृष्टिसे अत्यधिक सामग्री भरी पड़ी है।

इसी प्रकार औद्योगिक-आयोग (सन् १९१९) कृषि-आयोग (सन् १९२८) श्रमिक-आयोग (सन् १९११) बैंकिंग जाँच कमेटी (सन् १९१०-११) श्रम-समस्याओंपर रेगे कमेटी (सन् १९४६) रेल-समस्याओंपर एकवर्थ कमेटी (सन् १९२१) और मेस्टन कमेटी (सन् १९१८) राजस्व-आयोग (सन् १९२४ और सन् १९५) दुर्भिक्ष-जाँच-आयोग (सन् १९४५) कर-जाँच-आयोग (सन् १९५१) और राष्ट्रीय-योजना आयोगकी रिपोर्टें

अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न राज्य-सरकारोंकी ओरसे भी ऐसी कितनी ही रिपोर्टें प्रकाशित हुई है।

विश्वविद्यालयोंमें अनुसधान

भारतीय विश्वविद्यालयोंमें सन् १९११ के बादसे अर्थशास्त्रका अध्ययन विशेष रूपसे होने लगा है। अर्थशास्त्रके अनेक विद्यार्थी राष्ट्रकी विभिन्न समस्याओंपर अनुसधान करते रहते हैं। पहले रानाडेकी पद्धतिपर उनका अधिक जोर था, फिर सख्यावादी पद्धतिपर जोर रहा। इधर हालमें केन्स और समाजवादी विचारकोंकी विचारधाराका अधिक प्रभाव दृष्टिगत होता है।[1]

पहले तो नहीं, पर हालमें कुछ दिनोंसे सरकार भी विभिन्न अनुसधानोंमें विश्वविद्यालयोंका सहयोग लेने लगी है।

शोध-सस्थान

दिल्ली, आगरा, बम्बई, पूना आदि कई स्थानोंमें अर्थशास्त्रीय शोध-सस्थान है। वहाँ विद्वान् अर्थशास्त्रियोंके निरीक्षणमें अनुसधान-कार्य चलता है।

निम्नलिखित अर्थशास्त्रियोंके तत्त्वावधानमें अनुसधानका उत्तम कार्य हुआ और हो रहा है—वी० जी० काले, डी० आर० गाडगिल, के० टी० शाह, सी० एन० वकील, पी० ए० वाडिया, विनय सरकार, पी० एन० बनर्जी, राधाकमल मुखर्जी, मनोहरलाल, ब्रजनारायण, एस० के० रुद्र, पी० सी० महालनबीस, वी० के० आर० वी० राव, एम० विश्वेश्वरैया आदि।

ए० के० दासगुप्त, जे० के० मेहता और बी० वी० कृष्णमूर्तिने अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त प्रतिपादनमें और डी० आर० गाडगिल, अब्दुल अजीज, डी० पत, ए० सी० दास, आर० सी० मजूमदार, पी० एन० बनर्जी, दुर्गाप्रसाद, जेड० ए० अहमद, राधाकुमुद मुखर्जी, जी० डी० करवाल आदिने आर्थिक इतिहासके विभिन्न अगोंकी गवेषणा करनेमें महत्त्वपूर्ण सफलता प्रदान की है।

यों जनसंख्या, कृषि, श्रम, सहकारिता, औद्योगिक समस्याएँ, व्यापार, मुद्रा और विनिमय, बैंकिंग, राजस्व, राष्ट्रीय आय, सामाजिक सस्थाएँ, सयोजन आदि विषयोंमें अनेक अर्थशास्त्री पृथक् पृथक् कार्य कर रहे हैं। इनमें उपर्युक्त लोगोंके अतिरिक्त बलजीत सिंह, पी० के० वहल, ज्ञानचन्द, एस० चन्द्रशेखर, बलजीतसिंह, तारलोक सिंह, एम० बी० नानावटी, एस० जी० मण्डलीकर, शिवराव, के० सी० सरकार, अताउल्ला, पी० जे० थामस, पी० सी० जैन, एम० एल० दांतवाला, बी० एन० गागुली, जान मथाई, बी० पी० आडरकर, जे० जे० अजारिया, एस० एन० हाजी, जी० के० रेड्डी, बी० आर० शेनाय, के० के० शर्मा, बी० आर०

१ भटनागर और सतीशबहादुर ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४०१।

अम्बेडकर, बी आर मिश्र, बी पी मुखर्जी, डी एन मजूमदार आदिका महत्त्वपूर्ण हाथ है।

राजनीतिक दल

कांग्रेस, समाजवादी दल, प्रजा-समाजवादी दल, कम्युनिस्ट पार्टी आदि देशके कई प्रमुख दल अपनी दलगत नीतिकी दृष्टिसे देशकी अनेक आर्थिक समस्याओंपर विचार करते हैं। उनकी रचनाओंमें दलगत पक्षपात न रहे और वे तटस्थ दृष्टिसे सोचें तो देशकी अनेक समस्याओंके निदानमें वे सहायक हो सकते हैं। फिर भी राजनीतिक दलोंकी रचनाओंसे विषयको हृदयंगम करनेमें सहायता मिल सकती है।

मूल्यांकन

हमारे यहाँ आर्थिक विचारधाराका विकास विभिन्न दिशाओंमें हो रहा है। पर मौलिक अनुदानका अभाव अभी खटक रहा है। तीव्र जिज्ञासुओंकी कमी है। कुछ लोग इस दिशामें अग्रसर भी होते हैं, तो उच्चपद और वेतनके प्रलोभनमें पड़कर अध्ययनकी पूर्तिमें समर्थ नहीं हो पाते। गम्भीर अध्ययनकी ओर झुकनेकी लोगोंकी प्रवृत्ति कम है। पश्चिमी विचारधाराका ही अधिक प्रभाव ऊपर छाया हुआ है। यह स्थिति अच्छी नहीं।

देश, राष्ट्र और विश्वकी समस्याओंके निदानका एकमात्र साधन है—सर्वोदय-विचारधारा। खेदकी बात है कि अभी हमारे अर्थशास्त्रीय विचारक उसकी ओर गम्भीरतासे आकृष्ट नहीं हुए। उसमें जब वे गम्भीरतासे प्रविष्ट होंगे, तो वे यह स्वीकार करेंगे कि सच्चा अर्थशास्त्र तो यही है। शेष सब अनर्थशास्त्र है। • • •

सर्वोदय-विचारधारा

थी, उनका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने रस्किनके इस ग्रन्थरत्नमें देखा और इसीलिए उन्होंने मुझे अभिभूत कर जीवन परिवर्तित करनेके लिए विवश कर दिया।

रस्किनने अपनी इस पुस्तकमें मुख्यतः ये तीन बातें बतायी हैं :

१ व्यक्तिका श्रेय समष्टिके श्रेयमें ही निहित है।

२ वकीलका काम हो, चाहे नाईका, दोनोंका मूल्य समान ही है। कारण, प्रत्येक व्यक्तिको अपने व्यवसाय द्वारा अपनी आजीविका चलानेका समान अधिकार है।

३ मजदूर, किसान अथवा कारीगरका जीवन ही सच्चा और सर्वोत्कृष्ट जीवन है।

पहली बात मैं जानता था दूसरी बात धुँधले रूपमें मेरे सामने थी पर तीसरी बातका तो मैंने विचार ही नहीं किया था। 'अन्टु दिस लास्ट' पुस्तकने सूर्यके प्रकाशकी भाँति मेरे समक्ष यह बात स्पष्ट कर दी कि पहली बातमें ही दूसरी और तीसरी बातें भी समायी हुई हैं।'

अन्तवालेको भी !

हाँ तो बाइबिलकी एक कहानीके आधारपर है रस्किनकी इस पुस्तकका नाम 'अन्टु दिस लास्ट'। इसका अर्थ होता है—'इस अन्तवालेको भी'।

अंगूरके एक बगीचेके मालिकने एक दिन सबेरे अपने यहाँ काम करनेके लिए कुछ मजदूर रखे। मजदूरी तय हुई—एक पेनी रोज।

दोपहरको वह मजदूरोंके बाजार फिर गया। देखा वहाँ उस समय भी कुछ मजदूर खड़े हैं—कामके अभावमें। उसने उन्हें भी अपने यहाँ कामपर लगा दिया।

तीसरे पहर और शामको फिर उसे कुछ बेकार मजदूर दिखे। उन्हें भी उसने कामपर लगा दिया।

काम समाप्त होनेपर उसने मुनीमसे कहा कि इन सब मजदूरोंको मजदूरी दे दो। जो लोग सबसे अन्तमें आये हैं उन्हींसे मजदूरी बाँटना शुरू करो।"

मुनीमने हर मजदूरको एक-एक पेनी दे दी। सबेरेसे आनेवाले मजदूर सोच रहे थे कि शामको आनेवालोंको जब एक-एक पेनी मिल रही है तो हमें उनसे ज्यादा मिलेगी ही; पर जब उन्हें भी एक ही पेनी मिली तो मालिकसे उन्होंने शिकायत की कि "यह क्या कि जिन लोगोंने सिर्फ एक घण्टे काम किया उन्हें भी एक पेनी और हमें भी एक ही पेनी—जो दिनभर धूपमें काम करते रहे ?"

मालिक बोला : 'भाई मेरे, मैंने तुम्हारे प्रति कोई अन्याय तो किया नहीं। तुमने एक पेनी रोजपर काम करना मंजूर किया था न ? तब अपनी मजदूरी लो और घर जाओ। मेरी बात मुझपर छोड़ो। मैं अन्तवालेको भी उतनी ही मजदूरी दूँगा जितनी तुम्हें। अपनी चीज अपनी इच्छाके अनुसार खर्च करनेका

मुझे अधिकार है न ? किसीके प्रति मैं अच्छा व्यवहार करता हूँ, तो इसका तुम्हें दुःख क्यों हो रहा है ?"

सबका उदय = सर्वोदय

सुबहवालेको जितना, शामवालेको भी उतना—यह बात सुननेमें अटपटी भले ही लगे, कुछ लोग इसपर–'टके सेर भाजी, टके सेर खाजा'—की फब्ती भी कस सकते हैं, परन्तु इसमें मानवताका, समानताका, अद्वैतका वह तत्त्व समाया हुआ है, जिसपर 'सर्वोदय' का विशाल प्रासाद खड़ा है।

'सर्वोदय' आखिर है क्या ?—सबका उदय, सबका उत्कर्ष, सबका विकास ही तो 'सर्वोदय' है। भारतका तो यह परम पुरातन आदर्श ठहरा :

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात् ॥

ऋषियोंकी यह तप-पूत वाणी भिन्न-भिन्न रूपोंमें हमारे यहाँ मुखरित होती रही है। जैनाचार्य समन्तभद्र कहते हैं :

'सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ।'

पर सबका उदय, सबका कल्याण दाल-भातका कौर नहीं है। कुछ लोगोंका उदय हो सकता है, बहुत लोगोंका उदय हो सकता है, पर सब लोगोंका भी उदय हो सकता है—यह बात लोगोंके मस्तिष्कमें धँसती ही नहीं। बड़े-बड़े विद्वान्, बड़े-बड़े सिद्धान्तशास्त्री इस स्थानपर पहुँचकर अटक जाते हैं। कहते हैं "होना तो अवश्य ऐसा चाहिए कि शत-प्रतिशतका उदय हो, मानवमात्रका कल्याण हो, हर व्यक्तिका विकास हो, पर यह व्यवहार्य नहीं है। सर्वोदय आदर्श हो सकता है, व्यवहारमें उसका विनियोग सम्भव ही नहीं है।"

और यहींपर सर्वोदयवादियोंका अन्य सिद्धान्तवादियोंसे विरोध है।

सर्वोदय मानता है कि सबका उदय कोरा स्वप्न, कोरा आदर्श नहीं है। यह आदर्श व्यवहार्य है और अमलमें लाया जा सकता है। सर्वोदयका आदर्श ऊँचा है, यह ठीक है। परन्तु न तो वह अप्राप्य है और न असाध्य है। वह प्रयत्नसाध्य है।

सर्वोदयकी दृष्टि

सर्वोदयका आदर्श है—अद्वैत, और उसकी नीति है—समन्वय। मानव-कृत विषमताका वह निराकरण करना चाहता है और प्राकृतिक विषमताको घटाना चाहता है।

सर्वोदयकी दृष्टिमें जीवन एक विद्या भी है, एक कला भी। जीवमात्रके लिए, प्राणिमात्रके लिए समादर, प्रत्येकके प्रति सहानुभूति ही सर्वोदयका मार्ग

है। जीवमात्रके लिए सहानुभूतिका यह अमृत जब जीवनमें प्रवाहित होता है, तो सर्वोदयकी लतामें सुरभिपूर्ण सुमन खिल उठते हैं।

डार्विन मात्स्यन्याय (Survival of the fittest) की बात कहकर रुक गया। उसने प्रकृतिका नियम बताया कि बड़ी मछली छोटी मछलियोंको खाकर जीवित रहती है।

हक्सले एक कदम आगे बढ़ा। वह कहता है कि जिओ और जीने दो— (Live and let live)।

पर इतनेसे ही काम चलनेवाला नहीं। सर्वोदय कहता है कि तुम दूसरोंको जिलानेके लिए जिओ। तुम मुझे जिलानेके लिए जिओ मैं तुम्हें जिलानेके लिए जिऊँ। तभी, और केवल तभी सबका जीवन सम्पन्न होगा, सबका उदय होगा, सर्वोदय होगा।

दूसरोंको अपना बनानेके लिए प्रेमका विस्तार करना होगा अहिंसाका विकास करना होगा और आजके सामाजिक मूल्योंमें परिवर्तन करना होगा। सर्वोदय समाज-निरपेक्ष, शाश्वत और व्यापक मूल्योंकी स्थापना करना और बाधक मूल्योंका निराकरण करना चाहता है। यह कार्य न तो विज्ञान द्वारा सम्भव है और न सत्ता द्वारा।

सर्वोदयकी पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है। विज्ञानमें ऐसी बात नहीं। विज्ञान अपने आविष्कारोंसे जनताको अनेक सुविधाएँ प्रदान कर सकता है। वह भौतिक सुखोंकी व्यवस्था कर सकता है बटन दबाकर हवा दे सकता है प्रकाश दे सकता है रेडियोसे संगीत सुना सकता है, पर उसमें यह क्षमता नहीं कि वह मानवका नैतिक स्तर ऊपर उठा दे। विज्ञान वेश्या-वृत्तिका निराकरण कर सकता है उसके निराकरणके साधन प्रस्तुत कर सकता है, पर हर स्त्रीको हर पुरुष की बहन बना देनेकी क्षमता उसमें नहीं। विज्ञान जीवनका बाहरी नक्शा बदल सकता है पर भीतरी नक्शा बदलना उसके बूतेकी बात नहीं।

सर्वोदय ऐसे वर्ग विहीन जाति-विहीन और शोषण-विहीन समाजकी स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूहको अपने सर्वांगीण विकासके साधन और अवसर मिलेंगे। अहिंसा और प्रेम द्वारा ही यह क्रान्ति सम्भव है। सर्वोदय इसीका प्रतिपादन करता है।

तीन प्रकारकी सत्ताएँ

आज तीन प्रकारकी सत्ताएँ चल रही हैं—राज्य सत्ता धन-सत्ता और धर्म-सत्ता। परन्तु वास्तविक स्थिति ऐसी हो गयी है कि इन तीनों सत्ताओंपरसे लोगोंका विश्वास उठता जा रहा है। आज सभी लोग किसी अन्य मानवीय

शक्तिकी खोजमें है और वह मानवीय शक्ति सर्वोदयके माध्यमसे ही विकसित हो सकती है।

शस्त्र-सत्ता

शस्त्र सत्तासे, पुलिसके डंडेसे, फौजकी बन्दूकसे, एटम और हाइड्रोजन बमसे जनताको आतंकित किया जा सकता है, उसे निर्भय नहीं बनाया जा सकता। डंडेके बलसे लोगोंको जेलमें डाला जा सकता है, उन्हें मुक्त नहीं किया जा सकता। शस्त्र-शक्तिसे, हिंसासे हिंसाको दबानेकी चेष्टा की जा सकती है, पर उससे अहिंसाकी प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती।

चोरी करनेपर सजा और जुर्मानेकी व्यवस्था कानूनके द्वारा की जा सकती है, हत्या करनेपर फाँसीका दण्ड दिया जा सकता है, पर कानूनके द्वारा किसीको इस बातके लिए विवश नहीं किया जा सकता कि सामने बैठे भूखेको रन्तिदेवकी तरह अपनी थाली उठाकर दे दो और स्वयं भूखे रह जानेमें प्रसन्नताका अनुभव करो।

धन-सत्ता

धनकी सत्ता आज सारे विश्वपर छायी है। आज पैसेपर ईमान बिक रहा है, पैसेपर अस्मत लुट रही है, पैसेपर न्याय अपने नामको हँसा रहा है। विश्वका कौनसा अनर्थ है, जो आज पैसेके बलपर और पैसेके लिए नहीं किया जाता? अन्याय और शोषण, हिंसा और भ्रष्टाचार, चोरी और डकैती—सबकी जड़में पैसा है।

कञ्चनकी इस मायामें पड़कर मनुष्य अपना कर्तव्य भूल गया है, अपना दायित्व भूल गया है, अपना लक्ष्य भूल गया है। पैसेके कारण श्रमकी प्रतिष्ठा मानव-जीवनसे जाती रही है। मनुष्य येन-केन प्रकारेण सोनेकी हवेली खड़ी करनेको आकुल है। पर वह यह बात भूल गया है कि सोनेकी लंका भस्म होकर ही रहती है। रावणका गगनचुम्बी प्रासाद मिट्टीमें ही मिलकर रहता है। अन्यायसे, शोषणसे, बेईमानीसे इकट्ठी की गयी कमाईसे भौतिक सुख भले ही बटोर लिये जायँ, उनसे आत्मिक सुखकी उपलब्धि हो नहीं सकती। पैसा विश्वके अन्य सुख भले ही जुटा दे, परन्तु उससे आत्माकी प्रसन्नता प्राप्त नहीं की जा सकती।

राज्य-सत्ता

राज्य-सत्ता पुलिस और सेनाके बलपर, शस्त्र-सत्तापर जीती है, कानूनकी छत्रछायामें बढ़ती है, धन-सत्ताके भरोसे पलती-पनपती है और विज्ञानके जरिये विकसित होती है। परन्तु इतने साधनोंसे सज्जित रहनेपर भी वह शत-प्रतिशत जनताको सुखी करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। वह एक ओर अल्पसंख्यकोंके

प्रति अन्याय न होने देनेमें बाधा करती है दूसरी ओर बहुसंख्यकोंके हितोंकी रक्षाका ढिंढोरा पीटती है। पर अल्पसंख्यक भी उसकी शिकायत करते हैं और बहुसंख्यक भी। कारण कि उसका आदर्श रहता है—'अधिकसे अधिक लोगोंका अधिकसे अधिक सुख'। उसने यह मान लिया है कि सबको तो हम अधिकतम सुख दे नहीं सकते, इसलिए अधिकतम लोगोंको यदि हम अधिकतम सुख दे दें, तो हमारा कर्तव्य पूरा हो जाता है। हमारी आजकी राजनीति इन्हीं आदर्शोंपर चल रही है। पर इससे मानव-जातिका कल्याण संभव नहीं।

सर्वोदयकी नीति लोकनीति

सर्वोदय ऐसी राजनीतिका कायल नहीं। वह लोकनीतिका पक्षपाती है। राजनीतिमें जहाँ शासन मुख्य है, लोकनीतिमें वहाँ अनुशासन। राजनीतिमें जहाँ सत्ता मुख्य है, लोकनीतिमें वहाँ स्वतन्त्रता। राजनीतिमें जहाँ नियमन मुख्य है, लोकनीतिमें वहाँ संयम। राजनीतिमें जहाँ सत्ताकी स्पर्धा, अधिकारोंकी स्पर्धा मुख्य है लोकनीतिमें वहाँ कर्तव्योंका आचरण। सर्वोदयका क्रम यही है कि हम शासनसे अनुशासनकी ओर सत्तासे स्वतन्त्रताकी ओर, नियमनसे संयमकी ओर और अधिकारोंकी स्पर्धासे कर्तव्योंके आचरणकी ओर बढ़ें।

राज्यशासनका विकास

राज्यशासनका प्रत्येक शास्त्री ऐसी आकांक्षा रखता है कि एक दिन ऐसा आये जिस दिन राज्यकी समाप्ति हो जाय। तबतकके लिए राज्य-सत्ता एक अनिवार्य दोष (necessary evil) है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि राज्य-संस्था सदा अनिवार्य बनी ही रहेगी। यह राज्य-संस्था है ही इसलिए कि धीरे धीरे वह ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे, जब क्रमशः निराकरण होते-होते यह स्थिति आ जाय कि राज्य-शासनकी आवश्यकता ही न रह जाय।

राज्यके पीछे जो सत्ता रहती है वह लोगोंकी सत्ता लोक-सत्ता होती है। पर हमने इस तथ्यको भुलाकर राजाको विष्णु मानकर उसके हाथमें 'अनियन्त्रित राज्यसत्ता (Absolute Monarchy) सौंप दी। इतिहास इसका विशद विवेचन किया है। बादमें हमने एक कदम आगे बढ़ा। उसने नियन्त्रित राज्य-सत्ता' (Limited Monarchy) की बात कही। पर बादमें 'लोक सत्ता' (Democracy) तक आ गया। यहींसे राज्य-सत्ताके निराकरण और लोक-सत्ताकी स्थापनाका श्रीगणेश होता है। राज्य-शासनके इन तीन सिद्धान्तशास्त्रियोंने राज्य शासनका विशद रूपसे विवेचन किया है।

मार्क्सकी विचारधारा

इनके बाद आया गरीबोंका मसीहा मार्क्स। उसने गरीबोंके लोकतन्त्र (Democracy for the poor men) की बात कही। मार्क्सने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism), ऐतिहासिक भौतिकवाद और नियतिवादपर जोर दिया और एक वर्गके संघटनकी बात सिखायी। उसने क्रान्तिके लिए तीन बातोंकी आवश्यकता बतायी :

१. क्रान्ति वैज्ञानिक हो,
२. क्रान्ति अन्तर्राष्ट्रीय हो और
३. क्रान्तिमें वर्ग-संघर्ष हो।

मार्क्सने सारे मानवीय तत्त्वोंका संग्रह किया, परन्तु उसका विज्ञान उसके भौतिकवादके सिद्धान्तोंके कारण पूँजीवादकी प्रतिक्रियाके रूपमें प्रकट हुआ। अतः वह उस प्रतिक्रियाके साथ पूँजीवादके स्वरूपको भी अज्ञात लेकर आया।

मार्क्सके पहले किसी भी पीर-पैगम्बर या धर्म-प्रवर्तकने यह नहीं कहा था कि गरीबी और अमीरीका निराकरण हो सकता है, होना चाहिए और होकर रहेगा। दान और गरीबोंके प्रति सहानुभूतिकी बात तो सभी धर्मोंमें कही गयी, पर गरीबी और अमीरीके निराकरणकी बात मार्क्ससे पहले किसीने नहीं कही। उसने स्पष्ट शब्दोंमें इस बातकी घोषणा की कि 'अमीरी और गरीबी भगवान्‌की बनायी हुई नहीं है। किसी भी धर्ममें उसका विधान नहीं है और यदि कोई धर्म इस भेदको मजूर करता है, तो वह धर्म गरीबके लिए अफीमकी गोली है।'

कार्ल मार्क्सने इस बातपर जोर दिया कि हमें ऐसे समाजका निर्माण करना चाहिए, जिसमें न तो कोई गरीब रहेगा, न कोई अमीर। उसमें न तो दाताकी गुंजाइश रहेगी, न भिखारीकी। उसने पीड़ित मानवताको यह आशाभरा सदेश दिया कि जिस विकास-क्रमके अनुसार गरीबी और अमीरी आ गयी, उसी विकास-क्रमके अनुसार, सृष्टिके नियमोंके अनुसार, ऐतिहासिक घटना-क्रमके अनुसार उसका निराकरण भी होनेवाला है और सो भी गरीबोंके पुरुषार्थसे होनेवाला है।

गरीबी और अमीरीके निराकरणके लिए मार्क्सने पुराने अर्थशास्त्रियोंको 'अशिष्ट अर्थशास्त्री' (Vulgar Economists) बताते हुए एक नया क्रान्तिकारी अर्थशास्त्र प्रस्तुत किया।

अदम स्मिथ और रिकार्डोका सिद्धान्त था—श्रम ही मूल्य है।

मिल और मार्शलने सिद्धान्त बनाया—"जिसके विनिमयमें कुछ मिले, वह सम्पत्ति है।" रूसो और तोल्सतोयने इसका खूब मजाक उड़ाया। कहा : "हवा-के बदलेमें कुछ नहीं मिलता, तो हवाका कोई मूल्य ही नहीं।"

मार्क्सने इनसे एक कदम आगे बढ़कर दिया—अतिरिक्त मूल्यका सिद्धान्त (Theory of Surplus Value)। उसने कहा कि श्रमका जितना मूल्य होता है वह मुझे मिलता ही नहीं। मुझे जिन्दा रखनेके लिए जितना जरूरी है, सिर्फ उतना ही तो मुझे मिलता है। बाकीका तो मालिक ही हड़प जाता है। श्रमका यह बचा हुआ मूल्य ही शोषण (Exploitation) है और इसका नतीजा यह होता है कि सौमें नब्बे आदमियोंको श्रम ही श्रम रहता है और दस आदमियोंको आराम ही आराम। दस आदमी विश्राम-जीवी बन जाते हैं और नब्बे श्रमी श्रमजीवी। इसलिए इस अन्यायका निराकरण होना ही चाहिए।

पूँजीवादके पाप

पूँजीवादी अर्थशास्त्रकी मान्यता है—'मेहनत मजदूरकी, सम्पत्ति मालिककी।

पूँजीवादका जन्म होता है—चोरीसे विकास होता है—लूटसे और वह चरम सीमापर पहुँचता है—जुएसे।

पूँजीवादके तीन दोष हैं—चोरी सट्टा और जुआ। इनसे तीन बुराइयाँ पैदा होती हैं—डकैती, भीख और चोरी।

समाजवादका जन्म

पूँजीवादके दोषोंका निराकरण करनेके लिए आया—समाजवाद। समाजवादी अर्थशास्त्रकी मान्यता है—'मेहनत जिसकी, सम्पत्ति उसकी।' मार्क्स यहीं तक नहीं रुका। उसने एक और सूत्र दिया—मेहनत हरएककी सम्पत्ति सबकी। इसकी बदौलत कल्याणकारी राज्य (Welfare State) और शासकीय पूँजीवाद (State Capitalism) का जन्म हुआ। व्यक्तिकी साहूकारी मिटी, समाजकी साहूकारी शुरू हुई।

समाजवादके आगेका एक सूत्र और है। और वह यह कि 'जितनी ताकत उतना श्रम जितनी जरूरत उतना दाम।' 'परिश्रम तो मैं उतना करूँ, जितनी मुझमें क्षमता है पर उस परिश्रमका प्रतिमूल्य उतना मुझे मिलना चाहिए मैं उतना ही लूँ जितनी मेरी आवश्यकता है।"

यह सूत्र है तो बहुत अच्छा पर इसके कारण अन्तर्विरोध पैदा होता है। मेहनत जिसकी सम्पत्ति उसकी' और 'जितनी ताकत उतना श्रम जितनी जरूरत उतना दाम'—इन दोनों सूत्रोंमें मेल ही नहीं बैठता।

समाजवादकी परिसमाप्ति

'जब मुझे मेरी आवश्यकताके अनुसार ही पैसा मिलता है तो मैं उतना ही

काम करूँगा, जितनेमें मेरी जरूरत पूरी हो जाय, फिर मैं अपनी शक्ति और क्षमताका पूरा उपयोग क्यों करूँ ?" यह विषम समस्या उत्पन्न हुई। 'कामके अनुसार दाम' देनेसे प्रतिद्वन्द्विता आ खड़ी हुई। रूस और चीनमें इस सम्बन्धमें प्रयोग हुए और लोग इस निष्कर्षपर पहुँचे कि प्रतिद्वन्द्वितासे स्थिति विषम हो जायगी। इसलिए प्रतिस्पर्धा तो न चले, परिस्पर्धा चल सकती है। दूसरेकी टाँग खींचकर, उसे गिराकर स्वयं आगे बढ़नेकी प्रतिस्पर्धा रोकी जाय, उसके स्थानपर ऐसी समाजवादी परिस्पर्धा चले कि जो सर्वोत्कृष्ट है, उसकी बराबरी करनेकी अन्य सब लोग चेष्टा करें। इसका नाम है समाजवादी परिस्पर्धा (Socialistic Emulation)। किन्तु इसमें भी कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला। पहले वहाँ दामके लिए काम करनेकी गुलामी थी, वहाँ अब आ गया कामके मुताबिक दाम।

रूस और चीनकी गाड़ी यहाँ आकर अटक जाती है। प्रयोग हो रहे हैं, परन्तु समाजवादी प्रेरणाकी समस्या विषम रूपसे सामने आकर खड़ी है।

शस्त्रके मूल्यकी समाप्ति

आज सेनाका सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो गया है। मार्क्सने सेना और शस्त्रके निराकरणकी प्रक्रियाका पहला कदम यह बताया कि "सेना मत रखो, शस्त्र मत रखो, सबको शस्त्र दे दो। नागरिकको ही सैनिक बना दो। सैनिक और नागरिकके बीचका अन्तर मिटा दो। उत्पादक और अनुत्पादकके बीच कोई भी भेद मत रखो।" आज विश्वके महान्-से-महान् राजनीतिज्ञ कह रहे हैं कि शस्त्रीकरणकी होड़से विश्व सर्वनाशकी ही ओर जा रहा है। इसलिए अब नि:शस्त्रीकरण होना चाहिए। आजके युगकी यह माँग है कि नि:शस्त्रीकरणके सिवा अब मानवीय मूल्योंकी स्थापना हो नहीं सकती।

पहले वीर वृत्तिके विकासके लिए और निर्बलोंके संरक्षणके लिए शस्त्रका प्रयोग होता था। आज शस्त्रमेंसे उसके ये दोनों सांस्कृतिक मूल्य नष्ट हो चुके हैं। हवाई जहाजसे बम फेंक देनेमें कौन-सी वीर-वृत्ति रह गयी है ? आज संरक्षणके स्थानपर आक्रमणके लिए शस्त्रोंका प्रयोग होता है। इसलिए शस्त्रका सांस्कृतिक मूल्य पूर्णत: समाप्त हो गया है।

यन्त्रका मूल्य भी समाप्त

शस्त्रकी जो हालत है, वही हालत यन्त्रकी भी है। यन्त्रका भी सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो गया है। यन्त्रकी विशेषता यह है कि वह सब चीजें एक-सी बनाता है। बटन एक-से, जूते एक-से, पोशाक एक-सी। 'गधा-मजूरी' रोकनेको यन्त्र आया, पर आज उसके चलते व्यक्तित्वका गला घुट रहा है। मानवीय मूल्योंका

ह्रास हो रहा है। यन्त्र दानवका अर्थशास्त्र विकसित हो रहा है और मानवीय श्रम समाप्त होती चल रही है। यंत्र भौतिक आवश्यकताकी पूर्ति करता है, भौतिक तो उसकी उपयोगिता मानी जा सकती है, पर वह केन्द्रीकरणको जन्म दे रहा है, श्रमकी अभिवृद्धिमें रोड़े अटका रहा है और उत्पादनमेंसे मानवीय स्पर्शको समाप्त करता जा रहा है। व्यक्तित्वका विकास तो दूर रहा, उसके कारण मनुष्यका व्यक्तित्व ही समाप्त होता जा रहा है। व्यक्तित्वका यह विलीनीकरण यंत्रका सबसे भयंकर अभिशाप है। इसका निराकरण होना ही चाहिए।

पूँजीवादी उत्पादनकी दुर्गति

पूँजीवादी उत्पादनका एकमात्र लक्ष्य होता है—पैसा। यह उत्पादन मुनाफे के लिए, विनिमयके लिए ही होता है। मैंने जो रकम लगायी वह कुछ मुनाफेके साथ मुझे वापस मिले, यही उसका उद्देश्य है। बाजारकी चमोटियाँ भले ही जाने लायक न हों पर यदि उनका पैसा वसूल हो जाय, तो उनका उत्पादन सफल माना जाता है।

छात्रावासमें जितने व्यक्ति रहते हैं, उतने व्यक्तियोंके हिसाबसे ही रोटियाँ बनायी जाती हैं, यह उपभोगके लिए उत्पादन है, पर इसमें इस बातके लिए गुंजाइश नहीं कि किसीके दाँत यदि गिर गये हों तो क्या हो!

यान्त्रिक उत्पादनमें तीन प्रेरणाएँ थीं व्यापारवाद, साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद।

पर आजकी वास्तविक स्थिति ऐसी है कि ये तीनों प्रेरणाएँ समाप्तिपर हैं। अब बाजारका अर्थशास्त्र समाप्त हो रहा है, साम्राज्यवाद मिट रहा है और उपनिवेशवाद अन्तिम साँसें ले रहा है।

लोकशाहीके दोष

आज गतिक तत्त्व (Dynamics) बाजारसे उठकर वैचारिक क्षेत्रमें आ गया है। जिसमें आज दो मोर्चे हैं—एक कम्युनिस्टोंका, दूसरा उनका विरोधी। लोकशाही कम्युनिज्मका विरोध करते करते पूँजीवादके शिविरमें जा पहुँची है। यह तलवारकी दासी और पैसेकी अधिकारिणी बनकर रह गयी है। उसकी प्रगति कुण्ठित हो गयी है। जनताको सम्यक् भोजन वस्त्र और मकान देना ही कल्याणकारी राज्यका अन्तिम लक्ष्य बन गया है। लोकशाही बहुमतके आधारपर चलती है इसलिए सत्ताकी प्रतिस्पर्धा उसका मूलमन्त्र बन बैठी है। इस चुनावके लिए, वोट भरके लिए बड़ी-बड़ी लम्बी गाड़ियाँ फेंकी जाती हैं चुनावोंके लिए बड़े दूरके देवमन्दिरोंमें जाती हैं दुनियाभरके प्रपंच किये जाते हैं, लोकशाहीका यह नीलाम होता है और पार्टीके अनुशासनके नामपर लोगोंकी जबानपर ताला डाल दिया जाता है।

आजकी लोकशाहीमें तीन भयकर दोष है :

१. अधिकारका दुरुपयोग (Abuse of Power),

२. गुण्डाशाहीका भय (Chaos) और

३. भ्रष्टाचार (Corruption)।

इन दोषोंका निराकरण किये विना सच्ची लोकनीतिका विकास हो नहीं सकता।

मानवताके त्राणका उपाय - सर्वोदय

प्रश्न है कि जहॉ लोकशाही असफल हो रही है, शस्त्र-सत्ता, धन सत्ता असफल हो रही है, यत्र और विज्ञान घुटने टेक रहे हैं, वहॉ मानवताके त्राणका कोई उपाय है क्या ?

सर्वोदय उसीका उपाय है।

मानव जिन प्रक्रियाओंका, जिन पद्धतियोंका प्रयोग कर चुका है, उनके आगेका कदम है—सर्वोदय।

सृष्टि जिस रूपमें हमारे सामने है, उसे समझनेकी चेष्टा दार्शनिकने की। वैज्ञानिकने प्रकृतिके नियमोंका साक्षात्कार किया, शोध की। परन्तु विश्वको परिवर्तित करनेका कार्य न तो दार्शनिकने किया और न वैज्ञानिकने। अर्थशास्त्रीने भी वह कार्य नहीं किया। वह किया राज्यनेताने—जो न दार्शनिक ही था, न वैज्ञानिक। जो लोग दर्शनमूढ थे, विज्ञानमूढ थे, उन्होंने ही समाज और सृष्टिको बदलनेका काम अपने हाथमें लिया। परिणाम ? परिणाम यही है कि आज दार्शनिक अलग है, वैज्ञानिक अलग है, नागरिक अलग है। ऐसा विभाजन ही गलत है, कृत्रिम है, अवैज्ञानिक है, अप्राकृतिक है। इस द्वैतमेंसे अद्वैतका, इस भेदमेंसे अभेदका निर्माण हो नहीं सकता। और जबतक अद्वैत और अभेदकी स्थापना नहीं होती, समग्रताकी दृष्टिसे मानवके व्यक्तित्वके विकासकी चेष्टा नहीं की जाती, तबतक न तो ये भेद मिटनेवाले हैं और न सच्ची लोक-सत्ताका ही निर्माण होनेवाला है।

भेदकी भाव-भूमिपर राज्यशास्त्र और अर्थशास्त्रका जो विकास हुआ है, उसके दोष आज हमारी ऑखोंके सामने मौजूद हैं। मार्क्स, लेनिन, माओ आदि क्रान्तिकारियोंने अभीतक जो क्रान्तियॉ की हैं, उनके कारण कई महत्त्वपूर्ण बातें हुई हैं। जैसे—रूस, चीन आदिमें सामन्तशाही और पूँजीवादकी समाप्ति, उत्पादनके साधनोंका समाजीकरण, किसानों और मजदूरोंकी स्थितिमें आश्चर्यजनक परिवर्तन तथा अपने देशोंके पदमें अभूतपूर्व उन्नति आदि। अन्य राष्ट्रोंकी आजादीकी लड़ाईको भी इन क्रान्तियोंसे बड़ा बल मिला है।

परन्तु इतना सब होनेपर भी इन क्रान्तियोंका प्रभाव केवल भौतिक धरातल तक ही रहा है। इनके कारण मानवकी भौतिक स्थितिमें उल्लेखनीय प्रगति हुई है। अनवाकी आर्थिक स्थितिमें प्रशंसनीय सुधार हुआ है। परन्तु क्या भौतिक उन्नति ही मानवका सर्वोच्च लक्ष्य है? उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र, उत्तम मकान और उत्तम रीतिसे सभी भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति ही क्या मानवका चरम उद्देश्य है?

सर्वोदय कहता है—नहीं। केवल भौतिक उन्नति ही पर्याप्त नहीं है। वह क्रान्ति ही क्या जिसमें मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नति न हो? वह क्रान्ति ही क्या जिसमें मानवताका नैतिक स्तर ऊपर न उठे?

ताहि बोउ तू फूल!

सर्वोदय कहता है—'जो तोकूँ काँटा बुवै, ताहि बोउ तू फूल'। पत्थरका जवाब पत्थरसे देनेमें अत्याचारका प्रतिकार अत्याचारसे करनेमें, खूनके बदले खून बहानेमें कौन-सी क्रान्ति है? क्रान्ति है दुश्मनको गले लगानेमें, क्रान्ति है अत्याचारीको क्षमा करनेमें, क्रान्ति है गिरे हुएको ऊपर उठानेमें।

और इस क्रान्तिका साधन है—हृदय-परिवर्तन जीवन शुद्धि, साधन-शुद्धि और प्रेमका अधिकतम विस्तार।

वसुधैव कुटुम्बकम्

सर्वोदय जिस क्रान्तिका प्रतिपादन करता है, उसके लिए जीवनके मूल्योंमें परिवर्तन करना होगा। उसके लिए हमें द्वैतसे अद्वैतकी ओर, भेदसे अभेदकी ओर बढ़ना पड़ेगा। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की अनुभूति करनी होगी। भारी भेदोंसे दृष्टि हटाकर मौलकी एकताकी ओर मुड़ना पड़ेगा। प्राणिमात्रमें, कण-कणमें एक ही सत्ताके दर्शन करने होंगे।

'सोऽहम्' और 'तत्त्वमसि' से हमारे आदर्शोंमें सर्वोदयकी ही भावना तो भरी पड़ी है। उपनिषद् कहता है

> अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
> एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
> वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
> एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥[1]

और जब हम इस प्रकार 'ईशावास्यमिदं सर्वं' यत्किञ्च जगत्यां जगत्' मानने लगेंगे तो हमारी दृष्टि ही बदल जायगी। फिर न तो किसीसे द्वेष करने का प्रश्न उठेगा, न किसीसे मत्सर। किसीको सताने किसीका शोषण करने, किसीके प्रति अन्याय करनेका प्रश्न ही नहीं उठेगा। 'जो तू है वही मैं हूँ

---

1. कठोपनिषद् २।२।९, १०।

यह भाव आते ही सारे भेद भाव दूर पड़े झाड़ मारते है। घरमें, परिवारमें हम जिस प्रेमसे रहते हैं, हर व्यक्तिकी सुख सुविधाका जैसे ध्यान रखते हैं, हँसते-हँसते जिस प्रकार दूसरोंके लिए कष्ट उठाते हैं, उसी प्रकार हम सारे विश्वका, मानवमात्रका, प्राणिमात्रका ध्यान रखेंगे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना हमारी रग रग में भिद जायगी।

मेहनत इन्सानकी, दौलत भगवान्की !

सर्वोदय मानवीय विभूतिके विकासमें विश्वास करता है। मानव भी उसके लिए विभूति है, सृष्टि भी, देश काल भी। वह मानता है—फलनिरपेक्ष कर्तव्य हमारा धर्म है। उसकी मान्यता है—'मेहनत इन्सानकी, दौलत भगवान्-की।' शक्तिभर मेहनत करना हमारा कर्तव्य है, फल देना समाजका। 'समाजाय इदं न मम'—उसका आदर्श है। वह पड़ोसीके लिए जीने, पड़ोसीके लिए उत्पादन करने और पड़ोसीका दुःख-सुख बाँटनेकी कला सिखाता है। वह यह मानता है कि हर बुरे आदमीमें अच्छाई होती है। वह हर व्यक्तिके दैवी तत्त्वोंके विकासमें विश्वास करता है। उसकी मान्यता है कि पापसे घृणा करनी चाहिए, पापीसे नहीं। उसकी दृष्टिमें कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं, कोई ऊँच नहीं, कोई नीच नहीं। सबका सर्वांगीण विकास उसका लक्ष्य है और प्राणिमात्रसे तादात्म्य उसका साधन।

व्रतोंको सामाजिक मूल्य

सर्वोदयमें सत्य और अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अस्वाद, सर्व धर्म समन्वय और श्रमकी प्रतिष्ठा, अभय और स्वदेशी आदि व्रत स्वतःस्फूर्त होते हैं। अभीतक इन व्रतोंका स्थान व्यक्तिगत मूल्योंके रूपमें ही था। बापूने सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवनकी साधनाओंको एकमें मिलाकर इन व्रतोंको सामाजिक मूल्योंका रूप प्रदान किया। ज्यों ज्यों हम इन व्रतोंको सामाजिक मूल्य बनाते जायँगे, त्यों त्यों सर्वोदयका विकास होता जायगा।[1]

○ ● ○

[1] आधार 'सर्वोदयदर्शन' दादा धर्माधिकारी।

गांधी — २ :

'वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड पराई जाणे रे
पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे !

वैष्णव वह है, जो परायी पीरको समझता है दूसरोंकी सेवा करता है, दूसरोंका उपकार करता है पर मनमें रत्तीभर भी अभिमान नहीं आने देता।

वैष्णवका यह आदर्श पुरुषोत्तमने जिस बालकको जन्मकी घूँटीके साथ पिलाया वह मोहनदास करमचन्द गांधी (सन् १८६९–१९४८) अपनी निःस्वार्थ सेवा और प्रेमकी बदौलत विश्वका महानतम व्यक्ति बना। कई विचारकोंने उसकी चर्चा करते हुए लिखा था कि 'गांधीमें दयामयी ईसाकी उच्च कोटिकी धार्मिकता रैमनी हाककी गूढ़ कूटनीति तथा पितृतुल्य प्रेमका असाधारण सम्मिश्रण पाया जाता है। महात्मा बुद्धके बाद ऐसा महापुरुष भारतमें अबतक पैदा नहीं हुआ। भारतकी असंख्य जनतापर उसका अटल प्रभाव है। वह अद्वितीय तरहका 'डिक्टेटर' (तानाशाह) है जो प्रेमका शासन चलाता है। भारतमें केवल यही एक ऐसा व्यक्ति है जो केवल एक शब्द द्वारा उँगलीके एक इशारे द्वारा देशमें एक नयी राष्ट्रीय क्रान्ति उत्पन्न कर सकता है और मानवजातिके पंचमांश ३५ करोड़से अधिक लोगोंमें असहयोग चला सकता है।

यही कारण था कि उसकी शहादतपर सारा विश्व रो पड़ा। मानवता रो पड़ी। हिन्दू और मुसलमान सिख और पारसी, जैन और बौद्ध अंग्रेज और यहूदी जापानी और रूसी चीनी और बर्मी—सभीने उसके लिए आँसू बहाये।

जीवन-परिचय

काठियावाड़के पोरबन्दरमें २ अक्तूबर १८६९ को मोहनदास गांधीका जन्म हुआ। धर्मपरायण माता-पिताकी गोदमें वह विकसित हुआ। चार सालका था तभी माँ उससे रोज कहलवाया करती : मैं किसीको हानि नहीं पहुँचाना चाहता। मैं सबकी भलाई चाहता हूँ।

बचपनमें एक दिन उसने श्रवणकुमारकी कहानी पढ़ी। उसका मार्मिक प्रसंग पढ़कर वह घण्टों रोता रहा। श्रवणकुमारका और सत्य हरिश्चन्द्रका नाटक देखा। तभीसे उसको लगा कि श्रवणकी भाँति माता-पिताकी सेवा करूँ हरिश्चन्द्रकी भाँति सत्यवादी बनूँ भले ही उसके लिए प्राण क्यों न देना पड़े।

---

१ श्रीकृष्णदत्त भट्ट : [illegible] पृ [illegible] ।

चौदह-पन्द्रह सालकी उम्रमे वह कुसगतिम पड़ गया। सिगरेट पीनेके लिए कुछ पैसे चुराये, पर ग्लानि इतनी हुई कि धतूरा खाकर प्राण देनेको तैयार हो गया। सोचा, सारी बात पितासे कह दूँ, पर पिता कहीं दुःखी होकर पुत्रके लिए कुछ प्रायश्चित्त न कर डालें, यह भय सता रहा था। अन्तमें एक पत्र लिखकर अपने हृदयकी वेदना प्रकट की और अपराधके लिए दण्ड देनेकी प्रार्थना की। रोग-शैयापर पड़े पिताके नेत्रोंमे टप टप ऑसू टपक पड़े। उन्होंने कहा कुछ नहीं। प्रेमसे पुत्रके सिर-पर हाथ फेर दिया। उस दिन गाधीको अहिंसाका पहला पदार्थ-पाठ मिला।

कुसगतिम पड़कर गाधीने मास भी चख लिया था, पर निरपराध बकरेकी मिमिआहटकी कल्पनाने उसे कई दिन सोने न दिया। मास खाकर अंग्रेजोंकी तरह पुष्ट बननेका उसे बहकावा दिया गया था, पर उसके लिए झूठ बोलना पड़े, यह बात गाधीको अस्वीकार थी। उसने सत्यकी रक्षाके लिए ऐसे मित्रकी सलाह माननेसे इनकार कर दिया।

सन् १८८८ मे बैरिस्टरी पास करनेके लिए गाधी लन्दन गया। जानेके पूर्व माँने उससे मद्य, मास और परस्त्रीसे पृथक् रहनेका वचन ले लिया। सकोची स्वभाव, शाकाहारकी प्रतिज्ञा और लन्दनकी पाश्चात्य सभ्यताका आडम्बर गाधी-के लिए बड़ा त्रासदायक सा लगा। कुछ दिन फैशनके प्रवाहमे बहा, सगीत और नृत्यकी ओर झुका, पर शीघ्र ही उसे लगा कि ऐसा अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करना उसके लिए असम्भव है। अत उसने वायलिन बेच दी, नृत्य और वक्तृत्व कलाका शिक्षण लेना बन्द कर दिया और सादगीकी ओर झुका।

गाधीने तीन वर्ष लन्दनमें रहकर बैरिस्टरी पास की। सन् १८९१ में वह भारत लौटा। कुछ ही दिन बाद उसे एक मुकदमेकी पैरवीके लिए दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। गया तो था वह वकालत करने, पर उतरना पड़ा उसे राजनीतिमें। जाते ही उसे गुलाम देशका निवासी होनेके नाते जिस अपमानजनक व्यवहारका सामना करना पड़ा, उसके कारण वह विद्रोही बन बैठा। परन्तु बुद्ध और महावीरकी अहिंसाका जन्मगत सस्कार उसके रोम-रोममें भिदा था। अत. उसके विद्रोहने अहिंसात्मक असहयोगका स्वरूप धारण किया। उसका २२ वर्षोंका अफ्रीका-प्रवास सत्याग्रहकी अद्भुत कहानी है।

सत्यकी शोध

अफ्रीकामें वकालत करते हुए गाधीने सार्वजनिक जीवन तो अपनाया ही,

सम्बन्धी खोजमें रस्किन, थोरो और टॉल्स्टॉयके क्रान्तिकारी विचारोंको मूर्त रूप भी प्रदान किया। सन् १९ ४ में उसने रस्किनकी 'अन्टू दिस लास्ट' पुस्तक पढ़कर उसे जीवनमें उतारनेका निश्चय किया। फिनिक्स आश्रम खोला। सन् १९ ६ में ब्रह्मचर्यका व्रत लिया। सन् १९११ में जोहान्सबर्गमें टॉल्स्टॉय फार्मकी स्थापना की। इस बीच उसने सन् १८९ में बोअर युद्धमें अंग्रेजोंकी सहायता की। सन् १९ ६ के जुलू विद्रोहमें घायलोंकी सेवा की।

सन् १९१५ में गांधीने भारत लौटकर एक वर्षतक भारत-भ्रमण किया और देशकी दुर्दशाका नग्न चित्र अपनी आँखों देखा। कोचरबमें सत्याग्रह आश्रम खोला और श्रमनिष्ठ तथा सरलतापूर्ण जीवनके लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया। उसके बादका गांधीका जीवन भारतके राष्ट्रीय संघर्ष, असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलनोंका इतिहास है।

गांधीके अहिंसात्मक प्रयत्नोंसे १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ। परन्तु सभी जानते हैं कि उस दिन जब एक ओर ब्रिटिश सम्राट्का प्रतिनिधि भारतका शासन-सूत्र भारतीय कांग्रेसके हाथोंमें सौंप रहा था, और सारा राष्ट्र हर्षोत्फुल्ल होकर प्रसन्नतासे नाच रहा था तब दूसरी ओर सेवाग्रामका सन्त रो रहा था। देशमें फैली साम्प्रदायिक विद्वेष तथा और संघर्षकी ज्वालाएँ उसे बुरी भाँति दग्ध कर रही थीं!

दिल्लीमें फैली साम्प्रदायिक विद्वेषकी आग बुझानेके लिए १३ जनवरी १९४८ को गांधीने आमरण अनशन ठाना। उसके जीवनका यह पन्द्रहवाँ अनशन था। दिल्लीमें ही नहीं सारे देशपर इसकी उत्तम प्रतिक्रिया हुई। पाँच दिन अनशन चला। सभी जातियों और वर्गोंके प्रतिनिधियोंने तथा अधिकारियोंने शान्ति-स्थापनका वचन दिया तब गांधीने उपवास तोड़ा।

३० जनवरीको प्रार्थना-सभामें जाते समय अहिंसाका यह पुजारी हिंसाकी गोलीका शिकार बना। उसके पार्थिव शरीरका अन्तिम शब्द था—'हे राम!'

● ● ●

१ गांधी : [illegible] १९२६, [illegible] पृष्ठ २८।

सर्वोदय-अर्थशास्त्र : ३ :

माँ पुतलीबाईके धार्मिक भावनाएँ और नैतिक संस्कार, रस्किन, थोरो और तोल्सतोयकी विचारधारा, भारतकी भयंकर स्थिति—इन सबने मिल्कर गाधीके हृदयमे जिस विचारधाराका विकास किया, उसका नाम है—'सर्वोदय' ।

आधुनिक अर्थशास्त्री शास्त्रीय अर्थमे गाधीको अर्थशास्त्री नहीं मानते । वे कहते हैं कि गाधी एक राजनीतिक और आध्यात्मिक नेतामात्र था, वह अर्थशास्त्री नहीं था, पर वह अपनी अहिंसा और सत्यकी नीतिको आचरणमे लानेवाला व्यक्ति था, उसने कुछ आर्थिक विचार भी प्रस्तुत किये हैं, जो कि पश्चिमकी शास्त्रीय पद्धतिमे कतई मेल नहीं खाते ।[1]

पश्चिमी अर्थशास्त्रको 'अनर्थशास्त्र' बतानेवाले गाधीको शास्त्रीय विचारधारावाले अपनी पक्तिमे कैसे स्वीकार कर सकते हैं, जब कि उसकी विचारधारा सर्वथा विपरीत मूल्योंको लेकर चलती है। गाधीकी आर्थिक विचारधारा 'सर्वोदय' के नामसे प्रख्यात है ।

सर्वोदय विचारधारामे मानवीय मूल्योंपर, अहिंसापर, सत्यपर, सादगीपर, विकेन्द्रीकरणपर, विकेन्द्रित वृत्तिपर सर्वाधिक बल दिया गया है । शोषणहीन, वर्गविहीन समाजकी स्थापना, विश्व-बन्धुत्व और मानव-कल्याणकी उपासना ही सर्वोदयका लक्ष्य है ।

पैसेका अर्थशास्त्र

> **अर्थमनर्थं भावय नित्यम् ।**
> **नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ॥**

भारतीय विचार-परम्परामे अर्थको अनर्थका मूल कारण माना गया है । घोरसे घोर जघन्य कृत्य पैसेको लेकर होते हैं । परन्तु आज पैसेने जो प्रभुता प्राप्त कर ली है, उससे कौन अनभिज्ञ है ? **'यस्य गृहे टका नास्ति हाटका टकटकायते'** जीवन आज पैसेपर, टकेपर बिक रहा है । जिसके पास पैसा है, उसीका सम्मान है, उसीकी प्रतिष्ठा है, उसीकी तूती बोलती है । **'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते'**

अर्थशास्त्रियोंने इस पैसेकी महत्ताको और अधिक बढ़ा दिया है । उनके अर्थशास्त्रकी नींव ही है पैसा, नैतिकता नहीं । सस्ता लेकर महँगा बेचा जाय,

---

१ भटनागर और सतीशबहादुर : ए हिस्ट्री ऑफ इकॉनॉमिक थॉट, पृष्ठ ४१० ।

सत्यकी खोजमें रस्किन, थोरो और टॉल्स्टॉयके क्रान्तिकारी विचारोंको मूर्त रूप भी प्रदान किया। सन् १९०४ में उसने रस्किनकी 'अन्टु दिस लास्ट' पुस्तक पढ़कर उसे जीवनमें उतारनेका निश्चय किया। फिनिक्स आश्रम खोला। सन् १९०६ में ब्रह्मचर्यका व्रत लिया। सन् १९१० में ट्रान्सवालमें टॉल्स्टॉय फार्मकी स्थापना की। इस बीच उसने सन् १८९९ में बोअर युद्धमें अंग्रेजोंकी सहायता की। सन् १९०६ के जुलू-विद्रोहमें घायलोंकी सेवा की।

सन् १९१५ में गांधीने भारत लौटकर एक वर्षतक भारत भ्रमण किया और देशकी दुरवस्थाका नग्न चित्र अपनी आँखों देखा। कोचरबमें सत्याग्रह आश्रम खोला और श्रमनिष्ठ तथा सरलतापूर्ण जीवनके लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया। उसके बादका गांधीका जीवन भारतके राष्ट्रीय संघर्ष, असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलनोंका इतिहास है।

गांधीके अहिंसात्मक प्रयत्नोंसे १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ। परन्तु सभी जानते हैं कि उस दिन जब एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यका प्रतिनिधि भारतका शासन-सूत्र भारतीय कांग्रेसके हाथोंमें सौंप रहा था, और सारा राष्ट्र हर्षोत्फुल्ल होकर प्रसन्नतासे नाच रहा था तब दूसरी ओर संतापाक्रान्त सन्त रो रहा था। देशमें फैली साम्प्रदायिक विद्वेष, घृणा और संघर्षकी ज्वालाएँ उसे बुरी भाँति दग्ध कर रही थीं।

दिल्लीमें फैली साम्प्रदायिक विद्वेषकी आग बुझानेके लिए १३ जनवरी १९४८ को गांधीने आमरण अनशन ठाना। उसके जीवनका यह पन्द्रहवाँ अनशन था। दिल्लीमें ही नहीं सारे देशपर इसकी उत्तम प्रतिक्रिया हुई। पाँच दिन अनशन चला। सभी जातियों और वर्गोंके प्रतिनिधियोंने तथा अधिकारियोंने शान्ति-स्थापनका वचन दिया तब गांधीने उपवास तोड़ा।

३० जनवरीको प्रार्थना-सभामें जाते समय अहिंसाका यह पुजारी हिंसाकी गोलीका शिकार बना। उसके पार्थिव शरीरका अन्तिम शब्द था— हे राम!

● ● ●

---

१ गांधी : [illegible]

२ इसने समाजके विभिन्न वर्गों और देशोंमें समन्वय स्थापित करनेके बजाय विरोध उत्पन्न किया है और सर्वोदयके बदले थोड़े लोगोंको थोड़े समयके लिए ही लाभ सिद्ध किया है।

३ यह पिछड़े समझे जानेवाले देशोंमें आर्थिक लूट मचाकर तथा वहाँके लोगोंको दुर्व्यसनोंमें फँसाकर और उनका नैतिक अधःपतन करके समृद्धिका पथ खोजता है।

४ जिन राष्ट्रों या समाजोंने इस अर्थशास्त्रको अंगीकार किया है, उनका जीवन पशु-बलपर ही टिक रहा है।

५ इसने जिन-जिन वहमों (अन्धविश्वासों) को जन्म दिया या बढ़ाया है, वे धार्मिक या भूत प्रेतादिकके नामसे प्रचलित वहमोंसे कम बलवान् नहीं है।[1]

पश्चिमी अर्थशास्त्रकी विचारधाराका अभीतक हमने जो अध्ययन किया, उसमें गांधीकी बात सर्वथा मेल खाती है। उसमें पूँजीवादकी विचारधाराका ही अधिकतम विकास दृष्टिगोचर होता है। समाजवादी विचारधारा उसके विरोधमें खड़ी हुई अवश्य, परन्तु उसका भी मूल आधार तो पैसा ही है। पैसा और उसका गणित ही अभीतक पश्चिमी अर्थशास्त्रका क्षेत्र रहा है। पैसा ही उसकी कसौटी है, पैसा ही उसका माध्यम है, पैसा ही उसका लक्ष्य है। चाहे पूँजीवादी विचार-धारा हो, चाहे समाजवादी या साम्यवादी—सबका मापदण्ड पैसा ही है।

पैसेका अथवा सोनेका मापदण्ड बहुत ही खतरनाक है। विनोबा कहता है : पैसा तो लफगा है। वह तो नासिकके कारखानेमें बनता है। उसके मूल्यका भला क्या ठिकाना ! आज कुछ है, कल कुछ !

सोनेकी फुटपट्टीका माप

पैसेकी बुनियादपर खड़ी सारी अर्थरचनाओंको सर्वोदय इसलिए अस्वीकार करता है कि पैसेमें वस्तुओंकी सच्ची कीमत नहीं आँकी जा सकती।

किशोरलालभाईने इस धारणाका विवेचन करते हुए[2] कहा है कि 'आज भले ही सोनेके सिक्कोंका चलन कहीं भी न हो, मगर अर्थ-विनिमयका साधन—वाहन और माप—उसके पीछे रहनेवाले सोने-चाँदीके सग्रहपर ही है। साम्य-वादी भले ही मजदूरको महत्त्व दे, पूँजीपतिको निकालनेकी कोशिश करे, मगर वह भी पूँजीको—यानी सोने-चाँदीके आधारको और गणितको ही महत्त्व देता है। आर्थिक समृद्धिका माप सोनेकी बनी हुई फुटपट्टी ही है। इस फुटपट्टीके पीछे रहनेवाली सामान्य समझ यह है कि जो चीज हर किसीको आसानीसे न मिल सके, वही उत्तम धन है।

[1] किशोरलाल मशरूवाला : गांधी विचार-दोहन।
[2] किशोरलाल मशरूवाला : जड़-मूलसे क्रान्ति, पृष्ठ ८७–८६।

अधिकसे अधिक मुनाफा कमाया जाय, पैसेके द्वारा जनताका स्तर ऊँचा किया जाय, बड़े-बड़े कारखाने खोले जायें, बड़े पैमानेपर उत्पादन किया जाय, अधिकाधिक उपभोग किया जाय—ऐसी असंख्य धारणाएँ अर्थशास्त्रमें देखनेको मिलती हैं। पदार्थोंके विस्तार, आवश्यकताओंके विस्तार और उत्पादनके विस्तार पर अर्थशास्त्रका पूरा जोर है। इस पैसेकी मायाके नीचे मनुष्य दब गया है। पैसा उसकी छातीपर सवार है, उसकी गर्दनपर सवार है, उसके मस्तिष्कपर सवार है। जिसके बाहुबलसे पैसा पैदा होता है, जिसके पसीनेसे रक्तसे, भरती तिजोरियाँ भरती हैं, उस मानवका इस पश्चिमी अर्थशास्त्रमें कहीं पता नहीं। मशीनोंकी घर्र घर्रमें तूतीकी आवाज कौन सुनता है?

'अर्थशास्त्र' नहीं, अनर्थशास्त्र

गांधीने इस पीड़ित और शोषित मानवको अर्थशास्त्रियोंकी उपेक्षाका पात्र देखकर कहा : पश्चिमके अर्थशास्त्रकी बुनियाद ही गलत दृष्टिबिन्दुओंपर है इसलिए यह अर्थशास्त्र नहीं, अनर्थशास्त्र है। कारण

(१) उसने भोग विलासकी विविधता और विपुलताको संस्कृतिका प्राण माना है।

(२) यह दावा तो करता है ऐसे सिद्धान्तोंका, जो सब देशों और सब कालोंपर घटित होते हों, परन्तु सच तो यह है कि उनका निर्माण यूरोपके छोटे, ठंडे और कृषिके लिए कम अनुकूल देशोंमें, घनी बस्तीवाले, परन्तु मुट्ठीभर लोगोंकी अथवा बहुत थोड़ी आबादीवाले उपजाऊ बड़े खण्डोंकी परिस्थितिके अनुसार हुआ है।

(३) पुस्तकोंमें भले ही निषेध किया गया हो, फिर भी यह योजना और व्यवहारमें यह मानने और अपनानेकी पुरानी रटसे मुक्त नहीं हो पाया है कि—

क व्यक्ति, वर्ग या अधिक हुआ, तो अपने ही छोटेसे दायरेके अर्थ साधनको प्रधानता देनेवाली और उसके हितकी पुष्टि करनेवाली नीति ही अर्थशास्त्रका अचल शास्त्रीय सिद्धान्त है।

ख कीमती धातुओंको इतनी ज्यादा प्रधानता दी जाय।

(४) उसकी विचार-श्रेणीमें अर्थ और नीति-धर्मका कोई सम्बन्ध नहीं माना गया है। इसलिए उसने अपने समाजमें अर्थको अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण जीवनके विषयोंको गौण समझनेकी आदत डाल दी है।

इसके फलस्वरूप—

१ यह अर्थशास्त्र मनुष्योंका घातक तथा (पशुओंकी अपेक्षा) उद्योगोंका अंधपूजक बन गया है।

तम सुख' का पक्षपाती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ लोग सदा ही पीड़ित रहनेवाले हैं, ऐसा उसने निश्चित सत्यके रूपमें स्वीकार कर लिया है। गांधी कहता है, 'मैं इस सिद्धान्तको मानता ही नहीं। इसे नग्न रूपमें देखें, तो इसका अर्थ यह होता है कि ५१ प्रतिशतके मान लिये गये हितोंके खातिर ४९ प्रतिशतके हितोंका बलिदान कर दिया जाना उचित है। यह सिद्धान्त निर्दयतापूर्ण है। इसमें मानव-समाजकी भारी हानि हुई है। सबका अधिकतम भला ही एक सच्चा, गौरवशाली एवं मानवतापूर्ण सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त अधिकतम स्वार्थ-त्याग द्वारा ही अमलमें लाया जा सकता है।'[1]

पश्चिमी अर्थशास्त्रसे भिन्नता

सर्वोदय अर्थशास्त्र पश्चिमी अर्थशास्त्रसे इस अर्थमें सर्वथा भिन्न है कि वह 'अधिकतम' के स्थानपर 'सबका' उदय चाहता है, किसी एक वर्ग या बहुमतका नहीं। सर्वोदय-अर्थशास्त्र वस्तुनिष्ठ उत्पादन नहीं, मानवनिष्ठ उत्पादन चाहता है। सर्वोदयका केन्द्रीय मूल्य मानव है, वस्तु नहीं। सर्वोदय-अर्थशास्त्रमें नैतिकता पहली चीज है, धन दूसरी। वह मानवमात्रका हित देखता है। उसका आदर्श है—'वसुधैव कुटुम्बकम्।'

सर्वोदय मानवताका पुजारी है, नैतिकताका पक्षपाती है, विश्व-बन्धुत्वका समर्थक है। सत्य उसका साध्य है, अहिंसा उसका साधन। वह साध्यकी ही नहीं, साधनकी भी शुद्धतामें विश्वास करता है।

सर्वोदयका लक्ष्य

सर्वोदयकी मान्यता है कि समाजके अन्दर व्यक्तियों तथा संस्थाओंके सम्बन्धोंका आधार सत्य और अहिंसा होना चाहिए। उसका यह भी विश्वास है कि समाजमें सब व्यक्ति समान और स्वतन्त्र हैं। इनके बीच यदि कोई चिरस्थायी सम्बन्ध हो सकता है, जो इनको एक साथ रख सकता है, तो वह प्रेम और सहयोग ही है, न कि बल और जोर-जबरदस्ती।

मानवके भीतर प्रतिस्पर्द्धा, प्रतियोगिता और संघर्षकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन देकर न तो समाजमें प्रेम और सहयोग उत्पन्न ही किया जा सकता है और न उसका सम्वर्द्धन ही किया जा सकता है। सर्वोदयी समाज-व्यवस्था ऐसे वातावरणमें उत्पन्न ही नहीं हो सकती, जहाँ अत्याचारके यन्त्र पूर्णताको पहुँचा दिये गये हों और व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा मुनाफा कमानेका लोभ इतना बलवान् हो गया हो कि उसने प्रेम तथा भ्रातृभावको दबा दिया हो और समानताकी भावनाको नष्ट कर दिया हो।

सर्वोदय ऐसी समाज-रचना स्थापित करना चाहता है, जिसमें संस्थाओं द्वारा सत्ताका प्रयोग अनावश्यक बना दिया जायगा, कारण, वह भी तो बल-प्रयोगका

'पूँजीवादका मतलब है, ऐसी चीजपर व्यक्तिगत अधिकार रखनेमें श्रद्धा तथा साम्यवाद या समाजवादका अर्थ है, ऐसी चीजपर सरकारका कब्जा रखनेमें श्रद्धा। जो चीज हर किसीको आसानीसे मिल सकती हो, वह जीवन-निर्वाहके लिए चाहे कितनी महत्त्वपूर्ण होनेपर भी उसका दरजेका धन समझी जाती है। इस तरह हवाकी अपेक्षा पानी, पानीकी अपेक्षा खाद और उसकी अपेक्षा शराब, तम्बाकू, चाय, लोहा, ताँबा, सोना, पेट्रोल, युरेनियम आदि उत्तरोत्तर अधिक ऊँचे प्रकारके धन माने जाते हैं। इस तरह जो चीज जीवनके लिए कीमती और अनिवार्य हो उसकी अर्थशास्त्रमें कीमत कम और जिसके बिना जीवन निभ सके उसकी अर्थशास्त्रमें कीमत ज्यादा है। यों जीवन और अर्थशास्त्रका विरोध है।

'अर्थशास्त्रकी दूसरी विलक्षणता यह है कि मजदूरीका समयके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें उसके साधन अथवा यंत्रका ध्यान ही नहीं रखा जाता। उदाहरणके लिए, समान वस्तु बनानेमें एक साधनसे पाँच घण्टे लगते हैं और दूसरेसे दो तो दूसरा साधन काममें लेनेवालेको ज्यादा कीमत मिलती है फिर भले ही पहलेने खूब मेहनत करके वह चीज बनायी हो और दूसरेको उसे बनानेमें यंत्रको दबानेके सिवा और कुछ न करना पड़ा हो। यानी अर्थशास्त्रमें श्रमकी कीमत नहीं है, मगर समयकी बचत करनेपर इनाम मिलता है और समय बिगाड़नेपर नुकसान होता है। मगर इसने किस तरह समय बचा या बिगाड़ा इसकी परवाह नहीं।

सच पूछा जाय तो जिस तरह साधन अच्छा हो तो समयकी बचत होती है उसी तरह यदि कुशलता, उद्यमशीलता आदि अर्थात् मजदूरीकी गुणवत्ता अधिक हो तब भी समयकी बचत होती है। और यदि साधन तथा गुणवत्ता एक से हों तो वस्तुकी कीमत उसे बनानेमें लगे हुए समयके परिमाणसे आँकी जानी चाहिए। किसी चीजके बनानेमें जितना ज्यादा समय, जितने अच्छे साधन और जितनी ज्यादा गुणवत्ताका उपयोग किया गया हो, उतनी ही ज्यादा उसकी कीमत होनी चाहिए। दरअसल मूल कीमत तो इसी तरहकी होती है। परन्तु आजकी व्यवस्थामें माल तैयार करनेवालेको इस हिसाबसे कीमत नहीं मिलती। समयके दुरुपयोगपर भारी जुर्माना होता है और गुणकी कीमत कंजूसीसे आँकी जाती है। यों सोना-चाँदी आदि चिरस्थ पदार्थोंके आधारपर रची हुई कीमत आजतक पदार्थोंकी सच्ची कीमत नहीं आँकी जा सकती और इसलिए उसके आधारपर रची हुई अर्थव्यवस्था चाहे किस वादके आधारपर खड़ी की गयी हो, अनर्थ पैदा करनेवाली ही साबित होती है और आगे भी होती रहेगी।

२१ मतिलाभपर ही ध्यान

पश्चिमी अर्थशास्त्रका एक दोष यह भी है कि वह 'अधिकतम लोगोंके अधिक

२ इसने समाजके विभिन्न वर्गों और देशोंमें समन्वय स्थापित करनेके बजाय विरोध उत्पन्न किया है और सर्वोदयके बदले थोड़े लोगोंको थोड़े समयके लिए ही लाभ सिद्ध किया है।

३ यह पिछड़े समझे जानेवाले देशोंमें आर्थिक लूट मचाकर तथा वहाँके लोगोंको दुर्व्यसनोंमें फँसाकर और उनका नैतिक अध:पतन करके समृद्धिका पथ खोजता है।

४ जिन राष्ट्रों या समाजोंने इस अर्थशास्त्रको अंगीकार किया है, उनका जीवन पशु-बलपर ही टिक रहा है।

५ इसने जिन-जिन वहमों (अन्धविश्वासों) को जन्म दिया या बढ़ाया है, वे धार्मिक या भूत प्रेतादिकके नामसे प्रचलित वहमोंसे कम बलवान् नहीं हैं।[1]

पश्चिमी अर्थशास्त्रकी विचारधाराका अभीतक हमने जो अध्ययन किया, उससे गांधीकी बात सर्वथा मेल खाती है। उसमें पूँजीवादकी विचारधाराका ही अधिकतम विकास दृष्टिगोचर होता है। समाजवादी विचारधारा उसके विरोधमें खड़ी हुई अवश्य, परन्तु उसका भी मूल आधार तो पैसा ही है। पैसा और उसका गणित ही अभीतक पश्चिमी अर्थशास्त्रका क्षेत्र रहा है। पैसा ही उसकी कसौटी है, पैसा ही उसका माध्यम है, पैसा ही उसका लक्ष्य है। चाहे पूँजीवादी विचारधारा हो, चाहे समाजवादी या साम्यवादी—सबका मापदण्ड पैसा ही है।

पैसेका अथवा सोनेका मापदण्ड बहुत ही खतरनाक है। विनोबा कहता है पैसा तो लफंगा है। वह तो नासिकके कारखानेमें बनता है। उसके मूल्यका भला क्या ठिकाना! आज कुछ है, कल कुछ।

सोनेकी फुटपट्टीका माप

पैसेकी बुनियादपर खड़ी सारी अर्थरचनाओंको सर्वोदय इसलिए अस्वीकार करता है कि पैसेसे वस्तुओंकी सच्ची कीमत नहीं आँकी जा सकती।

किशोरलालभाईने इस धारणाका विवेचन करते हुए[2] कहा है कि 'आज भले ही सोनेके सिक्कोंका चलन कहीं भी न हो, मगर अर्थ-विनिमयका साधन—वाहन और माप—उनके पीछे रहनेवाले सोने-चाँदीके समग्रहपर ही है। साम्यवादी भले ही मजदूरको महत्त्व दे, पूँजीपतिको निकालनेकी कोशिश करे, मगर वह भी पूँजीको—यानी सोने-चाँदीके आधारको और गणितको ही महत्त्व देता है। आर्थिक समृद्धिका माप सोनेकी बनी हुई फुटपट्टी ही है। इस फुटपट्टीके पीछे रहनेवाली सामान्य समझ यह है कि जो चीज हर किसीको आसानीसे न मिल सके, वही उत्तम धन है।

---

१ किशोरलाल मशरूवाला : गांधी विचार-दोहन।
२ किशोरलाल मशरूवाला : जड़-मूलसे क्रान्ति, पृष्ठ ८७-८६।

अधिकसे अधिक मुनाफा कमाया जाय पैसेके द्वारा जनताका स्तर ऊँचा किया जाय, बड़े-बड़े कारखाने खोले जाय, बड़े पैमानेपर उत्पादन किया जाय अधिकाधिक उपभोग किया जाय—ऐसी अनंतस्य धारणायें अर्थशास्त्रमें देखनेको मिलती हैं। पदार्थोंके विस्तार, आवश्यकताओंके विस्तार और उत्पादनके विस्तार पर अर्थशास्त्रका पूरा जोर है। इस पैसेकी मायाके नीचे मनुष्य दबा पड़ा है। पैसा उसकी छातीपर सवार है, उसकी गर्दनपर सवार है, उसके मस्तिष्कपर सवार है। जिसके पादुर्भावसे पैसा पैदा होता है जिसके पसीनेसे रकम, भमले तिजोरियाँ भरती हैं, उस मानवका इस पश्चिमी अर्थशास्त्रमें कहीं पता नहीं। मशीनोंकी घर घरमें तूतीकी आवाज कौन सुनता है !

'अर्थशास्त्र' नहीं, अनर्थशास्त्र

गांधीने इस पीड़ित और शोषित मानवको अर्थशास्त्रियोंकी उपेक्षाका पात्र देखकर कहा पश्चिमके अर्थशास्त्रकी बुनियाद ही गलत दृष्टिबिन्दुओंपर है इसलिए यह अर्थशास्त्र नहीं अनर्थशास्त्र है। कारण

(१) उसने भोग विलासकी विविधता और विलासिताको संस्कृतिका प्राण माना है।

(२) यह दावा तो करता है ऐसे सिद्धान्तोंका जो सब देशों और सब कालोंपर घटित होते हों परन्तु सच तो यह है कि उनका निर्माण यूरोपके ठण्डे, ठंडे और कृषिके लिए कम अनुकूल देशोंमें घनी बस्तीवाले परन्तु मुट्ठीभर लोगोंकी अथवा बहुत थोड़ी आबादीवाले उपजाऊ बड़े भागोंकी परिस्थितिके अनुभवसे हुआ है।

(३) पुस्तकमें भले ही निषेध किया गया हो फिर भी यह मानता और व्यवहारमें यह मानने और मनवानेकी पुरानी रस्मसे मुक्त नहीं हो पाया है कि—

क. व्यक्ति, वर्ग या अधिक हुआ तो अपने ही क्षेत्रके राष्ट्रके अर्थ लाभको प्रधानता देनेवाली और उसके हितकी पुष्टि करनेवाली नीति ही अर्थ शास्त्रका अचल शास्त्रीय सिद्धान्त है।

ख कीमती धातुओंको हदसे ज्यादा प्रधानता दी जाय।

(४) उसकी विचार श्रेणीमें अर्थ और नीति-धर्मका कोई सम्बन्ध नहीं माना गया है। इसलिए उसने अपने समाजमें अर्थको अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण जीवनके विषयोंको गौण समझनेकी आदत डाल दी है।

इसके फलस्वरूप—

१ यह अर्थशास्त्र संघोंका शहरोंका तथा (खेतीकी अपेक्षा) उद्योगोंका पक्षपूर्वक बन गया है।

तम सुख' का पक्षपाती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ लोग सदा ही पीड़ित रहनेवाले हैं, ऐसा उसने निश्चित सत्यके रूपमें स्वीकार कर लिया है। गाधी कहता है : 'मैं इस सिद्धान्तको मानता ही नहीं। इसे नग्न रूपमें देखें, तो इसका अर्थ यह होता है कि ५१ प्रतिशतके मान लिये गये हितोंके खातिर ४९ प्रतिशतके हितोंका बलिदान कर दिया जाना उचित है। यह सिद्धान्त निर्दयतापूर्ण है। इसमे मानव-समाजकी भारी हानि हुई है। सबका अधिकतम भला ही एक सच्चा, गौरवशाली एव मानवतापूर्ण सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त अधिकतम स्वार्थ-त्याग द्वारा ही अमलमें लाया जा सकता है।'

पश्चिमी अर्थशास्त्रसे भिन्नता

सर्वोदय अर्थशास्त्र पश्चिमी अर्थशास्त्रसे इस अर्थमे सर्वथा भिन्न है कि वह 'अधिकतम' के स्थानपर 'सबका' उदय चाहता है, किसी एक वर्ग या बहुमतका नहीं। सर्वोदय-अर्थशास्त्र वस्तुनिष्ठ उत्पादन नहीं, मानवनिष्ठ उत्पादन चाहता है। सर्वोदयका केन्द्रीय मूल्य मानव है, वस्तु नहीं। सर्वोदय-अर्थशास्त्रमें नैतिकता पहली चीज है, धन दूसरी। वह मानवमात्रका हित देखता है। उसका आदर्श है—'वसुधैव कुटुम्बकम्।'

सर्वोदय मानवताका पुजारी है, नैतिकताका पक्षपाती है, विश्व-बन्धुत्वका समर्थक है। सत्य उसका साध्य है, अहिंसा उसका साधन। वह साध्यकी ही नहीं, साधनकी भी शुद्धतामे विश्वास करता है।

सर्वोदयका लक्ष्य

सर्वोदयकी मान्यता है कि समाजके अन्दर व्यक्तियों तथा सस्थाओंके सम्बन्धोंका आधार सत्य और अहिंसा होना चाहिए। उसका यह भी विश्वास है कि समाजमें सब व्यक्ति समान और स्वतन्त्र हैं। इनके बीच यदि कोई चिरस्थायी सम्बन्ध हो सकता है, जो इनको एक साथ रख सकता है, तो वह प्रेम और सहयोग ही है, न कि बल और जोर-जबरदस्ती।

मानवके भीतर प्रतिस्पर्द्धा, प्रतियोगिता और सघर्षकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन देकर न तो समाजमें प्रेम और सहयोग उत्पन्न ही किया जा सकता है और न उसका सम्वर्द्धन ही किया जा सकता है। सर्वोदयी समाज-व्यवस्था ऐसे वातावरणमे उत्पन्न ही नहीं हो सकती, जहाँ अत्याचारके यन्त्र पूर्णताको पहुँचा दिये गये हों और व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा मुनाफा कमानेका लोभ इतना बलवान् हो गया हो कि उसने प्रेम तथा भ्रातृभावको दबा दिया हो और समानताकी भावनाको नष्ट कर दिया हो।

सर्वोदय ऐसी समाज-रचना स्थापित करना चाहता है, जिसमें सस्थाओं द्वारा सत्ताका प्रयोग अनावश्यक बना दिया जायगा, कारण वह भी तो बल-प्रयोगका

पूँजीवादका मतलब है ऐसी चीजपर व्यक्तिगत अधिकार रखनेमें श्रद्धा तथा साम्यवाद या समाजवादका अर्थ है, ऐसी चीजपर सरकारका कब्जा रखनेमें श्रद्धा। जो चीज हर किसीकी आमदनीसे मिल सकती हो, वह जीवन-निर्वाहके लिए चाहे कितनी महत्त्वपूर्ण होनेपर भी उसके दरजेका धन समझी जाती है। इस तरह हवाकी अपेक्षा पानी, पानीकी अपेक्षा अनाज और उसकी अपेक्षा कपास, तम्बाकू, चाय, लोहा, ताँबा, सोना, पट्रोल, युरेनियम आदि उत्तरोत्तर अधिक ऊँचे प्रकारके धन माने जाते हैं। इस तरह जो चीज जीवनके लिए कीमती और अनिवार्य हो उसकी अर्थशास्त्रमें कीमत कम और जिसके बिना जीवन निभ सके उसकी अर्थशास्त्रमें कीमत ज्यादा है। यों जीवन और अर्थशास्त्रका विरोध है।

'अर्थशास्त्रकी दूसरी विलक्षणता यह है कि मजदूरीका समयके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें उसके साधन अथवा मंत्रका ध्यान ही नहीं रखा जाता। उदाहरणके लिए, समान वस्तु बनानेमें एक साधनसे पाँच घण्टे लगते हैं और दूसरेसे दो तो दूसरा साधन काममें लेनेवालेको ज्यादा कीमत मिलती है फिर भले ही पहलेने खूब मेहनत करके वह चीज बनायी हो और दूसरेको उसे बनानेमें मंत्रको दबानेके सिवा और कुछ न करना पड़ा हो। यानी अर्थशास्त्रमें समयकी कीमत नहीं है मगर समयकी बचत करनेपर इनाम मिलता है और समय बिगाड़नेपर जुर्माना होता है। मगर इसमें किस तरह समय बचा या बिगड़ा इसकी परवाह नहीं।'

'जब पूरा काम तो जिस तरह साधन अच्छा हो तो समयकी बचत होती है उसी तरह यदि कुशलता उद्यमशीलता आदि अर्थात् मजदूरीकी गुणवत्ता अधिक हो तब भी समयकी बचत होती है। और यदि साधन तथा गुणवत्ता एक-से हों तो वस्तुकी कीमत उसे बनानेमें लगे हुए समयके परिमाणमें आँकी जानी चाहिए। किसी चीजको बनानेमें कितना ज्यादा समय कितने अच्छे साधन और कितनी ज्यादा गुणवत्ताका उपयोग किया गया हो उतनी ही ज्यादा उसकी कीमत होनी चाहिए। दरअसल मूल कीमत तो इसी तरहकी होती है। परन्तु आजकी अर्थ-व्यवस्थामें माल तैयार करनेवालेको इस हिसाबसे कीमत नहीं मिलती। समयके दुरुपयोगपर भारी जुर्माना होता है और गुणकी कीमत बड़ी मुश्किलसे आँकी जाती है। यों सोना-चाँदी आदि विरल पदार्थोंके आधारपर रची हुई कीमत आँकनेकी पद्धतिसे वस्तुओंकी सच्ची कीमत नहीं आँकी जा सकती और इसलिए उसके आधारपर बनी हुई अर्थव्यवस्था चाहे किस वादके आधारपर खड़ी की गयी हो अनर्थ पैदा करनेवाली ही साबित होती है और आगे भी होती रहेगी।

२१ प्रतिशतपर ही ध्यान

पश्चिमी अर्थशास्त्रका एक दोष यह भी है कि वह 'अधिकतम लोगोंके अधिक-

सदस्योंमें पारिवारिक स्नेह होगा। प्रत्येक व्यक्तिको सारे समाजका और सारे समाजको प्रत्येक व्यक्तिका ध्यान रहेगा।

व्यक्ति और समाजका योगक्षेम भलीभाँतिसे हो सके, मनुष्य अपनी नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सके, इसके लिए मानवकी भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए सभी प्रयत्नशील होंगे, पर केवल भौतिक दृष्टिसे सम्पन्न होना ही पर्याप्त नहीं माना जायगा। इसके लिए गहरे उतरकर मानवकी समग्र दृष्टिको और उसकी आदतोंको बदलना पड़ेगा। आजतक उसे जिन मूल्यों और बाधक आदर्शोंसे प्रेरणा मिलती रही है, उनमें आमूल परिवर्तन करना होगा। इस लक्ष्यमें बाधक वस्तुओंको मार्गसे हटाना पड़ेगा।

सर्वोदय-संयोजन

सर्वोदय-संयोजनमें हमें इस प्रकार परिवर्तन करने होंगे :

(१) समाजके प्रत्येक व्यक्तिको पूरे समयका और पेट भरने लायक काम देना।

(२) यह निश्चित कर लेना कि समाजमें प्रत्येक सदस्यकी सभी आवश्यक जरूरतोंकी पूर्ति हो जाय, जिससे कि वह अपने व्यक्तित्वका पूरा-पूरा विकास कर सके और समाजकी उन्नतिमें उचित योगदान कर सके।

(३) जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताओंके सम्बन्धमें यह प्रयत्न हो कि प्रत्येक प्रदेश स्वावलम्बी हो। हर गाँव और हर प्रदेश स्वयं ही आवश्यक वस्तुओंका उत्पादन कर लिया करे।

(४) यह भी निश्चय कर लेना कि उत्पादनके साधन और क्रियाएँ ऐसी न हों, जो निर्मम बनकर प्रकृतिका शोषण कर डालें। उत्पादनमें प्राणिमात्रके प्रति आदर और भावी पीढ़ियोंकी आवश्यकताओंका ध्यान रखना भी परम आवश्यक है।

स्पष्ट है कि सर्वोदयकी योजना, जो बेकारीको पूर्णत मिटा देना चाहती है और उद्योगोंका संगठन विकेन्द्रीकरणके सिद्धान्तोंके आधारपर करना चाहती है, धनप्रधान नहीं, श्रमप्रधान होगी।'

इस लक्ष्यकी पूर्तिके उद्देश्यसे अप्रैल १९५० में सर्वोदय-योजना-समितिने एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की। इस समितिके सदस्य थे सर्वोदयके प्रसिद्ध सेवक धीरेन्द्र मजूमदार, शंकरराव देव, जयप्रकाश नारायण, अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, र० श्री० धोत्रे, सिद्धराज ढड्ढा, अच्युत पटवर्धन, नारायण देसाई और

एक प्रतीक ही है। वह मानता है कि स्वतन्त्रता कहीं निरंकुश बनकर स्वच्छन्दता का स्वरूप न ग्रहण कर ले अतः संयम आवश्यक है। परन्तु वह यह विश्वास नहीं करता कि मानव इतना अक्षम है कि वह बाह्य दबावके बिना समाज-हितका काम करेगा ही नहीं। इसके विरुद्ध उसकी तो यह मान्यता है कि यदि मनुष्यको आवश्यक शिक्षण मिले तो वह स्वतः इतना संयम कर लेगा कि जिसमें बाहरी दबावकी या राज्य-संस्थाकी आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

मानव ज्यों-ज्यों संयमकी दिशामें प्रगति करता जायगा राज्यसत्ताका उपयोग त्यों-त्यों कम होता जायगा। वह सत्ता समाजकी सेवा करनेवाली संस्थाओंके हाथमें पहुँचती जायगी जिन्हें उसका उपयोग करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। कारण, उसका बल होगा—प्रेम सहयोग समझाना-बुझाना और प्रत्यक्ष समाज हित।

सर्वोदय-समाजमें व्यवस्थाका आधार होगा प्रेमसे समझाना-बुझाना और सत्याग्रह करना। इसके लिए दो उपाय काममें लाये जायँगे। एक होगा आज राजनीतिक एवं आर्थिक संस्थाओंके हाथमें जो सत्ता केन्द्रित है उसका विकेन्द्रीकरण और दूसरा होगा जनताको सत्याग्रहके शास्त्र और उसकी कलाकी शिक्षा देनेकी व्यवस्था। विकेन्द्रित समाज अपने जनतन्त्र एवं समानताका उदाहरण होगा।

शोषणहीन वर्गहीन समाज

केवल राजनीतिक सत्ताका ही नहीं स्वामित्वके उन सभी प्रकारोंका विकेन्द्रीकरण आवश्यक है, जिनके कारण किसी मनुष्यको अन्य मनुष्योंपर सत्ता प्राप्त हो जाती है। जैसे उत्पादनके साधनोंपर मुट्ठीभर लोगोंका स्वामित्व नहीं होगा। उसपर श्रम करनेवाले व्यक्तियोंका ही यथासम्भव स्वामित्व होगा। इस समाजमें मनुष्य मनुष्यका शोषण नहीं कर सकेगा। उत्पादनके साधनोंका कोई इस प्रकारसे उपयोग नहीं कर सकेगा कि जिसके कारण बहुसंख्यक लोग निरे मजदूर बना दिये जा सकें और मुट्ठीभर लोग निठल्ले पड़े मौज मारते रहें।

सर्वोदय समाजमें कोई वर्ग नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्तिको श्रम करके अपनी जीविकाका उपार्जन करना पड़ेगा। उत्पादनके साधन इस ढंगके होंगे कि प्रत्येक व्यक्ति उनपर अधिकार करके उनसे काम ले सकेगा। इसका परिणाम यह होगा कि शोषणहीन एवं वर्गहीन समाजकी रचना हो सकेगी। इस समाजमें समाजके लिए उपयोगी और आवश्यक प्रत्येक श्रमका मूल्य एक-सा माना जायगा फिर वह श्रम चाहे मस्तिष्कका हो चाहे शरीर श्रमका। यह समाज स्वतंत्र एवं समान अधिकारवाले व्यक्तियोंका समाज होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी समझता और संयम तथा सत्याग्रहपूर्वक समाजकी एकताकी रक्षा करेगा। इसके

आचार-शास्त्रमें भेद नहीं किया जा सकता। जीवनपर समग्र दृष्टिसे ही विचार किया जाना चाहिए।

गांधीने अपने इस विचारका प्रतिपादन करते हुए कहा है : 'मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्रके बीच कोई विशेष अन्तर नहीं करता। जो अर्थशास्त्र किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्रके कल्याणमें बाधा डालता है, वह अनैतिक है और इसलिए पापपूर्ण है। जो अर्थशास्त्र यह अनुमति देता है कि एक देश दूसरे देशको लूट ले, वह अनैतिक है। मैं अमरीकी गेहूँ खाऊँ और पड़ोसी अन्न-विक्रेताको ग्राहकोंके अभावमें भूखों मरने दूँ, यह पाप है। इसी तरह मुझे यह भी पापपूर्ण लगता है कि मैं रीजेण्ट स्ट्रीटका बढ़िया कपड़ा पहनूँ, जब कि मैं जानता हूँ कि यदि मैं अपनी पड़ोसी कत्तिनों और बुनकरोंके काते-बुने कपड़े पहनता, तो मुझे तो कपड़ा मिलता ही, उन लोगोंको भोजन भी मिलता, कपड़ा भी।'[1]

समग्र दृष्टि

गांधीकी मान्यता थी कि मानवपर विचार करते समय समग्र दृष्टि रखनी चाहिए। मानव जीवनको राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक अंगोंमें बाँटनेका कोई अर्थ नहीं होता। वह कहता था : 'मानवके कार्योंकी वर्तमान परिधि अविभाज्य है। उसे आप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक या केवल धार्मिक टुकड़ोंमें विभाजित नहीं कर सकते।'[2] 'मैं जीवनको जड़-दीवारोंमें विभक्त नहीं किया करता। एक व्यक्तिकी भाँति राष्ट्रका भी जीवन अविभक्त और पूर्ण होता है।'[3]

इसी समग्र दृष्टिसे गांधीने सारा राजनीतिक आन्दोलन चलाया। उसमें परतन्त्रता-पाशसे भारतको मुक्त करनेकी छटपटाहट तो थी, पर उसके लिए उसका साधन था—अहिंसा। इस अहिंसाकी साधना एकांगी हो नहीं सकती। जीवनका समग्र दर्शन उसमें समाविष्ट हो जाता है। तभी तो वह कहता है कि 'जब हम अहिंसाको अपना जीवन-सिद्धान्त बना लें, तो वह हमारे सम्पूर्ण जीवनमें व्याप्त होनी चाहिए। यों कभी-कभी उसे पकड़ने और छोड़नेसे लाभ नहीं हो सकता'।

साध्य और साधन

गांधीकी यह भी एक विशेषता है कि उसने सत्य, अहिंसा तथा अन्य गुणोंको सामाजिक स्वरूप प्रदान किया। दादा धर्माधिकारीके शब्दोंमें 'सार्वजनिक जीवनमें दारिद्र्य हमारा व्रत है' 'उपवास हमारा व्रत है'—इस

१ गांधी यंग इण्डिया १३-१०-१९२१।
२ तेंडुलकर महात्मा, खण्ड ९, पृष्ठ ३८७।
३ गांधी हरिजन सेवक २६ २-'३७।
४ गांधी हरिजन, ५ ९-'३६, पृष्ठ २३७।

'सर्वोदय संयोजन' में भूमिका स्वामित्व, ग्राम-राज्य, उद्योग; यंत्र, शक्ति और औद्योगिक शोध, बैंक, सिक्का और बीमा, व्यापार, यातायात, मजदूर और उद्योगोंका सम्बन्ध, शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई, प्रतिरक्षा और कर-पद्धतिपर विचार करनेके उपरान्त इस बातपर भी विचार किया गया है कि योजनाका व्यय कहाँसे आयेगा और उसका अमल कैसे होगा। उसमें बताया है कि सर्वोदय-योजनामें पूँजी, कुशल और मशीनोंपर नहीं, मनुष्योंको काम देनेपर अधिक ध्यान दिया जायगा। कर लगाने और वसूल करनेका अधिकार बुनियादी इकाइयों जैसे गाँव-समाज या नगरोंमें नगरपालिका-समितियों और प्रादेशिक सरकारोंको प्राप्त रहेगा। इससे छोटी इकाइयोंको आयके बारेमें केन्द्रका मुँह नहीं ताकना होगा। उन्हें सीधे और काफी आय अपने क्षेत्रसे मिल जायगी। आयका एक हिस्सा वे राज्य-सरकार और केन्द्रको भी देंगी।[1]

योजना प्रस्तुत करते हुए उसके संपादक शंकरराव देवने यह बात स्पष्ट कर दी कि 'इसका आशय कोई यह न समझे कि यह पंचवर्षीय शासन द्वारा तैयार की गयी दूसरी पंचवर्षीय योजनाका स्थान ले सकता है। न यह सर्वोदयी योजनाकी कोई व्यवस्थित रूपरेखा ही है। सच तो यह है कि सर्वोदयी व्यवस्थामें किसी ऐसी गढ़ी-गढ़ाई (साँचेमें ढली) योजनाके आधारपर जीवन नहीं बनाया जा सकता। सर्वोदय एक विकासशील आदर्श है। उसे अभी किसी साँचेमें नहीं ढाला गया है। अगर हम चाहते हैं कि सर्वोदय एक कट्टर और बाड़-पंथ न बन जाय बल्कि ऐसी शक्तिका काम दे, जो मानव-मानवके सम्बन्धों और हमारी संस्थाओंके वर्तमान रूपको बदलकर उन्हें सत्य और अहिंसासे अनुप्राणित करता रहे, तो यही उचित होगा कि वह इस प्रकारका बाड़-पंथ न बने।'[2]

संयोजनके मूल सिद्धान्त

श्री श्रीमन्नारायणके अनुसार गांधीके सर्वोदय-संयोजनके मूल सिद्धान्त इस प्रकार हैं :

१ सादगी
२ अहिंसा
३ श्रमकी पवित्रता और
४ मानवीय मूल्योंका परिपालन।

आपका कहना है कि विनोबाजीकी भाँति गांधीके मतसे भी अध्यात्म और

---

१ सर्वोदय-संयोजन, पृष्ठ १०, १४।
२ शंकरराव देव : सर्वोदय-संयोजन, दो शब्द, पृष्ठ ४-५।
३ श्रीमन्नारायण : प्रिंसिपल्स ऑफ गांधियन प्लानिंग, १९६०, पृष्ठ १०-१५।

हमारी पारमार्थिक एकता है। यह निरपेक्ष है, सापेक्ष नहीं। पशुसे लेकर मनुष्यों तक जितना कुछ जीवन है, इस जीवनमात्रकी एकता जीवनका ध्रुवसत्य है।[1]

अहिंसा

गांधीका कहना है कि 'खोजमें तो मैं सत्यकी निकला, पर मिल गयी अहिंसा।'

सावलीमें दादा धर्माधिकारीने गांधीसे पूछ दिया : 'आपका मुख्य धर्म सत्य है या अहिंसा ?'

गांधी बोले : 'सत्यकी खोज मेरे जीवनकी प्रधान प्रवृत्ति रही है। इसमें मुझे अहिंसा मिली और मैं इस परिणामपर पहुँचा कि इन दोनोंमें अभेद है। बिना अहिंसाके मनुष्य सत्यतक नहीं पहुँच सकता। यह मेरी साधनाका निचोड़ है। दोनोंकी युगल जोड़ीको मैं अभेद्य मानता हूँ।'

यह अहिंसा कैसे प्रकट होती है ?

अहिंसा प्रेममें प्रकट होती है। प्रेमका प्रारम्भ ममत्वसे होता है, परिसमाप्ति तादात्म्यमें। हमारे जीवनमें वह कैसे पैदा होता है ? दूसरेका सुख हमारा सुख हो जाता है, दूसरेका दुःख हमारा दुःख हो जाता है। 'सुख दीने सुख होत है, दुख दीने दुख होय।' तो फिर अहिंसक आचरण प्रकट कैसे होगा ? 'जो तोकूँ काँटा बुवे, ताहि बोउ तू फूल।' तेरे फूलसे फूल ही निकलेंगे। उसके काँटोंमेंसे काँटे निकलते चले जायेंगे। तेरी फसल अगर काँटोंकी फसलसे बड़ी होती होगी, तो काँटोंमें भी गुलाब लगते चले जायेंगे। यह अहिंसाका दर्शन कहलाता है। अहिंसा और सदाचारकी बुनियाद प्रेममूलक होती है और तादात्म्यमें उसकी परिणति होती है। सामाजिक क्षेत्रमें अहिंसा व्यक्त होती है—दूसरेका सुख अपना सुख माननेसे, दूसरेका दुःख अपना दुःख माननेसे।[2]

सत्य और अहिंसाकी बुनियादपर ही सर्वोदयका सारा प्रासाद खड़ा है। ब्रह्मचर्य और अस्वाद, अस्तेय और अपरिग्रह, अभय और शरीर श्रम, अस्पृश्यता-निवारण और सर्वधर्म-समभाव तथा स्वदेशी—ये एकादशव्रत सर्वोदयके मूल आधार हैं। परन्तु सत्य और अहिंसाकी साधनामें उन सबका समावेश हो जाता है।

गांधी कहता है : यदि गम्भीर विचार करके देखें, तो मालूम होगा कि सब व्रत सत्य और अहिंसाके अथवा सत्यके गर्भमें रहते हैं और वे इस तरह बताये जा सकते हैं

१ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय-दर्शन, पृष्ठ २७५-२७७।
२ वही, पृष्ठ २७७-२७८।

प्रकारसे सामाजिक जीवनकी और व्यक्तिगत जीवनकी साधनाओंको मिलाकर उनका सामाजिक मूल्य बना देना तो गांधीजी की विशेषता थी। सामाजिक क्रान्ति और व्यक्तिगत साधना ये दोनों जीवनकी महान् कलाएँ हैं। जिन्होंने कुशलतासे क्रान्ति की उन्होंने जीवनमें और साधनामें उनका समन्वय करनेकी कोशिश की। रामके बारेमें पूछा तो गांधीने कहा 'मेरे लिए तो राम भगवान्‌की दयापर, करुणापर लिखी हुई कविता है।' एक बार कहा: 'मैं अहिंसक क्रान्तिका कलाकार हूँ। जीवनमें व्यक्तिगत साधना और सामाजिक साधनाका जब निष्ठापूर्वक प्रयोग होता है तो सारा जीवन ही कलात्मक बन जाता है।' यों गांधीने क्रान्तिमें एक नयी कला व्रतोंके रूपमें दाखिल की।[1]

सत्य

गांधीका जीवन आदिसे अन्ततक सत्यकी साधना है। वह कहता है 'सत्य शब्दका मूल सत् है। सत्के मानी हैं होना। सत्य अर्थात् होनेका भाव। सिवा सत्यके और किसी चीजकी हस्ती ही नहीं है। इसीलिए परमेश्वरका सच्चा नाम सत् अर्थात् सत्य है। इसीलिए, परमेश्वर सत्य है, कहनेके बदले सत्य ही परमेश्वर है, यह कहना ज्यादा योग्य है।'[2]

सत्य सर्वोदयके सारे व्रतोंका अधिष्ठान है, ध्रुवतारा है। इसे सामने रखकर सारे जीवनकी दिशा निर्धारित की जाती है।

यह सत्य क्या है? यह है—मेरी दूसरोंके साथ एकता। यह तर्कका विषय नहीं। पुराने शास्त्रकारोंने इसे 'साक्षी प्रत्यक्ष' कहा है। याने मेरे अस्तित्वके स्फुरण जैसा है। यह बुद्धिवादसे परे है। विज्ञान वहाँतक नहीं पहुँच सकता इसलिए आइन्स्टाइनने जब अन्तमें गांधीके बारेमें लिखा तो यह लिखा कि जहाँतक हम लोग कोई नहीं पहुँच सकते थे वहाँतक इसकी पहुँच थी। इसलिए हम कहते हैं कि दुनियामें इस धरतीपरसे ऐसा आदमी इससे पहले कभी नहीं चला था। गिरजाघरोंमें मसजिदोंमें मन्दिरोंमें और गुरुद्वारोंमें जो भगवान् रहते हैं उन भगवान्‌में मेरी निष्ठा नहीं मेरा विश्वास नहीं, मेरी श्रद्धा नहीं। लेकिन उस गांधीने जिस सत्य और जिस भगवान्‌की उपासना की वह वैज्ञानिक है। उसमें मेरी श्रद्धा भी है और निष्ठा भी है।

सामाजिक मूल्यके रूपमें जब हम सत्यकी उपासना करते हैं तो मुख्यतया हमारे लिए यह है कि दूसरे व्यक्ति और मैं एक हूँ। दूसरेके साथ मेरी एकता मेरी सामाजिकता मेरी नैतिकता और मेरे सदाचारका आधार है। दूसरोंके साथ

---

१ दादा धर्माधिकारी: सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २०१–२०४।
२ वही मंगलप्रभात, १५।

ब्रह्मचर्यकी व्याख्या करते हुए दादा धर्माधिकारी कहते हैं कि स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध समान भूमिकापर आ जाना चाहिए। जिन नैतिक सिद्धान्तोंने पुरुषके जीवनमें एक नीतिमत्ता प्रस्थापित कर दी है, उन नैतिक सिद्धान्तोंको स्त्री-जीवनमें भी वही स्थान मिलना चाहिए, जो पुरुषके जीवनमें है। आज स्त्री पर-भृत है, पर-पोषित है, पर-रक्षित है और पर-प्रकाशित भी है। पुरुषके नामपर वह चलती है। स्त्रीके जीवनमेंसे ये सभी बातें निकल जानी चाहिए। जैसे पुरुष-जीवनमें ब्रह्मचर्य मुख्य है, वैसे ही स्त्री जीवनके लिए भी माना जाना चाहिए।[1]

विनोबा कहता है : इस्लाममें यह विचार रखा है कि गृहस्थ-धर्म ही पूर्ण आदर्श है। वैदिक धर्ममें दूसरी ही बात है। यहाँपर ब्रह्मचारी आदर्श माना गया है। बीचमें जो गृहस्थाश्रम आता है, वह तो वासनाके नियत्रणके लिए है। इस तरह नियत्रणकी एक सामाजिक योजना बनायी गयी थी, जिससे मनुष्य ऊपरकी सीढ़ी जल्दसे जल्द चढ़ सके।[2] स्त्री पुरुषोंका भेद तो हम आकृतिमात्रसे ही पहचानते हैं। अन्दरकी आत्मा तो एक ही है।[3]

गाधीके वानप्रस्थाश्रमकी चर्चा करते हुए विनोबा कहता है : गृहस्थाश्रममें सकोच न रहे, एक-दूसरेके साथ भाई-बहनकी तरह मिलते रहें, यह श्रीकृष्णने बताया। गाधीने शुरू किया कि गृहस्थाश्रममें भी लोग वानप्रस्थाश्रमकी तरह रह सकते हैं। जितनी जल्दी गृहस्थाश्रमसे छूटा जा सके, उतना अच्छा।

शराबकी दूकानोंपर स्त्रियोंको पिकेटिंगके लिए भेजनेके गाधीके विचारकी चर्चा करता हुआ विनोबा कहता है कि गाधीने स्त्रियोंकी सारी शक्ति खोल दी। स्त्रियोंने जो काम किया, वह सारे भारतने देखा।[4] गाधीने कहा कि जो सबसे गिरे हुए लोग हैं, उनके खिलाफ हमें ऊँचीसे ऊँची शक्ति भेजनी चाहिए।

अस्तेय

अस्तेयका अर्थ केवल इतना ही नहीं कि मैं चोरी न करूँ। यह भी है कि मैं दूसरेकी वस्तुकी आकाक्षा भी न रखूँ। गाधी कहता है : दूसरेकी वस्तुको उसकी अनुमतिके बिना लेना तो चोरी है ही, मनुष्य अपनी कही जानेवाली चीज भी चुराता है। उदाहरणार्थ, किसी पिताका अपने बालकोंके जाने बिना, उन्हें मालूम न होने देनेकी इच्छासे चुपचाप किसी चीजका खाना। किसीके जानते हुए भी उसकी चीजको उसकी आज्ञाके बिना लेना चोरी है। यह समझकर

१. दादा धर्माधिकारी सर्वोदय-दर्शन, पृष्ठ २६२-२६३
२. विनोबा स्त्री शक्ति, पृष्ठ ७१ ७२।
३. विनोबा वही, पृष्ठ ७६।
४. विनोबा स्त्री-शक्ति पृष्ठ २४।
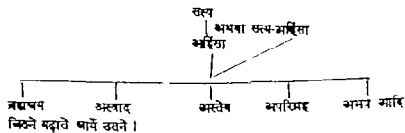
सत्य
| अथवा सत्य-अहिंसा
अहिंसा

ब्रह्मचर्य — अस्वाद — अस्तेय — अपरिग्रह — अभय आदि

जिन्हें महाव्रत मानें उतने।

गांधीकी अहिंसा कायरोंकी नहीं, वीरोंकी अहिंसा है। वह कहता है कि 'अहिंसा डरपोकका, निर्बलका धर्म नहीं है। वह तो बहादुर और जानपर खेलनेवालेका धर्म है। तलवारसे लड़ते हुए जो मरता है वह अवश्य बहादुर है किन्तु जो मारे बिना धैर्यपूर्वक खड़ा-खड़ा मरता है, वह अधिक बहादुर है। मारके डरसे जो अपनी स्त्रियोंका अपमान सहन करता है वह मर्द होकर नामर्द बनता है। वह न पति बनने लायक है न पिता या भाई बनने लायक।[1]

अहिंसाको सामाजिक धर्म बताते हुए वह कहता है : मैंने यह विशेष दावा किया है कि अहिंसा सामाजिक चीज है केवल व्यक्तिगत चीज नहीं है। मनुष्य केवल व्यक्ति नहीं है; वह पिण्ड भी है, ब्रह्माण्ड भी। वह अपने पिण्डका बोझ अपने कन्धेपर लिये फिरता है। जो धर्म व्यक्तिके साथ समाप्त हो जाता है वह मेरे कामका नहीं है। मेरा यह दावा है कि सारा समाज अहिंसाका आचरण कर सकता है और आज भी कर रहा है।[2]

सत्याग्रह-आन्दोलनोंमें गांधीने सामाजिक रूपसे अहिंसाका प्रयोग करके विश्व को चमत्कृत कर दिया। बिना रक्तपातके भारतकी स्वतंत्रताकी प्राप्ति ऐसा उदाहरण है जिसका विश्वमें कोई सानी ही नहीं।

ब्रह्मचर्य

गांधीकी दृष्टिमें ब्रह्मचर्यका अर्थ है—'ब्रह्मकी सत्यकी शोधमें चर्या। अर्थात् तत्सम्बन्धी आचार। इस मूल अर्थसे सर्वेन्द्रिय-संयमका विशेष अर्थ निकलता है। सिर्फ जननेन्द्रिय-संयमके अधूरे अर्थको तो हम भूल ही दें।'[3]

गांधीने ब्रह्मचर्यके व्रतको भी सामाजिक रूप दिया। उसने दम्पती पतिको आत्मत्याग करके, सार्वजनिक जीवनमें आगे लाकर उसे जो महत्त्व प्रदान किया वह किससे छिपा है !

---

१ गांधी हिन्दी नवजीवन ११-१०-'२८ पृष्ठ ६२
२ गांधी भाषण गांधी सेवा संघ चर्चा ३-५ ४।
३ गांधी सप्तमहाव्रत पृष्ठ ६—१२।

आज विश्वमें 'और' 'और' की जो लिप्सा बढ़ रही है, उसीके कारण इतनी हाय हाय और तबाही फैली है। गांधीने लन्दनके एक लखपतीकी इस लिप्साकी चर्चा करते हुए कहा कि "निकृष्ट एवं असभ्य मस्तिष्ककी यह बीमारी है कि वह केवल स्वामित्वके अभिमानकी पूर्तिके लिए वस्तुओंके संग्रहकी लालसा रखता है। एक लखपतीने मुझसे कहा : 'मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों होता है कि मैं जब लन्दनमें होता हूँ, तो गाँव जाना चाहता हूँ और गाँवमें होता हूँ, तो लन्दन।' वह न तो लन्दनसे भागना चाहता था न गाँवसे, वह वस्तुत: भागना चाहता था अपने आपसे। अपनी अपार सम्पत्तिके हाथों अपने-आपको बेचकर वह दिवालिया बन गया था। एक उपदेशकके शब्दोंमें 'उसके हाथ भरे थे, पर आत्मा खाली थी यानी सारी दुनिया उसके लिए खाली थी'।"[1]

आर्थिक समानता

अपरिग्रही समाजसे ही आर्थिक समानताका विकास हो सकता है। गांधी कहता है "आर्थिक समानताकी मेरी कल्पनाका अर्थ यह नहीं कि सबको शाब्दिक अर्थमें एक ही रकम बाँट दी जाय। उसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि प्रत्येक स्त्री पुरुषको उसकी आवश्यकताकी रकम मिलनी ही चाहिए। सर्दीमें मुझे दो दुशालोंकी जरूरत पड़ती है, जब कि मेरे पौत्र कनूको गरम कपड़ेकी कोई जरूरत ही नहीं पड़ती। मुझे बकरीका दूध, संतरे और फल चाहिए। कनूका काम साधारण भोजनसे ही चल जाता है। कनू युवक है, मैं ७६ सालका बूढ़ा, फिर भी मेरा भोजन व्यय उससे कहीं ज्यादा है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि हम दोनोंमें आर्थिक विषमता है। तो आर्थिक समानताका सीधा सादा अर्थ है—'प्रत्येक व्यक्तिको उसकी आवश्यकताके अनुरूप मिले।' आज किसान गल्ला पैदा करता है, पर भूखों मरता है। दूध पैदा करता है, पर उसके बच्चोंको दूध नहीं मिलता। यह गलत है। सबको सन्तुलित भोजन, अच्छा मकान, बच्चोंकी शिक्षाकी तथा दवा-दारूकी समुचित सुविधा मिलनी ही चाहिए।[2]

विश्वस्त वृत्ति

अपरिग्रहके साथ ही जुड़ी हुई समस्या है—विश्वस्त वृत्तिकी, ट्रस्टीशिपकी। गांधीने कहा कि धनिकोंको चाहिए कि वे अपनी सारी सम्पत्ति एक संरक्षककी तरह रखें। उसका उपयोग वे केवल उन लोगोंके हितमें करें, जो उनके लिए पसीना बहाते हैं और जिनके श्रम और उद्योगके बलपर ही वे सम्मान और सम्पन्नता प्राप्त करते हैं।[3]

---

१ तेण्डुलकर : महात्मा, खण्ड ८।
२ गांधी : हरिजन, ३१-३-'४६ पृष्ठ ६३।
३ गांधी : हरिजन, २३-२-'४७।

कि वह किसीकी भी नहीं है, किसी चीजको अपने पास रख लेनेमें भी चोरी है। इतनेतक तो समझना साधारणतः सहज ही है। परन्तु अस्तेय बहुत आगे जाता है। जिस चीजके लेनेकी हमें आवश्यकता न हो, उसे जिसके पास वह है, उसकी आज्ञा लेकर भी लेना चोरी है। ऐसी एक भी चीज न लेनी चाहिए, जिसकी जरूरत न हो। अस्तेय-व्रतका पालन करनेवाला उत्तरोत्तर अपनी आवश्यकताओंको कम करेगा। दुनियाकी अधिकांश कंगाली अस्तेयके भंगके कारण हुई है।[1]

अपरिग्रह

अपरिग्रह व्रतकी व्याख्या करते हुए गांधी कहते हैं : परिग्रहका मतलब संचय या इकट्ठा करना है। सत्यशोधक अहिंसक परिग्रह नहीं कर सकता। भगवान्के घर उसके लिए अनावश्यक अनेक चीजें भरी रहती हैं, मारी-मारी फिरती हैं, बिगड़ जाती हैं, जब कि इन्हीं चीजोंके अभावमें करोड़ों लोग दर-दर भटकते हैं, भूखों मरते हैं और जाड़ेसे ठिठुरते हैं। यदि सब अपनी आवश्यकतानुसार ही संग्रह करें, तो किसीको तंगी न हो और सब संतोषसे रहें। आज तो दोनों तंगीका अनुभव करते हैं। करोड़पति अरबपति होनेकी कोशिश करता है, तो भी उसे संतोष नहीं रहता। कंगाल करोड़पति बनना चाहता है। कंगालको पेटभर मिल जानेसे ही संतोष होता नहीं पाया जाता। परन्तु कंगालको पेटभर पानेका हक है और समाजका धर्म है कि वह उसे इतना प्राप्त करा दे। अतः उसके और अपने सन्तोषके खातिर पहले धनाढ्यको पहल करनी चाहिए। वह अपना अत्यन्त परिग्रह छोड़े, तो कंगालको पेटभर सहज ही मिलने लगे और दोनों पक्ष संतोषका सबक सीखें। आदर्श आत्यन्तिक अपरिग्रह तो उसीका होता है जो मन और कर्मसे दिगम्बर हो। अर्थात् वह पक्षीकी तरह गृहहीन, वस्त्रहीन और अन्नहीन होकर विचरण करे। अन्नकी उसे रोज आवश्यकता होगी और भगवान् रोज उसे देंगे। पर इस अवधूत-स्थितिको तो विरले ही पा सकते हैं। हम तो इस आदर्शको ध्यानमें रखकर नित्य अपने परिग्रहको घटाते रहें।[2]

अपरिग्रही समाजकी कल्पना सर्वोदयकी सर्वोत्कृष्ट कल्पना है और इससे मानव-जातिके समस्त कष्टोंका निवारण हो जाता है। मानव केवल अपनी आवश्यकताकी पूर्ति चाहे, आवश्यकतासे अधिक एक कौड़ी अपने पास न रखे, एक कौर भी अधिक न खाये, कपड़ा भी अधिक न रखे, तो सारे समाजके सारे अभावोंकी पूर्ति हो सकती है। इसमें सुख और सबके सन्तोषका एकमात्र साधन यही है। आवश्यकताओंकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही तो सारे अनर्थोंकी जननी है।

---

१ गांधी : मंगलप्रभात, पृष्ठ २०-२१।

२ गांधी : मंगलप्रभात, पृष्ठ २३-२४।

ट्रस्टी है। अल्पसंग्रहवाला भी ट्रस्टी है। तुम्हारे पास आधी रोटी हो और पड़ोसमें कोई भूखा हो, तो उस आधी रोटीको भी बाँट दो।

दूसरेको खिलाकर खायेंगे, मनुष्यके लिए संयोजन करेंगे—यहाँ अपरिग्रहका मत और गांधीके ट्रस्टीशिपका सिद्धान्त एक हो जाता है। दोनोंकी कसौटी यही है कि संग्रह न रहे।

श्रमनिष्ठा

सर्वोदयके नैतिक आधारका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साधन है—श्रमनिष्ठा। गांधी कहता है : 'हाथ और पैरका श्रम ही, सच्चा श्रम है। हाथ-पैरोंसे मजूरी करके ही आजीविका प्राप्त करनी चाहिए। मानसिक और बौद्धिक शक्तिका उपयोग समाज-सेवाके लिए ही करना चाहिए।'

इस कसौटीपर कसने बैठेंगे, तो ऐसे व्यक्तियोंकी भारी पलटन मिलेगी, जो बिना हाथ पैर डुलाये ही, बिना उत्पादनके ही उपभोग करते रहते हैं। सेठ-साहूकार, मिल-मालिक, भू स्वामी, जुआरी, सट्टेबाज, पुजारी, महंत, राजा-रईस, ताल्लुकेदार, नवाब, वकील, डॉक्टर, दूकानदार आदि कितने ही व्यक्ति इस श्रेणीमें आयेंगे।

जो व्यक्ति भोजन करता है, वह शरीर श्रम करे ही, यह सर्वोदयकी आवश्यक निष्ठा है।

किसीने गांधीसे पूछा कि 'जो अशक्त है, दुर्बल है, श्रम करनेमें असमर्थ है, वह क्या करे ?' गांधीने कहा मैंने तो आदर्शकी बात कही है। प्रत्येक व्यक्तिको यथासम्भव उसका पालन करना चाहिए। पर जो उसमें असमर्थ है, वह उसकी चिन्ता न करे। वह जो भी स्वच्छ श्रम कर सकता हो, करे। वह इस बातका ध्यान रखे कि वह उन लोगोंका शोषण न करे, जो उसके लिए श्रम करते हैं। कार्यव्यस्त डॉक्टरों आदिकी चिन्ता छोड़ें। वे जब शुद्ध सेवाकी भावनासे जनताकी सेवा करेंगे, तो जनता उन्हें भूखों नहीं मरने देगी।[1]

एक बार लाल कुर्तीवालोंने गांधीसे शिकायत की कि आपने इरविनसे समझौता करके अच्छा नहीं किया। इससे किसानों और मजदूरोंके स्वतन्त्र लोकतन्त्रका निर्माण नहीं होगा।

गांधीने उत्तर दिया आप लोग यदि यह चाहें कि पूँजीपति लोग सर्वथा नष्ट हो जायँ, सो तो होनेवाला है नहीं। उसमें आपको सफलता मिल नहीं सकती। आपको करना यह चाहिए कि आप पूँजीपतियोंके समक्ष श्रमकी प्रतिष्ठा करके दिखायें। फिर वे उन लोगोंके ट्रस्टी बनना स्वीकार कर लेंगे, जो उनके लिए श्रम करते हैं। मैं चाहता हूँ कि पूँजीवाले निर्धनोंके ट्रस्टी बन जायँ और पूँजीका व्यय

---

१ गांधी ... ३-८-'३५।

गांधी गीताका भक्त था। गीताके अपरिग्रह, समभाव आदि शब्दोंने उसके मनको मजबूतीसे पकड़ लिया। इस दृष्टिका व्यवहार कैसे किया जाय, इसपर चिन्तन करते समय उसे 'ट्रस्टी' शब्दकी उपादेयता मिली। 'आत्मकथा' में उसने लिखा कि 'गीताके अध्ययनसे 'ट्रस्टी' शब्दके अर्थपर विशेष प्रकाश पड़ा और उस शब्दसे अपरिग्रहकी समस्या हल हुई। विनोबा कहता है कि 'गांधी की दृष्टिसे समाजकी किसी भी परिस्थितिमें देहधारी मनुष्यके लिए अपनी शक्तियोंका ट्रस्टीके नाते उपयोग करना ही अपरिग्रह सिद्ध करनेका व्यावहारिक उपाय है।[1]

गांधी कहता है कि 'सम्पत्तिकी रक्षाके दो ही साधन हैं। या तो शस्त्र या अहिंसा। जो लोग अहिंसाके मार्गसे सम्पत्तिकी रक्षा करना चाहते हैं उनके लिए सर्वोत्तम मंत्र है— तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः। (त्यागकर उसका भोग करो।) इसका व्यापक अर्थ यह है कि भले ही तुम करोड़ों रुपये कमाओ पर यह ध्यान रखो कि सम्पत्ति तुम्हारी नहीं है, यह जनताकी है। अपनी उचित आवश्यकताओं की पूर्तिके लिए रखकर शेष सारी सम्पत्ति तुम समाजको अर्पण कर दो।'[2]

दादा धर्माधिकारीने ट्रस्टीशिपका विवेचन करते हुए कहा है कि कुछ लोगोंने ट्रस्टीशिपका मतलब यह कर लिया है कि ब्याज भी लेते जाओ धन भी बढ़ाते चलो उसकी आसक्ति भी रखो; अंतमें इसका भोग भगवान्‌के नाम लिया करो। सोचनेकी बात है कि जिस व्यक्तिने भक्तके रूपमें सत्य, अहिंसा अस्तेयका प्रतिपादन किया, उसने क्या ट्रस्टीशिपका ऐसा अर्थ किया होगा? ट्रस्टीशिपका अर्थ यह है कि परम्परासे जो धन तुम्हें प्राप्त हो गया है, उसे दूसरोंका समझकर जल्दीसे जल्दी उससे मुक्त हो जाओ।

ट्रस्टीशिपके दो पहलू हैं—एक है संक्रमणकालीन। दूसरा यह कि केवल धनिक ही ट्रस्टी नहीं है, श्रमिक भी है। पूँजीवादी समाज-व्यवस्थासे हमें अपरिग्रह व्यवस्थाकी ओर बढ़ना है। इसके लिए संपत्तिके विसर्जनकी आवश्यकता है। यह विसर्जन स्वनिष्ठासे होना चाहिए और व्यक्तिका शुद्धीकरण होना चाहिए। गांधी कहता है कि तुम्हें आनुवंशिक रूपमें या वैसे भी जो सम्पत्ति मिल गयी है, उसे अपनी नहीं समाजकी थाती समझो। तुम्हें उसका विसर्जन करना है। तुम्हें यह चिन्ता होनी चाहिए कि कब मैं यह सम्पत्ति समाजको सौंप देता हूँ और कब मेरा चित्त शान्त होता है।

ट्रस्टीशिपका दूसरा पहलू यह है कि केवल धनिक ही नहीं, श्रमिक भी

---

१ विनोबा सर्वोदय-विचार और स्वराज्य-शास्त्र पृष्ठ १५१।
२ गांधी हरिजन १ २-२-४१।

ट्रस्टी है। अल्पसंग्रहवाला भी ट्रस्टी है। तुम्हारे पास आधी रोटी हो और पड़ोसमें कोई भूखा हो, तो उस आधी रोटीको भी बाँट दो।

दूसरेको खिलाकर खायेंगे, बन्धुत्वके लिए संयोजन करेंगे—यहाँ अपरिग्रहका मत और गांधीके ट्रस्टीशिपका सिद्धान्त एक हो जाता है। दोनोंकी कसौटी यही है कि संग्रह न रहे।

श्रमनिष्ठा

सर्वोदयके नैतिक आधारका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साधन है—श्रमनिष्ठा। गांधी कहते हैं 'हाथ और पैरका श्रम ही, सच्चा श्रम है। हाथ पैरोंसे मजूरी करके ही आजीविका प्राप्त करनी चाहिए। मानसिक और बौद्धिक शक्तिका उपयोग समाज-सेवाके लिए ही करना चाहिए।'

इस कसौटीपर कसने बैठेंगे, तो ऐसे व्यक्तियोंकी भारी पलटन मिलेगी, जो बिना हाथ पैर डुलाये ही, बिना उत्पादनके ही उपभोग करते रहते हैं। सेठ-साहूकार, मिल मालिक, भू स्वामी, जुआरी, सट्टेबाज, पुजारी, महंत, राजा-रईस, तालुकेदार, नवाब, वकील, डॉक्टर, दूकानदार आदि कितने ही व्यक्ति इस श्रेणीमें आवेंगे।

जो व्यक्ति भोजन करता है, वह शरीर श्रम करे ही, यह सर्वोदयकी आवश्यक निष्ठा है।

किसीने गांधीसे पूछा कि 'जो अशक्त है, दुर्बल है, श्रम करनेमें असमर्थ है, वह क्या करे ?' गांधीने कहा . मैंने तो आदर्शकी बात कही है। प्रत्येक व्यक्तिको यथासम्भव उसका पालन करना चाहिए। पर जो उसमें असमर्थ है, वह उसकी चिन्ता न करे। वह जो भी स्वच्छ श्रम कर सकता हो, करे। वह इस बातका ध्यान रखे कि वह उन लोगोंका शोषण न करे, जो उसके लिए श्रम करते हैं। कार्यव्यस्त डॉक्टरों आदिकी चिन्ता छोड़ो। वे जब शुद्ध सेवाकी भावनासे जनताकी सेवा करेंगे, तो जनता उन्हें भूखों नहीं मरने देगी।[1]

एक बार लाल कुर्तीवालोंने गांधीसे शिकायत की कि आपने इरविनसे समझौता करके अच्छा नहीं किया। इससे किसानों और मजदूरोंके स्वतन्त्र लोकतन्त्रका निर्माण नहीं होगा।

गांधीने उत्तर दिया आप लोग यदि यह चाहें कि पूँजीपति लोग सर्वथा नष्ट हो जायँ, सो तो होनेवाला है नहीं। उसमें आपको सफलता मिल नहीं सकती। आपको करना यह चाहिए कि आप पूँजीपतियोंके समक्ष श्रमकी प्रतिष्ठा करके दिखायें। फिर वे उन लोगोंके ट्रस्टी बनना स्वीकार कर लेंगे, जो उनके लिए श्रम करते हैं। मैं चाहता हूँ कि पूँजीवाले निर्धनोंके ट्रस्टी बन जायँ और पूँजीका व्यय

१ गांधी हरिजन २८-'३५।

उन्हींके लिए करें। मैंने स्वयं अपनी सम्पत्तिका विसर्जन करके तोल्स्तोय फार्मकी स्थापना की थी। रस्किनकी 'अन्टु दिस लास्ट' ने मुझे प्रेरणा दी और उसीके आधारपर मैंने उक्त फार्मकी स्थापना की। आपकी दृष्टिमें सम्पत्तिका मूल्य अधिक है या श्रमका? मान लीजिये, आप सहाराके मरुस्थलमें रास्ता भूल जाते हैं। आपके पास ढेरों सोना भरा पड़ा है। पर उससे आपको क्या सहायता मिलने वाली है? आप यदि श्रम कर सकें तो आपको भूखों मरनेकी नौबत नहीं आयेगी। तब पैसेको श्रमसे अधिक महत्त्व क्यों दिया जाय?

दादा धर्माधिकारीका कहना है: आजका समाज सम्पत्तिनिष्ठ है। हम उसे श्रमनिष्ठ बना देना चाहते हैं। इसमें दो प्रक्रियाएँ हैं—समाजमें जो प्रतिष्ठित है, उसे श्रम करना चाहिए, साथ ही श्रमवान्को 'श्रमनिष्ठ' बनना चाहिए। मजदूर भगवान्से यह वरदान थोड़े ही माँगेगा कि आज मेरे पास जो कुदाली है, उससे जरा अच्छी कुदाली दे दे! वह तो यही कहेगा—'हे भगवान्, इस कुदालीसे मुक्ति पानेका दिन कब आयेगा?'

विनोबा कहते हैं: धनवान्की धननिष्ठा कम करनेके लिए मैं सम्पत्तिदान माँग रहा हूँ। भूमिवान्की भूमिनिष्ठा कम करनेके लिए मैं उनसे भूमिदान माँग रहा हूँ और श्रमवान्को श्रमनिष्ठ बनानेके लिए मैं श्रमदान माँग रहा हूँ।

आज जो श्रमवान् है, वह श्रम बेचता है। श्रम जिस दिन बाजारके ऊपर उठ जायगा उस दिन श्रमवान् 'श्रमनिष्ठ' बन जायगा। इसलिए गांधीने शरीर श्रमको व्रत बना दिया।

अस्वाद

गांधी कहते हैं: मनुष्य जबतक जीभके रसोंको न जीते, तबतक ब्रह्मचर्यका पालन कठिन है। भोजन शरीर-पोषणके लिए हो स्वाद या भोगके लिए नहीं।

यह व्रत सामाजिक मूल्य कैसे बनेगा, इसकी व्याख्या दादाके शब्दोंमें यों है—मान लें आज यह टुकड़ी रसोईमें आ गयी। अब हम यदि यह सोचें कि सारी भाजियाँ ये ही पराठे कैसे हमारे लिए क्या बनेगा, तब तो ये लोग होटलवाले बन जायेंगे, शिविरवाले नहीं रहेंगे। शिविरवाले ये तभी रहेंगे जब कि खाने वाले खाना खाते जाते हैं और खिलानेवाले खुश होते जाते हैं। खिलाते खिलाते इनका दिल आनन्दसे नाच रहा है। मेरा आनन्द यदि दूसरोंको खिलानेमें है तो मेरा आनन्द दूसरोंके खिलानेमें भी होना चाहिए। विनोबा हमें इसका

---

१ [illegible] ९४ ।

२ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय-दर्शन पृष्ठ [illegible]

खिलाता है . अरे भाई, जो दूसरेको खिलाकर खाता है, वह अलग स्वाद जानता है। जो खुद ही खाता है, उसे कभी मजा ही नहीं आता।[1]

अन्य व्रत

सर्वधर्म समानत्वमें अभेदकी भावना भरी है। जो धर्म मनुष्य मनुष्यमें भेद करता है, वह धर्म नहीं। स्वदेशीमें स्वावलम्बन ही नहीं, परस्परावलम्बन भी होता है। नहीं तो विनोबाके शब्दोंमें 'विकेन्द्रित उत्पादन' 'विकीर्ण उत्पादन' हो जायगा। यहाँ जो उत्पादन होगा, वह पड़ोसीके लिए होगा। स्पर्श-भावनामें जाति निराकरण और अस्पृश्यता-निवारण आ जाता है। सर्वोदयमें जाति और ऊँच-नीचके भेद चल ही नहीं सकते।

सर्वोदयकी अर्थव्यवस्था

सर्वोदयके मूल आधार सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, श्रमनिष्ठा, अस्वाद आदिके विवेचनसे यह स्पष्ट हो गया कि नैतिक मूल्योंके आधारपर प्रतिष्ठित समाजमें सुख, शान्ति और आनन्दकी त्रिवेणी प्रवाहित हुए बिना न रहेगी।

पैसा इस व्यवस्थाका मूल आधार है नहीं। इसका आधार तो व्यक्ति है, मानव है। वस्तुका उत्पादन मानवकी आवश्यकताके लिए होगा, पैसेके लिए नहीं। उसमें प्रेम और सद्भाव, एक-दूसरेके लिए आत्मत्याग, आत्मानुशासन और सार्वजनिक हितकी भावना रहेगी। काम होगा प्रेमपूर्वक, उत्पादन होगा रस ले-लेकर। व्यवस्था होगी सहयोगपूर्ण। सम्पत्ति सबकी होगी, व्यक्तिगत मालकियत किसीकी नहीं।

श्रमनिष्ठा, सादगी, विकेन्द्रीकरण—इन धारणाओंको सामने रखकर सारी अर्थव्यवस्थाका सगठन होगा। खादी और ग्रामोद्योग, हल और चरखा इसकी बुनियाद हैं। हर आदमी श्रम करेगा, हर आदमी पड़ोसीका ध्यान रखेगा। न शोषण होगा, न अन्याय। सम्पत्तिवाले सम्पत्तिको समाजकी धरोहर मानेंगे। श्रम करनेमें लोग गौरव मानेंगे। प्रेमकी सत्ता चलेगी, प्रेमका राज! ● ● ●

---

१ दादा धर्माधिकारी : वही, पृष्ठ २०२।

कुमारप्पा

बात है सन् १९३४ की ।

पटनाके इम्पीरियल बैंकमें एक दिन खादीके जीर्ण-शीर्ण कपड़े पहने हुए एक व्यक्तिने आकर कहा कि मैं एजेण्टसे मिलना चाहता हूँ ।

चपरासियोंको उसकी बातपर विश्वास न हुआ । वे उसे एक क्लर्कके पास ले गये । उसने पूछा : क्यों ?

वह बोला : हिसाबका एक खाता खोलना है ।

क्लर्कने कहा : उसके लिए कमसे कम २   ) चाहिए ।

वह बोला : हो जायगा उसका इन्तजाम ।

उसने अपना कार्ड एजेण्टके पास भिजवा दिया । अंग्रेज एजेण्टने देखा कि कैम्ब्रिजका एक सनदयाफ्ता [illegible] उससे मिलने आया है । वह भीतर घुसा तो एजेण्टको लगा कि यह कौन भिखारी-सा व्यक्ति चला आ रहा है । पूछा तो वह बोला : मैंने अपना कार्ड आपके पास भिजवा दिया है !'

'मुझे तो मिला नहीं ।

'यह क्या पड़ा है सामने !

'यह आपका कार्ड है ?'

वह आसमानसे गिरा । उठकर हाथ मिलाया और बात करने लगा ।

'यह है १९ लाखका ड्राफ्ट । आप बिहार भूकम्प सहायता समितिके नामसे हमारा खाता खोल दीजिये !

१९ लाखके ड्राफ्टवाला यह व्यक्ति था जोसेफ कोर्नेलियस कुमारप्पा ।

एजेण्टने उससे बहुत देरतक प्रेमसे बातें कीं और अन्तमें वह उसे मोटरतक पहुँचाने आया । उसकी निःस्वार्थ सेवा लगन और तत्परतापर वह मुग्ध हो गया ।

गांधीजीका यह अनन्य विश्वासपात्र अनुयायी हिसाब-किताबमें दक्ष और अत्यन्त सूक्ष्म विचारक तो था ही सर्वोदयका अत्यन्त प्रखर प्रवक्ता भी था ।

जीवन-परिचय

जोसेफ को कुमारप्पाका जन्म तंजोरके एक ईसाई परिवारमें ४ जनवरी १८९२ को हुआ । माँ थी परम दयालु और धर्मपरायण पिता अनुशासनप्रिय और नियमितताके उपासक । शिक्षित सुसंस्कृत परिवार ।

[illegible] कुमारप्पा [illegible] १९५६, पृष्ठ ४४ ४५ ।

जोसेफने भारतमें और विदेशमें रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त की। लन्दनसे एफ० एस० ए० ए० करके वह लन्दनमें ही एक ब्रिटिश कम्पनीमें आडीटर बन गया। बादमें माँके आग्रहपर वह बम्बई लौटकर वहीं काम करने लगा।

सन् १९२७ में अपने अग्रजके अनुरोधपर जोसेफने छुट्टी मनानेके लिए अमेरिका जाना स्वीकार किया, पर वहाँ निष्क्रिय पड़े रहना उसे पसन्द न पड़ा। उसने सेराकूज विश्वविद्यालयमें नाम लिखा लिया और वहाँसे सन् १९२८ में वाणिज्य-व्यवस्थामें बी० एस-सी० कर लिया। अगले वर्ष राजस्वमें एम० ए० करनेके लिए वह कोलम्बिया विश्वविद्यालयमें भरती हो गया। उसने बम्बईके म्युनिसिपल राजस्वपर शोध-निबन्ध लिखनेका विचार किया था। तभी उसके प्रोफेसर डॉक्टर ई० आर० ए० सैलिगमैनने एक समाचार-पत्रमें कुमारप्पाके एक भाषणका विवरण पढ़ लिया। उसके भाषणका विषय था—"भारत दरिद्र क्यों है?" सैलिगमैनने इस बातपर जोर दिया कि कुमारप्पा राजस्वके माध्यमसे भारतकी दरिद्रताके कारणोंपर शोध करे। कुमारप्पा जब इस विषयपर शोध करने लगा, तो उसे अंग्रेजों द्वारा भारतके शोषण और दोहनका पूरा पता लगा और राष्ट्रीयताकी भावना उसके हृदयमें जमकर बैठ गयी।

सन् १९२९ में कुमारप्पा भारत लौटा। वह अपना शोधग्रन्थ भारतमें छपाना चाहता था। तभी किसीने उसे बताया कि अच्छा हो, वह इस सिलसिलेमें गाधीसे मिले। वह गाधीसे मिला। गाधी उसके ग्रन्थको 'यंग इण्डिया' में क्रमश छापनेको प्रस्तुत हो गया।

बापू मनुष्योंके अद्वितीय पारखी! कुमारप्पा जैसा राष्ट्रीय दृष्टिवाला शिक्षित अर्थशास्त्री उन्हें टीख पड़े और वे उसे यों ही छोड़ दें, यह सम्भव ही कैसे था? उन्होंने उसपर ऐसी मोहनी डाली कि वह सदाके लिए बापूका बन गया! कुमारप्पा बापूके रगमें रँगा सो रँगा। उसने अपनी अंग्रेजी वेशभूषा, अपनी अंग्रेजी रहन सहनको तिलाजलि प्रदान कर सदाके लिए गरीबीका वरण कर लिया। बापूके आन्दोलनोंमें उसने पूरा भाग लिया। सन् १९३१, ३२–३४, ४२, ४३–४५ में उसने ४ बार जेल यात्रा की और जीवनके अन्तिम क्षणतक सर्वोदयका प्रकाश फैलाता रहा। अनेक बार सर्वोदयका सन्देश फैलानेके लिए उसने विश्वके विभिन्न अचलोंकी यात्रा भी की।

प्रमुख रचनाएँ

सर्वोदय अर्थशास्त्रका विकास करनेमें कुमारप्पाकी देन अमूल्य है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं :

व्हाइ दी विलेज मूवमेण्ट ?, इकॉनॉमी ऑफ परमानेन्स, गांधियन इकॉनॉमिक थॉट, गांधियन वे ऑफ लाइफ, पब्लिक फिनान्स एण्ड अवर पावर्टी, रिपोर्ट ऑन दि फिनान्शियल आब्लीगेशन्स बिट्वीन ग्रेट ब्रिटेन एण्ड इण्डिया, स्वराज्य टु फ्रीन्स आर्गेनाइजेशन एण्ड एकाउण्ट्स ऑफ रिलीफ वर्क, एन ओवरड्राफ्ट प्लान फार रूरल डेवलपमेण्ट, यूनीटरी बेसिस फार ए नानवायलेण्ट डेमॉक्रेसी, करेन्सी इन्फ्लेशन—इट्स कॉज एण्ड क्योर, एन इकॉनॉमिक सर्वे ऑफ मातार तालुका, रिपोर्ट ऑफ दी कांग्रेस एग्रेरियन रिफार्म्स कमिटी, स्वराज्य फार दि मासेज, ब्लड मनी, प्रेजेण्ट इकनामिक सिचुएशन, नानवायलेण्ट इकानॉमी एण्ड वर्ल्ड पीस, सर्वोदय एण्ड वर्ल्ड पीस, क्लाउड इन अवर इकॉनॉमी।

१ जनवरी १९६ को कुमारप्पाका देहान्त हो गया।

प्रमुख आर्थिक विचार

कुमारप्पाने सर्वोदयी दृष्टिसे भारतकी स्थितिका विधिवत् सर्वेक्षण किया। देशकी आर्थिक स्थितिकी गवेषणा करते हुए उन्होंने ब्रिटिश शोषण और दोहन-का पर्दाफाश किया। मुद्रास्फीतिपर, राजस्वपर, संयोजनपर, किसानों और मजदूरोंकी स्थितिपर उनका विवेचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कुमारप्पाका सबसे महत्त्वपूर्ण अर्थशास्त्रीय अनुदान है :

१ गाँव-आन्दोलन क्यों ?
२ गांधी-अर्थ-विचार और
३ स्थायी समाज-व्यवस्था।

१ गाँव-आन्दोलन क्यों ?

'व्हाइ दी विलेज मूवमेण्ट ?'[1] में कुमारप्पाने ग्रामकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्थाके लिए जोरदार दलील देते हुए बताया है कि यदि हम युद्ध समाप्त कर देना चाहते हैं तो हमें अपनी अर्थ-व्यवस्थाको ऐसा बनाना पड़ेगा कि इसे सन्तोष बनाये रखनेके लिए भीषण शोषण साधन होनेकी आवश्यकता न पड़े। आप जितनी कम हिंसाका प्रयोग करेंगे उसीके उसके अनुपातमें सुखमय होते जायेंगे। यदि हम सचमुच शान्तिप्रिय और सुखमय दुनिया बनाना चाहते हैं तो अपने स्वार्थ और तृष्णाका दमन करनेके अलावा और कोई चारा नहीं है। दस्तकारियाँ और गृह उद्योग बहुत हदतक अहिंसक हैं और शोषणकी ओर अग्रसर नहीं होते।

---

१ कुमारप्पा : गाँव-आन्दोलन क्यों ? पृष्ठ १२२४।

मानव-प्रकृतिके दो भाग

मानव-प्रकृतिको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है :

गुट-जाति और झुण्ड-जाति।[1]

गुट-जातिकी विशेषताएँ

(१) जीवनका संकुचित और अल्पकालीन दृष्टिकोण।

(२) केन्द्रित नियंत्रण और व्यक्तियों या छोटे समूहोंके हाथमें निर्णय स्वयं शक्तिका संचित रहना।

(३) कठोर अनुशासन।

(४) संस्थाको सफल बनानेवाले असली कार्यकर्ताओंके हितोंका विचार न रखा जाना।

(५) कार्यकर्ताके व्यक्तित्वका विकास न होने देना और आपसी प्रतिद्वंद्वितामें असहिष्णुता।

(६) लाभ प्राप्तिका ही सब कामोंकी प्रेरक शक्ति बन जाना।

(७) लाभका संचय और थोड़ेसे आदमियोंमें उसका बँटवारा।

(८) दूसरेके भले बुरेका कुछ भी ख्याल न रखकर निजी लाभके लिए जितना हो सके, बटोरना। दूसरेकी मेहनतसे पेट भरना।

झुण्ड-जातिकी विशेषताएँ

(१) जीवनका विस्तृत दृष्टिकोण।

(२) सामाजिक नियंत्रण, विकेन्द्रीकरण और शक्तिका बँटवारा। निःस्वार्थ सिद्धान्तोंपर सारा काम।

(३) कार्य-शक्तिका ठीक दिशामें लगाना।

(४) निर्बलों और असहायोंके बचावका प्रयत्न।

(५) बड़ी हदतक विचारोंकी सहिष्णुता द्वारा प्रकट होनेवाली निजी शक्तियोंके विकासको बढ़ावा देना।

(६) कामका ध्येय सिद्धान्तों और सामाजिक नियमोंके अनुकूल होना।

(७) लाभका अधिकसे अधिक लोगोंमें आवश्यकताके अनुसार बँटवारा।

(८) आवश्यकताएँ पूरी करनेका ध्येय निःस्वार्थ भावसे रखा जाना।

---

१ कुमारप्पा वही, पृष्ठ ४—६।

पश्चिमी अर्थव्यवस्थाएँ

गुट-पद्धतिकी सभी विशेषताओंकी झलक पश्चिमकी औद्योगिक संस्थाओंमें स्पष्ट दिखाई देती है।[1]

इनके ५ भेद किये जा सकते हैं

(१) जमीनकी परम्परा,
(२) पूँजीकी परम्परा
(३) मशीनकी परम्परा
(४) श्रमकी परम्परा और
(५) मध्यम-वर्गकी परम्परा।

जमीनकी परम्पराका नमूना हमें जमींदारी प्रथामें मिलता है। जिन बेचारे गाँववालोंकी मेहनतकी कमाई जमींदार हड़पता था उनकी भलाईका विचार भी उसके दिमाग़में कभी नहीं आता था।

अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें हम पूँजीकी परम्पराको जन्म लेते हुए देखते हैं। कारण अथवा भरसक दबी हुई चीज़ें कुछ लोगोंके पास इकट्ठी हो जाती हैं और वैज्ञानिक आविष्कारोंसे व्यवसायमें लाभ उठाया जाना शुरू हो जाता है। पूँजीकी ताकत जब बढ़ती गयी तो जागीरदारोंने भी पूँजीपतियोंके साथ नाता जोड़नेमें अपनी भलाई देखी। शक्ति और पूँजीके इसी गठबन्धनको हम 'साम्राज्यवाद' के नामसे पुकारते हैं।

मशीनकी परम्पराका सबसे अच्छा उदाहरण अमेरिका है। वहाँ मशीनकी शक्तिके समक्ष मनुष्य नगण्य हो गया है। मशीनें वहाँ मजदूर कम करनेका साधन बन गयीं। इस परम्पराका नियंत्रण आरम्भसे थोड़े लोगोंके हाथमें रहा और जिनकी मेहनतसे काम होता था, उनकी भलाईका कोई ख्याल नहीं रखा गया।

श्रम-परम्परा मजदूर लोग ही व्यापारियोंके विविध अधिकारोंको दृष्टिमें रखते हुए चलाते हैं। जो भी काम होता है, वह मशीन-मालिकके हाथों जाता है।

अभी हालमें हमने वे संघर्ष और आन्दोलन देखे जिनमें मध्यम-वर्गने इस परम्पराकी व्यवस्थाकी सत्ता और अधिकार कायम पानेका प्रयत्न किया। इसी कारण हमें गुट किस्मके 'नाज़ीवाद' और 'फैसिज़्म' की उत्पत्ति मिलती है जो कि जीवादके समान ही चलती है।

---

१ कुमारप्पा : वही पृष्ठ ९–१६।

केन्द्रित उत्पादन, फिर वह चाहे पूँजीवादमें हो या साम्यवादमें, आगे चल-कर राष्ट्रीय सर्वनाश करके ही छोड़ेगा।

अर्थशास्त्रकी प्रणालियाँ

मनुष्यके काम काजोंके पीछे जो प्रेरणा विशेष काम करती है, उसके अनुसार हम उसे चार व्यवस्थाओंमें बाँट सकते हैं[1] :

(१) लूट-खसोटकी व्यवस्था,

(२) साहसपूर्ण व्यापारकी व्यवस्था,

(३) मिल-जुलकर कमाने खानेकी व्यवस्था और

(४) स्थायित्वकी व्यवस्था।

लूट-खसोटकी व्यवस्था

इसमें प्रेरक कानून यह है कि दूसरोंके या अपने अधिकारों या कर्तव्योंका ख्याल रखे बिना अपनी आवश्यकताएँ पूरी करना। जीवनका यह ढंग पूर्णत-पशु-श्रेणीका है, जिसमें बिना किये-धरे कुछ पानेकी इच्छा रहती है।

साहसपूर्ण व्यापारकी व्यवस्था

मनुष्य उत्पादन करता है और उसे अपनेतक ही सीमित रखता है। इस व्यवस्थाका परिणाम है—सरकारी हस्तक्षेपसे आजादी और पूँजीवादी मनोवृत्ति। 'बस अपना स्वार्थ साधो, कमजोर चाहे जहन्नुममें जाय'—यही उनका नारा और आदर्शवाक्य रहता है।

मिल-जुलकर कमाने-खानेकी व्यवस्था

जैसे जैसे मनुष्य समझता गया कि केवल अपने लिए ही कोई नहीं जी सकता और मनुष्य-मनुष्यके बीच भी कुछ नाते-रिश्ते हैं, उसमें मिल-जुलकर रहनेकी बुद्धि आती गयी। इसके भी कुछ विशेष स्तर हैं :

(क) **साम्राज्यवाद**—औद्योगिकोंके गुट, व्यावसायिक गुटबन्दियाँ, ट्रस्ट, एकाधिकार आदि। इसमें केवल गुटकी भलाईपर जोर दिया जाता है।

(ख) **फासिज्म, नाजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद**—जब किसी विशेष श्रेणीके भिन्न प्रकारके लोग जातीय, सामाजिक, आर्थिक या इसी तरहके किसी बन्धनमें बँधे रहते हैं, तो वे मिलकर अपने स्वार्थ या अपने एक ही ध्येयकी पूर्तिके लिए एक गुट बना लेते हैं। इसमें केवल अपने वर्गका ही ख्याल रखा जाता है, बाहरवालोंका लेशमात्र नहीं। इसमें 'साम्राज्यवाद' की अपेक्षा लूट-खसोटकी मात्रा कम है, क्योंकि यह वर्ग बड़ा होता है, राष्ट्रीयताकी भावना उग्ररूपमें रहती है।

---

१ कुमारप्पा : वही, पृष्ठ, २४-३१।

स्थायित्वकी व्यवस्था

ऊपरकी सभी व्यवस्थाएँ अस्थायी हैं। उनका आधार उन क्षणिक स्वार्थोंपर रहता है, जो मनुष्यके छोटेसे जीवन या अधिकसे अधिक उस वर्गविशेष या राष्ट्रके जीवनका संचालन करते हैं।

जब हम अधिकारोंपर अधिक जोर देते हैं, तब जीवन भोग-विलासकी तरफ झुकता है। जब हम कर्तव्योंपर ध्यान देते हैं तो हम दूसरेको भी अपनी ही तरह समझकर उसका ख्याल करनेको विवश होते हैं। यह व्यवस्था समाजको स्थायित्वकी ओर अग्रसर होती है।

स्थायित्वकी व्यवस्था उच्च साधनों द्वारा निःस्वार्थ भावसे समाज-सेवाकी व्यवस्था ब्राह्मणीय आदर्शों और धर्मोंकी है। ब्राह्मणकी व्यवस्थाके अनुसार चलने और अनन्तकी राह अपनानेका इसमें प्रयत्न किया गया है। मनुष्यके विकासकी यही पराकाष्ठा है।

सच्ची स्वतंत्रता

हिंसापर आधृत समाजमें असली स्वाधीनता होती ही नहीं, समाजमें केन्द्रीय शासन कानून मनवानेके लिए डण्डा लिये नागरिकके सिरपर सवार रहता है। भय, दण्ड और संदेहके वातावरणमें भी कभी स्वतंत्रता पनपी है!

सच्ची स्वतंत्रतासे जनताके विकासको प्रेरणा मिलनी चाहिए। इससे मानवमें पशुताके बजाय मानवताका संचार होगा। लूट-खसोटसे जन्म लेनेवाले साम्राज्यवादमें हिंसाकी कलामें निपुण लोगोंको वैभवशाली बनानेके लिए समाजमें सबसे ऊँचा पद दिया जाता है। अहिंसात्मक समाज-व्यवस्थामें हमें हिंसा और सम्पत्तिका त्याग करना पड़ता है और सेवाके लिए अपनेको बलिदान कर देना पड़ता है।

आर्थिक प्रणालीका उद्देश्य

यदि अर्थ-व्यवस्था इन उद्देश्योंके अनुकूल चले,[2] उसका शायद ही कोई विरोध करे —

(१) इस व्यवस्थामें जितनी अच्छी तरह सम्भव हो धन उत्पादन होना चाहिए।

(२) इसमें धन-वितरण विस्तृत और बराबर होना चाहिए।

(३) भोग-विलासकी वस्तुओंसे पहले यह जनताकी आवश्यकताओंकी वस्तुओंका प्रबन्ध करे।

---

१ कुमारप्पा : वही पृष्ठ १४०–१४१।

२ कुमारप्पा वही पृ॰ १६२-१६६।

(४) यह व्यवस्था लोगोंको कार्य द्वारा उन्नत करने और उनके व्यक्तित्वका विकास करनेवाली हो।

(५) यह समाजमें शांति और व्यवस्था पैदा करनेवाली हो।

केन्द्रीकरणके दोष

केन्द्रीकरणके ५ दोष हैं।[1]

(१) पूँजीके संग्रहमें जो केन्द्रीकरण आरम्भ होता है, वह बादमें सम्पत्तिको केन्द्रित कर देता है। इससे अमीर-गरीबके सारे झगड़े पैदा होते हैं।

(२) जब श्रमकी कमीसे केन्द्रित उत्पादनको जन्म दिया जाता है, स्वभावतः श्रम-शक्ति कम होनेसे उत्पादन द्वारा वितरित क्रय-शक्ति भी कम हो जाती है। इससे अनिवार्यतः क्रय शक्ति घट जानेसे अन्तमें माँगको पूरी करानेकी शक्ति कमजोर पड़ जाती है और तुलनात्मक अति उत्पादन होने लगता है, जैसा कि आज हम संसारमें देखते हैं।

(३) जहाँ एक ही बनावटकी वस्तुओंके उत्पादनकी आवश्यकता केन्द्रीकरण आरम्भ करती है, उत्पत्तिमें कोई भिन्नता न होनेसे विकास रुक जाता है। बड़े पैमानेपर साम्यवादको प्रोत्साहित करके यह युद्ध करानेमें सहायता करता है।

(४) श्रमसे अनुशासन द्वारा काम लेनेसे शक्ति थोड़ेसे लोगोंमें केन्द्रित हो जाती है, जो कि धनके केन्द्रीकरणसे भी भयानक है।

(५) कच्चा माल मँगाना, उत्पादनके लिए और उत्पत्तिके लिए बाजार ढूँढना—इन तीनोंके एकीकरणका नतीजा साम्राज्यवाद और युद्ध होता है।

विकेन्द्रीकरणके लाभ

विकेन्द्रीकरणके ये ५ लाभ हैं[2]:

(१) विकेन्द्रीकरण द्वारा धन-वितरण अधिक सम तरीकेसे होता है, जो लोगोंको संतोषी बनाता है।

(२) इसमें मूल्यका अधिकांश मजूरीके रूपमें दिया जाता है। उत्पादन-विधिसे धन वितरण भी जुड़ा है। क्रय शक्तिका ठीक बँटवारा होनेसे माँगको पूरी करानेकी शक्ति भी बढ़ जाती है और उत्पादन माँगके अनुसार होने लगता है।

(३) प्रत्येक उत्पादक अपने कारखानेका मालिक होता है। उसे अपनी सूझ-बूझ काममें लानेका पर्याप्त अवसर मिलता है। पूरी जिम्मेदारी रहनेसे उसमें

---

१ कुमारप्पा : वही, पृष्ठ १६७-१६८।

२ कुमारप्पा : वही, पृष्ठ १६९।

स्वामित्वकी व्यवस्था

ऊपरकी सभी व्यवस्थाएँ अस्थायी हैं। उनका आधार उन धनिक स्वामीपर रहता है, जो मनुष्यके उद्देश जीवन या आवश्यक अधिक उस वर्गविशेष या पाई जीवनका संचालन करते हैं।

जब हम अधिकारोंपर अधिक भार देते हैं, तब जापन भोग-विलासकी तरफ झुकता है। जब हम कर्तव्योंपर ध्यान देते हैं तो हम दूसरेको भी अपनी ही तरह समझकर उसका ख्याल करनेका विचार होते हैं। यह व्यवस्था स्वभावतः स्वामित्व-की ओर अग्रसर होती है।

स्वामित्वकी व्यवस्था से ये साधनों द्वारा निःस्वार्थ भावसे समाज सेवाकी व्यवस्था मानवीय आदर्शों और धर्मोंकी है। प्रजातन्त्री व्यवस्थाके अनुसार धनके और मनन्तकी यह भावनाओंका इसमें प्रकट किया गया है। मनुष्यके विकासकी यही पराकाष्ठा है।

सच्ची स्वतंत्रता

हिंसापर आधृत समाजमें असली स्वाधीनता होती ही नहीं, समाजमें केन्द्रीय शासन कानून मनमाने के लिए डण्डा लिये नागरिकोंके सिरपर सवार रहता है। भय घृणा और संघर्ष के वातावरणमें भी कभी स्वतंत्रता पनपी है ?

सच्ची स्वतंत्रतासे जनताके विकासको प्रेरणा मिलनी चाहिए। इससे मानवमें पशुताके बजाय मानवताका संचार होगा। छल-कपटोंसे जन्म लेनेवाले साम्राज्य-वादमें हिंसाके कर्ममें निपुण लोगोंको वैभवशाली बनानेके लिए समाजमें सबसे ऊँचा पद दिया जाता है। अहिंसात्मक समाज-व्यवस्थामें हमें हिंसा और शक्तिका त्याग करना पड़ता है और उसके लिए अपनेका बलिदान कर देना पड़ता है।

आर्थिक प्रणालीका उद्देश्य

जो अर्थ-व्यवस्था इन उद्देश्योंके अनुकूल चले उसका स्वागत ही और विरोध करे —

(१) इस व्यवस्थामें जितनी अच्छी तरह सम्भव हो धन उत्पादन होना चाहिए।

(२) इसमें धन-वितरण विशुद्ध और बराबर होना चाहिए।

(३) भोग-विलासकी वस्तुओंसे पहले यह जनताकी आवश्यकताओंकी वस्तुओंका प्रबन्ध करे।

---

१ कुमारप्पा : वही पृष्ठ १४ १४३।
२ कुमारप्पा वही पृ० १६५-१६६।

३ स्थायी समाज-व्यवस्था

गांधीजीके शब्दोंमें 'ग्रामोद्योगोंका यह 'डॉक्टर' बतलाता है कि ग्रामोद्योगों-के द्वारा ही देशकी क्षणभंगुर मौजूदा समाज व्यवस्थाको हटाकर स्थायी समाज-व्यवस्था कायम की जा सकेगी।'[१]

प्रकृतिमें ५ व्यवस्थाएँ हैं[२] :

१ परोपजीवी व्यवस्था,
२. आक्रामक व्यवस्था,
३ पुरुषार्थयुक्त व्यवस्था,
४ समूहप्रधान व्यवस्था और
५ सेवाप्रधान व्यवस्था।

---
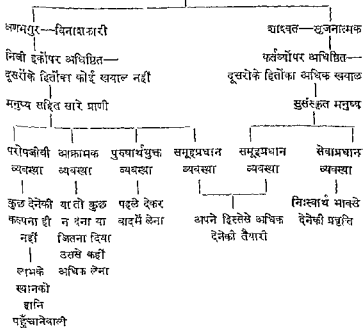
१ मो० क० गांधी : भूमिका 'स्थायी समाज-व्यवस्था'।
२ कुमारप्पा : स्थायी समाज-व्यवस्था, पृष्ठ २७-२ ।

व्यावसायिक विधि और बुद्धि पैदा हो जाती है। जब प्रत्येक व्यक्तिका इस प्रकार विकास होगा, तो राष्ट्रकी समता भी बढ़ेगी।

(४) बिक्रीका स्थान उत्पादन-केन्द्रके निकट होनेसे वस्तुएँ बेचनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। चीजें बेचनेके लिए विज्ञापन और आधुनिक दुकानदारोंके दूसरे ढंगोंकी शरण भी नहीं लेनी पड़ती।

(५) जब धन और शक्ति विकेन्द्रित होगी, तब राष्ट्रीय पैमानेपर किसी प्रकारकी अशांति नहीं होगी।

२. गांधी-अर्थ-विचार

कुमारप्पा कहते हैं कि अर्थशास्त्रकी पुस्तकोंमें जो सामान्य नियम बताये जाते हैं, वे किन्हीं सिद्धान्तोंके अन्तर्गत होते हैं। किन्तु गांधी-अर्थ-विचारमें ऐसा नहीं होता। केवल दो जीवन-सत्य हैं जिनके अन्तर्गत गांधीजीके आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और दूसरे सभी विचार रहा करते हैं। वे हैं—सत्य और अहिंसा। इन दो कसौटियोंपर जो चीज खरी नहीं उतरती, उसे गांधीवादी नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसी स्थिति बन जाय कि उससे हिंसा उत्पन्न हो या उसमें असत्यकी आवश्यकता पड़ जाय, तो हम उसे अ-गांधीवादी कहेंगे।

इन दो सिद्धान्तोंको हम ले और जीवनके हर पहलूमें इन्हें लगाकर देखें कि कहां सत्य है, कहाँ अहिंसा पैदा की जा सकती है। यदि किसी समय इन उद्देश्योंकी पूर्ति न होती हो तो हमें उन रास्तोंको छोड़ देना चाहिए।[1]

गांधीवादी अर्थनीति

गांधीवादी समाजमें संगठन इस प्रकारका होगा कि जिसमें अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ—भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा तथा अन्य चीजें लोग मिलकर स्वयं पैदा कर लेते हैं। इनको पैदा करनेका ढंग विकेन्द्रित होगा है। जितना अधिक केन्द्रीकरण होगा गांधीवादी आदर्शसे चीज उतनी ही दूर जायगी। यदि आत्मनियंत्रण या संयमका आदर्श न रहा तो समाज तब बेकार हो जायगा। हमारे जीवनका नियंत्रण करनेवाली योजनाका नाम है—अहिंसाके द्वारा सत्यकी प्राप्ति। गांधीवादी समाजमें हर व्यक्तिको अपने विकासकी पूरी पूरी गुंजाइश मिलती है, साथ ही सहकारिताका अंदेशा भी बना रहता है। हमारे संगठनकी बुनियाद लोगोंके पास-पड़ोसपर है और इस पास-पड़ोसका आधार है सेवा और कर्तव्य पालन। इसीसे समाज अहिंसा और सत्यकी ओर उसका आगे बढ़ सकता है।[2]

---

१ कुमारप्पा : गांधी-अर्थ-विचार, पृष्ठ १।
२ कुमारप्पा : वही पृष्ठ ८६ ९२।

उन इकाइयोंको कुछ निश्चित लाभ भी पहुँचाते हैं। इस प्रकार अपने पुरुषार्थसे जो चीज बनती है, उसका उपभोग वे करते हैं।
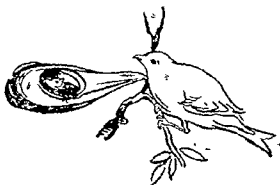
पक्षी द्वारा स्वयं बनाये घोसलेका उपयोग

समूहप्रधान व्यवस्था

शहदकी मक्खियाँ शहद इकट्ठा करती हैं, केवल अपने लिए नहीं, समूचे समूहके लिए। वे सदा जो कुछ करती हैं, पूरे समूहको दृष्टिमें रखकर।

मधुमक्खी द्वारा समूहके लिए मधु-संचय

[illegible]तिकी [illegible]व्यवस्था है—सेवाप्रधान व्यवस्था। उसका सबसे अच्छा [illegible] है [illegible]सके माता पिता। पक्षीके बच्चेकी माँ तमाम जंगल

परोपजीवी व्यवस्था

कुछ पौधे दूसरे पौधोंपर चढ़ते हैं और इस प्रकार परोपजीवी बनते हैं। कुछ समयके बाद मूल झाड़, उसपर उगनेवाले दूसरे झाड़की वजहसे सूखने लगता है और अन्तमें मर जाता है।

दूसरोंपर जीनेवाला प्राणी

बेचारी गरीब भेड़ घास खाती है, पानी पीती है, पर शेर प्राकृतिक रास्ता छोड़कर बीचका ही मार्ग निकालता है। वह भेड़को मारकर उसपर अपनी गुजर-बसर करता है।

आक्रामक व्यवस्था

बन्दर आमके बगीचेमें पहुँचता है। उस बगीचेके बनानेमें उसका कोई हाथ नहीं होता। न वह जमीन जोतता है, न झाड़ लगाता है, न पानी ही देता है। पर उस बगीचेके आम वह खाता है।

दूसरेके श्रमके भुट्टे खानेवाले पक्षी

पुरुषार्थयुक्त व्यवस्था

कुछ प्राणी दूसरों द्वारा कुछ श्रम करते हैं पर देखा करते हुए।
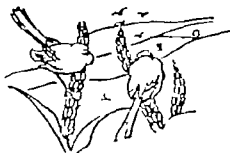
कामक व्यवस्था—प्रमुख वर्ग—एक पाकेटमार, जो अपने लक्ष्यको
किसानका पता नहीं लगने देता।

य लक्षण—बदलेमें कुछ दिये बिना फायदा कर लेनेकी प्रवृत्ति रखना।

परार्थयुक्त व्यवस्था—प्रमुख वर्ग—एक किसान, जो खेत जोतता है,
खाद डालता है, उसकी सिंचाई करता है, उसमें चुने हुए बीज बोता है,
रखवाली करता है और बादमें फसल काटकर उसका उपभोग करता है।

किसान

लक्षण—श्रम और लाभका उचित समन्वय, धोखा उठानेकी तैयारी।

व्यवस्था—प्रमुख वर्ग—अविभक्त कुटुम्बका नेता, जो सारे
लिए काम ... ग्राम-पंचायतकी सहकारी समिति, जो
लोगोंके लि... करती है।

ढूँढ़कर बच्चेके लिए चारा लाती है। अपनी जान संकटमें डालकर शत्रुसे रक्षा करती है।

सुखासक्तिकी अपेक्षाके बिना बच्चेकी सेवा

मानवीय विकासकी मंज़िलें[1]

मनुष्यकी विशेषता है कि उसे बुद्धि प्रदान की गयी है। उसके बूतेपर अपने आसपासका वातावरण बदल सकता है।

परोपजीवी अवस्था—प्रमुख वृत्ति—एक डाकू, जो बच्चेके गहनोंके लिए उसे मार डालता है।

डाकू

मुख्य लक्षण—दूसरेके जानकी नाश करना।

---

१ कुमारप्पा : स्थायी समाज-व्यवस्था पृष्ठ ३१-३७।

आक्रामक व्यवस्था—प्रमुख वर्ग—एक पाकेटमार, जो अपने लक्ष्यको नुकसानका पता नहीं लगने देता।

मुख्य लक्षण—बदलेमें कुछ दिये बिना फायदा कर लेनेकी प्रवृत्ति रखना।

पुरुषार्थयुक्त व्यवस्था—प्रमुख वर्ग—एक किसान, जो खेत जोतता है, खाद डालता है, उसकी सिंचाई करता है, उसमें चुने हुए बीज बोता है, रखवाली करता है और बादमें फसल काटकर उसका उपभोग करता है।

किसान

मुख्य लक्षण—श्रम और लाभका उचित समन्वय, धोखा उठानेकी तैयारी।

समूहप्रधान व्यवस्था—प्रमुख वर्ग—अविभक्त कुटुम्बका नेता, जो सारे के हितके लिए काम करता है। ग्राम-पंचायतकी सहकारी समिति, जो अपने दायरेके लोगोंके हितके लिए काम करती है।

ग्राम-पंचायत

मुख्य लक्षण—व्यक्तिका लाभ नहीं समूहका लाभ या हित प्रधान।
सेवाग्रामकी व्यवस्था—प्रमुख कर्ता—सहायता-कार्य करनेवाला।

निःस्वार्थ भावसे प्यासेको पानी पिलाना
मुख्य लक्षण—मुआवजेकी चाह चिन्ता न करके दूसरोंका भला करना।

जीवनका लक्ष्य

उपर्युक्त दिशामें जीवनका नियमन करना आवश्यक है। इसके लिए मनुष्यका ध्येय सम्पूर्ण मानव-समाजकी सेवा होना चाहिए और वह प्रकृतिके विरुद्ध नहीं होनी चाहिए। उसमें केन्द्रित कारखानोंकी बनी चीजें दूसरोंपर लादनेकी कोशिश नहीं होनी चाहिए और न व्यक्तित्वके विकासका विरोध होना चाहिए।[1]

जीवनके पैमाने

जीवनका पैमाना ऐसा निश्चित होना चाहिए कि उसमें व्यक्तिकी सुप्त शक्तियोंके विकास और उसके आत्मप्रकटीकरणकी पूर्ण गुंजाइश रहते हुए एक व्यक्तिका दूसरे व्यक्तिसे सम्बन्ध जुड़ा रहे, ताकि अधिक बुद्धिमान् या कलावान् व्यक्ति अपनेसे कम बुद्धिवाले और कलावालोंको अपने साथ लेकर आगे बढ़ते चलें।

हमें देखना चाहिए कि हमारी हर आवश्यकताकी चीज हमारे आसपासके कच्चे मालसे और आसपासके ही कारीगरों द्वारा बनायी हुई हो, तभी हमारा आर्थिक ढाँचा पक्का बनेगा। तभी हम शाश्वत व्यवस्थाकी ओर अग्रसर होंगे, क्योंकि उस हालतमें हिंसाका निर्माण न होकर सर्वनाश होनेकी कोई सम्भावना नहीं रहेगी।

हम जो पैमाना निश्चित करें, उसकी बदौलत समाजके अंग-प्रत्यंगमें शुद्ध सहकारिता निर्माण होनी चाहिए। ऐसे पैमानेसे अलग-अलग व्यक्तियोंका ही लाभ नहीं होगा, बल्कि वह समूचे समाजको इकट्ठा बाँधनेवाला सिद्ध होगा। उसके कारण परस्पर विश्वास निर्माण होगा, परस्पर मेल होगा और सुख मिलेगा।[2]

कामके चार अंग

कामके मुख्य चार अंग हैं—मेहनत, आराम, प्रगति और संतोष। इनमेंसे किसी एकको दूसरोंसे अलग नहीं किया जा सकता। कामका लक्ष्य पूरा होनेके लिए उसके हर भागका उसमें रहना जरूरी है।[3]

आज कामको दो हिस्सोंमें बाँट दिया जाता है—श्रम और खेल। कुछ लोगोंको श्रम करनेके लिए विवश किया जाता है और कुछ लोग खेलका भाग अपने लिए रख छोड़ते हैं। असंतुलित रूपसे कामका जब विभाजन किया जाता है, तब श्रम उकसानेवाला सिद्ध होता है और खेल मनुष्यको असंयमी बना देता

---

१ कुमारप्पा वही, पृष्ठ ८१।
२ कुमारप्पा वही, पृष्ठ ८९–१०७।
३ कुमारप्पा वही, पृष्ठ १०६।

है। दोनों ही मानवीय मुखको घटानेवाले हैं। गुलाम भूखसे मरता है उसका मालिक बदहजमीसे। श्रमको टालकर केवल मुख पानेकी इच्छाके कारण संसारमें युद्ध, अकाल मौत, उत्पात आदिने हुड़दंग मचा रखा है।[1]

भमका विभाजन

श्रमका उपयुक्त विभाजन करनेके बहाने पश्चिमी लोगोंने श्रमको बहुत छोटे छोटे हिस्सोंमें विभाजित कर दिया है। यहाँतक कि यहाँका हर श्रम भी उसमें बाध्य शामिल होता है और इसलिए यहाँके लोग श्रमको एक अभिशाप ही समझते हैं।

उत्पादनका पसारा छोड़ भी दें, तो भी काम करनेवालेके श्रमकी दृष्टिसे उसके हर छोटे-छोटे भागमें पर्याप्त परिश्रममें विविधता और नवीनता होनी चाहिए, ताकि काम करनेवालेके मन-तंतु अपनी कार्यक्षमता न खो बैठें।

सालके ३ दिनोंतक रोजाना आठ घण्टे वही काम करते रहनेसे कारीगर के मन-तंतुओंपर इतना पेचा बोझ पड़ेगा कि सम्भव है वह पागल हो जाय। इस हालतमें यदि भारी मजदूरी भी मिले तो वह किस कामकी !

कारखानेके मजदूरोंकी हालत घानीके बैल जैसी रहती है। जीवनका आनन्द और आजादीका स्वस्थ वातावरण उनके लिए नहीं है। उन्हें उन्नति और विकास- के सभी अवसरोंसे वंचित रखा जाता है। श्रमका यह तरीका प्रकृतिके विरुद्ध है।

श्रमका विभाजन करनेके प्रकरणमें श्रमका असली रूप तो भुला दिया गया और जहाँतक कारखानेवालोंका सम्बन्ध है उत्पादन ही सब कुछ बन गया और जहाँतक मजदूरोंका सम्बन्ध है मजदूरी ही सर्वस्व बन गयी। इसका परिणाम बहुत भयंकर निकला—श्रमकी उसके करनेवालेपर होनेवाली प्रतिक्रिया गुम हो गयी।

योजना

कोई भी योजना जो केवल उत्पादन और मजदूरीपर जोर देगी प्रकृतिके विरुद्ध होगी। हमारे कर्मकी [धिक्तिके लिए और स्थायी समाज व्यवस्थाके निर्माणके लिए कोई भी योजना श्रमके स्वरूपपर अधिष्ठित करनी पड़ेगी और जिनके लिए यह श्रम होगा उसे उनकी शक्ति और स्वभावपर आधृत करना पड़ेगा।

---

१ कुमारप्पा : वही पृष्ठ ११८।
२ कुमारप्पा : वही पृष्ठ ११९।

दारिद्र्य, गन्दगी, बीमारी और अज्ञानसे भरे भारत जैसे देशकी योजनामें कार्यक्रम ये होने चाहिए

१ कृषि, २. ग्रामीण उद्योग, ३. सफाई, आरोग्य और मकान, ४. ग्रामोंकी ।, ५. ग्रामोंका संगठन और ६. ग्रामोंका सांस्कृतिक विकास।

अन्न-वस्त्रकी आत्मनिर्भरता किसी भी योजनाकी बुनियाद होनी चाहिए। के प्रत्येक व्यक्तिको उचित खुराक और कपड़ा मिलना ही चाहिए। इस नाके लिए एक पाईकी भी आवश्यकता नहीं है। इसमें आवश्यकता जनताकी कर्तव्यशक्तिको उचित मार्ग दिखाकर उससे समुचित । उठानेकी।[1]

• • •

---

[1] कुमारप्पा स्थायी समाज-व्यवस्था, पृष्ठ १३९–१८५।